परोपकाराय सताम् विभूतयः

# श्री प्रश्नोत्तररत्नचिन्तामणि.

और

## अठारह दूषणनिवारक.

( शुद्ध-सरल-हिंदि भाषा समलंकृत

प्रबंध कर्त्ता

नरुचबंदर निवासी शेठ अनूपचंद मलुकचंद.

आत्मार्थी जीवोंके हितार्थ

श्री मागरोळ निवासी स्वर्गवासी शेठ त्रिभोवनदास परशोतम मुळजीके पुण्यार्थ शेठ अमरचंद तलकचंद तरफसें भेट.

प्रकाशक.

श्री जैन श्रेयस्कर मंडळ—मेसाणा.

प्रथमावृत्ति—प्रत १७९

अहमदाबाद.

पानकोरके नाके घांचीकी वाडीमें नथुभाइ रतनचंद मारफातियेने स्वकीय "अँग्लोवर्नाक्यूलर" मुद्रालयमें मुद्रित की.

संवत् १९६५ सने १९०९ वीर संवत् २४३५

# प्रश्नोत्तर रत्नचिंतामणिका उपोद्घात.

विदित हो कि इस ग्रन्थमें प्रथम, जैनी किस सबबमें कहेजाते हैं? और जैनी होयके उन्होंकों क्या क्या करना चाहियें? वो अधिकार है उसपीछे मार्गानुसारीका, समकितका, श्रावकके बारह व्रत और साधुके मार्गका अधिकार, चौदह गुणस्थानकका स्वरूप, कर्म कितने हे उन्होंकी सख्या, कर्मकी प्रकृति कितनी है? कर्म किसतरहसें आते हैं? कर्म क्या पदार्थ है? कर्म क्या फल देते हैं? कर्म क्या करनेसें नाश होते हैं? कर्म नाश करनेका क्या उपाय है? गृहस्थ धर्म, पूजा भक्ति और प्रभुजीका किस प्रकार बहुतमान करना? किस तरह गुणग्राम करना? क्या क्या भावनाएं भावनी? किंवा देवद्रव्य भक्षणसें, ज्ञानद्रव्य भक्षणसें और साधारणद्रव्य भक्षणसें क्या नुकसान होता है? वो और उसी मतलबकी कथाए, धर्मप्रवृत्तिमें शास्त्रके आधार और उसके पत्राक सहित विविध प्रकारके प्रश्नोत्तर, ध्यानके स्वरूप, प्रतिक्रमणके हेतु, और आत्माशुद्धि किस प्रकार की जाय? जिसीके चिंतवन इत्यादि दर्शाये हे तदनतर मरनके वक्त क्या क्या करकें सथारा करना? उसका स्वरूप, ओर रात्रिमें सोनेके समयका विधि, प्रतिष्ठा, दिक्षादिके मुहूर्त्त वगैरः वस्तुओंके स्वरूप बतलाया है कि जो आत्माके हितकर्त्ता है वो अनुक्रमणिका अवलोकन करनेसें विदित हो जायगा

प्रियं पाठक महाशय! इस प्रबंधकी रचना करनेमें पेस्तर मेरा दिल प्रवृत्त न हुवा थाँ, लेकिन मेरे परमप्रिय मित्र रायचंदभाइ उदेचदजी आदिनें मुझकों बहुतसी प्रेरणा की, जिससें मेरे दिलमें आया कि-मेरेमें शास्त्र रचनेकी सामर्थ्यता तो नहीं है, तथापि जैसें बालक पढनेके शुरूमें कक्का घूटते हैं और पीछे अभ्याससें करकें वे सुदर हुरूफ निकाल शकते हैं, वैसें मैंभी इन हेतु भाइयोंकी प्रेरणा है तो थोडा बहुत लिखकर जो जो शास्त्रमें जो वार्त्ता जिस पत्रमें होय उस नोंधके साथ जाहिर करु तो पाठक महाशयोंको समजमें लेना सुगम हो पडेगा, और मुझकोंभी यह किताब लिखनेका प्रयास करनेसें प्रमादका सग छूट जायगा, फिर शास्त्रकी पढी हुइः बातेंभी पुनः स्मृतिमें आ जायगी-ऐसा विचार करकें जिस जिस समय जो जो प्रश्न मुझकों याद आये, या मेरे पास मेरे धर्मस्नेही बैठते थे उन्होंने जो जो प्रश्न किये वे सभी मैंने इस पुस्तकमें दाखिल किये हैं, इसी सबबके लिये इस पुस्तकमें क्रमका नियम नहीं रहा है.

इस ग्रन्थकी, मुख्यतासें तो जैनशान्धवोंके हितार्थ रचना है, तदपि इस ग्रन्थमें अन्य धर्मकी निंदाके शब्द किसी जगहपर नहीं है, किन्तु इस पुस्तकमें मार्गानुसारीके गुण वगैर. कितनीक आत्मिक बातें है कि जो कुल धर्मवालोंको पसद पडे और उपयोगी होवे वैसी सामिल रख्खी गइ हैं, इसीसें अन्य धर्मवालोंकों भी मध्यस्थ दृष्टि रखकर सचा क्या है ? और झूँठा क्या है ? वो ध्यानमें लिया जावे और इस बावतका शोच विचार करकें यह किताब पढी जावे, या वे पढ लेवें तो उन्होंकोंभी जरूर अत्यत लाभ–फायदा प्राप्त होवेगा अगर तो कोइ कोइ बात या बाबत समजमें न आ सके तो उस सबधमें मुझकों प्रश्न लिखें भेजे जायेंगे तो बेशक मै उन्का योग्य खुलासा विदित करुगा.

शुरूमें यह पुस्तक बनानेके वक्त मेरा छपावानेका ईरादा बिलकुल न था; परन्तु मेरे प्रिय स्वदर्शनी और अन्यदर्शनी मित्रोंकी प्रेरणासें छपवाकर प्रसिद्ध करनेका समय सानुकूल हुवा

इस पुस्तकके बहुतसें खरीददार हैं और दूसरेभी बहुत खरीदनेवाले उत्सुक होनेका सभव है, उसीके लिये बहुत नकल छपवानेके खर्चमें पेस्तरसेंही पैसेकी मदद देकर आज तक गुजराती भाषामें तीन आवृत्ति छपकर बिक चुकी हैं और यह हिंदीभाषामेंभी इसीतरह छपवानेकी उत्सुकतासें मकसुदाबादवाले रायबहादुर बुधसिंघजी साहबकी भव्य जीवके हितार्थ छपवानेकी इच्छा हुइ और बाबु साहबने मुझकु फरमाया उससें मेने बाबुसाहबकी तर्फसें यह किताब छपवाइ.

मेरी लिखी हुइ गुजराती किताब छपवानेमें मेरे मित्र कुवरजी आणदजी भावनगर निवासीने बहुतसी मदद दीथी, कितनीक जगह मेरे लेखके हस्तदोषका भी वे सुधारा करकें छपवानेके लिये भेजा करते थे और [उन्होंने] उसके लिये प्रशसनीय महेनत लीथी, वास्ते मै उन्ह महाशयका उपकार मानता हु, क्या कि गुजराती भाषाका [यह] पुस्तक सुधारा गयाथा तो उसपरसें यह हिंदिभाषाका ठीक बनानेमें आया

पुन यह पुस्तक बनानेमें मेरी शक्ति प्रफुल्लित करनेवाले मेरे सबसें पेस्तर उपकारी पुरुष थे कि जिनका मै कुछ वर्णन करता हु –मैं जब आठ वर्षकी उमरका हुवा तब अहमदाबादवाले शाह ठाकरसी पुजाभाई कि जो भरुचमें दफतरदार थे उन्होंका मेरेपर बडा प्यार था और उन्होंने मुजकों हमेशा. नियम धारण करनेका शिखाय

और पोषध वगैरः करनेका अभ्यास करवाया. उस दिनसें मेरी स्वधर्मपर विशेप अभिरुचि–प्रीति उत्पन्न हुइ

पीछे मेरी चौदह वर्षकी उमर हुइ उस वक्त श्री हुकम मुनिजीका समागम हुआ, तो उन्होंनें मुझकों आगम सार नवतत्त्वके छूटे बोल शिखाये, कितनीक अध्यात्मिक बातें भी एकान्तमें समजा दी, और सूत्र पढने–वांचनेकी छुट्टी बतलाइ, जिस्सें मैंनें बहुतसें ग्रंथ बहुत वक्त बाच लिये उससें मुझको स्याद्वाद मार्गकी श्रद्धा हुइ

कुछ समयके बाद श्रावककों सूत्र पढने मुनासिब ही नहीं हैं ऐसा मुझकों विदित हुआ, और श्री हुकम मुनिजीका बताया हुआ एकांत मार्ग जैनशैलीकें आगमोंसें विरूद्ध कथनवाला समजनेमें आया, उससें संवत १९२१ की सालमें मैंने श्री हुकममुनीजीका प्रसंग छोड दिया.

तत्पश्चात् पंजाबी तपस्वीजी साहब श्री मोहनलालजी और मुनिमहाराजजी साहब बुटेरावजी महाराजका प्रसंग हुवा, जिससें उन्होंके पाससें मैंनें स्याद्वाद मार्ग समज लिया, और श्रावकके बारह व्रत अंगीकार किये, और कितनीक बातोंका बोधभी हुआ.

उस बाद संवत १९४२ की सालमें मुनीमहाराजजी श्री आत्मारामजी साहबजीकी मुझकों भेट हुई और उन्होंके प्रसंगसें ज्यादे बोध प्राप्त हुआ.

संवत १९२८ की सालके बाद मैंने व्यापारकी उपाधि कमती कर डाली, उससें शास्त्रावलोकनकी उत्तम तक हाथ लगी, उसमें श्री कलिकालसर्वज्ञ हेमाचार्यजी महाराज, श्री हरीभद्रसूरीजी और न्यायशास्त्रपारंगत श्रीमद् यशोविजयजी वगैरः अनेक आचार्यजी और महोपाध्यायजी आदिके बनाये हुवे ग्रंथ बांच लिये, जिससें अच्छा बोध हुवा. कहनेका तात्पर्य यही है कि मेरेमें यह पुस्तक बनानेकी जो कुछ शक्ति प्राप्त हुइ सो सब उपकार उक्त महान् पुरुषोंकाही है, और उन्हींकाही आभारी–ऋणी हु कि जिसका बदला देनाभी दुर्लभ है

इस पुस्तककी गुजराती प्रतके ३०५ पत्र तक आचार्य महाराजजी श्री आत्मारामजी महाराजजीने तपासकर शुद्ध कर लिये थे, और पीछेके विभागके पत्र उन्ही महात्मनजीकों मैं भेजनेवाला था, मगर अफशोषका मुकाम है कि उतने वक्तमें उन्ह आचार्यजीका स्वर्गवास हो गया, उससें मनका संकल्प मनहीमें रहगया बस इतनी बात मेरे उपकारी महाशयोंको निवेदन करके मै नमस्कार करता हु

अब इस पुस्तकके पढनेवाले साहबोंसें मेरी अंतिम प्रार्थना है कि यह पुस्तक मैंने बालखेलके जैसा बनाया है, उसमे कुछ भी भूल चूक हो गइ हो तो उसें आप कृपाळुगन सुधारकर पढनेकी तस्दी लेवें और वो भूल मुझको विदित होनेके लिये दयालुतासें लिख भेजें कि जिससे वो भूल सुधर जाय अलम्

भरुचबंदर
संवत १९३८
प्रथम श्रावण वद बीज

आप स्वधर्मियोंका कृपाभिलाषि.
अनूपचंद मलुकचंद.

# अठारह दूषण निवारककी भूमिका.

इस ग्रन्थमें प्रथम आस्तिक मतकी सिद्धता बतला करकें नास्तिक मतका खंडन किया गया है, उससें पाठक महाशयोंको यह पुस्तक पढनेसें आस्तिकमतकी दृढ श्रद्धा हो सकेगी तत्पश्चात् अठारह दूषण सहित जीव हैं उसका वर्णन किया गया है और उन्ह दूषणोंसें क्यों करकें लिप्त हुआ जाय ? अगर क्यों करकें मुक्त हुआ जाय वोभी बतलानेमें आया है उक्त बातोंका स्वरूप किसि ग्रन्थमें अलग दर्शाया गया न होनेके सबब, कितनेक धर्मप्रिय बान्धवोंकी प्रेरणासें मैंनें विविध प्रमाणिक शास्त्रोंके आधार युक्त भव्यजीव हितार्थ यह पुस्तक लिखा है. पिछाडीके विभागमें जैनसमुदायका कैसे सुधारा होय उसका वर्णन किया गया है, तथापि मेरी मतिके दोषसें करकें कभी कुछ शास्त्र विरुद्ध लिखा गया हो तो परमगुणग्राही पाठकगणको मेरी नम्र प्रार्थना है कि शास्त्र देखकर शुद्ध करनेकी कृपा करें

इस ग्रन्थका कितनाक गुजराती विद्वान आचार्यजी श्रीमान् विजयानंदसूरिजी महाराजजीके शिष्यानुशिष्य परमपूज्य मुनि महाराज श्री हंसविजयजी महाराजने संशोधन कर सुधार लिया था, और कितनाक लिखान शुद्ध करनेकी महेनत ले कर अहमदाबाद निवासी स्वधर्मभ्राता धर्मज्ञ हीराचंद ककलभाइ शाहने सुधार लिया था जिस्सें हिंदि भाषामें सुगमता प्राप्त हुइ, वास्ते मैं वै दोनु महाशयोंका उपकार मानता हु. पुनः मुझको जिन जिन महाशयोंने सम्यक्त्व बोध किया है, और श्रीमान् हरिभद्र-सूरीजी प्रगर तत्वज्ञ आचार्य महाराजजीके ग्रंथावलोकनसें करकें जो विपल बोध हुवा है कि जिससें यह ग्रन्थ लिखा गया—वास्ते वो तमाम उपकार उन्ही महान् पुरुषोंका है महाशय ! इसमें किसी समज फेरसें श्री वीतरागजीकी आज्ञा विरुद्ध जो कुछ लिखा गया हो तो मे त्रिविध मिच्छामिदुक्कड देता हु. शंवः

# प्रश्नोत्तररत्नचिन्तामणिकी अनुक्रमणिका.

१५० मंदिरमें बरतन साफ किये बिगर उपयोगमें लेवै तो क्या होवै ?

१५१ मदिरमें मकडी वगैरः के जाले होवे उसकों न निकाल डाले तो आशातना लगै ? और उनकों रखकर पूजा करै तो क्या है ?

१५२ प्रभुजीकों जहापर केसरके तिलक किये जाते हैं वहापर सुने चांदिके पतरे लगाये जाते हैं वो व्याजबी है या नहीं ?

१५३ पुष्पकी जगे केसरवाले चावल चडावै तो कैसा ?

१५४ जिस जीवने मरणेके समय शरीर वोसिराया नहीं, वो शरीरसें शुभाशुभ जो क्रियाकी होवै उसका शुभाशुभ दोनु फल होवै या नहीं ?

१५५ जो जो वस्तु वोशिरानेमें आती है वो इस भवके अत तक वोशिरानेमें आती है तो आते भवमें उसका पाप आवै या नहीं ?

१५६ विवेक सो क्या है ?

१५७ शातपना सो क्या है ?

१५८ दात सो क्या है ?

१५९ कामका जय सो क्या ?

१६० मुक्तिमें क्या सुख है कि मुक्तिका प्रयास करना ?

१६१ मनुष्य मरनेके समय सथारा करै सो किस तरह करै ? और उसमें क्या चिंतवन करै ? और उससें क्या लाभ होवै ?

१६२ आत्मारामजी महाराज–विजयानदसूरिजीकों प्रश्न लिखेथे उन्होंका क्या जवाब है ?

१६३ मरनेके वक्त समाधिमें चित्त रहवै उस वास्ते कोइ जाप करनेका कहा है ?

१६४ साधारण द्रव्यमें धर्मशाला बनवाइ गइ हो उसको श्रावक वपराशमें लेवै या उसमें सघ वगैरः कों जीमावै तो श्रावककों मुनासीब है ?

१६५ पुद्गल कितने प्रकारके कहे हैं ?

१६६ परिहारविशुद्धिचारित्र कितने पूर्व पढे हुवे अगीकार करै ?

१६७ सिद्धमहाराजजीकों चारित्र कहाजावै या नहीं ?

१६८ विभगज्ञानवालेकों दर्शन होवै या नहीं ?

१६९ मुनीकों अशुद्धमान आहार पानी देनेसें क्या फल होवै ?

# अठाहरह दूषण निवारककी अनुक्रमणिका.

विषय

श्री विश्वेशवन्दे

# श्री प्रश्नोत्तर-रत्नचिन्तामणि.

१ प्रश्नः—जैनी किस लिये कहे जाते है?

उत्तरः—जिनराजके सेवक अर्थात् श्री जिनेंद्र महाराजके वचनरुपी अमृतका पान करनेवाले हैं उस सबबसें जैनी कहे जाते हैं?

२ प्रश्नः—जिन वो कौन हैं?

उत्तरः—राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, काम अज्ञान, रति, अरति, शोक, हास्य, जुगुप्सा इत्यादि भावशत्रुओंकों जीतनेवाले हो सोही जिन है

३ प्रश्नः—पूर्वोक्त रागद्वेषादि किसने जित लिये हैं?

उत्तरः—तीर्थंकर और सामान्य केवलीओंने

४ प्रश्न.—तीर्थंकर वो कौन हैं?

उत्तरः—साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकारुप चतुरविध संघकी स्थापना करके धर्मतीर्थ प्रवर्त्ताकर अनेक भव्य जीवोंकों संसार समुद्रसें पार करते हैं वोही तीर्थंकर कहेजाते है

५ प्रश्नः—तीर्थंकर और सामान्य केवलीमें क्या तफावत है?

उत्तरः—स्वयमेव बोध पा कर सर्व जीवोंकों धर्मोपदेश देकें तार दें वो तीर्थंकर, और पूर्वोक्त तीर्थंकरका धर्मोपदेश अंगीकार करकें केवलज्ञान प्राप्त करें वो सामान्य केवली

६ प्रश्न—सिद्ध हुवे सामान्य केवली और तीर्थंकरमें क्या तफावत है?

उत्तरः—सिद्धमें तो दोनू समान हैं, कुच्छ तफावत नहीं, उनकों किसी दिन पुनः संसारमें आनेका नहीं और शरीरसें रहित हैं?

७ प्रश्नः—वर्त्तमान समयमें कोइ तीर्थंकर हैं?

उत्तरः—वर्त्तमान कालमें इस क्षेत्रकी अंदर कोइ तीर्थंकर नहीं है. महाविदेह क्षेत्रमें हैं, मगर वहां जानेकी अपनेमें शक्ति ताकत नहीं है

८ प्रश्न—तीर्थरक्षक देवताओंभी मददसें यहा आ सकै या नहीं ? कोइ आगेके वखत में आकर आया हो तो उनके नाम जाहिर करो.

उत्तरः—स्थुलीभद्रजीकी भगिनी यक्षानें अपने भाइ श्रेयकको पर्युषण पर्वमें शक्ति रहित होनेपरभी पोरसी, साढपोरसी, आदि पच्चख्खाण कराके दिनभर उपवास कराया, श्रेयक क्षुधाकी पीडा सहकर उसी दिन मर गया यक्षाकों खेद प्राप्त हुआ ऋषिघातका प्रायश्चित लेनेकों सघके पास गइ. शुद्ध भावसें प्रेरणा की हुइ होनेसें सघने प्रायश्चितकी ना कही, यक्षा इससें सतुष्ट न हुइ ओर श्री सिमधरस्वामीके पास उसका खुलासा पूछ आनेका आग्रह कीया, शासनदेवीकी सहायता-मददसे यक्षा श्री सिमधरस्वामीके पास गइ भगवान् श्री सिमधरस्वामीजीने भी प्रायश्चित न दीया, मगर चार चूलिकाए सुनाइ यक्षानें वे चार चूलिकाए सघके आगे कह बतलाइ सघने आचारागजी और दशवैकालिकजी सूत्रमें उनकी योजना की जो चार चूलिकाए साप्रत समयमें (अभी) भी भावना, विमुक्ति, रति कल्प और विचित्रचर्या ये नावसें पूर्वोक्त दोनू सूत्रोंमें विद्यमान है

पुन: कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचद्राचार्यजीने खुद कितने भवके पश्चात् (मैं) मोक्षगति पाउगा, वो जाननेके लिये शासनदेवीको श्री सिमधर स्वामीके पास भेजीथी इत्यादि अनेक दृष्टात मोजूद है

९ प्रश्न—तीर्थंकरको देव किस लिये मानने चाहियें ?

उत्तर—दानातराय, लाभातराय, भोगातराय, उपभोगातराय, वीर्यातराय, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, दुगछा काम, मिथ्यात्व, अज्ञान, निद्रा, अव्रत, राग और द्वेष-यह अठारह प्रकारके दूषण मनुष्य, तिर्यच, नारकी और देवताओंमें रहे हुवे है तीर्थंकर देवमें उक्त कथित एकभी दूषण नही होता है, जन्म मरण पुन. करनेका नहीं होता है, सर्वज्ञ है, धर्मका उपदेश करते हैं, अनेक भव्यजीवोंको तारते हैं फिर उन्होंके फरमाये हुवे आगम श्रवण करे तो अपने आत्माका कल्याण होने रूप उपकारभी उन्होंकाही है वास्ते उन्होंको देव मानना.

१० प्रश्न—अन्यमतावलम्बी जिनको देव मानते ह तिनका अपनभी देव माने या नहीं ?

उत्तरः—पूर्वोक्त अठारह दूपणोंसे रहित हो तो उन्होंकोभी देव मान लेवे तो किंचितभी दूपण नहीं।

११ प्रश्न.—अन्य देव दूपण युक्त हैं ऐसा क्यों कहा जाय?

उत्तरः—उन्होंके चरित्र, मूर्तियें और (उन्होंके) शास्त्रोंसें दूपण सिद्ध होते हैं तो फिर देव क्योंकर माने जाय?

१२ प्रश्नः—तीर्थंकरदेवने आगम लिखे हैं या और किसीने लिखे हैं?

उत्तरः—तीर्थंकरदेवने शिष्योंको सुनाये, शिष्य संपूर्ण ज्ञानवान् हुवे स्मरणशक्ति तीव्र होनेसें श्री महावीर स्वामीजीके निर्वाण पश्चात् ९८० वर्ष तक उन्होंनें मुखपाठपर रक्खे और पढाये, दिन दिन यादशक्ति कम हो जानेसें देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने लिखनेका प्रारंभ किया

१३ प्रश्नः—अगले आचार्य महाराजाओंनें क्यों नहीं लिखाये?

उत्तर.—मुनिमहाराज आरंभके त्यागी हैं लिखनेमें आरंभ होवे वो दोपसें डरकर नहीं लिखाये

१४ प्रश्न.—देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण आरंभमें क्यों नहीं डरे?

उत्तरः—आपने ज्ञानचक्षुसे देखा कि अब पुस्तक नहीं लिखावेंगे तो सबकी स्मरण शक्ति हीन हुइ होनेमें सर्व शास्त्रका लोप हो जायगा और यहा दूपण प्राप्त होगा इस लिये अपवाद सेवन करकेभी पुस्तक लिखवानेका प्रारंभ किया. यह अधिकार बृहत्कल्पकी भाष्यमें स्फुटपनेसें मौजूद है

१५ प्रश्नः—वे आगम किनके पाससे सुनने चाहियें?

उत्तरः—गुरुमहाराजके पाससें सुनने चाहियें

१६ प्रश्न —गुरुमहाराज किनको मानने चाहियें?

उत्तरः—जो गुरु पापसें डरें, सत्योपदेश देवें, हिंसा, असत्य, चोरी, स्त्रीगमन और धन वगैर. परिग्रहके त्यागी होवें, निरंतर शास्त्राध्ययन करते होवें उन्हींको गुरु मानने चाहियें, और उन्हींके मुखद्वारा धर्मोपदेश सुनना चाहिये

१७ प्रश्न—पूर्वोक्त सब गुण न हो, मगर शास्त्रोपदेश करजानते हो तो उनके पाससें धर्म सुननेमें क्या हरकत है?

उत्तर.—उपदेश करनेवाला मनुष्य उत्तम गुणवाला हो, तभी श्रोताओंके मनपर

अच्छी असर कर सकता है, और आपके उत्तम गुणोंकी छाप सामनेवालेके हृदयमें पाड सकता है, परतु जो उपदेशकही गुणहीन हो तो "परोपदेशे पांडित्य" जैसा होता है, आप मिथ्या ढोल धारण करके भवभ्रमण बढाते जाते है और श्रोताजन अपना आत्मा सुधार सकते नहीं, सबब कि गुरु कहते है मगर उन्हींसें पालन किया जाता नहीं है, तो अपन किसतरहसें धर्म पालन कर सके? ऐसा मनमें आनेसें लाभ हासिल नहीं होता है

१८ प्रश्न'—यत्किंचित् सारभूत धर्मतत्त्व क्या है सो कहो?

उत्तर'—प्रथम तो धर्मकी योग्यता करनी

१९ प्रश्नः—धर्मकी योग्यता किस रीतिसें हो सके?

उत्तरः—मार्गानुसारीके गुण पैदा करनेसें धर्मकी योग्यता हो सके

२० प्रश्नः—मार्गानुसारीके गुणका विवेचन करो?

उत्तर —प्रथम न्यायविभव यानि सब प्रकारके व्यापारमें न्यायपूर्वक वर्त्तन चलाना, अन्याय छोड देना, नौकरी करता हो तो मालिकने सुपरद किये हुवे कार्यकी अंदरसे पैसा नहीं खा जाना, लाच-रिस्वत नहीं खानी, कमअक्कलवाले मनुष्यको ठगलेनेका प्रयत्न नहीं करना, व्याजवटा करनेवालोंको याद रखना चाहिये कि सामनेवालेको ठगकर व्याजके ज्यादे पैसे नही लेना, मालमें भेल्सेल करके नहीं बेचना, सरकारी नौकरी करनेवालोंको मुनासिब है कि अफसरोंको प्यारे होनेके लिये लोगोंके उपर कायदेविरुद्ध जुल्म नहीं गुजारना, मजदूरी या कारीगिरीका धंधा करनेवालोंको योग्य है कि ठहराये हुवे दाम लेके बराबर काम करना-दिलमें चोरी रखकर काम नहीं करना, ज्ञाति या पचोंमें शेठाइ करनेवालोंको योग्य है कि आपसें विरुद्ध मतवालेको द्वेषबुद्धिसें गैरव्याजबी गुन्हागार नहीं ठहराना, किसी मनुष्यने अपना कुच्छ बिगाड किया हो वो द्वेषसें उसके उपर झूठा कलंक नहीं धरना या उसको नुकसान नहीं करना, किसीको नाहक अपराधी-दोषी नहीं बनाना, धर्मगुरुके बहाने-मिससें पैसे लेनेके वास्ते धर्ममें नही हो वो बात नहीं समझानी, अथवा सेवककी स्त्रीके साथ अयोग्य-नालायक काम नहीं करना, धर्मानिमित्तसें पैसा निकलवाकर अपने घरका-

ममें खर्च नहीं देना, धर्मसंबंधी कार्यमें खर्च करनेके वास्तेभी झूंठी गवा-
साक्षी पूर कर पैसा नहीं लेना, धर्मकार्यमें कुच्छ फायदा होता हो तो उस-
के बदलेमें मनमें शोचना कि अपन धर्मके लिये झूठ बोलते हैं—अपने कामके
लिये नही बोलते है वास्ते उनमें दोप नही, ऐसा समजकर उलटासूधा क-
रना वोभी अन्याय है. जिनमंदिर अगर उपाश्रयमें प्रभावना होती हो वो
एकसें ज्यादे वक्त लेनी वोभी अन्याय है जिनमंदिर अथवा उपाश्रयके
कार्यभार करनेवालोंको उस खातेके मकान अपने खानगी कार्यमें नहीं
वापरना. या उस खातेके मनुष्यद्वारा खानगी कार्य करवाना नहीं कोइ म-
नुष्य ज्ञातिभोजन कराता हो और उसके साथ कुच्छ तकरार वा अदावत
हो, उस्सें उनकी भोजनसामग्री बिगाडनेके इरादेसें लढाइ खडी करकें, पक्र-
वान्न वगैरः चाहिये उस्सें ज्यादे लेकर बिगाड करवाना, एकसप करकें
ज्यादे खाजाना और भोजनसामग्रीमें टोटा पडे वैसीही युक्तियें करनी वोभी
अन्याय है. परस्त्रीगमन नहीं करना स्त्री या पुरुष कुच्छभी सलाह पुंछे
तो मालुम होनेपरभी खोटी—बदसलाह नहीं देनी अपने मालिकके हुकम
सिवा उनका पैसा नही उठाना एकदूसरेकों लढाइ हो जाय ऐसी समक्ष
नहीं देना अपनी प्रतिष्ठा बढानेके लिये असत्य धर्मोपदेश नहीं देना
अन्यमतावलंबी धर्म संबंधी सच्ची बात कहता हो तोभी 'ये धर्म बढ
जायगा' ऐसा जानकर वो बात झूठी पाडनेकी कुयुक्ति करनी वोभी
अन्याय है आप अविधिसें चलता हो और दूसरे पुरुषकों विधियुक्त
चलता देखकर उनकेपर द्वेष धारण करना वोभी अन्याय है जो पुरुष
विधिसें वर्तन चलाता हैं उसकों धन्यवाद देना और आपसें उस मुजब
वर्त्ताव न हो सकता हो तो उनके लिये पश्चाताप करना वो अन्याय नही
है सरकारकी या म्युनिसिपालिटीकी जकात चोरी करनी, स्टॅंप चोरी
करनी, सची पैदास छुपाकर कमती पैदास—आमदनीपर सरकारकों टचा-
क्स कम देना वोभी अन्याय है चोरी करनी, दूसरी कुंजी लागु करनी
या लूट चलानी वोभी अन्याय कहाजाता है. गुणवंत साधु मुनीराज,
भगवंत और गुरुमहाराजके अवर्णवाद नहीं बोलना शुद्ध धर्मकाभी

अवर्णवाद नही बोलना. और लडकीके पैसे लेकर आपका व्याह नहीं करना इत्यादि बहुतसे अन्याय हो सक्ते है उन सबका त्याग करके व्यापार करना सा मार्गानुसारीका प्रथम लक्षण है

२ शिष्टाचार यानि ज्ञान और क्रियासें करके उत्तम आचरणवाले मनुष्योंके आचार उनकों शिष्टाचार कहते हैं उसमें लोग निंदा करे वैसा कार्य नहीं करना राज दंडके पात्र होवै वैसाभी काम नहीं करना वेश्या तथा परस्त्रीगमनका त्याग करना जुगार नहीं खेलना, शिकार करनेकों न जाना चोरी न करनी बहुत जीवहिंसा होवै वैसा व्यापार नहीं करना जिस कामसें किसी मनुष्यकों नुकसान होवै या किसीका जान जावै ऐसा झूठ नही बोलना बनसकै तो सर्वथा झूठ नहीं बोलना और मास, मदिरा, ताडी, सहत, मख्खन, कंदमूल वगैर अभक्ष्य पदार्थ नही खाना

३ समान धर्म आचारवालोंके साथ व्याह करना, लेकिन एक गोत्रवाला हो उसके साथ व्याह नही करना हेमचद्राचार्यजीनें एक गोत्रवालेके साथ व्याह-सादी करनेका योगशास्त्रमें निषेध-मनाइ किया है स्त्री भर्त्तारका एकही धर्म हो तो धर्मसबधी तकरार उठनेका सभव नहीं रहता ओर धर्मकार्य करोमें परस्पर साधनभूत हो पडे.

४ सब प्रकारके पापसें डरना पाप करनेसें इस लोकमें निंदा होती है और अपर जन्ममें नरकादि दुःख भुक्तने पडते हैं

५ देशाचार मुजब चलना यानि जिस देशमें रहते होवै उस देशमें जो जो काम करनेसें निंदापात्र न हुवा जावे उस मुजब चलना वस्त्र आभूषण अशन पानादि देशकी रीति मुजब उपयोगमें लेना जिस देशमें जो कपडे पहरे जाते हो उसकों छोडकर अन्य देशकी रीतिके नहीं पहनना

६ साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका और राजा, प्रधान, खजानची, कोतवाल वगैरः किसी मनुष्यके अवर्णवाद नहीं बोलना

७ जिस घरमें ज्यादी दरवाजे वगर पैठने निकलनेके बहुतसे मार्ग हो वैसे घर-मकानमें नहीं रहना वहा रहनेसें चोर मनुष्यका आनेजानेका तथा औरतकों बदचलन चलानेका सुगम पडता है

८ अशुद्ध स्थानवाले घरम नहीं रहना. जिस घरकी जमीन उधेई लगी

हुइ हो, जिस मकानके नीचे हड्डीयें तथा मुर्दे गाडे हो अथवा मुर्दे जलाये हुवे हो अगर आसपास वेश्या, जुगारी, चोर, कसाइ वगैरः रहते हो वैसे घर छोडकर अच्छे पडोसमें रहना पडोशी धर्मबंधु हो तो सर्वोत्तम समझना अन्यमतावलम्बीके पडोससें उनके आचार विचार अपनेमें घुस जाते है, वो बहुत श्रम उठानेपर भी पीछेसें दूर नहीं हो सक्ते है और बहुत करकें अनेक पापबंधनमें पडना पडता है

९ अति गुप्त स्थानमें नहीं रहना रहनेसें गुणिपुरुपकों दान देनेका अवकाश नहीं मिलता है और आग प्रमुखके भय वक्त जानमाल वचानेका मुश्किल हो पडता है.

१० अति प्रकट स्थानमें भी नहीं रहना. रहनेसें स्त्री वर्ग पूर्ण प्रकारसें लज्जा-मर्यादा नहीं समाल सकता है. और दरवाजेके आगे सोर गुल मच रहा हो तो स्थिर चित्तसें कार्य नहीं हो सकता हैं.

११ सत्सग यानि गुणी पुरुपका समागम करना मुनि महाराज, देवगुरु भक्तिकारक श्रावक और प्रमाणिक गृहस्थोंकी साथही विशेप परिचय रखना मिथ्यात्वीका सग नहीं करना करनेसें अपनी धर्मबुद्धि नष्ट हो जाती है. सुसगसें बुद्धि अच्छी होती है. उनेक सदाचरण देखकर अपनेकोंभी सदाचरण ग्रहण करनेका अवकाश मिलता है. जुगारी, लुचे, चोर, विश्वासघाति, ठग वगैरः की सोबत करनेसें वैसें नीच कृत्य करनेका इरादा सहजही होता है, वास्ते वैसें अधर्मीयोंका सग छोड देना.

१२ माता पिताकी आज्ञामे रहना, उनकों पूजनेवाले होना, हमेशां प्रातःकालमें उनका वदन करना, परदेशमें जानेके और विदेशसें आनेके वक्त भी विनयपूर्वक चरणपूजन करना, जो वृद्ध हुवे हो तो उनकी खाने पीने ओर पहनने ओढनेकी शक्ति मुजब तजवीज रखना कोइ वक्त गुस्सा नहीं करना कटुवचनका उपयोग नहीं करना, उनके आदेशका उल्लघन नहीं करना कभी गैरव्याजबी नहीं करने योग्य काम बतला दवे तो मौनवृत्ति धर लेनी अयोग्य कार्य करनेसें गैरफायदे होते है उनका विनयपूर्वक बयान करकें समझा देनेका प्रयत्न करना उनका अपनेपर अवर्णनीय उपकार है माताने नौ महिने तक उदरमें रखकर—बोजा वहकर अपने लिये अनेक वेदनायें सहन की है विष्टा मूत्रादि मलीन तत्त्वोंसें अपना मेरवेर प्रक्षालन कीया है फिर जब अपन रोगग्रस्त हुवे हो तब वो भूख, प्यास सहन कर अनेक उपचार करकें अपना शुद्धबुद्धिसें पालन करती है. इसके उपरात परोक्ष रीतिसें उनके उपकारका जलप्रवाह निरतरही

पहन करता है मातापिता तो जगत्में कल्पवृक्ष समान है. अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामीजी त्रिशलादेवीके उदरमें आये बाद माता दु खी होगी, ऐसा शोचकर किंचित् वक्ततक चलायमान नहीं हुवे, उतनी देरमें तो माताजी अनेक कल्पांत करने लगे, मुर्च्छित हो पृथिवीपर गिर पडे! उसी वक्त भगवतजीने अभिग्रह धारण कर लिया कि 'माता पिताका स्वर्गवास हुवे बादही दीक्षा ग्रहण करुगा ' अहा! पुत्रकी पूजनीक बुद्धि तर्फ दृष्टि करो राम ओर लछमन तथा पांडवोंने मातापिताकी जो सेवा की है, उसका वर्णन सहस्र जिव्हासेंभी करना मुश्किल है उनके किये हुवे उपकारका वदला अपन कोइभी तरहसें नहीं दे सकते है, तोभी निरंतर उनकों धर्ममार्गमें योजनेके लिये प्रयत्न करकें भक्ति करनी

१३ जहां स्वराज्यका या परराज्यका भय हो, वैसे स्थानमें नहीं रहना. क्यौं कि वहां रहनेसें धर्मकी, धनकी और शरीरकी हानि होती है

१४ पैदासके प्रमाणमें खर्च करना, पैदासके चार हिस्से कर देना. एक हिस्सा सिलकमें रखना, दूसरा हिस्सा व्यापारमें रोकना, तीसरा हिस्सा आपके तथा कुटुंबके खानेपीने और वस्त्रादिकमें वापरना, और चौथा हिस्सा धर्मकार्यमें व्यय करना इस मुजब आमदनीकी व्यवस्था करनी यदि पैदास कम हो तो दशवां हिस्सा किंवा अपनी शक्ति मुजब धर्मनिमित्तमें अवश्यद्रव्य व्यय करना वडी महेनतसें उदरपोषण होता हो तो मन कोमल रखकर धर्मकार्यमें द्रव्य व्यय करनेवालेकी अनुमोदना प्रशंसा करनी

१५ धनके अनुसार वस्त्राभूषण पहनना. कम द्रव्य हो और धनवानके समान वस्त्र पहननेसें या ज्यादे धन हो और गरीबके जैसें पहननेसें लघुता–हलकापन हो जाय, वास्ते शक्तयानुसार पोषाक रखना

१६ शास्त्र श्रवण करनेमें चित्त पिरोना बुद्धिके आठ प्रकारके गुण उपार्जन करना–यानि शास्त्र श्रवण करनेकी इच्छा करनी १, शास्त्र सुनना २, उनका अर्थ समझना ६, वो याद रखना ४, उसमें तर्क करना वो सामान्य ज्ञान ५, अपोह–विशेष ज्ञान मिलना ७, उहापोहसें सदेह न रखना ७, और तत्त्वज्ञान यानि फलानी चीज असीही है असा निश्चय करना ८, पूर्वोक्त रीतिसें शास्त्र श्रवण कर अपने औगुन छोड करकें उद्यमवत होना

१७ अजीर्ण–बदहजमीके वक्त यानि खोराक हजम नहीं हुवा हो वैसे समयमें दूसरा नया खोराक नहीं खाना. रोगोत्पत्ति होवै वैसीभी वस्तु नहीं खानी और स्वादिष्ट वस्तु देखकर शक्ति उपरात भोजन नहीं करना.

१८ अकाल–बे वक्त भोजन नहीं करना भोजन करनेका जो वक्त कायम किया गया हो वही वक्त भाजन करना यानि वक्त नहीं भूलना–चूकना

१९ धर्म अर्थ और काम यह तीनू वर्ग साधन करना–मतलब यह कि गृहस्थावस्थामें जो समय धर्म साधनेका हो वोही समय धर्म साध लेना, पैसे कमानेके वक्त धनोपार्जन करना, और भोग–उपभोग भागनेके वक्त इनमें तत्पर रहना. धर्मसाधनके समय द्रव्य उपार्जन करनेका ध्यानमें रक्खे तो धर्मसें पतित हुवा जाता है सब वस्तुकी प्राप्ति धर्मसेंही होती है. धर्मसें पतित हुवे तो तीनू वर्ग हाथमेंसें गयेही समजना; वास्ते दिनभरमें तीनु वर्ग साधनेका वक्त मुकरर कर रखना कि जिससें धन पैदा करनेमें और ससारोचित कार्य करनेमें विघ्न न आवे, जगत्में निंदा न होवे और अच्छी तरहसें धर्मसाधन हो सके उस मुजब चलना.

२० मुनिराज महाराजका दान देनेरूप आतिथ्य विनय पूर्वक करना दु:खीजनकों अनुकपादान दना, मुनिकी सेवा भक्ति करनेमें कुशल रहना और अहकार रहित दान देना.

२१ जिनमतकी अदर सन्मान पूर्वक राग धरना नाहक झूठा हठ–कदाग्रह नहीं करना.

२२ गुणीजनका पक्ष करना. उनकी साथ सौजन्यता और दाक्षिण्यता वापरनी. जो जो सुकार्य करनके हो वो वो कार्य बदरकी तरह चपलताईसें नहीं मगर स्थिरतासें करने चाहियें. निरतर प्रियभाषित होना–किसीकों दु:ख–बुरा लगे वैसा नहीं बोलना अपने और पराये आत्माका उपकार करनेकी बुद्धि रखना, और गुणीपुरुषके अनुयाय वर्त्तन रखना.

२३ जिस देशमें जानेकी शास्त्रकार आज्ञा न देते हो या राजकी तर्फसें मना हो उस देशमें उद्धताइ करकें नहीं जाना जो समय जो कार्य करनेकी आज्ञा–रजा न हो उस कालमें वो कार्य नही करना–जेसें कि उष्ण कालमें खेती करे तो वर्षाकालके जैसी न होवे, वर्षाकालमे ठडे पदार्थ खानेसें हजम नहीं होते है और समुद्रपर्यटन

रनेसें नुकसान होता है यवनके मुल्कमें जानेसें जबरदस्तीसे न खानेलायक चीज–भक्ष्य खिला देवें और जबरदस्तीसें धर्मभ्रष्ट कर देवे–वैसे देशमें नहीं जाना, अपना ड समालकर काम करना, क्यों कि शक्ति उपरात कार्य करनेसें धनकी और श-रकी हानि होनेका सभव है

२४ व्रतके अदर स्थिर चितवाले, और ज्ञा सावधान ऐसे जो पुरुष होवे न्हकी पूजा करनी आत्महितार्थ उन्हके पाससे ज्ञान सपादन करना और उन्होंकी वृत्ति मुजब चलना

२५ पोषण करने लायक अपने कुटुंबेंको वस्त्र आहार वगैर'सें पोषण करना.

२६ हरएक कार्य शुरू किये पहिलेही शुभाशुभ परिणाम दीर्घदृष्टिसें विचार ना और उस बाद शुरु करना.

२७ विशेषज्ञ यानि सामान्य और विशेषकों पहिचानते सीखना और उनके ता होना.

२८ लोकवल्लभ यानि सब लोगोंकों वल्लभ लगै वैसा काम करना किसीका ल दुभाना नहीं, अनीतिसें और धर्मविरुद्ध आचरणसें लोगामें प्यार होनेकी इच्छा हीं रखनी

२९ लज्जावत होना यानि निर्लज कार्य नहीं करना

३० विनयवत होना. देव, गुरु, सुश्रावक, कुटुंबी, शिक्षक, हुन्नर सीखानेवाला था राजा, प्रधान, शेठ–शाहूकार जो कोइ गुणसें, धनसें, पद्वीसें और अवस्थासें रकें अधिक हो उन सबका यथोचित विनय करना.

३१ दु खी मनुष्यपर दया करनेमें कुशल रहना ज्यों बन सके त्यों हिंसाका ाम नहीं करना

३२ सौम्यदृष्टि रखनी किसी वक्तभी कपायवाली प्रकृति धारण नहीं करनी क जिससें दूसरेकों अपनेपर द्वेष पैदा हो आवै

३३ छ' शत्रुओंकों जीतना यानि कामका पराजय करना–मतलब कि परस्त्रीका बिलकुल त्याग करना–स्वस्त्रीसेंही सेवन करना वोभी अपनी स्त्रीका जैसे रोगार्त्त रुप औपध खानेकी जरूरतसें ओपध खावै, वैसेंही ऋतुस्नानके वक्त केवल चित्तकी समाधी करनेके–उपाधि मिटानेके लिये सेवन करै भावना तो छोड देनेकीही रक्खै सेकी तरह नि तर या एक रात्रिम बहुत दफे स्त्रीगम करना यो उत्तम पुरुषोंका

लक्षण नहीं है नित्य भी सेवनमें आपका और स्त्रीका शरीर निर्बल होता जाता है. फिर ऐसा बुरी आदतके लिये स्त्रीके विरह वक्त परस्त्री सेवनकी बुद्धि हो आती है. बहुत करके दुनयामें हलकापन प्राप्त होता है-कोइ विश्वास नहीं करता है-राजाके जाननेमें आवे तो दंड करता है यह भवमें ऐसा होता है और आते भवमें नरकके दुःख भुक्तने पडते हैं, वास्ते ज्यों बन शके त्यों कामदेवकों वश्य करलेना. १, क्रोध-किसी के ऊपर गुस्सा न करना यानि सब प्राणियोंके ऊपर समभाव धारण करना एक क्रोड पूर्व तक संयम पालन करके उपार्जन किया हुवा फल क्रोधके करनेसें क्षणभरमें नष्ट हो जाता है, और कुगतिका भाजन होना पडता है हालाहल विष खाया हो तो एक वक्तही मरण प्राप्त करता है; लेकिन क्रोधरूपी हालाहलके तने हुवे प्राणियोंका अनंती वेर मरण होता है, वास्ते निरंतर क्षमागुण धारण करनेका सीखना चाहियें २, लोभ-लोभी मनुष्यका चित्त हम्मेशां फिकरमही भटकता रहता है. उनकों किसी वक्त कोइभी प्रकारसें संतोष पैदा नहीं होता है फिर लोभके वश्य होनेसें नहीं करने लायक काम करनेकों तयार होना है, उससें इस दुनयामें हीलना होती है और परभवमें भी दुःख भुक्तने पडते हैं; वास्ते जिस अवसरमें जो मिले उसीसें संतोषवृत्ति रखनी और नीतियुक्त उद्यम करना. अगले जन्मोंमें जैसा उपार्जन किया होवें वैसा यह भवमें मिलता है लोभ करनेसें कुच्छ ज्यादे नहीं मिलता है ऐसा सोच-समजकर संतोष पकडना क्योंकि संतोषसेंही लोभका पराजय होता है. ३ मान-गर्वदशा धरनेसें जगत्में हलकापन प्राप्त होता है. लोग गर्विष्ट-अहंकारीका उपनाम देते हैं गुरु-पेटका विनयभी नहीं हो सक्ता है, विद्या हुन्नर नहीं आते हैं और मनुष्यजन्म मिलने परभी धर्म नहीं साध सक्ता है, वास्ते मानकों छोडकर गंभीरता धारण करनी. ४, हर्ष-किसीभी कार्यमें अत्यंत राजी न होजाना क्योंकि हर्ष करनेसें गर्वकी सीडीपर चढनेमें देर नहीं लगती है. यह संसारमें सर्व वस्तुए क्षणिक है शरीर आज सुखी मालूम होता है और कल अनेक व्याधियुक्त होजाता है. लक्ष्मी चपल है यानि आज जिस मकानमें लक्ष्मी शोभायमान हो रही हो उसी मकानमें दूसरे रोज भूतगण निवास करता है! वास्ते ऐसे अस्थिर पदार्थ पूर्वकृत पुण्यके सबबसें प्राप्त हुवे होवें तो उनका सदुपयोग करना, लेकिन अत्यंत हर्षित होकर गर्व नहीं करना. ५, मद आठ प्रकारके है. यानि जातिमद, कुलमद, बलमद, रूपमद, बुद्धिमद, लोभमद, तपमद और विद्यामद यह ८ है जातिमद करनेसें नीच जातिमे उत्पन्न होता है कुलमद करनेसें नीच गोत्र

बाधता है, बल पराक्रमका मद करनेसें आते भव–जन्ममें निर्बलता प्राप्त होती है रूपका मद करनेसें कुरूपता प्राप्त होती है, धनका या ठकुराइका मद करनेसें परभवमें दरिद्री पना प्राप्त होता है, ज्यों ज्यों मिलता जावे त्यों त्यों ज्याद लोभ करे और मनमें इरादा करे कि मैं तो खोनेवाला हुही नहीं, जो जो व्यापार करुगा उनमें पैदाही करुगा! अैसा आ जिवीकाका मद धरनेवाले मनुष्यकों किसी ना किसी वक्त भारी धक्का लगता है कि सब दिनोंका पैदा किया हुवा एक दिनमें चला जाता है और निर्धनावस्था प्राप्त होती है, वास्ते लोभका मद नहीं करना. तपमद करनेसें तप निष्फल होता है, विद्याका मद करनेसें आपसें ज्यादे विद्वान हो उनकों मान नहीं दे सकता है, मगर उनकी अवगणना करता है और आप ज्यादे ज्ञान संपादन नहीं कर सकता है, क्यों कि गर्विष्ट होनेसें शका पडे वोभी दुसरेकों नहीं पूछी जाती है और यु करते धीरेधीरे अपनी विद्या खो देता है और आते जन्ममें अज्ञानी होता है, वास्ते विवेकी मनुष्यकों यह आठों मद छोड देनेही चाहियें

३४ कृतज्ञता यानि किसीने अपना उपकार किया होवे तो उनका अच्छा बदला देना, नहीं कि समय प्राप्त होनेपरभी उपकारकों भूल जाना.

३५ पांचों इद्रियोंकों तावे करनेमें तत्पर रहना, इद्रियोकों छुट्टी छोडनेसें इस जन्ममें भी बहुत नुकसान होता है और परजन्ममें भी दुर्गति मिलती है देखो स्पर्शेद्रियके सुख भुक्तनेके लिये हस्ति बधनमें पडता है रसेंद्रियके विषयमें मछलिया बेजान होती हैं, घ्राणेंद्रियके विषयसें भौंरा कमलपर बैठता है और सूर्य अस्त होजानेसें कमल बध होतेही अदर कब्ज होजाता है चक्षु इद्रियके वश होनेसें पतग नामक जतु दीपकपर गिरकर जान खो देता है कर्णेद्रिय के विषयसें हरिण शिकारीके तावे होकर मरणके शरण होता है इस तरह एक एक इद्रियकों छुट्टी छोडदेनेसें प्राण गुमाना पडता है तो जब पाचो इद्रियोंके विषयोमें लुब्ध होनेसें परभवमें कैसे दु ख भुक्तने पडते है ? उनका वर्णन तो ज्ञानी महाराजही कर सकें, वास्ते यथाशक्ति विषयका सकोच करना इस मुजब मार्गानुसारीके पैंतीस गुण जिस मनुष्यमें होवे वोही पुरुष धर्मके लायक जानना एसे गुणासें मनुष्य समकितवत होता है श्राद्धधर्म और मुनिधर्मकों पाता है और अतमें मुक्तिसुखकों हाथ करता है

३१ प्रश्न.—समकित वो क्या है ?

उत्तरः— समकितके बहुत प्रकार है, लेकिन अल्प मात्र कहता हु समकितके मुख्य दो प्रकार हैं यानि व्यवहार समकित और निश्चय समकित यह दो हैं. उनमें व्यवहार समकित सो आगे कहे हुवे अठारह दूषण रहित ऋषभादि चौविश तीर्थंकरकों शुद्ध देव तथा तरणतारण नावरूप मानने चाहियें. जो देव ससारके पारकों नहीं पहुचे हो उनकों देवबुद्धिसें देव नहीं मानना प्रभुने मुनिका जो मार्ग बताया हैं उन मार्गपर चलनेवालेकों गुरुबुद्धिसें गुरु मानना. साधु और श्रावकोंका धर्म प्रभुने जिस मुजब यतलाया है उसी धर्मकोंही सत्य मानना यह तीनों तत्वोंके ऊपर श्रद्धा रखनी सोही व्यवहार समकित है निश्चय समकित वही है कि पहिले अपने आत्माका स्वरूप और पुद्गलका स्वरूप जानना आत्मामें चेतन गुण है और पुद्गलमें जड गुण है, उससें आत्मामें सब पदार्थ जाननेकी शक्ति है, मगर कर्मसें करकें आत्मा छा गया है उससें अभी सपूर्ण हाल–भाव नहीं जान सक्ता है. ऐसा निश्चय होनेसें जो जो बाह्य पदार्थ हैं उनके ऊपरसें मोह छोड देता है फक्त आत्मगुणोंमेंही आनद मानता है. जो ससारी आनद है वो सब अस्थिर आनद है और उनकों सचा आनद मान लेनेसें कर्मबधन होता है और दुर्गतिमें उनके दुःख भुक्तने पडते है. आत्माका ज्ञान ज्यों ज्यों निर्मल होता जाता है त्यों त्यों सासारिक कार्यमें ममता घटती जाती है कर्मके योगसें जो सुख दुःख प्राप्त होते हैं, उनको कर्मके फल समझकर रागद्वेष नहीं करते हैं, पुद्गलके सयोगसें कर्म बधन हुवे है सो भुगते जाते हैं, ऐसा विचारता हैं. इस मुजब चित्तकी सुदरता होती है, परतु विशेष विशुद्धि नहीं हुइ उस्सें ससारकों नहीं छोड सक्ता है श्रावकके व्रतभी नहीं ले सक्ता है; लेकिन भावना रात दिन बनी रही है, अनतानुबधी कषायकी चोकडी तथा समकितमोहनी, मिश्रमोहनी और मिथ्यात्वमोहनी यह सात प्रकृति क्षय हुइ है ऐसे जीवोंकों समकितकी प्राप्ति होती है, वो निश्चय समकित कहाजाता है

२२ प्रश्नः—निश्चय समकित दृष्टिकों व्यवहार समकित होवे या नहि ?

उत्तर'—बहुत करके होवे

२३ प्रश्न'—व्यवहार समकितवालेको निश्चय समकित होवे या नहीं ?

उत्तरः—होवेभी सही और नहींभी होवे

२४ प्रश्न.—असीले व्यवहार समकितसें क्या फायदा होता है ?

उत्तर —व्यवहार समकित निश्चय समकितका कारण है देवगुरुकी श्रद्धा हुइ कि गुरुमहाराजकी सेवा करै गुरुमहाराज धर्म सुनावे इस्सें अपना आत्माका और पुद्गलका स्वरूप जाने यु करते करते क्रमसें निश्चय समकित होवे

२५ प्रश्न'—देवकी भक्ति किस प्रकारसें करनी ?

उत्तर.—देव अभी नहीं विचरते हैं, किन्तु उन्होंकी मूर्ति है वो अपनेका आलम्बनभूत हैं, उससें पाषाणकी, धातुकी, रत्नकी, काष्ठकी और दांतकी'—जैसी अपनी शक्ति हो वैसी भगवतजीके आकारवाली मूर्ति करा लेवे, यथाशक्ति सुदर मदिर बधवा लेवे और आचार्य महाराजके पास उन प्रतिमाजीकी प्रतिष्ठा करावे उन्हकी भक्ति करे अथवा पूर्व पुरुषोंने ऐसे जिनबिंब पधराये हुवे होते है उन्होका अष्ट द्रव्यसें करके पूजन करे तथा उन्हकी समीपमें अच्छे प्रकारसें गुणग्राम करे

२६ प्रश्न —प्रतिमाजीको पूजनेसें क्या लाभ होता है ? प्रतिमाजी कुच्छ भगवान् नहीं हैं तो उनको कैसे भावसें पूजनी चाहियें ?

उत्तर —भगवत धर्म प्रकाश गये है उनके आधारसें धर्मका स्वरूप—आत्माका स्वरूप जान लिया है उससें वे उपकारी पुरुष हैं, वे उपकारी पुरुष तो निर्वाण प्राप्त हो गये है, तब प्रतिमाजीमें उन्होके नांवका आरोपण करके भक्ति करनी जेसे अपने बुजुर्ग—बडे पुरुष या तो मान्यकारी पुरुषकी तसवीर होती है ओर उनका कोइ गुणग्राम करे तो अपन कैसे खुशी होते हैं, अगर अभी अपने राज्यकर्त्ता शहनशाह एडवर्ड या गव्हनर जनरल, गव्हर्नर वा प्रतिष्ठित अधिकारीओंकी तसवीर—छबी या पुतले जगह जगह बैठाये हुवे हैं और ऐसा किया हुवा देखकर वे अधिकारी तथा उन्हके उपर प्रीतिभाव धारण करनेवाले लोग राजी होते है और वे अधिकारी

आपकोंही मान्य मिला समझते है, तैसे अपनभी भगवंतकी मूर्ति बैठानेसें उन्हीको मान्य देते हैं. उन्होंको मान्य देनेका दिल हुआ सो शुभ अध्यव-सायका लक्षण है और उससें जीव बडा भारी पुण्य उपार्जन करता है. जो जैन नाम धारण करकें ढुढक कहाते है वे प्रतिमाजीकों नहीं पूजते हैं जो उन्हकी अज्ञानता है, वे जैनशास्त्रकों मान्य करनेका कहते हैं; मगर वें शास्त्रमें कहे मुजब नहीं चलते हैं. इस बाबतके दृष्टांत श्री प्रतिमाशतक ग्रंथमें श्री यशोविजयजीनें बहुतसें दीये हैं, तथा समकितशल्योद्धार नामक ग्रंथ छपा गया है, उनमेंभी बहुतसे दृष्टांत हैं इस लिये यहांपर विस्तारसें नहीं लिखता हुं भगवान् विचरतेथे उस वक्तकी प्रतिष्ठाकी हुइ प्रतिमाजीयें अभि विद्यमान् हैं और ढुंढकमत तो अभी निकला है, तो जो प्रतिमा पूजनेका अयोग्य होता तो भगवंत थे जब क्यों बनवाइ गइ ? उस पीछेभी बहुतसें आचार्य हुवे हैं, कि जिनके उपदेशसें बहुतसे श्रावकोंने प्रतिमाजी करवाई हैं तथा अनेक प्रकारसें पूजाभी की है गृहस्थावासमें रहे हुवे श्रावकभाइयोंको भगवंतके गुणग्राम करनेके लीये अनुकूलता भरी जगह देखें तो फक्त जिनमंदिरही हैं और उनकी अंदर भगवंतके गुणोंका स्मरण होनेके वास्ते जिनबिंबकी स्थापना की हैं उन्हों की आकृति एसी सौम्य है कि उन्होंकों देखनेसें भगवंतके गुण स्मरणमे आते हैं. अपने वृद्ध पुरुषकी या मानवंते पुरुषकी छबी या उनकी कोइभी चीज पडी हुइ होती है तो उसकों देखकर वे पुरुष और उनके गुण जैसें स्मरणमें आते हैं वैसे ही भगवंतकी मूर्तिकों देखकर भगवद् गुणस्मरण होता है प्रतिमाजीकी मुंह देखकर सोचता है कि यह मुख कैसा है जिनमुखसें किसीके भी अवर्णवाद, मृषावाद या हिंसाकारी वचन नहीं बोले गये हैं उन मुखका अंदर रहा हुइ जीव्हासें रसेंद्रियके विषयोंका सेवन नहीं किया गया है, किन्तु यह मुखद्वारा धर्मोपदेश देकर अनेक भव्यजीवोंकों संसार समुद्रसें पारकर दिये है, वास्ते इस मुखकों धन्यवाद है यह नासिकाद्वारा सुरभिगंध और दुरभिगंधरूप घ्राणेंद्रियके विषयोंका सेवन नहीं किया गया है. यह चक्षु इंद्रियद्वारा पांच वर्णरूप विषयोंकी

सेवन नहीं किये है किसी स्त्रीकी तर्फकामविकारकी नजरसें नहीं देखा है और न किसीके सामने द्वेषकी नजरसें भी देखा है मात्र वस्तुस्वभाव और कर्मका विचित्रता विचारके समभावसें रहे हुवे हैं उससें ऐसें नेत्रोंको धन्य है. यह कानोंसें करकें विचित्र प्रकारकें राग, रागणीयें श्रवण करनेरूप उनके विषयोंको सेवन नहीं कीये है, किन्तु प्रिय अप्रिय जैसे शब्द कानपर पडे तैसेही समभावसें सुने हैं यह शरीरसें किसी जीवकी हिंसा यां अदत्त ग्रहण वगैर. नहीं किया है फक्त जीवरक्षा की है और किसी जीवको दु.ख प्राप्त न हो वैसेही चले हैं ग्रामानुग्राम विहार करकें भव्य जीवोंको ससारिक दु.खोंसें पार किये हैं और आपन कर्मक्षय करकें केवलज्ञान केवलदर्शन प्रगट किया है, वास्ते इन प्रभुको धन्य हैं वे परमोपकारी है, उससें उन्हेंकी जितनी भक्ति कर सकु उतनी करनी योग्य है एसा सुदर भावना भगवतकी मुद्रा देखनेसें उत्पन्न होती है उत्तम प्राणि ऐसें प्रभुकी जल, चदन, केसर, वरास, पुष्प, धूप, दीप, फल, नैवेद्यसें पूजा करते है तथा आभूषण चढाते है इस मुजब पूजा करनेमें यथाशक्ति द्रव्य व्यय करते हुवे चिंतवन करते हैं कि, मैं जो द्रव्य पैदा करता हु उन्हमें अनेक प्रकारकें पाप लगते है कि, फिर वो धन ससारकें कार्यमें व्यय करता हु उससेंभी फिर पापकी वृद्धि करता हु मेरे ये धनमेंसें मेरे परिणाम पहुचें उतना धनजो मैं प्रभुभक्तिकी अदर खर्चु तो उनसें पापरधन रूक आवे और पुण्यरतन होवे, फिर ये धन अतमें मेरा नहीं है और उनका स्वभाव भिन्न होता है -मै चेतन हु वो जड है, वास्ते मेरे उनपरसें मूर्च्छा उतारनी सो योग्य है फिर सोचता है कि मैं प्रभुकी भक्ति करुगा तो वो देखकर दूसरे जीव उनकी अनुमोदना करेंगे, फिर कितनेक भाग्यवान् जीव भक्ति करनेमें तत्पर होंगे तो उनका कारणीक मैं होउगा इससें प्रभुभक्ति करनेमें अनेक लाभ होवेंगे उत्तम जीव पहिले द्रव्यपूजा करकें पीछे भावपूजा करते है उन अवसरमें भगवतके गुण विचारते है और प्रभुके गुण सोचकरकें उनका अपने आत्माके साथ मिलाप करते है कि, अहा ! प्रभु निरागी और मैं रागी हु, प्रभु अद्वेषी

ओर मैं द्वेषी हुं, प्रभु अक्रोधी और मैं क्रोधी हुं, प्रभु अकामी और मैं कामी हु, प्रभु निर्विषयी और मैं विषयी हु, प्रभु अमानी और मै मानी हु, प्रभु अमायी और मैं मायी हु, प्रभु अलोभी और मै लोभी हु, प्रभु आत्मानदी और मैं ससारानदी हु, प्रभु अतिंद्रिय सुखके भोगी और मैं पुद्गलका भोगी हुं, प्रभु स्वस्वभावी और मैं विभावी हुं, प्रभु अजर और मै सजर हु, प्रभु अक्षय और मै क्षय स्वभाववंत हु, प्रभु अशरीरी और मै शरीरवाला हु, प्रभु अनिंदक और मैं निंदक हु, प्रभु अचल और मै सचल हु, प्रभु अमर और मैं मरण सहित हुं, प्रभु निंद रहित और मै निंद सहित हु, प्रभु निर्मोही और मैं समोही हु, प्रभु हास्य रहित और मैं हास्य सहित हु, प्रभु रतिसें रहित और मै रति सहित हु, प्रभु अरति रहित और मैं अरति सहित हु, प्रभु शोक रहित और मैं शोक सहित हु, प्रभु भय रहित और मैं भय सहित हु, प्रभु दुगच्छा रहित और मैं दुगच्छा सहित हु, प्रभु निर्वेदी और मै सवेदी हु, प्रभु अक्लेशी और मैं क्लेश सहित हु, प्रभु अहिंसक और मै हिंसक हु, प्रभु वचनसें रहित है और मै मृषावादी हु, प्रभु अप्रमादी और मैं सप्रमादी हु, प्रभु निराशा-वत और मैं आशावत हु, प्रभु सर्व जीवकों सुख देनेहारे और मैं अनेक जीवोंकों दुःख देनेहारा हु, प्रभु अवचक और मै सवचक-दूसरोंकों ठगने हारा हु, प्रभु सबके विश्वासपात्र और मैं अविश्वासपात्र हु, प्रभु आश्रव रहित और मै आश्रवसें भरपूर हु, प्रभु निष्पाप और मैं सपाप हु, प्रभु परमात्मपदकों पाये हुवे और मैं बहिरात्मपनेसें प्रवर्चता हु, प्रभु कर्मरहित और मै कर्म सहित हु. इस मुजब भगवत अनेक प्रकारके गुणसें सयुक्त हैं और मैं सब प्रकारकें दुर्गुणोंसें भरा हुवा हु, उसीसें यह ससारमें परिभ्रमण करता हु आज भाग्योदयसें यह प्रभुजीकी मूर्ति मैने निहाल ली और उसके आलबनसें मेरेकों प्रभुके गुणका स्मरण हुवा तथा मेरे औ-गुन समझनेमें आये, तो अब मैं मेरे औगुण छोडनेका उद्यम करु प्रभु जिस रस्ते चले वही रस्ते में चलु और प्रभुने जैसा वर्त्तन चलाया वैसा वर्त्तन में चलाउ इस मुजब भावना भावते-पूजा करते प्राणी अपना कर्मक्षय

करता है, शुद्ध समकितकों प्राप्त करता है और यावत् मोक्षसुखकोंभी पाता है, वास्ते जिनप्रतिमाकी पूजा करनेसे उपर मुजब लाभ जानकर समस्त भव्य जीवोंनें यथाशक्ति जिनेश्वर भगवान्की भक्ति करनी चाहियें

२७ प्रश्न —सामान्यप्रकारसें जिनभक्तिकी रीति तथा लाभ बतलाये, परतु अनुक्रमसें दररोज किस प्रकारसें भक्ति करनी ? वो कह दो

उत्तर —दिनमें तीन दफै जिनमदिरमें जाना उनमें प्रात काल वासक्षेपसें, मध्यानकाळ जल चदनादि अष्ट द्रव्यसें-सत्तरह प्रकारसें या जैसी शक्ति हो उन मुजब विशेष द्रव्यसें पूजा करनी और सध्याकालमें धूपपूजा तथा दीपपूजा करनी उनमें मध्यान्हकी पूजा प्रभुके अग स्पर्श करकें करनेका है, और स्नानभी करना चाहिये-स्नान करकें शुद्ध हुवे सिवा प्रभुके अगका स्पर्श करना घटित नहीं है अपना शरीर मलीन होता है सो स्नान करनेसें शुद्ध होता है वास्ते निर्जीव जगह देखकर शरीरकी शुद्धि हो सके उतने जलसें स्नान करना. ज्यादे पानी नहीं ढोलना ज्यादे पानी ढोलनेसें असख्य अपकाय जीवोंकी कारण सिवा विराधना होती है स्नान कीए बाद पवित्र वस्त्रसें शरीर पुछकर साफ कर डालना पीछे सुदर शोभायमान् सासारिक कामोंमें जिनका उपयोग न हुवा हो वैसे और धूले हुवे वस्त्र धारण कर लेवे बिगर धूले हुवे वस्त्र पहनकर पूजा करनेसें नीवी पच्चख्खाणका प्रायश्चित लगे ऐसा कहा है पीछे अपनी शक्त्यानुसार योग्य आभरण धारण करकें फिर जिनपूजाके लिये जल, चदन, पुष्पादिक शुद्ध द्रव्य लेकर जिनमदिरमें जाना जिनमदिरमें प्रथम द्वारमें पेठतेही 'निसिहि' कहना तबसें ससारके व्यापारका निषेध कियाही समझना यानि जिनालय अदर व्यापार रोजगार सबधी बातचितभी नहीं करना फक्त जिनमदिर सबधी कार्यमेंही चित पीरोना जिनमदिरमें कुच्छ काम चलता हो तो उनका तपास करना, कुच्छ आशातना हुइ हो तो वो दूर करनी और जिनमदिरके नौकर चाकरके कार्यकी तर्फ नजर

रखनी जप भगवतकी मूर्ति दृष्टिमे आवै तब दोनू हाथ जोडकर नमस्कार करना और रगमडपमें दाखिल होनेही दूसरी दफै 'निसिहि' कहनी, यहासें जिनमदिर सबंधी व्यापारकाभी त्याग करदेनेका समज लेना, और जिनपूजा सबंधी काममें प्रवृत्त होना प्रथम आपके हाथ धोकर सुवर्ण, चादी, अन्य धातु मिट्टीके (अपनी शक्तिके अनुसार जसे) कलश हो वैसे कलशमें निर्मल जळ भरना, प्रभूके शरीरपरसें चितवन करना कि भगवतने इस मुजब आभूषण उतारकर सयम ग्रहण किया था बाद मोरे पीछीसें प्रभुके शरीरकी प्रमार्जना दृष्टिपूर्वक करनी चीटी वगैरः जतुओका प्रचारहुवा होवै तो वो दूरकरकें कलशद्वारा अभिषेक करना पीछे वस्त्रके स्वच्छ टुकडेसें केशर निकाल डालना उनसें न निकलसके तो वालाकुचीसें दूर करना. बाद पचामृतका अभिषेक करकें सुकोमल सुदर और धूलेहुवे उज्वळ वस्त्रसें प्रभुका शरीर जल रहित करना, पीछे चदन. केसर, बरासादिस ना अगमें पूजा करना और जीव जंतु विगरके, नहीं सडे हुवे. भूमिपर न पडे हुवे, अशुचि ससर्गसें रहित और सुगधिवाले मोतियें, गुलाब वगैर के फूल चढाना पीछे मुकुट कुडलादि आभरण पहनाना उसके बाद अगर, सिलारसादि सुगधिदार चीजोंसें बनाया गया हुवा दशाग धूप करना. लालटेनमें दीपक रखकर दीपक पूजा करनी भगवतके शरीरपर सोने चादीके वर्क शक्ति मुजब चढाके आगी रचनी या रचवानी, पीछे भगवतके समीपमें सुंदर उज्वल अक्षतसें नदावर्त्त अथवा स्वस्तिक करना. उनमें पहिली तीन ढिगलीयां करनेके अव्वल पहिली ढिगलीसें ज्ञान प्राप्ति, दूसरीमें दर्शन–समकित प्राप्ति और तीसरीसें चारित्र प्राप्ति होवै इस मुजबमें भावना रखकर स्वस्तिक करना, उस वक्त चारों गतियाका नाश होनेकी भावना रखनी फिर तिन ढगलीयांके उपरकि तर्फ अक्षतसें अर्द्धचद्रकार समान सिद्धशिला बनानी और शोचना कि यह सिद्धशिलापर मेरा निवास हो इस प्रकार अक्षत पूजा करकें पीछे सुंदर फल मेवै वगैर. धरना अपक्व, सडे हुवे, खराब गधवाले या अभक्ष फल पूजा प्रकरणमें नहीं धरना. बाद

नैवेद्य चढाना-करना; उसमेंभी भक्ष पदार्थ यानि लड्डु, दूधपाक, शाक, दाल, चावल, चूरमा वगैर विविध जातिके पक्वान प्रभुके आगे धरना और पीछे भावना भावे कि-'यह आहार अनेक पापारंभ करके तैयार किया गया है और यह आहार मैं खाउगा तो उससें भी इसके आस्वादनस मेरेकों राग द्वेषकी परिणती जाग्रत होयगी, वास्ते जितना आहार प्रभुकों चढाउगा उतने आहार सबंधी रागद्वेषकी परिणती होनी बंध रहेगी और फिर उपकारकी भक्ति होगी' उनसें परंपराद्वारा मुक्तिफलकी प्राप्ति होगी ऐसा शोचना इस तरह द्रव्य पुजा करना इससेंभी ज्यादे द्रव्य हो तो ज्यादे द्रव्य चढाना उसके बाद तीसरी 'निसिहि' कहनी और शोचनाकि-'अब द्रव्य पूजाका कार्य मोकूफ करकें भाव पूजा करुगा' पहिले तीन प्रदक्षिणा देकें तीन खमासण देना तीन दिशाओंकी तर्फ निगा फिरानी छोडकर यानि केवल प्रभु सन्मुख देख वीरासन लगाकर दोनू हाथ जोडकें चैत्यवंदन, नमुथ्थुण, दोनू जीवती, स्तवन, जयवीयराय आदि कहना, और काउस्सग्ग करना और काउस्सग्ग पारकर एक स्तुति या आठ स्तुति शक्ति अवकाश हो वैसी रीतीसें चैत्यवंदन करना यह सामान्य विधिसें प्रभु भक्ति कह दी पीछे प्रभु सन्मुख खडे रहकर आगे जिस मुजब बतलाइ गइ है उसी मुजब भावना भावे बहुत गुणी आचार्य महाराज भगवतके गुणरूपी श्लोकबद्ध काव्यबद्ध रचना कर गय हैं उस स्तुतिसें स्तुति करनी ऐसी सुंदर भावना उपयोग करनेसें नागकेतू वगैर केवलज्ञान पाये हैं. उनकी कथा कल्पसूत्रमें मौजूद है

८ प्रश्न.—पुष्प पूजा करनेसें पुष्पोंके जीवोंकों पीडा होता है उसका क्या करना?

उत्तरः—पुष्पके जीवोंकों बाधा नहीं होती है, लेकिन रक्षण होता है, क्यों कि पुष्प कोइ गृहस्थ ले जावे तो मनुष्यके स्पर्शसें उनके जीवों किलामना होवे कितनेक गृहस्थ शय्यामें बिछाकर सो जाते हैं उससें भी किलामना होती है, किन्तु जो पुष्प प्रभुजीकों चढते हैं उनकी तो अपने आयुष्य तक अबाधा रहती है फिर तुम कहोगे कि पुष्पकों सूइसे छेदकर गुथनसें

फिलामना हुवे निगर क्यों रहे ? तो उसके जवाबमें यही खुलासा है कि, जो पुष्पकी दांडी पोकल हो उसमें डोरा पिरोना शास्त्रमें कहा है, वास्ते उस मुजब काम करनेसें बाधा नही होगी. पुष्प छेदकें पिरोकर या कच्ची फलीय पिरोकर हार बनाके चढानेकी रीति प्राचीन नहीं, मगर अर्वाचीन-नवीन रीति मालूम होती है. ऐसी रीति पडनेसें कितनीक दफे गुथन किये बने पुष्प नहीं मिलते है तब विधिपूर्वक पूजा करनेके रसिक पुरुषोंकोंभी सीए हुवे फूल चढाने पडते हैं, सो अपवाद समझकर चढाते है, सबब कि जो वो हार न चढावे तो बिल्कुल पुष्पहार चढ सके नहीं वास्ते योग बन सके वहांतक गुथे हुवे फूल चढाना यही श्रेय है. प्रभु-भक्ति करनेमें कदाचित् अल्पहिंसा होवे तो उसपर आवश्यकजीमें कुवेका दृष्टांत दिया है जैसे कुवा खोदनेमें कष्ट पडता है; मगर हमेशां पानीका सुख होता है, वैसेही प्रभुपुजनमें अल्पहिंसा होवे, मगर अंतमें मुक्तिके सुखकी प्राप्ति होती है इस लिये श्रावककों अष्टप्रकारी पूजा करनेका महानिशिथ्थ सूत्रमेंभी कहा है

२९ प्रश्नः—नैवेद्य-पकाया हुवा धरना ऐसा किस शास्त्रमें कहा है ?

उत्तरः—श्राद्धविधिमें कहा है, फिर श्राद्धविधिमें निशिथ्थ चूर्णी वगैरःके दृष्टांत दिये हैं आचारोपदेश, अष्टप्रकारी पूजाका रास, तथा सकलचंदजी उपाध्याय प्रमुख विरचित पूजाओंमेंभी कहा है वे शास्त्र देखनेसें विस्तारयुक्त मालूम हो जायगा सामान्य प्रकारसें नैवेद्य चढानेका तो महानिशिथ्थ, पचाशकजी, प्रवचन सारोद्धार, योगशास्त्र आदि बहुतसे शास्त्रोंमें कहा है.

३० प्रश्नः—दीपकपूजा कौनसें शास्त्रमें कही है ?

उत्तर.—महानिशिथ्थसूत्रमें अष्टप्रकारी पूजाका अधिकार चला है, वहां कही है. प्रभुके जन्म समय दिगकुमारीकाओंने दीपक किये है-वगैरः वर्णन जंबूद्वीपपन्नतिमें है, और आवश्यकसूत्रमेंभी कहा है

३१ प्रश्नः—गुरुभक्ति किस प्रकारसें करनी ?

उत्तरः—गुरुकों देखतेही दोनू हाथ जोडकर नमस्कार करना. गुरु कुच्छ काममें न लगे हो तो खमासमण देकर वंदन करना. इच्छकार पूछकर अभुठियो

अभ्यतरसें खमाना गुरु खडे हो तौ खडेही रहना गुरुके वचनकी अवगणना नहीं करना वस्त्र, पात्र, औषध, पाट, पटरे, रहनेकी जगह आदि जो कुछ चाहियें सो हाजिर करना अपनी पास न हो तौ जिसकी पास हो उसकी पास गुरजीको लेजाकर दिल्वा देना किसी प्रकारसें उन्होंका वचन नहीं लोपना गुरु महा उपकारी हैं, वो उपकारीके उपकारका बदला किसी दिन नहीं दिया जायगा; वास्ते यथाशक्ति गुरुभक्ति करना तन, मन और धन अर्पण करना शायद गुरुमहाराजके काममें तमाम दौलत व्यय हो जावे तौभी व्यय करनेमें किंचित्भी अपेक्षा नहीं लाना ऐसा भाव जिनकों हो जाता है उनकों अवश्य-निश्चय समकित होता है उनमें जितनी कसर-कचास हो उतनीही समकितमेंभी न्यूनता जाननी वास्ते देवगुरुकी भक्तिमें कोइभी तरहसें कमी नहीं रखनी गुरुमहाराज एक कौडीभी आप नहीं लेते हैं किसी वक्त अकस्मात् धर्म सबंधी हरकत आ पडी हो और उस काममें पैसे खर्चने पडे वैसा हो-औषधम वापरने हो, पुस्तक लिखवाने हो-आदि धर्मके कार्यमें पैसेकी जरूरत हो उस वक्त गुरुमहाराज वापरनेका उपदेश करते हैं, वास्ते बिलकुल् मनकों पीछे न हटातें प्रसन्न होकर द्रव्यका सदुपयोग करना.

३* प्रश्न —गुरु लोभी हो तो कैसे करना

उत्तर.—गुरमहाराज लोभी होवेही नहीं, जो अपने शरीर, शिष्य और श्रावककी आशा नहीं रखते है वो धनकी आशा क्यों रक्ख ? वास्ते उन्होंमें लोभी होनेकी शका करनीही नहीं वे फक्त शरीर सरक्षणके लिये प्रमाणोपेत वस्त्रकों ग्रहण करते हैं और शरीरद्वारा ज्ञानदर्शनचारित्रका आराधन किया जाना है उससें शरीरकों शुद्ध मान आहार देते हैं-इद्रियोंकी पुष्टिके लिये तों आहारभी नहीं लेते हैं उसमेंभी जो आहार गृहस्थने अपने वास्ते बनवाया हो वही लेते है, उनमेंसेंभी इस अदाजसें ग्रहण करते हैं कि उन गृहस्थकों फिर न बनवाना पडे, और फिर नयाही बनवाना पडेगा एसा मालूम हो जाय तौ बिलकुल् नही ग्रहण करते हैं आहारके सबधमें ऐसे निरिच्छावान् होते हैं तौ फिर दूसरा लोभ तो करही

किस लिये ? उन्होंकों एक कोडी भी पास नहीं रखना है, और जिन्होंने रख्खा है तो उन्होंकों शास्त्रमें गुरुबुद्धिसें (गुरु) मानने नहीं कहे है. जिनाज्ञा विरुद्ध ऐसे वेषधारी द्रव्यलिंगी, पासथ्थादिक द्रव्य रखनेवालेकों जो गुरुबुद्धिसे मानते हैं उनकों मिथ्यात्व लगता है

२३ प्रश्नः—कोइ एसा कहता है कि-ज्ञानसें करकें ही धर्म होता है, क्रिया वो तो सी फेरमें है, उससें क्रिया करनेसें धर्म नहीं होवें, वास्ते कभी क्रियारुचि न होवे तो भी ज्ञान पढे हुवे होवे तो उनका गुरु माननेमें क्या हरकत है ?

उत्तर:—शास्त्रमें समकित करकें सहित हो उनकों ही ज्ञान कहते हैं जो आज्ञाके समकित हो वो तो भगवतकी आज्ञाके आराधक होते है, जो आज्ञाके आराधक होवें वे क्रियासें विमुख होवेंही नहीं, कारण कि ज्ञानद्वारा अपने आत्माका और पुद्गलका स्वरूप जान लिया है उससे वे जानते है कि "अहा ! यह पुद्गल तो जड पदार्थ है, पुद्गलका वशीभूततामें करकें विपरीत बुद्धि हुइ उससें पर वस्तु जो धन-धान्य-और स्त्री-कुटुंबादि उनकों इस जीवनें अपनी करके मान लि हैं और उससे कर्मबंधन करकें चारों गतियोंमें धूमकर अनेक प्रकारके दुःख भुक्ते. इस भवमें भाग्यादयसें श्री जीनराजजीका मार्ग, प्राप्त हुवा औरकर्मने विवर-रस्ता दिया उससें मेरेको संयमकी प्राप्ति हुइ है, तो अब मुझकों आत्मतत्वमेंही रमण करना योग्य है. अनादिकालकी जीवकों परभावमें रमण करनेकी आदत है, उसीसें मेरी दशा वेर वेर पुद्गल भावकी होती है वो बदल डालनेके लिये अशुभ क्रिया छोडके शुभ क्रियामें प्रवर्त्तना योग्य है" इस तरहकी भावनासें संयमकी क्रिया करते हैं और वो क्रिया कर्मनिर्जराकी हेतुभूत होती है फिर योगादिककी जो शुभ प्रवृत्ति होती है उससें यदि शुभकर्म बंधाजाता है, परतु वो कर्म मुक्ति प्राप्त करनेमें सहाय्यकारी होते हैं-विघ्नकारी नहीं होते है ऐसें शुभ कर्मके योगसें आर्यक्षेत्रमें जन्म, पांचो इंद्रियें संपूर्ण, धर्मिष्ट कुल, धर्मकार्यमें स्वजनादि अनुकूल, निरोगी शरीर, और देवगुरुकी योगवाइ-इत्यादि, साधनाकी प्राप्ति होती है यह साधन मिले विगर जीवसें मुक्तिमार्गका आराधन नहीं हो सक्ता है जो ज्ञानवान् है वे सहजमेंही क्रियामें प्रवर्त्तते हैं ज्ञान

गुणद्वारा वस्तु स्वरूपका जाननेमें संसारका अनित्यता समझकर जिन्होंने चारित्र अंगिकार किया है वैसे मुनिराज हरदम शोचते हैं कि-सब जीव सत्तामें करकें समान हैं, लेकिन कर्मसे फरक अलग अलग गति प्राप्त हुवे हैं वे सब सुखके अभिलाषि हैं दुःखकों नहीं चाहते हैं जैसे मेरे शरीरकों कोइ पीडा प्राप्त करता है तो मुझको दुःख होता है वैसेंही सब जीवोंकों भी दुःख होता है, उस वास्ते किसी जीवकोंभी दुःख देना योग्य नहीं है ऐसें विचारसें वे जबजब उठते हैं-बैठते हैं-सोते हैं-चलते हैं तब तब यत्नापूर्वक प्रवर्त्तते हैं. फिर पडिलेहणभी उसी लिये ही करते है कि वस्त्रमें कोइ जीव हो तो शरीरके लगनेसें उनकों पीडा उत्पन्न होवें फिर प्रतिक्रमणकी क्रिया करते हैं उनका कारणभी ऐसा है कि आप आत्मास्वभावमें रमणता करनेकों चाहते है, परंतु जीवकों अनादिकालका मोहप्रवृत्तिका अभ्यास बना हुवा है उसके जोरसें जो नहीं करने लायक प्रवृत्ति हो जाती है सो आपके मनमें अनिष्ट लगती है और उसकी निंदा गर्हा तो कायम हुवा करती है, परंतु प्रतिक्रमणमें विशेष प्रकारसें करनेका बन शके वास्ते प्रतिक्रमण करते हैं यथाशक्ति तप करते हैं, उसमेंभी ऐसा भाव प्रवर्त्तता है कि आहार करना वो मेरा स्वभाविकधर्म नहीं है, मगर अभीतक पुद्गलमें रहा हुं इस्में ज्ञान ध्यान भले प्रकारसें होनेके लिये इस शरीरकों निर्वद्य आहार देता हुं; तोभी थोडी थोडी तपश्चर्या करुं तो उस्से कुच्छ ध्यान ज्ञानमें हरकत नहीं, होगी, मगर शुभ भावके योगसें ज्ञान ध्यानकी वृद्धि होगी, वास्ते यथा शक्ति तपस्या करुं-ऐसी भावना होनेसें ज्ञानीकों सहजमें तपभी बन आता है वास्ते ज्ञानवतकों क्रियाकी रुचि न हो यह बात संभवितही नहीं है, लेकिन जो फक्त लोकरंजनार्थ ज्ञान पढे हुवे होते हैं उन्होंकों क्रिया रुचि नहीं होती, तो वे कुच्छ जैनमार्गमें नहीं है? श्रीविशेषावश्यकजीमें क्रिया रूचि रहित जीवकों अज्ञानी कहे हैं तो वैसे अज्ञानी गुरु करने योग्य हावेही नहीं, उसकी सगत करनेसें उनके जैसी विपरीत बुद्धि और मिथ्यात्व प्राप्त होवे, इस लिये भगवतकी आज्ञा मुजब चलनेवालेकों ही गुरुमानना चाहिये

प्रश्नः—गुरुमहाराज न हो तो धर्मकरणी किसके आगे करनी ?

उत्तरः—जैसें देवके अभावसें देवकी मूर्ति, तैसें गुरुके अभावसें गुरुकी स्थापना जाननी. उनमें मुख्य अक्ष, सो गोलाकारका कौडा समझना. वै तीन, पांच सात या नव आवर्त्तवाले हो तो श्रेष्ट गिनेजाते है उसका फल श्री भद्रबाहुस्वामीकृत स्थापनाकुलकमें विशेष प्रकारसें दर्शाया है. श्री यशो विजयजी उपाध्यायनें स्थापनाकी सज्झाय बनाइ है उनमें भी उनका फल तथा विधि बताया है. अैसे अक्षके स्थापनाचार्य स्थापितकरकें उनके सन्मुख क्रिया करनी. उनका योग न बन सके तो ज्ञान दर्शन और चारित्रके उपकरण–मुख्यत्वमें पुस्तक नोकरवाली–माला प्रमुखकी स्थापना करनी. श्री ठाणागजी सूत्रमें दश प्रकारकी स्थापना कही है, सो स्थापित करकें पचिंदियसें उनमें गुरु महाराजके गुणका आरोपण करना और पीछे उनकी समीपमें विधि करना

२५ प्रश्नः—धर्म वो क्या है ?

उत्तरः—धर्म दो प्रकारके है अर्थात् आत्मिक धर्म और व्यवहारिक धर्म ये दो हैं.

२६ प्रश्नः—आत्मिक धर्म सो क्या ?

उत्तरः—आत्मिक धर्म सो आत्माका लक्षण यानि अनतज्ञान, अनतदर्शन, अनत चारित्र और अनतवीर्यादि उनमें रमण करना वही आत्मिक धर्मका आराधन समझना.

२७ प्रश्नः—अनतज्ञान किसको कहते है ?

उत्तरः—अनत पदार्थोंका और तीनू कालका स्वरूप जाननेकी आत्माकी शक्ति है वही अनतज्ञान.

२८ प्रश्नः—आत्माकी अैसी शक्ति है तो वो मालूम क्यों नहीं होती ?

उत्तरः—आत्मा कर्मसें करकें आच्छादीत हुवा है उससें उनकी शक्ति नहीं चल सकती है

२९ प्रश्नः—आत्मा कर्मसें करकें कबसें आच्छादित हुवा है ?

उत्तरः—आत्मा अनादि कालसें कर्मसें आच्छादित है वो किसी समयमें भी निर्मल होताही नहीं जैसें सुवर्ण खानीकी अंदर मूलसेंही मिट्टीके साथ मिलाहुवा है, तैसें जीवके लियेही समझना

४० प्रश्न'—कर्म वे क्या ? और वे जीवके साथ कैसी रीतिमें भेलसेत्र हुवेले है ? फिर अनादिके कर्म है वही चले आते हैं या फेरफार होते है ?

उत्तर'—कर्म वो जड पदार्थ हे, जो चर्म चक्षुद्वारा मालम होता है वो सब जड पदार्थही है, जीव नजर नहीं आते है जड पदार्थ विचित्र प्रकारके रूप धारण करते है मनुष्यके शरीररूपसें मिले हुव है वोही अलग अलग हो कर फिर भस्मरूप होजाते है, वरूतपर अग्निरूप होजाते हैं और वही पीछे पृथिवी, जल, वायु, वनस्पति, तथा जानवरोंके रूपको धारण करते है जीवके, शरीरमेंसें अलग पडे हुवे पुद्गलोंके विचित्र घाट बनते हैं जीवने ग्रहण न किये हो वैसें छूटे पुद्गलोंके भी स्वभाविक अनेक रूप बनते हैं आकाशमें लीले–हरे पीलेरग मालूम होते है वो स्वभाविकही बनते है अैसे पुद्गल परमाणुए मिलकर कर्मयोग्य पदार्थ होता हैं वैसा कर्मपदार्थ आत्माके साथ अनादिकालसें मिलगया हुवा है, वो ज्यौं ज्यौं भुके जाते है त्यौं त्यौं अलग होते जाते है और पीछे नये बधाते हैं अैसें श्रेणी प्रश्रेणी चलीही आती हे जैसे चिकनाइवाले पदार्थको धूल लगती हैं, तैसें जीवको रागद्वेषकी परिणतीरूप चिकनाइ के योगसें कर्मके पुद्गल आकर लिपट जाते है

४१ प्रश्न'—जीव और पुद्गलका कर्त्ता कोइ है ?

उत्तर.—ये किसीके बनाये हुवे नहीं हैं यानि उसका कर्त्ता कोइ नहीं है फिर न्यायसें शोचनेसें इसका कर्त्ता कोइ हो सके भी नहीं जो उसका कोइ कर्त्ता–बनानेवाला हो तो वो शरीरधारी होना चाहियें यानि उसका बनानेवालेकाभी फिर बनानेवाला कोइ होनाही चाहियें फिर जब जगतमें कोइ पदार्थही न होवे तब जीव और पुद्गल क्या पदार्थ न बना सके ? फिर जो जीवका कर्त्ता हो तो वो पापकार्य करनेवालेका–पैदाही नही करे, और जगतमें तो अैसेही मनुष्य ज्यादे नजर आते हैं ! कभी कोइ कहेगा कि–बनाये गये जब तो अच्छेथे, लकिन पीछेसें बिगड गये तो बनाने वाले ज्ञानीको अैसाभी ज्ञान होना चाहियें कि ये पीछेसें बिगड जायेंगे, वास्ते इनको बनानाही न चाहिये. साधारण मनुष्य भी जो

किसी कार्यका बुरा परिणाम आनेका ज्ञान लेवै तो वो कार्य नहीं करता है, तब जो सर्वज्ञ है वो तो तीनू कालका स्वरूप जान सके तो फिर पीछेसें बिगड ऐसे प्राणीयोंकों क्यों बनावे ? फिर ईश्वर समदृष्टिवाला होनेसें एककों मनुष्य बनावें और दूसरेकों जानवर बनावै, एककों सुखी बनावै और एककों दुःखी बनावै ऐसा होवैही नहीं. उनका विचार तौ सबकों सुखी बनानेकाही होना चाहियें, और वैसा तो जगत्में किसी जगहभी नजर नहीं आता है उसीसें मालूम और साबित होता है कि जगत्का बनानेवाला ईश्वर नहीं है ईश्वरकों जगत् कर्त्ता मानना ये वास्तविक नहीं हैं. फिर कितनेक कहते हैं कि—यह तो सब ईश्वरकी इच्छाद्वारा ही बनता है यह कहनाभी असत्य है, क्योंकि जो जो धर्मवाले मुक्तिकों मानते हैं और मुक्ति मिलानेके लिये उद्यम करते हैं उनके शास्त्रमें अतमें क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारोंमें मुक्त हो जाता और समभावमें रहना उसीका नामही मुक्ति कही है. तब शोचोकि दूसरोंकों तो इच्छासें मुक्त होना कहते हे और आप यह जगत् उपजानेकी इच्छा करते हैं ये बात क्योंकर सभवे? जैसे आधुनिक समयमें कितनेक धर्मगुरु नाम धारण करनेवाले आप खुद द्रव्य रखते है, स्त्रीका आनद लेते है और उनके दूसरे सेवक लोगोंकों उपदेश करते है कि— " द्रव्य अस्थिर है, अर्थ अनर्थका मूल है, स्त्रीकी सोवतसें अनेक प्रकारके कर्म बधे जाते है, वास्ते तुम लोग द्रव्य और स्त्री इन दोनुका त्याग करो जिससें तुमकों बहुतही लाभ—फायदा होगा ! " इस दृष्टांत मुजब जगत्के करनेवाले ईश्वर आप तो खुद राग द्वेषसें मुक्त हुवेही नहीं है और दूसरोंकों मुक्त होनेका कहते ह, वास्ते ऐसा कथन ईश्वरका होवैही नही. ऐसी बातें करनेवाले ईश्वरके स्वरूपकों नहीं समजते है और नाहक ईश्वरकों दूषण लगाते है ईश्वर तो समस्त प्रकारकी राग द्वेषकी परिणतीका त्याग करनेवाले होते है. किसी प्रकारकी उपाधि उन्होंकों होतीही नही, ससारी काम कोइभी उन्हें करनेका नहीं होता है. ससारी काम तो देहधारी मनुष्य—प्राणी करते है. ईश्वर देह रहित हुवेले हैं. अपने

आत्मस्वभावद्वारा सब पदार्थोंकों जानते देखते है, लेकिन उसमें परिणमते नहीं है इश्वरका सच्चा स्वरुप इस मुजब होनेसें वे जीव या पुद्गलके कर्त्ताही नहीं हैं. जीव और पुद्गल पदार्थ अनादि कालसें स्वभाविकपनेसेंही है अैसा समझ लेना

४२ प्रश्न'—आत्माके चेतन गुणको कर्मजड होनेसें किसतरह दाप सकै? या वेष्टित हो सकै?

उत्तर.—अपनी नजरसें प्रत्यक्ष देखते है कि बुद्धि अरूपी है; तदपि मदिरापान करनेवालेकी बुद्धि भ्रष्ट होजाती है और उसका केफ चढता है तब ज्यौं त्यौं वख्त्ता है, तों मदिरा जड होनेपरभी बुद्धिकों क्यों दाप देती है? फिर केफ उतरता है उस पीछे बुद्धि मुकामपर आती है, तैसें कर्मभी अैसाही पदार्थ है, उसके सयोगसें आत्माका ज्ञान गुण लुप्त होता है जैस परदेमें रही हुइ या मैलके जथ्थेसें लिप्त हुइ वस्तुओंका सच्चा स्वरूप नजर नहीं आता है, तैसें कर्मरूप मेल लगनेसें आत्माकी शक्ति और स्वरुप नजर नही असकता है.

४३ प्रश्न'—आत्मा निरतर कर्मसेंकरके आच्छादित हुवाही रहता है कि उसमें फेरफारभी होता है? और वो किसी वख्तभी शुद्ध होगा या नही?

उत्तर.—आत्माके ज्ञानकों कर्मकी नशा लगाहुवा हैं. नशा करनेवाले मनुष्यकों यदि कोइ भारी-फिक्रकी बात करै या तौ खटाइ वगैर नशा उतर जानेकी चीज खिला देवे तो उसका नशा उतर जाता है, वैसें प्राणीकाभी गुरुमहाराजके योगसें या पूर्वके क्षयोपशमद्वारा जब अपने आत्माका सच्चा स्वरुप समझा जाता है और पुद्गलके सगसें अनादि काल ससारमें परिभ्रमण करनेका समझा जाता है, तब उससें भय पाता है और कर्मका नशा उतर जाकर ज्ञानदशा जाग्रत होती है उस वक्त शोचता है कि, 'जो मैं सुख मानता हु वो तो जडपदार्थद्वारा मात्र मान लियाहुवा सुख है, उससें मेरे आत्मामें तौ सुख नहीं मगर उलटा कर्मबधनरूप दु:ख है फिर वो सुख जैसें फांसी चढानेवाले मनुष्यकों अच्छी अच्छी चीजें खानेकों देते हैं किंतु थोडी देर पीछे फासीपर लटका दिया जाता है

उनके जैसा है संसारसुखकी लीनताभी अैसीही है, सबब कि अभीके समयमें बडेमें बडा बहुतकरकें आयुष्य सौ वर्षका होता है, तो उतने समय तक सुख भुक्तना और पीछे उन्सें भये हुवे कर्मबंध बद्वारा नरकमें जाना पडे वहा सागरोपमके आयुष्य होनेसें असंख्य वर्ष पर्यंत दुःख भुक्तना उनके प्रमाणमें मनुष्यभवका सुख कुच्छ हिसाबमें नही. कभी मरण हुवे बाद नरकमें न जातें मनुष्यगतिमें जानेका होवै तो वहा स्त्रीकी योनिमें अत्यत अशुचिवाले स्थानकमें बेसुमार दुर्गंधिका अनुभव लेते हुवे उत्पन्न होना और वहा उंधे शिरसें नो मास तक रहना—अैसे गर्भावासके दुःख भुक्तना पडे. तिर्यंच गतिमें जानेका होवै तो वहाभी क्षुधा, तृषा सहन करनी पडे और दूसरेभी अनेक ' दारके दुःख भुक्तने पडें; वास्ते अैसे पुद्गलीक सुखकों म सुख नही मान लुगा. " अैसी भावना आनेसें सासारिक सुखकों सुख माननेरूप नशा उतर जाता है. यों करते हुवे कदापि तद्दन नशा न उतर जावै तो उनके निवारणके लिये तप सयमरूप ओषधका उपयोग करकें मोहजन्य नशा उतारता है तप संयमादिद्वारा ज्यों ज्यों कर्म नाश होते जाते है त्यों त्यों आत्मा शुद्ध होता जाता है. तो पीछे जो सुख दुःख प्राप्त होता है उसमें समभाव रखता है और शोचता है कि–' देहके साथ रहकर मैंने जो जो कर्म गध लिये है वो वो देहके सबधसें उदयमे आनेसें भुक्तेजा हैं, उसमें मुझे ज्ञातपणेसें दूर–अलग रहनाही योग्य है, किंतु मुझको दुःख होताहै, मुझकों सुख होता है अैसा शोचना योग्य नहीं है. ' अैसी विचारनासे नशा उतरता जाता है और सावधानी वढती जाती है उनमें भी जैसें दूसरी दफे नशा करता है तो फिर बुद्धि आच्छादित हो जाती है तैसें गुरुमहाराजके उपदेशसें शुद्ध भाव आनेपरभी फिर ससारके सुखमें गिरजाता है तो फिर ज्ञान आच्छादित हो जाता है कितनेक मनुष्य अैसे दृढ होते हैं कि अेक वेर नशा उतरे बाद उन[illegible] यदा समझकर दूसरी वेर कभीभी नशा नही करेंगे उसीतरह [illegible] ल्पससारी जीव तो धर्म श्रवण किये पीछे दिन प्रतिदिन [illegible] ा किये जाते है और अतमें सर्वज्ञपना

सपादन करते है, उन्होंका ज्ञान पुन' आच्छादित नहीं होता है, सदा काल अेक समानही रहता है और पुनः उनकों ससारमे भी नहीं आना होता है

४४ प्रश्न —कर्मसें रहित हो जाय उनकों फिर कर्म नहीं लगते है ?

उत्तर'--राग द्वेषरूप चिकनाइ योगसेंही कर्म लगते है और रागद्वेष है सो कर्मके योगसें होते हैं, वे कर्म निकल गये कि उनका योग नहीं रहता है और रागद्वेषमय परिणति नहीं रहती है, वास्ते कर्म नहीं लगते है. जैसें कि दूधकी अदर घी रहा हुवा है उसकों निकालनेकें लिये पहले दहीं बनाना, पीछे उसकों विलोकर मख्खन निकालना, पीछे मखनकों तपाकर घी बनाना. वो निकाले हुवे घीका पुनः दूध नहीं हो सक्ता है–घीही कायम रहता है, उसीही तरहसें आत्माके अनुक्रमसें प्रगट हुवे गुण आच्छादित नहीं होते है

४५ प्रश्न.—कर्मआते हैं जो नजर नहीं आते हैं, वास्ते आते हैं अैसो कौनसे अनुमानसें सिद्ध हो शके ?

उत्तरः—कर्म पुद्गलिक पदार्थ हैं ठडी के ठडे पुद्गल जब अपनेकों स्पर्श करते है तब जानते है कि ठडी लगती हैं, परतु अपन ठडीके पुद्गल नहीं देख सकते हैं, तोभी निश्चय करते है कि ठडे पुद्गल स्पर्श करने लगे सुगधीके पुद्गल नहीं देख सकते हैं, मगर नॉकमें खुशबु मालूम होनेसें समझनेम आता हे कि यहापर कोइ सुगधी–पदार्थ है गर्मी लगती है, लेकिन उसके आतेहुवे पुद्गलोंकों नहीं देखते है हवा चलती है उसकों नहीं देख सकते हैं, मगर शरीरकों स्पर्श होनेसें जाना जाता है कि हवा चलती है, तैसे कर्म आते हैं वो अपनकों नजर नहीं आते, लेकिन जब कर्म उदय आते है और उनके फल देखनेमें आते हैं तब सिद्ध होता है अगाडीके जन्मोंमें कर्म बाधे हुवे होते हैं उनके योगसे सुख दुःख प्राप्त होता हे कोइ सुखी, कोइ दुखी अैसा सब जगह मालूम होता है कोइ मनुष्य वर्त्तमानकालमें अच्छे कृत्य करता है, फिर अकलमें भी खामी नहीं है, दु ख होवे वैसा कार्यभी अभी नहीं करता है, तौ भी वो दुःखी होता है ये सब पूर्व कर्मके योगसें समझना फिर कितनेक मनुष्य लुचाइ, ठगाइ, चोरी वगैर करते

हैं, झूठ बोलते हैं, अच्छे मनुष्यपर कलंक धर देते हैं, हिंसा करनेमें तत्पर होते हैं—अैसे अधर्मी—अधर्मके करनेहारे सुखी मालूम होते है, उसका सबब इतनाही है कि इस जन्ममें जो सुख भुक्तता है सो पूर्वजन्ममें कियेहुवे सुकृतके लियेही है अैसा समझना; परंतु इस जन्ममें कियेहुवे, कृत्यके फल आते जन्ममें भूक्तने पडेंगे. क्वचित् इस जन्मके कियेहुवे कर्म इस जन्ममेंभी उदय आते हैं. कितनेक राजा परस्त्रीके लपटपनेसें इसी जन्ममें ही राज्य खोकर कैदमें गिरफतार हो जाते हैं चोरी करनेवालेभी इसी जन्ममें तुरत कैद हो जाते हैं—यह सब कर्मकीही विचित्रता है. जुलावकी दवा अैसी जल्लाद होती है कि उसकी फौरन असर होती है, और दूसरी दवा अैसी होती है कि जिनकी असर दो चार घंटेके बाद होती है. मनुष्य विष खाता है उसमें कोइ विष अैसा होता है कि खा लिया या सूंघलिया के तुरंत मर जाता है, और कोइ विष—झहर अैसा होता है कि मनुष्यकों दीर्घ—लंबे वक्त तक पीडित करके फिर मार देता है, तैसें कर्मभी विचित्र प्रकारके हैं, वे किसीकों तुरत और किसीकों जन्मांतरमें प्राप्त होते हैं. कर्मके अनुसार मनुष्यकों जुदी जुदी योनियें प्राप्त होती हैं. कोइ कहेगा कि इसकी सबूति क्या? तो समझना कि—किसी वक्त मनुष्य मरकें व्यंतर होता है और वो आकें उनके कुटुंबके पूँछे हुवे सभी जवाब देता हैं, उसपरसें दूसरा भव सिद्ध होता है, और उन्होंकों प्रतीति करा देता है अपनी करणी माफक जीव दूसरी गतिमें जाता है. सब वातें कर्मके संबधसेंही बनती हैं पुनः मंत्रवादि सॉपके मंत्र पढते हैं उस वक्त मंत्रके अधिष्ठायक देव सॉपके विपकों शरीरमेंसें हरण कर लेते हैं, उसपरसें देवकी जाति भी सिद्ध होती है जब दूसरी गति है, तब कर्म विगर दूसरी गतिमें कौन लेजावे? इस अनुमानसें भी कर्म सिद्ध होता है.

४६ प्रश्नः—कर्मके संयोगसें परिणाम बिगडते है—और नये कर्मबंधे जाते है—इसी तरहसें परंपरा चली जाती है तब कर्मसें मुक्त किस प्रकारसें होवें?

उत्तरः—कर्म दो प्रकारके हैं—अेक उपक्रमी और दूसरा निरुपक्रमी—उसमें जो निरुपक्रमी कर्मबंधे हुवे होते हैं तो भुक्तने विगर छुटकारा नहीं होता

है, और उपक्रमी कर्मबंधा हुवा होता है तो आत्माकी विशुद्धतासें गिर जाता है और अधिक विशुद्धता प्राप्त होती है जैसेंकि कितनेक रोग असे होते है कि जन्मपर्यंत–अंततक भुक्तने विगर छुटकारा नहीं होता है और कितनेक रोगकी औषधीका प्रयोग करनेमेंही शांति हो जाती है जैसें जो गुरुके संयोगसें ज्ञान होता है वो ज्ञानवंत जीव पापका उदय होवे तब शोचता है कि मैंनें अज्ञानतासें कर्म बांध लिये है वे भुक्ते विगर छुटकारा ही नहीं है, वास्ते मुझकों विकल्प करना दुरस्त नहीं. बुरे काम किये उनकी यह शिक्षा भुक्तनीहीं चाहियें असी सुंदर भावना ल्याकर जब जीव समभावमें रहता है तब वो उपक्रम कर्मकों उपक्रम लगता है और उस्सें जलदी उन कर्मका नाश हो जाता है. यहां आत्मा की पुद्‌गल संयोगसें राग द्वेषरुप परिणति न हुइ वोही चिक्नाइ कम हुइ उससें पूर्वके जो कर्म थे वो गिर पडे फिर शुभ कर्मकों भी उपक्रम लगता है सो इस रीतिसें कि–जब जीवकों पुण्योदयसें धन–दौलत–पुत्र–मकान–दुकान वगेरे सब चीज सुंदर मील्ती है, तब जीव अहंकारमें लीन होता है इस मुजब अहंकार करनेसें शुभकर्मकों उपक्रम ल्गता है. सबब जो शुभकर्म बनाते हैं वे मंद राग द्वेषसें बधाते है और जब अहंकारादि जोर करते हैं तब तीव्र रागद्वेष होता है वो अशुभ है और अशुभ है उस्सें शुभके पुद्‌गल भुक्ते जावे तब शुभ कमी हुवा यही उपक्रम ल्गा वास्ते उत्तम पुरुषकों चाहे उतनी ऋद्धि मिल्जाय तो भीवें अहंकार नहीं करते है, लेकिन भावना भाते है कि–" पूर्वमें मैंनें धर्मकरणी की उनके प्रभावसें शुभ कर्म उपार्जन हुवा है अब मोहके वश होकर मैं अहंकार करकें कर्म बांधुगा तो फिर दुर्गतिमें जाना पडेगा. यह पुद्‌गलिक सुख तो अस्थिर है, संसारी वस्तुओंका योग सो तो वियोग संयुक्त है वास्ते उसमें मद करना वो योग्य नहीं है फिर असे सुखमें मग्न होना वो भी योग्य नहीं मुझे तो आत्मस्वभावमेंही स्थिर रहना योगी योग्य है " असी भावनाका उपयोग करनेवाले उत्तम जीवके शुभकर्मकों उपक्रम नहीं लगता है, मगर शुभकर्म पुष्ट होते है.

प्र:—शुभकर्म पुद्गल होनेसें वैभी मुक्तिकों रोकते है वास्ते पुन्य तथा पाप दोनू त्याग देने योग्य कहे हैं उसका क्या?

उ:—जैसे शुभकर्म बांधनेके वक्त राजा, चक्रवर्ति, देवता, शाहुकार इत्यादि होकर पुद्गलिक सुख भुक्तनेकी इच्छा रखनेमें जो पुन्य बधाता हैं तैसे पुन्यकी इच्छा रखनेका तो निषेधही है. औसी इच्छा तो रखनी ही नहीं; कारण कि औसी इच्छासें करके जो पुन्य बधाजाता है वो पापानुबंधी पुन्य बधाजाता है. उस्सें वो पुन्य भुक्तनेमें फिर पाप बधाता है और उनसें आत्मा मलीन होता है, दुर्गतिके दु:ख भुक्तने पडते हैं और आत्माकी शुद्धि नहीं होती है, परंतु जिन पुरुषोंको पुद्गलिक सुखकी इच्छा नहीं है और आत्मिक धर्म प्रकट करनेके लिये उद्यम करते हैं उसमें शुभ योगकी प्रवृत्ति होनेसें जो शुभकर्म बधे जावें उनसें आत्मधर्मको विघ्न नहीं होता है. सबब कि ज्यौं ज्यौं गुणस्थानक चढता जावै त्यौं त्यौं पुन्यराशि चढती जाती है, मगर उपरके गुणस्थानमें उनकी स्थिति नहीं चढती है. मतलब यह कि जिन जिन पुरुषोंनें श्रेणी माडी है उनकों मुक्ति नजदीक है. फिर पुन्यराशि ज्यादे और स्थिति अल्प है उससें अल्प कालमें बहुत सुख भुक्त कर वे मुक्तिमे जाते हैं. मुक्तिकी अटकायत नहीं होती. जैसें खेतमें जुवारी बोते है उनकों जुवारीकी जरूरत है, कडबिनकी जरुरत नहीं है, लेकिन सहजसें कडबिन पैदा होती है. उसमें भी फिर पहिले तो कडबिन देखनेमें आती है उस्सें 'यह तो कडबिन है' औसा शोचकर कडबिनकों उखाड डाले तो जुवारी भी न देखै, तैसे शुभ योगकी प्रवृत्ति करने के समय औसा शोचे कि यह तो पुन्यकरणी है, इनसें आत्माकों गुण नहीं होगा औसा समजकर जो सख्स शुभकरणीका त्याग करै उनकों आत्मिकधर्म प्राप्त होनेका नहीं, और योगप्रवृत्ति बंध होनेकी नहीं. उस्सें अशुभ योगकी प्रवृत्तिसें अशुभ कर्म बंधायगा और आत्मा मलीन होवेगा, वास्ते ससार सुखके अर्थ शुभ वा अशुभ क्रिया त्यागने लायक है वो करणी आत्माकों गुण करनेवाली नहीं है फिर गुणस्थानककी हद मुजब शुभ क्रिया भी त्याग की जाती है जैसेंकी श्रा-

यक पोषध करते हैं तव द्रव्य-पूजा मुख्य नही करते है और मुनि म-
हाराज भी द्रव्यपूजा नहीं करते हैं फिर मुनिमहाराज ध्यानरूप होते है
उन औसरमें आवश्यकादि क्रियाकी भी अभिलाष नहीं करते है. अपने
स्वभावमें ही लीन हो जाते हैं परभावका विचारही नहीं करते, आत्माके
गुण पर्यायकी रमणता करते हैं, चिदानद सुखमें सदा मग्न रहते है; म-
गर उस ध्यानका काल अतमुहूर्त्तका है अेक ध्यान ज्यादे वक्त नहीं
रहता है वास्ते जिस औसर ध्यान करते है उस औसरमें शुभ क्रियाकी
अदर चित्त नहीं रखते है और ध्यानसें रहित होवें उस औसर जिन
जिन गुणस्थानमें जो जो क्रिया करनी व्याजबी हो वोही करते हैं अैसे
मुनि किसी प्रकारसें स्वप्नमें भी विषयकी वाछना नहीं रखते हैं और
जो विषयकी वाछासें मोहके वश होकर सयम प्रवृत्ति और श्रावकपनेकी
प्रवृत्ति छोड देते हैं और मानते हैं कि हम आत्मध्यान साधते हैं, वो कु-
च्छ जैनमार्गकी रीति नहीं है जैनमार्गके जानेवाले श्री गणधर महाराज
तथा आचार्यजी भी अपने गुरुस्थान मुजब क्रिया करते हैं जैसें कि
स्थविर मुनिनें आत्मस्वरूपकेही प्रश्न किये हैं और गोतमस्वामीजीनें उ-
नके उत्तर आत्मस्वरूपकेही बताये हैं लेकिन उसबाद "चार महाव्रतरूप
सयम था वो पच महाव्रत रूप समम प्रतिक्रमण सहित आदर ल्यु" यह
अधिकार श्री भगवती सूत्रजीके पहिले शतकके नौवें उद्देशेमें छपी
प्रतके १३१ मे पानेमे है, वास्ते गुणठाणेकी रचना मुजब क्रिया अ
धर्मम अटकायत नही करती है, तदपि जो प्रभुकी आज्ञासें विपरीत
स्थापन करते है वो सर्वज्ञके मार्गकी रीति नही है सर्वज्ञ महाराजजीन
जिस मुजब सिद्धातमें कहा है उसी मुजब चलनेमें ही कल्यान है

४८ प्रश्न —आत्मा नित्य है कि अनित्य हैं ?

उत्तर —आत्मा सदाकाल नित्य है

४९ प्रश्न —जीव मरता है अैसा सब जगत् कहता है उसका खुलासा क्या ?

उत्तर —जीव नहीं मरता है, लेकीन कर्मके सयोगसें करके मनुष्य, तीर्यच, ना-
रकी, देवपना पाता है उनके शरीर सयुक्त पचद्रिय आदि दश प्राण

बांधता है स्पर्शेद्रिय सो शरीर, रसेंद्रिय सो जीभ, घ्राणेंद्रिय सो नाक चक्षु इंद्रिय सो आंख, श्रोतेंद्रिय सो कान—यह पांच इंद्रिय तथा मन बल सो मनकी शक्ति, वचनबल सो बोलनेकी शक्ति, कायबल सो शरीरकी शक्ति, श्वासोच्छ्वास और आयुष्य ये दश प्राण पूर्वक कर्मसे प्राप्त होते हैं और उनकी स्थिति पूरी हो जाय कि उनका विनाश हो जाता है—उसको जीव मरता है ऐसा लोग कहते हैं—सबब जो जीवका स्वरूप अरूपी है उसको कोइ देख सकता नहीं, और वो दश प्राणको देखकर जीता है यों कहते हैं. जब वो प्राण चले गये तब देह जीव रहित होता है उसको सबब कि जिस शरीरमें जीव रहताथा, उसी लिये ज्ञान रहित कहनेकी प्रवृत्ति है. पीछे जिस जगह जानेका कर्म बंधा है उस जगह फिर वे वैसेही प्राण इकठे होते है और उपजते हैं. वस्तुपनेसेंभी आत्माका विनाश नहीं होता जैसें सुवर्णके अनेक घाट बनते है यानि सुवनेकी माला बनाइ और उनको तोडकर फिर कटीमेखला बनाइ. फिर उसको तोडकर कडे घनवाये, मगर सब ठौर सुवर्ण तो कायमही रहता है, तैसें जो जीव पंचेंद्रिय मनुष्य होता है वो एकेंद्रिय, बेरेंद्रिय, तेरेंद्रिय, चौरेंद्रिय, नारकी, देवता वगैरः में जैसा जैसा कर्म बांधता है उस मुजब जाता है. वहां आत्मप्रदेशका घाट फेरफार होता है जैसें कि हाथीके के शरीरमें आत्मप्रदेश महाकायमें व्याप्तमान हुवा रहता है और कथुए (अति सूक्ष्मजंतु विशेष.) के शरीरमें कथुए जितना फैला हुवा रहता है- जिस मुजबका शरीर हो उस मुजब बडी छोटी अवगाहना बनती है दीपक करके उसपर टोकरा ढक देवें तो उतनेमेंही प्रकाश पडता है और वो टोकरा उठा लेकर दीपक घरमें रखदेवे तो तो सारे मकानभरमें उजाला रहता है, वैसेंही आत्माकी अवगाहना—फैलाव—कमी ज्यादे होता है. उसका नाम जैनशास्त्रमे पर्याय कहाजाता है. उसें आत्माद्रव्यसें नित्य है और उपर मुजब पर्याय बदल जाता है उन अपेक्षासें अनित्य कहा जाता है अब आत्मा नित्य है वोभी प्रत्यक्षपनेसें समझा जाता है, जीव खुद इस भवमें मरगया नहीं है; मगर गतभवमें मरगयाथा उसें बालक, युवान और वृद्ध ये सबको मरनेका भय है

'शायद मर जाउगा' वो पूर्वकालमें मरगयाथा उसकीही सज्ञा चली आती है जैसें कि मनुष्य निंदवश हो जाता है, तव बेभान अवस्था होती है तौ भी दिनकों कप्पडका धधा करता होता है तौ कितनेक जन निंदमें धोती या हरकोइ कपडा हाथमें आवे तौ फाड डालता है वो क्या है ? दिनकों काम किया हो उसके उपयोगकी ही सज्ञा है. तैसें निंदमें बिचारभी हुवा करते हैं. जाग्रतावस्थामें जिसकों निरये बजानेकी आदत है उसका चित्त अन्यकार्यमें होता है तौ भी अगुलीआं हिलती ही रहती हैं, तैसें पिछले भवकी सज्ञासें इस भवमें कार्य होता है, पिछले भवका तो भान नहीं होता, मगर पिछलेभवमें आदतथी वैसें किये करता है. जैसेंकि बालक जन्मता है और तीसरेरोज वो अपनी माताकों स्तनपानके लिये बिलग पडता है, उनकों स्तनपान करना किसने सिखाया? अगले जन्मकी सज्ञासेंही स्तन मुहमें लेकर दुग्धपान करता हैं कदापि कोइ अैसा कहेदे कि बचेकों उनकी मा मुँहमें देती है,; लेकिन मुँह हिलाना वो तो बचेकाही काम है, वो काम मातासें बन सके वैसा नहीं है. वास्ते पिछले भवकी वासनासेही बनता है छोटे बचेकों पैसा बेतलाते हैं तौ तुरत ले लेता है स्त्रीकों देखकर विषय विकार होता है. स्त्रीभोग किसीने नहीं सिखाया है, मगर पूर्वक अभ्याससें वांछना होती है. फिर पूर्वभवमें धर्म क्रिया होय वेसे बालकके अगाडी धर्मकी बात करे तौ खुश होता है और वो सज्ञा नहीं होती है तौ खुश नहीं होआवा है इस्सें भी सिद्ध होता है कि आत्मा नित्य है

५० प्रश्नः—कितनेक धर्मवाले चार गति नहीं मानते हैं, फक्त इतनाही मानते हैं कि जीव, इश्वर या खुदा या देवके वहासें आता है और पीछा वहीं चला जाता है उसका क्या खुलासा हे ?

उत्तर.—इस जगतमें जीव जिस धर्ममें उत्पन्न हुवा हो उस धर्ममें जो कहा होवै. उसकोंही मानता है किसी जीवने नीच जातिका कर्म बाधा होवे और वो सर्वज्ञके धर्मसें विरुद्ध धर्म पालता हो, किंतु निकट भवी होता है तौ चित्तमें न्यायकी बुद्धि प्राप्त होती है और सर्वज्ञके लक्षण तपासता

है उसमें जिनके लक्षण न्याय युक्त लगें उनकों सर्वज्ञ मानता है. जिनकों इस जन्ममें आत्माका कार्य होनेका नहीं वो मनुष्य दूसरी बातमें कदाचित् हुशीआर हो; मगर सर्वज्ञके लक्षण तपासनेकी बुद्धिवाला नहीं होता है उस्सें वो सर्वज्ञकों नहीं पहेचानता है, इस्सें करके जिस धर्ममें पैदा हुवा हो उसी मुजब चलता है देखिये कि-वै पाप पुन्यकों मानते है, तब पाप पुन्यके फल भी भुक्तनेही चाहियें. पापके योगसें नरकमें जाता है वहा दुःख भुक्तता है. फिर जैसें यहा गुनहा करनेवालेकों कैद करते हैं और पीछा जो मुदत पूर्ण होनेसें बवीलानेसें छूट जाता है, तैसें नरककी अ-दरसेंभी पीडा नीकलता है. अच्छे कृत्य करनेवालोंकों अच्छी पदवी मिलती है, तैसें इस संसारमें पुन्य किया हो तौ देवकी गति मिलती है, उससें कमी पुन्य बधा होवै तौ मनुष्य गति मिलती है. पाप बंधा होवै तौ एकेंद्रिय, बेरेंद्रिय, तेरेंद्रिय, चौरेंद्रिय तिर्यचपचेंद्रिय प्रमुख होता है. फिर इस्सेंभी ज्यादे पाप बाधा हो तौ नरकमें जाता है. इस मुजब जिस गतिमें रहकर जैसे कृत्य किये हो वैसे दूसरी गतिमें फल मिलते हैं. इश्वर कर्मके सयोग बिगर एककों मनुष्य और एककों जानवर क्यों बनावै ? सब समान बनाने चाहियें, जो तो नजर नहीं आता है, वास्ते अैसा मानना हमारे विचार मुजब तो गैरव्याजबी मालूम होता है. जो सर्वज्ञ चार गतियोंका स्वरूप बताते है जोही व्याजबी मालूम होता है. सर्वज्ञके कथनमें कुच्छभी फेरफार नहीं होता है लेकिन जिसकों सर्वज्ञ-पना प्राप्त नहीं हुवा है उनकों सर्वज्ञ माननेसे फेरफार आता है. उनका कुच्छ उपाय नहीं, परतु अर्थी जीवोंकों तौ सर्वज्ञकी पहिचान करनेका उद्यम जरूर करना चाहियें. सबब; कि सब बात प्रत्यक्ष नहीं है. जो जो अरूपी पदार्थ है उसका, ओर गतकालमें हो गइ हुइ बाबतोंका और भ-विष्यकालमें होनेहारी बाबतोंका अनुमान कम हो सके. विशेष तो उ-न्होंके कथन मुजबही मानना पडे उसी लिये सर्वज्ञका वर्त्तन, उनका उ-पदेश, ज्ञान तथा उनके शास्त्र-यह चार वस्तुकी तपास करनी चाहिये जिस शास्त्रमें उत्तम ज्ञान होवे उनकों प्रमाण-मंजूर करना. उचे ज्ञानवा-

लेनी प्रवृत्तिभी अच्छीही होती है और उस मुजव चलनेसें अपनाभी कार्य हो सकता है

९१ प्रश्न —जैनशास्त्रमें क्या क्या विषय है ?

उत्तर:—जैन धर्मके सर्वज्ञनें स्वर्गके स्वरूपका वर्णन जितना बतलाया है उतना किसी अन्यशास्त्रमें नहीं बताया है नरकके भेद, वहाकी वर्त्तनाका स्वरूप, तिर्यंचका स्वरूप तथा मनुष्यका स्वरूपभी जो जो सूक्ष्मरीतिसें उन्होंने वर्णन किया है वैसा वर्णन किसी शास्त्रमें नहीं किया गया है. ( वो स्वरूप इस जगह लिखनेसें पुस्तक विस्तारवत हो जावे ) जीवाभिगम, पन्नवणा, समवायाग, सूयगडांगजी वगेर. सूत्रोंमें वहुत विस्तारसह उसका वर्णन–स्वरूप दिखलाया गया है. जिज्ञासु हो सो उन उन सूत्रोंसें शका दूर कर लेंगे तिर्छालोक कि जिस्में अपन रहते है, उसमें समुद्रकी हद जिसने जितनी देखी उतनीही कह दिखाइ है आगे क्या है ! वो शोच नही सक्ते हैं कुच्छभी होना तो चाहिये ! लेकिन वो चर्मचक्षुसें देखा नही जावे, क्यौं कि समुद्रमें ज्यादा आगे नहीं जाया जाता है को ल्वसने अमेरिका ढुढ निकाला उस पहले अमेरिका जाहिर न था, अब तकभी साहसीक इग्रेज लोग नइ जगह ढुढ निकालते है और आगेभी जिनसें महेनत वन सकेगी वो नइ शोध करेंगे वास्ते नजरसें देखा उतनाही वस क्यौं कहा जावे ? सव पृथिवीका ज्ञान तो जिनके अतरगसें कर्मक्षय होगये होवें उनकोंही होता है जव मत्रसाधन करते हैं तव उनमत्रका अधिष्ठायकदेव कुच्छ अपना शब्द नहीं सुनते है, मगर उनकों अपनेसें ज्यादे ज्ञान है, उस ज्ञानसें वे जान सकते है कि–'मेरा किसीने स्मरण किया है' देवतासेंभी अधिकज्ञान सर्वज्ञकों है, उस्सें उन्होंनें असख्याते द्वीप समुद्रका स्वरूप वतलाया है गतकालकाभी स्वरूप वतलाया है फिर कर्मकास्वरूप, धर्मकी वर्गणाकास्वरूप, धर्मास्तिकाय आकाशास्तिकायकास्वरूप, कालकास्वरूप तथा आत्माकास्वरूप वहुत विस्तारसें वतलाया है वो दूसरे शास्त्रोमें मालुम नहीं होता है. यह अधिकार कर्मग्रथ, कम्मपयडी, पचसग्रह, तत्वार्थ, सम्मतितर्क, विशेषाव

द्यकादि शास्त्रोंमें है. वो देखोगे तौ मालूम होगा कि जैनशास्त्रमें कितना सूक्ष्म ज्ञान बताया गया है ? वर्त्तनके विषयमें देखोगे तौ जो आगे लिख गये हैं वें अठारह दूषणसें रहितकी कैसी प्रवृत्ति होती है ? वो भी मालूम हो जायगा. विशेष तौ सिद्धांतमें चरित्रें है वो देखोगे तौ मालूम होगा कि, जिनकों किसी प्रकारकी वांछा नहीं, मात्र उपकारी बुद्धिही है, स्त्रीधन वगैर इच्छा और सगत नहीं, फिर आपकों बडाइभी नहीं, ऐसे देवकों देव कहेने योग्य हैं. फिर जो जीव अपने आत्माका ज्ञान मिलाकर राग द्वेषका त्याग करें वो कर्मसें मुक्त हो जावें यहा ऐसा नहीं कहा है कि मेरेकों मानोगे तोही काम फतेह होगा. जो आत्माकी शुद्ध परिणती मुजब चलेगा उसका काम फतेह होगा. इस तरहका जिनका शुद्ध उपदेश है उन्होंकी बताइ हुइ बातें बहुतही प्यारी लगती हैं हमारे कहनेसें कुच्छ नहीं, मगर न्यायबुद्धि धारण करकें निष्पक्षतासें जैनशास्त्र और अन्यमतके शास्त्र देखोगे तौ तुमकों बेशक मालूम होगा, वास्ते फुरसुद लेकर निरतर ज्ञानाभ्यास करना. ज्ञानाभ्याससें जीवकों कर्मके आवरण हठते जाते है और बुद्धि निर्मळ होती जाती है.

९२ प्रश्नः—जैनशास्त्रमें कितने प्रकारके कर्म कहे हैं और वे कर्मखप-क्षय हो जानेसें क्या क्या शुद्धता होती है ?

उत्तरः—जैनशास्त्रमें आठ प्रकारके कर्म कहे हैं यानि ज्ञानावरणीयकर्म १, दर्शनावर्णीयकर्म २, मोहनीयकर्म ३, वेदनीयकर्म ४, नामकर्म ५, गोत्रकर्म ६, आयुकर्म ७, और अतरायकर्म-यह आठ हैं उसमें पहले कर्मकी प्रकृति ५, दूसरेकी ९, तीसरेकी २८, चोथेकी २, पाचवेकी १०३, छठ्ठेकी २, सातवेकी ४, और आठवेकी ५ ऐसे उत्तर प्रकृति १५८ हैं. औरभी प्रकृति भेद विस्तारवत है-यानि एक एक प्रकृतिभी बहुत प्रकारकी हैं.

प्रथम ज्ञानावरणीय कर्मका स्वरूप इस मुजब हैः-ज्ञान पांच प्रकारके हैं यानि मति, श्रुति, अवधि, मनः पर्यव और केवल ये पाच है उसमें मतिज्ञान उसकों कहते हैं कि, मतिमें करकें जान-समझ लेना सो आत्माका उपयोग, पाच इंद्रिये और मन इनके योगसें ज्ञान होवे वो मतिज्ञान मतिज्ञानसें पिछले भवकों ज्ञान होता है. परन्तु आवरण

लेकी प्रवृत्तिभी अच्छीही होती है और उस मुजब चलनेसें अपनाभी कार्य हो सकता है

११ प्रश्न.—जैनशास्त्रमें क्या क्या विषय है ?

उत्तर—जैन धर्मके सर्वज्ञनें स्वर्गके स्वरूपका वर्णन जितना बतलाया है उतना किसी अन्यशास्त्रमें नहीं बताया है. नरकके भेद, वहांकी वर्त्तनाका स्वरूप, तिर्यचका स्वरूप तथा मनुष्यका स्वरूपभी जो जो सूक्ष्मरीतिसें उन्होंने वर्णन किया है वैसा वर्णन किसी शास्त्रमें नहीं किया गया है ( वो स्वरूप इस जगह लिखनेसें पुस्तक विस्तारवत हो जावे ) जीवाभिगम, पन्नवणा, समवायांग, सूयगडागजी वगैर सूत्रोंमें वहुत विस्तारसह उसका वर्णन–स्वरूप दिखलाया गया है. जिज्ञासु हो सो उन उन सूत्रोंसें शका दूर कर लेंगे तिर्छालोक कि जिस्में अपन रहते है, उसमें समुद्रकी हद् जिसने जितनी देखी उतनीही कह दिखाइ है आगे क्या है ? वो शोच नही सक्ते हैं. कुच्छभी होना तो चाहिये ! लेकिन वो चर्मचक्षुसें देखा नहीं जावै, क्यों कि समुद्रमें ज्यादा आगे नहीं जाया जाता है को लवसने अमेरिका ढुढ निकाला उस पहले अमेरिका जाहिर न था, अव तकभी साहसीक इग्रेज लोग नइ जगह ढुढ निकालते है और आगेभी जिनसें महेनत वन सकेगी वो नइ शोध करेंगे वास्ते नजरसें देखा उतनाही वस क्यों कहा जावे ? सव पृथिवीका ज्ञान तो जिनके अंतरगसें कर्मक्षय होगये होवे उनकोंही होता है जव मत्रसाधन करते हैं तव उनमत्रका अधिष्ठायकदेव कुच्छ अपना शब्द नहीं सुनते है, मगर उनकों अपनेसें ज्यादे ज्ञान है, उस ज्ञानसें वे जान सकते है कि–'मेरा किसीने स्मरण किया है.' देवतासेंभी आधिकज्ञान सर्वज्ञकों है, उन्सें उन्होंनें असख्याते द्वीप समुद्रका स्वरूप वतलाया है गतकालकाभी स्वरूप वतलाया है फिर कर्मकास्वरूप, कर्मकी वर्गणाकास्वरूप, धर्मास्तिकाय आकाशास्तिकायकास्वरूप, कालकास्वरूप तथा आत्माकास्वरूप वहुत विस्तारसें वतलाया है वो दूसरे शास्त्रोंमें मालुम नहीं होता है यह अधिकार कर्मग्रथ, कम्मपयडी, पचसग्रह, तत्वार्थ, सम्मतितर्क, विशेषाव

श्यकादि शास्त्रोंमें है वो देखोगे तौ मालूम होगा कि जैनशास्त्रमें कितना सूक्ष्म ज्ञान बताया गया है ? वर्त्तनके विषयमें देखोगे तौ जो आगे लिख गये हैं वें अठारह दूषणसें रहितकी कैसी प्रवृत्ति होती है? वो भी मालूम हो जायगा. विशेष तौ सिद्धांतमें चरित्रें है वो देखोगे तौ मालूम होगा कि, जिनकों किसी प्रकारकी वांछा नहीं, मात्र उपकारी बुद्धिही है, स्त्रीधन वगैर इच्छा और सगत नहीं, फिर आपकों वडाइभी नहीं, ऐसे देवकों देव कहेने योग्य है. फिर जो जीव अपने आत्माका ज्ञान मिलाकर राग द्वेषका त्याग करे वो कर्मसें मुक्त हो जावें. यहा ऐसा नहीं कहा है कि मेरेकों मानोगे तोही काम फतेह होगा. जो आत्माकी शुद्ध परिणती मुजब चलेगा उसका काम फतेह होगा. इस तरहका जिनका शुद्ध उपदेश है उन्होंकी बताइ हुइ बाबते बहुतही प्यारी लगती हैं हमारे कहनेसें कुच्छ नहीं, मगर न्यायबुद्धि धारण करकें निष्पक्षतासें जैनशास्त्र और अन्यमतके शास्त्र देखोगे तौ तुमकों बेशक मालूम होगा, वास्ते फुरसुद लेकर निरतर ज्ञानाभ्यास करना. ज्ञानाभ्याससें जीवकों कर्मके आवरण हठले जाते है और बुद्धि निर्मळ होती जाती है.

८२ प्रश्नः—जैनशास्त्रमें कितने प्रकारके कर्म कहे है और वे कर्मरूप-क्षय हो जानेसें क्या क्या शुद्धता होती है ?

उत्तरः—जैनशास्त्रमें आठ प्रकारके कर्म कहे हैं यानि ज्ञानावरणीयकर्म १, दर्शनावर्णीयकर्म २, मोहनीयकर्म ३, वेदनीयकर्म ४, नामकर्म ५, गोत्रकर्म ६, आयुकर्म ७, और अतरायकर्म-यह आठ हैं. उसमें पहले कर्मकी प्रकृति ५, दूसरेकी ९, तीसरेकी २८, चोथेकी २, पाचवेकी १०३, छट्ठेकी २, सातवेकी ४, और आठवेकी ५ ऐसे उत्तर प्रकृति १५८ हैं. औरभी प्रकृति भेद विस्तारवत है—यानि एक एक प्रकृतिभी बहुत प्रकारकी हैं.

प्रथम ज्ञानावरणीय कर्मका स्वरूप इस मुजब है:—ज्ञान पांच प्रकारके है यानि मति, श्रुति, अवधि, मनः पर्यव और केवल ये पाच है. उसमें मतिज्ञान उसकों कहते हैं कि, मतिसें करकें जान-समझ लेना सो आत्माका उपयोग, पांच इंद्रिये और मन इनके योगसें ज्ञान होवे वो मतिज्ञान मतिज्ञानसें पिछले भवकों ज्ञान होता है. परतु आवरण

लगनेसें सब जीवोंकों नहीं होता हे मतिज्ञानसें जितनी शक्ति-विचारशक्ति खुली हैं उतना ज्ञान हो सकता है,क्यों कि कितनेक मनुष्य बहुत लंबे विचार करशक्ते हैं,कितनेक अनुमानसेंभी विशेष विचार कर सक्ते हैं और कितनेक नहीं कर शक्ते हैं उसका सबब यही है कि जिनके कर्म अल्प हैं उनकों बुद्धि विशेष है और जिनके कर्म ज्यादा हैं उनकी बुद्धि कम होती है फिर दूसरी तरहके भी आवरण-ढकन होते हैं जैसें कि कितनेक अनेक जातीकी लिपी पढेहुवे होते हैं, तर्क वितर्कभी बहुत कर सक्ते हैं, याददास्तीभी बहुत होती हैं, उसमे जो कुच्छ पढते-वाचते हैं सो याद रहजाता है, पढना होवे तो थोडेही वक्तमें पढजाते हैं, परंतु वो बुद्धिका फक्त संसारके काममें उपयोग करते है, धर्मके काममें उपयोग करनेके आवरण खुल गये नहीं, उससें धर्मका सच्चा अभ्यास नहीं करते हैं और निष्पक्षपात सब बर्सें देख नहीं सकते. कितनेककों असे आवरण होते है कि धर्मका ज्ञान मिलानेमें अच्छी बुद्धि है उससें शास्त्र देखकर शास्त्रकी सुंदर बातका न्यायबुद्धिसें निश्चय करते हैं. पीछे साररूप शास्त्रकी बात ग्रहण करते हैं और तत्त्व विचारणा करते हैं कितनेकके असे आवरण होते है कि संसारमें बुद्धि नहीं चलती और धर्ममेंभी नहीं चलती दोनू प्रकारसें बुद्धिकी न्यूनता होती है कितनेकी सब तरहसें बुद्धि खुल जाती है और सब काममें न्यायकीही बुद्धि प्राप्त होती है सच्ची बातकोंही सच्ची जानता है बहुत प्रकारसें मतिज्ञानके आवरण नाश हो गये होवे तबही असी बुद्धि प्राप्त होती है. कितनेकोंमें बुद्धि कम होवे, लेकिन सत्यवादी पुरुषका संग करनेकी बुद्धि जाग्रत हुइ है उससें कम अकल होनेपरभी उनके कथन मुजब चलकर अपने आत्माका काम कर सकता है कोइ कोइ जीव कर्मके आवरणके योगसें मूक, अंधे और बहेरे भी होते हैं. इससें ज्ञान बडा नहीं सकते हैं फिर कोइ मूक और तोतले होवे, मगर कानके आवरण खुले है उससें धर्म सुनकर अपने आत्माका काम कर सक्ते हैं, लेकिन दूसरेका उपकार नहीं कर शक्ते. बधिर होते है, मगर आंखके जोरसे सुनकर उसका विचार कर अपना काम कर सक्ते है इस मुजब मतिज्ञानावरणी कर्मसें करकें आत्मका ज्ञान आच्छादित होना है उसकों मतिज्ञानावरणी कर्म कहते हैं.

श्रुतज्ञान तो शास्त्र और अक्षरका नाम है यह ज्ञान मतिज्ञानके संगही रहता है जहां मतिज्ञान वहां श्रुतज्ञान और जहां श्रुतज्ञान वहा मतिज्ञान होताही है ये दोनुका आवरण होना और खुलना साथही रहता है मतिमें जो अंतरमें विचार होती है उसमें

अक्षर है सो श्रुतज्ञान है. उनमें जिस जीवकों समकित हुवा है उस जीवकों माति श्रुति अज्ञान कहाता है. कोइ शका करेगा कि संसारमें बहुत बुद्धिवंत होते है उनकों अज्ञानी क्यों कहे जाँय ? तो उनके जवाबमें-संसारमें बुद्धिका उपयोग करनेसें फिर नये कर्म बांध लिये और अपना आत्मधर्म जैसा है वैसा जानकर प्रकट करनेका उद्यम करना वो तो हुवा नहीं और उलटा आत्माकों मलीन कर दिया, तब वो ज्ञान सो अज्ञानही कहा जाता है. अब जो पुरूष ज्ञानवंत पुरूपकी और ज्ञान-शास्त्रकी निंदा करता है, पढनेके वक्त अंतराय करता है, पुस्तकपर बैठ जाता है, पुस्तकपर मस्तक रखता है, थुंक लगाता है, पुस्तक आगे मोजूद होनेपरभी आहार निहार करता है, ज्ञान पढनेकी मरजी न होनेसें उल्टा द्वेष रखता है-इत्यादि ज्ञानकी आशातना करता है,वो पुरुप ज्ञानावरणी कर्म बांधकर आत्माको आच्छादित करता है. और जो पुरुप ज्ञानवंतकी और ज्ञानकी बहुत मानपूर्वक बहुत प्रकारसें भक्ति करता है, ज्ञान पढनेका रात दिन अभ्यास करता है, दूसरोंकों ज्ञान पढनेमें सामिल करता है, शक्ति होवै तो आप धन खरचकर दूसरोंकों पढाता है, ज्ञानके भंडार करता है. फिर जो जो लिपी संसारी विद्याकी है वै पढकर कोइ मनुष्य हुशीआर हुवा होवे तो धर्म समजना सुलभ होवै वडी पदवी मिलावै और सुखी होवे तो सुखसें धर्मसाधन करै, शासनकों दीपावै, वास्ते सब प्रकारसें ज्ञान पढानेमें महान् लाभ है असा समजकर उनमें धन खर्चता है. इसी तरह ज्ञानाराधन करनेसें कर्मके आवरण कमती होजाते हैं. विशेप प्रकारसें तत्त्व विचारणा करनेसें बहुत आवरण नाश होते हैं और आत्मा शुद्ध होता है. यह मति श्रुतज्ञानके आवरणका तथा वहीं कर्मक्षयका स्वरूप समझना.

अवधि ज्ञानावरणीकी प्रकृति अवधिज्ञानकों ढक देती है. जिनकों अवधिज्ञान होता है, उनकों चक्षु आदि इंद्रियोंकी जरुरत नहीं पडती है, आत्मासेंही मालूम होता है जिसकों सो कोपका ज्ञान हुवा हो वो सो कोपपर जो होता होवे सो अपने स्थानमें रहा हुवा जान सकता है. गत कालकाभी जान सकता है. जिसकों लोकावधिज्ञान हुवा होवे उसकों सारे लोकमें जो जो पुद्गलिक पदार्थ हैं उन सबका ज्ञान होता है. गुदस्त-भूतकालमेंभी असंख्याते कालका ज्ञान होता है और जिनकों इन कर्मसें करके आवरण लगे होवे उनकों वो ज्ञान बिल्कुल नहीं होता है, लेकिन ज्यों ज्यों फिर आत्माकी शुद्धि होती जाती है और राग द्वेषरूप उपाधि कमती हो जाती है

त्यौं त्यौं अवधिज्ञान प्रगट होता है. किसीकों थोडे आवरण हठ गये होवे तौ थोडे क्षेत्रमें जो अदृश्य पदार्थ होता है वो आत्मासें जान सकता है. पीछे उन करतेंभी ज्यादे आवरण हठ जाय तौ ज्यादे क्षेत्र तथा ज्यादे कालका ज्ञान होता है. जैसें अपन किसी गाँवकों जाते हैं तब आखसें तौ गाँव नहीं देख शक्ते हैं, मगर अतरगमें शोचते है तौ जाने वो गॉव नजरके आगे रूजु है वैसा देखते है, तैसेंही अवधिज्ञानसें भी बिगर देखे हुवे पदार्थ अतरगमें मालूम होते हैं इनके छ भेद है. उनका विस्तार नदीसूत्र तथा आवश्यकसूत्रजी वगैरः में विशेषतासें देख लेना. इस ज्ञानकों ढक देवै उसकों अवधिज्ञानावरणीकर्म कहते हैं. यह ज्ञान देवताओंकों होता है, उस्सें मत्रका स्मरण करनेके साथही उनकों खबर होती है और आते हैं उनमेंभी जैसे जिन देवके आवरण खुलगये होते है उनकों उस मुजब ज्ञान प्रगट होता है ये गतिमें विशुद्ध परिणामवाले जाते हैं, इस्सें कमी जास्ती भी एककों यह ज्ञान होता है बिल्कुल न हो ऐसा नहीं होता है. वहा भी मिथ्यादृष्टिवत देव हैं उनकों विभग अज्ञान होता है—उसका सबब यह है कि उनकों आत्मतत्त्वका ज्ञान नहीं होता है, लेकिन परोक्ष पदार्थकों जान लेनेकी शक्ति होती है सम्यक्‌दृष्टि है उनकों तौ अवधिज्ञान कहा जाता है, क्यों कि उनकों तत्त्वज्ञान होताहै. वै पुरुष तो देवताके सुखकोंभी तृणके समान गिनते हैं और मनमें भावना भाते है कि—"पीछले भवमें कर्मसें मुक्त होनेके लीये पिछोनेके लिये तप सयम वगैरः साधन किये, मगर वै साधन पूर्ण प्रकारसें नहीं किये, उस्सें यह देवगतिमें ससार वर्त्तना करनेका हुवा और जन्म मरणके दु ख दूर नहीं हुवे यह देवके सुख अस्थिर हैं और कर्मबधनके कारण हैं; वास्ते यह देवायु पूर्ण हुवे बाद मानवभव पाउ तौ अब पूर्ण प्रकारसें प्रभुजीकी आज्ञा मुजब धर्म आराधन करु कि जिस्सें पुनः भवचक्रमे भ्रमण न करना पडे" ऐसी भावना करता है. फिर रत्नमय पुस्तक पढता—बाचता है, शाश्वते जिनमदिरमें जिनबिंब हैं उनकी विस्तार सह भावयुक्त द्रव्य तथा भावपूजा करता है तीर्थंकर भगवान् विचरते होवै वहां जाकर उन्होंकी भक्ति करता है, धर्मोपदेश सुनता है, और आत्मस्वभावमें रहनेमें सुख समझकर विचारता है, देवता सबधी ऐसे ज्ञानकों अवधिज्ञान कहते हैं, किन्तु अवधिज्ञानके पूर्ण आवरण क्षय नहीं हुवे पूर्ण आवरण तौ मनुष्यगतिमेंही क्षय होते है जिनकों केवलज्ञान होता है उन्हींके ही सपूर्ण आवरण क्षय होते हैं

मनःपर्यव ज्ञानावरणीय कर्म सो मनपर्यव ज्ञानकों आच्छादित कर देता है. मनपर्यव ज्ञानके आवरण जिनके क्षय हो जाते हैं या दूर हठ जाते हैं वे मनके भाव यानें मनमें शोची हुइ बात जान लेते है. वो भी अपने आत्मासेही जानते है. उनकों इंद्रियोकी जरूरत नहीं पडती है. यह ज्ञान ससार त्यागी, सयमी मुनि छट्ठे सातवे गुणस्थानकमें वर्तनेवालोंकोंही होता है. उनमेंभी थोडे आवरण हठ गये होवे तो वे ऋजु मति मनपर्यव ज्ञानी कहाते हैं. वो पुरूप मनमें चिंतन किये हुवे पदार्थ जानता है. उन करते विपुलमति मनपर्यवज्ञानी बहुत विशुद्ध जानता है वो ज्ञानकी विशुद्धि ज्यादा है, सबब कि विपुलमति मनपर्यव ज्ञानवाले वही भवमें केवलज्ञान पाते हैं, उस्सें मनके विचरा विशुद्धतासें जानते हैं. यहापर कोइ कहेगा कि अवधिज्ञानी रूपी पदार्थ जान सकते है, उनमें मनके विचारभी रूपी होनेसें उनकोंभी जान सक्ते है; वास्ते यह ज्ञान अलग बतलानेका क्या सबब है? इसका खुलासा यही है कि—अवधिज्ञानवाला यों मनपर्यव ज्ञानवाले जैसा संपूर्ण नहीं जान सक्ता है. अवधिज्ञानवालेकों उसी भवमें केवलज्ञान प्राप्त होवे असाभी निश्चय नहीं है. फिर मनपर्यव ज्ञानवाला मनके भाव सिवा दूसरे पदार्थ नहीं जान सक्ता है—अैसा एक दूसरमें फरक है. सबब कि कर्मके आवरण जिसकों अवधिज्ञानके हठ जाते हैं उनकों अवधिज्ञान होता है और जिसकों मनपर्यव ज्ञानके आवरण हठ गये होवें तो मनपर्यवज्ञान होता है. किसीकों पहिले मनपर्यवज्ञान और किसीकों पहिले अवधिज्ञान होता है—इस मुजब जिनके कर्मावरण जिस तरह हठते हैं उस मुजब ज्ञान प्रकटता है ज्ञानके नामभी उस मुजब अलग अलग हैं. केवलज्ञानावरणी पांचमी प्रकृति सो केवलज्ञानकों आच्छादित करदेता है. केवलज्ञानके आवरण जिनके नाश होते हैं उनकों इंद्रिये और मनकी जरूरत नहीं होती है. अपनी आत्मशक्तिसेंही रूपी अरूपी सब पदार्थ, अतीत, अनागत और वर्तमानकालका ज्ञान होता है. वो ज्ञान कैसा है? जैसे दर्पन—आयनेमें सब पदार्थका भास पडता है, वैसें आत्मामें सब पदार्थ मालूम होते है. मालूम होनेमें किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं रहती है, एक एक पदार्थने अतीत कालमें अनत स्वरूप धारण किये हैं उसमें अनंत पदार्थ है उन सबके स्वरूप एकही साथ मालूम होते है—अैसी वो ज्ञानकी अद्भुत शक्ति है अैसा ज्ञान प्रकट हुवे बाद उनकों ससारमें फिरना नहीं रहता है—उनकों मुक्तिही मिलती है. अैसे ज्ञानवाले पुरूप सपूर्ण प्रकारसें धर्मदर्शानेमे शक्तिमान होते है. उनकों जन्म मरण नहीं होता है.

यह पांच प्रकारके ज्ञानकों ढक देवे उनका नाम ज्ञानावरणी कर्म कहते है.

दूसरा दर्शनावरणीय कर्म याने आत्माका दर्शन गुण देखनेकों रोकनेद्वारा जो कर्म वो-उसके विषे समझना कि ज्ञान और दर्शन सग वर्त्तता है. प्रथम सामान्य उपयोग सो दर्शन और विशेष उपयोग सो ज्ञान जैसें एक मनुष्यकों देखा उस वक्त मनमें आया कि यह कोइ मनुष्य है! वहा तक सामान्य उपयोग और जब अैसा समझ गया कि यह तो जिनदास है, जैनधर्मी है, शाहुकार है, अच्छा मनुष्य है अैसा विशेष प्रकारसें समझ गया तब विशेष उपयोग सो ज्ञानका है. अेसी रीतिसें हरएक पदार्थमें पहला सामान्य उपयोग और पीछे विशेष उपयोग होता है अब सामान्य उपयोग चार प्रकारका है याने चक्षुदर्शन-चक्षुसें करके देखना उसमें आवरण होवे तो अध होवे और थोडे आवरण होवे तो रातकों नहीं देखता है-दिनकों देख सके, कोइ दिनकों ओर कोइ रातकों विशेष देख सक्ता है, कोइ नजदिकके पदार्थ देख सके, दूरके न देख सके, मगर आवरणके लियेसें सपूर्ण देख सके नहीं सो चक्षुदर्शनावरणीय कर्म कहाजाता है १

अचक्षुदर्शन—आंख सिवायकी इद्रियोंसें सामान्य बोध होवे सो चक्षुदर्शन शरीरकों कुच्छ स्पर्श होवे ओर स्पर्श हुवा अैसा समझा जाय, लेकिन काहेका स्पर्श हुवा ? वो नक्की न कहा जाय वहा तक सामान्य उपयोग नाककों खुशबु आइ, मगर काहेकी खुशबु आइ ? वो नहीं कहा जाय वहां तक सामान्य उपयोग. मुंहमें रक्खे हुवे पदार्थके स्वादका निश्चय न होवे वहां तक सामान्य उपयोग. कानमें शब्द पडा, मगर क्या शब्द है वो नकी न होवे वहा तक सामान्य उपयोग यह उपयोग अचक्षुदर्शनके हैं उनके आवरण उस मुजब किसी मनुष्यकों स्पर्श होवे मगर उनकों नहीं समझ सके, कितनेक नाकसें खुशबु नहीं जान सक्ते हैं, मुहसें स्वाद नहीं जान सकते हैं, कानसें सुन नहीं सकते हैं-यह दर्शनावरणी कर्मका प्रभाव है फिर जितनी इद्रियोंकी शक्ति है उतनी परिपूर्ण नहीं चलती वो भी आवरणसेंही नहीं चलती. अचक्षु-चक्षुदर्शनका सपूर्ण आवरण केवलदर्शन पानेकी वक्त नाश होता है २, अवधिदर्शनरूपी पदार्थका आत्मासें सामान्य पनेसें समझ लेना सो अवधिदर्शन, उनका आवरण जहा तक है वहां तक अवधिदर्शन नहीं होता है. ३

केवलदर्शन—केवलदर्शनका आवरण जहा तक होता है वहा तक केवलदर्शन

प्राप्त नहीं होता; लेकिन इतना फरक है कि केवलदर्शनका उपयोग पीछे होता है और केवलज्ञानका उपयोग पहिला होता है. उनका सबब यह है कि जिनकों केवलज्ञान होता है उनको फौरन बोध होता है–उनकों कोइ अनुक्रमसें बोध नहीं होता है, पहिला विशेष होता है पीछे सामान्य होता है. वो इस प्रकारसें कि जैसें कोइ मनुष्यके सब प्रकारसें लक्षण समझलीए बाद उनकी सब हकीकत पूछनी नहीं पडती है–सबब कि वो सामान्य हो जाती है. और एक वक्त पूरा बोध हुवे बाद सामान्य होता है. यह अधिकार नंदीसूत्रजीमें विस्तारसें है.

पाच निद्रा है वो भी दर्शनका आवरण है. जहां तक मनुष्य निंदवश होवे वहां तक कुच्छ समझ–देख नहीं सक्ता. उनमेंभी आवरणकी तारतम्यतासें फेरफार है वो निद्राका अलग अलग स्वरूप समझनेसें मालूम होगा. जीवकों उयमें–निंदमें कुच्छ सहज स्पर्श होवे या शब्द सुनेमें आवे तो तुरत जाग्रत हो जाता है. और जाग्रत होनेसें बिलकुल दिलगीर नहीं होता है, वो 'निद्रा' कोइ मनुष्यकों जगावे तो बहुत दफे जोरसें अवाज दवे या बहुतही शोरगुल मच जाय तब जाग्रत होवे और दिलमें दु:ख पावे. जगानेवालेपर गुस्सा करे–एसी सक्त निंद उसकों 'निद्रानिद्रा' कहते हैं. बैठे बैठेही निंद आ जावे वो 'प्रचला.' चलते चलतेही निंद लेवे वो 'प्रचला प्रचला' और पाचमा 'स्थिणर्द्धि' निद्रा छ महीने तक आती है. वो निंद ऐसी सक्त आती है कि वो मनुष्य निंदमेंही निंदमें उठ खडा होकर हस्तिके दंतूशल निकाल–उखाड डाले उतना उस निंदमें बल होता है. वो निंदका आवरण बहुतही सक्त है उस निंदमें अर्द्ध वासुदेवके जितना बल होता है; मगर निंद जाती रहे तब बल नहीं होता है. उस कालमें तो वो निंद वालेकों अपने बलसें दुगना तिगुना बल होवे ऐसा कर्मग्रंथके बालावबोधमें कहा है. ऐसी निंद नरकगामी जीवको होती है. यह पाच निद्रामें सामान्य उपयोग आच्छादित हो जाता है उस्सें दर्शनावरणीकी ये पाच प्रकृति और चार आगे कही गइ सो मिलकर नौ हुइ–ऐसें दर्शनावरणी कर्म नौ प्रकारसें है. इस कर्मका क्षय होनेसें सामान्य उपयोगका आवरण होवे सो नाश हो जाता है उस्सें केवलदर्शन प्राप्त होता है और सपूर्ण आवरण केवलदर्शन प्राप्त होनेके वक्त नाश होते है; तब केवल ज्ञान और केवलदर्शन साथही प्राप्त होते हैं.

तीसरा मोहनीकर्म—यह कर्म आत्माको शोकग्रस्त कर देता है. जेसें शराब पिया होवे उनको करने लायक या न करने लायकका विचार नहीं रहता है, वैसें मोहनीकर्मके जोरसें

जीवकों अपने आत्माका क्या गुन है ? और प्रवृत्ति करनेकी है ? उनका उपयोग नष्ट हो जाता है, और शरीर, धन, कुटुंब, पुत्र, परिवार, स्त्री आदि पदार्थोंमें मग्न हो कर उन सबधी अनेक काममें आसक्त हो जाता है अपने प्राणसेंभी ये वस्तुये प्यारी मानता है, जो जो अस्थिर पदार्थ हैं उनकों स्थिर मान लेता है. कोइ आत्मतत्त्वकी बात करता है तो वो सुनेकीभी चाहना नहीं करता है. कदापि किसीकी सोबतसें सुनेकों जावें तो भी सुनेमें लक्ष नहीं होता है. कदाचित् कानमें शब्द पड जावे तो उनका शोच विचारभी नहीं करें और कभी शोचे तो अैसा शोचे कि शास्त्रमें कहा है उन मुजब कौन चलता है ? शास्त्र सुनकर उल्टे उधे चलते हैं और पराये दूषण हुढ निकालते है कोइ गुणवंत श्रावक होवे, सम्यक् दृष्टिवत होवे और ससारमें रहा होवे. तो उनकों कहे कि शास्त्रमें ससारकों असार कहा है और तुम वैसी बात जाननेवाले हो तो फिर असार ससारमें क्यों लुब्ध हो रहे हो ? फिर कोइ मुनिराज किसी सबब के लिये अपवाद सेवन करते होवें तो उनकी निंदा करें. उनका सबब यह कि शास्त्र सुनकरकें जो मोहनीकर्म थोडाभी दूर हुवा होता तो आत्माके साथ विचार करता और आपकें दूषण देखता, परतु मोहनीकर्मका जोर ज्यादा है उसीसें शास्त्र सुनकर-भी उलटा विचार करके मोहनीकर्म ज्यादा बांधता है, और आत्माकों ज्यादा मलीन करता जाता है फिर अन्याय, लुचाड, ठगाइ, और चोरी करनी, दूसरेके सिर कलक देना, दूसरेकी निंदा करनी, दूसरेकों सकटमें डालना, जीवहिंसा करनी, अहंकार ममकार करना, मदसें करकें उन्मत्त होना, झूठा बोलना और दूसरेके पाससें झूठा बोलानेका यत्न करनेमेंही सावधान होना, अपनी औरत, पराइ औरतकाभी विचार नहीं रखना ये सभी मोहनीकर्मके लक्षण हैं कितनेक जीव तो विषयमें अैसें लुब्ध हो जाते हैं कि अपनी माता, बहिनी और लडकी के साथभी अत्याचार करनेमें भी शक्ति नहीं होते हैं —ये सब जोर मोहनीकर्मकाही है वो अनादिकालसें लगा हुवा हैं उनके प्रभावसें आत्माके गुन जो चारित्र तथा समकित है वो ढके जाते है. वो मो-हनीकर्म दो प्रकारका है—याने चारित्रमोहनी और दर्शनमोहनी दो प्रकार हैं और ये दोनूकी अट्ठाइस प्रकृतिये हैं उसमें चारित्रमोहनीकी पचीस प्रकृति नीचे लिखे मुजब है:—

अनतानुबंधी, क्रोध, मान, माया और लोभ. अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया

और लोभ. प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया और लोभ संजलका क्रोध, मान, माया और लोभ. हास्य, रति, अरति, शोक, भय, दुगछा, स्त्रीवेद पुरुषवेद, और नपुंसकवेद-- यह पचीस कषाय हैं उनकी विस्तार सहित पहिचान नीचे मुजब हैं.

अनतानुबंधी क्रोध जीसकों होता है उसके मनमें वहोतही द्वेष होवै. जिस वक्त इस क्रोधका जोर होवै उस वक्त शरीरभी लाल लाल हो जाता है. जिसकेंपर द्वेष होवे उनसें मरने तकभी वैर नहीं छोडै. मरनेके वक्तभी कहता जाव कि यह भवमें वैर पूरेपूरा नहीं लिया गया है तो आगामिक जन्ममेंभी वैर लउंगा. अपने पुत्र वगरः कों भी कहवे कि मैंने फलानेंके साथ वैर रख्खा था वास्ते तुमभी उनके साथ वैर रखकर चलना. वक्त हाथ लगे तब उनकों नुकशान करनेका मत भूलना. स्हामनेवाला मनुष्य शान्त होवै ओर खमानेके वास्ते आवे तो उनकी साथ लडना शुरु करे. अगर उनका किंचित् भी काम आपके हस्तक आया हो तो उनकों वडा भारी नुकशान कर देवै. नुकशानी करनेकी तुरत शक्ति न चले तो मौका हाथ लगनेसें हानि पहुचानेमें बिलकुल कसर नहीं रख्खे, अैसी जो कषायकी परिणती है उनका नाम शास्त्रमें अनतानुबंधी क्रोध कहा है. जैसें पत्थरके बीच चीरा पडगया होवै वो चीरा फिर नहीं जुड सकता है यानि असलके मुवाफिक बेमालुम नहीं हो सकता है, वैसी तरह अनतानुबंधी क्रोधवालेका क्रोध मरने तकभी शान्त नहीं होता है, उन क्रोधके प्रभावसें जीव नरकमें जाता है और महा तीव्र दुःख भुक्तता है. उन क्रोधके प्रभावसें जीव समकितभी नहीं पाता है, क्योंकि वो दूर हुवे बादही जीवकों समकित उदय हो सकता है.

अनंतानुबंधी मान पत्थरके थभके समान होता है. जैसें पत्थरका थभ झुकानेसें नहीं झुक सकता है, वैसे अनतानुबंधी मानवाला अपनी वडाइमें इतना मस्त रहता है कि महा गुणवत मुनिराज होवै उनकोंभी वंदना नहीं करता है. फिर आप धर्मगुरु होकर धन, स्त्री वगैरः का उपभोग करे और दूसरे गुणवत पुरुषोंने स्त्री धनका त्याग कीया होवै, समताभाव आदर कर ससारसे विमुख हो गये होवै वैसे पुरुषोंकों आप नमस्कार करने लायक है, तदपि आप नमस्कार नहीं करता है, लेकिन उनके पाससें आप नमस्कार करानेका यत्न करता है कभी आप धनवत होवै, और वो धन कभी चला जानेसें आजीविकाभी पूर्ण न होती होवै; तौभी किसीकी नौकरी न करे,

आपके मनमें अहंकार लावे कि 'क्या हम बडे दर्जेके मनुष्य होकर किसीकी नौकरी करें?' फिर किसीने कुच्छ खराब शब्द कहा हो तौ 'वो हमकों कौन कहेनेवाला' ऐसा गर्व करकें स्हामनेवालेका प्राण लेनेमेंभी नहीं डरे फिर कभी मान छोड देनेसें अपना प्राण बच जाता हो तौभी मान न छोड देवै. ऐसें अहंकारीका कठिन अहंकार उसकोही अनंतानुबंधी मान कहेते हैं ऐसा मान जीवन पर्यंत रहना है.

अनंतानुबंधी मायावाला पुरुष बहुतही कपटी होता है मुंहसें अत्यंत प्यार बतलाता है, परंतु विश्वास रखनेवालेका प्राण लेने तकभी नहीं डरता है. आपकों किंचित् फायदा होता हो तौ पुष्कळ कपट करता है. जैसे वासकी गांठ टेढी होती है वो किसी उपायसें सीधी न हो सकें, वैसें अनंतानुबंधी मायावालेका कपटभी छुडाया नहीं जाता है वो कपटीजीवका जगतमें कोइ विश्वास नहीं रखता है.

अनंतानुबंधी लोभ बहुतही कठीन होता है. चाहे उतनी दौलत मिल जावै-यावत् चक्रवर्तीकी ऋद्धि मिल जाय; तौ भी मन तृप्त नहीं होवै, खानेके लिये चाहे उतने पदार्थ मिल जावै; तौभी उसका दिल तृप्त न होवै, खानेके बहुत लोभके लिये भक्षाभक्षकाभी विचार नहीं करता है, अपना धर्मभी नहीं शोचता है, और आपकी कुलमर्यादामें जो चीज न खानेलायक हो; मगर वो चीज खानेकी मरजी हो जाय तौ याचना करनेमेंभी निडर हो जाता है क्यों कि पैसेका लोभ होनेसें आप तौ पैसा न खरच सकै और खानेकी मरजी तौ होती है, उससें याचना न करने लायक जगहपर भी याचना करता है चोरी करनेमें निडर हो जाता है, अन्याय करनेमेंभी जरासीभी डर नहीं रखता है, इस मुजब पांचो इंद्रियोंके विषयमें लुब्ध होता है हरएक विषयके वास्ते अकृत्य करता है. लोभी मनुष्यकों फक्त एक पैसा मीलता हो, और उससें स्हामनेवालेका प्राणभी चला जाता हो तौभी उस्की दरकार नहीं रखता है हरस्रतसें भी अपना मुतलब हाथ कर लेता है राजाका तकसीरवार होनेमेंभी उनको भय नहीं रहता है-ऐसा लोभ मरनेका वक्त आ पहुंचे तौभी नहीं छोडे कितनेक इस्सी वर्षके बुढ्ढे हो जावै, तोभी अपने लडकेकों तीजोरीकी कुंजी-चावी सुपरद नहीं करते हैं. जेवर-दागीने वगैरः हो वो मरनेके वक्त तकभी अंगपरसें नहीं उतार डालते हैं, मरणांत रोग हो आनेपरभी औषधके पैसे न खरचें, अनेक प्रकारके दुःख सहन करलेवें, कोइ दस गाली दे देवै, मार मार लेवै; तो भी कुच्छ लालच हो तो वो सब सहन

कर लेता है. कितनेक अनाजके व्यौपारी वहुतही लोभीष्ट होते है, वो चातुर्मासके लिये मालका सग्रह कर रखते हैं और ऐसी भावना रखते है कि दुकाल पडे तौ अच्छा; दुष्काल पडनेसें धन ज्यादे हाथ लगे, मगर दुकाल पडनेसें दुनियोंकों कितना दुःख उठाना पडे, उनकी विलकुल फीकरही नहीं करते है. यों शोचते भी अच्छी मेघवृष्टि हो गइ तौ दिलमें वडे दुःखी होकर दिलगीरीमें गर्क हो जाय. ये अनंतानुवंधी लोभका स्वभाव किरमज के रंग जैसा है किरमजका रंग चाहे उतना धोवै तोभी चला नहीं जावै, जला देवै तौ भी भस्म किरमजी रगकी नजर आवै, ऐसें अनंतानुवधी लोभ मरन पर्यंत नहीं छूटता है. ये अनतानुवधी क्रोध, मान, माया और लोभ चारों नरकके देनेहारे है. ये चारों जहातक कायम होवै वहातक समकितकी प्राप्ति नही हो सकती

अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारों अनंतानुवंधी क्रोध, मान, माया, लोभसें कुच्छ नरम होते है. जैसें सूखे तालावके भीतर जो चीरे पडते हैं वो ज्यादेमें ज्यादे वर्ष दिन तक कायम रहते हैं, जव फिर बारिश–मेघवृष्टि होवै, तव ये चीरे मिट जाते हैं, वैसे किसी जीवके उपर क्रोध हुवा हो, स्हामनेवाले मनुष्यने चाहे उतना नुकशानभी किया हो, मगर संवत्सरी प्रतिक्रमण करनेके वक्त सव जीवोंकों खमा कर सवकों मित्रके समान गिन लेवै, और किसीके पर गुस्सा न रक्खे उसने कुच्छ काम करनेकों दिया हो तौ उनकेपर द्वेषवुद्धि न ल्याते खुशीसें वो काम कर देवै उसका नाम अप्रत्याख्यानी क्रोध जानना अप्रत्याख्यानी मान दातके खभे जैसा होता है. पत्थरका स्तभ तो कभी झुकताही नहीं, लेकिन दातका स्तंभ पानी वगैर उपाय करनेसें झुक सकता है. वैसे अप्रत्याख्यानी मानवाला पुरुष सद्गुरूके उपदेशसें अथवा दस पुरुषके समझानेसें अपना अहकार छोड देता है. चाहे वैसा मान रखता हो, मगर जो मान एक वर्षसें ज्यादे मुद्दत तक नहीं रह सकता है. अप्रत्याख्यानी मायावाला अनतानुवंधी मायावालेसें कम मायावाला होता है. अपनी सहज मुलतवके लिये स्हामनेवालेकों भारी नुकशान पहुंचे वैसा कपट नहीं करता है. अप्रत्याख्यानी मायाकों मेंढाके सींग जैसी कही है, वो वक्रता ज्यौं उपाय करनेसें मिट जाती है, त्यौं यह मायावाला पुरुष कमती कपट करता है, और कितनेक काम कपट रहित भी करता है अप्रत्याख्यानी लोभ शहरकी गटरके कीचडके रग समान होता है. ये रग एकदम तो जाताही नहीं, मगर कोइ खार आदिके सयोग युक्त वडी भारी

महेनत करे तो उसका दाग जाता है वैसेंही यह लोभ भी अनंतानुबंधी लोभसें कुछ कम होता है लोभके वास्ते किसीकों भारी नुकशान नहीं करता है. ये अमत्याख्यानी क्रोध, मान, माया और लोभसें जीव तिर्यचकी गतिमें जाता है. श्रावकपना नहीं पा सकता है. यह चारों कषाय जब जाते रहे तब जीव श्रावकपना या पांचवा गुणस्थानक पाता है

अमत्याख्यानी क्रोधसें मत्याख्यानी क्रोध नरम होता है. उसकों किसी जीवके उपर द्वेष हुवा हो तों भी चौमासी मतिक्रमण करनेके वक्त सब जीवोंकों खमाता है. इससें पीछे किसी जीवके उपर द्वेष नही रहता है रेतीमें जैसें लकीर खीची हो तो थोडे वक्तके बाद वो लुप्त हो जाती है तैसें ये क्रोध थोडे वक्तमें शात हो जाता है. मत्याख्यानी मान लकडेके खभे जैसा होता है. लकडका खभ दोतरे खभमें थोडी महेनत करनेपर भी झुक सकता है, तैसें ये मान भी थोडे वक्तमें शात हो जाता है मत्याख्यानी माया गायके मूतकी वक्रता समान होती है चलते चलते गाय जैसे पेशाब करे और उसकी टेडी आकृति जमीन पर पड जाय वैसी मत्याख्यानी माया टेढी होती है, मगर जल्दी नाबूद हो जाती है. ये मायावाला पुरुष थोडे वक्तमें सरल हो जाता है, कठिन कपट उनसें होही सकता नहीं. अमत्याख्यानीसें सरल होता है मत्याख्यानी लोभ गाडेकी कीलके दाग समान होता है शहरकी गटरके कीचडके दागसें गाडेकी कीलका दाग थोडी महेनतसें चला जाता है, क्योंकि गटरका कीचड बहुत मुद्दत तक सडजानेसें ज्यादे चिकनाइवाला होता है गाडेकी कीलके दाग समान ये लोभ सहजहीमें शात होता है मत्याख्यानी क्रोध, मान, माया और लोभ जहा तक कायम होवे वहांतक साधुपना मास नहीं हो सकता है यह कषायके परिणामसें जीव मनुष्यगतिमें जाता है, क्योंकि यह कषाय पतले है

सजलका क्रोध, मान, माया और लोभ–ये चारों मत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभसें हलके होते हैं सजलका क्रोध पानीमें खीचुइ लकीरके जैसा है पानीमें लकीर करतेही बेमालूम होजाती है, वैसें किसी सबबके लिये गुस्सा हो जाय, मगर तुरत शांत हो जावे कोइ कठिन सबब मिलनेसें कठिनता धारण कर लेवै तो भी पाक्षिक प्रतिक्रमण किये बाद तो बिलकुल भी द्वेष नहीं रहेता है ये क्रोधकी ज्यादमें ज्यादे उत्कृष्ट स्थिति पद्रह दिनकी है. उससे ज्यादे वक्त ये क्रोध कायम नहीं रह सकेगा.

यह क्रोधवालेके अतरंगमें विशेष क्रूरता नहीं होवै संजलका मान वेतके स्तंभ समान होता है. जैसें वेतके स्तंभेकों झुकानेमें देर नही लगती है, तैसेही मानदशा विशेष वक्त नहीं रह सकती है. सजलकी माया भी बहुतही कम होती है. सहजहीमें कपट राहित हो जावें वासकी छोल जैसें थोडी देरमें सीधी होजावे, तैसें ये कपट भी नहीं जैसा ही होनेसें नाश हो जाता है. सजलका लोभ हल्दीके रग समान होता है. जैसें हल्दीका रग उडजानेमें देर नहीं लगती है, वैसेही यह लोभ दूर होनेमें देर नहीं लगती है. सजलका क्रोध, मान, माया और लोभ जहातक हो वहातक मोक्ष नहीं मिल सकता है. यह सजलके कषाय जव जॉय तव मुक्तिकी माप्ति होय

उपर कहे गये चारों मकारके क्रोध, मान, माया और लोभ नाश हो जाँय तव मोक्ष मिलता है, वास्ते भवीजीवोंकों मुनासिव है कि इन्होंको दूर करनेके लिये उद्यम करना. यह ज्यौं ज्यौ कमती होते जावें त्यों त्यौं आत्मा शुद्ध होता जाता है. यहापर कोइ प्रश्न करेगा कि, संजलके कषाय तो पद्रह दिनही रहत है तौ वाहुवलीजीकों संजलका मान वर्षदिनतक क्यों रहा? इसके सववमें कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्यजीने स्वकृत योगशास्त्रमें और यशसोमसूरिने कर्मग्रंथके बालावबोधमें खुलासा किया है कि बालजीवोंकों अपने कषाय कैसे है? जो समझनेमे सुगम पडे वास्ते वो स्थिति कही है. वस्तुतः तो ऐसा समझना कि अति कठिन कषाय सो अनंतानुवधी, उस्से मद हो सो अमत्याख्यानी, उस्से भी मद हो सो मत्याख्यानी, और उन्से भी मद हो सौ सजलका कषाय समझना. प्रसन्नचद्रराजर्षि काउस्सग्ग ध्यानमें थे, उस वक्त ऐसे परिणाम विगडे हुवे थे कि यदि उस वक्त मृत्यु हो जावे तो नरकमें जावे. सवव कि उनकों उस वक्त अनतानुवधी क्रोध होने पर भी अतर्मुहूर्त तक ही रहा. यदि कालके उपर एकात लक्ष दें तो वो अनतानुवधी क्रोध क्यों कहा जाय? फिर कोइ पुरुष समकितसें पतित हो जाता है उस वक्त अनतानुवधीका उदय होता है, फिर पीछा अतर्मुहूर्त्तमें समकित पाता है, तव वो उदय दूर हट जाता है इस्से अनंतानुवंधी अतर्मुहूर्त्तही रहा यह कषायकों दूसरा कषाय नहीं कहा जाता है तात्पर्य यह कि कठिन कषाय होवें और कम मुद्दत तक रहै, तौभी अनतानुवधीही समझना उससें मद सो अमत्याख्यानी, उससें मद मत्याख्यानी, और उससें भी मद सजलका समझना. कितनीक दफे स्थितिसें भी समझा जाता है, एकांत नियम नहीं है, वाहुवली-

जीकों वर्षदिनतक कषाय रहा मगर वो मद कषाय था उस्से सजलका जानना. यह सोले कषाय हुवे.

अब नौ नोकषाय कहते हैं. नोकसाय शब्द, देशनिषेधवाची है नोकषाय या नहीं कषाय–देशसें नही कारण कि कषाय नही, मगर कषाय पैदा होनेके कारण हैं. इनके सेवनसें कषाय पैदा होते हैं. किसी मनुष्यकी हँसी–दिल्लगी करनेसें स्हामनेवालेकों द्वेष पैदा होवा है और वो मनुष्य अपनेपर द्वेष करे उस्से अपनकों कषाय पैदा होवे; वास्ते वो कषायके कारण कहाते हैं. फिर मश्करी करकें खुशी होवे और राग पैदा होवे तो वो भी कर्मबधनकाही कारण है. जीवकों जहां तक हास्यमोहनी कर्म है यहातक आत्माका शुद्ध स्वरुप प्रकट नहीं होता है, दुनियामें भी मश्करीखोर कहाता है. वास्ते ज्यौं वन सके त्यौं हास्य करनेकी आदत छोडदेनी चाहियें सर्वथा छोडदेना तो जब जीवकों केवलज्ञान पानेके लिये क्षपकश्रेणी माड देवे तवही बन सकता है रतिमोहनी सो पुद्गलिक पदार्थासें जो जो अनुकूलता मिल जाय उस्से राजी होना. अरति सो प्रतिकूल पदार्थसें दिलगीर होना भयमोहनी सो भयसें वेर वेर डरतेही रहना. मेरेसें उपवास होगा या नहीं? मेरेसें श्रावकपना, मुनिपना कैसे वन सकेगा? अैसें डरता रहवे और धर्मकार्यमें वीर्य नही स्फुरावे, जो जो चीज नहीं की हुइ हो वो अभ्यासद्वारा बन जाती है, मगर डरनेसें–भयसें अभ्यास नहीं करें तो कोइ दिन न वन सकेगी उसी तरहही ससारी कार्यमें भी जिनकों मोहनीका भय उदय हुवा है वो हरएक कार्यमें डरताही रहता है यहापर कोइ मश्न करेगा कि–'पापसें डरे उनका क्या खुलासा है?' उस विषयमें यह खुलासा है कि पापसें अवश्य डरतेही रहना चाहियें, मगर धर्मसें नहीं डरना हिम्मत रखकर उद्यम करना, शरीरादिकमें रोग वगैरः हो तो शोचकर कार्य करना, शक्ति होनेपर भी डर कर बैठ रहवे उनसें कोइ वस्त भी धर्म नहीं सधाया जायगा. वास्ते भयमोहनीका ज्यौं वन सके त्यौं त्याग करना शोकमोहनी सो कोइ अपना कुटुबीक या मित्र बीमार हो जाय वो मर जाय तब शोकातुर होवे, रोवे, कूटे, अनेक मकारके विलाप करे उस्से बहुत कर्मबधन होता है. व्यौपारमें नुकशान होवे या कोइ देवाला निकाल देवे और आपका धन जाय तब शोक करे आपकी अनुकूलता मुजब मकान, नौकर, वाहन न मिलनेसें, या प्रतिकूल मिलनेसें भी शोक करे इनमें जिनकों मोहनीकर्मका

जैसा जोर उस मुजब शोक होता है. कितनेक उत्तम पुरुषोंको शोकमोहनी कम होवे तो शोचते है कि-"यह कुटुंब, शरीर, मकान वगैरः जो जो ससारी पदार्थ हैं, वे सब अथिर है. अथिर पदार्थका तो नाश होनेकाही है तो फिर मुझे किसलिये विकल्प करने चाहियें ? जहांतक पुन्योदय था वहांतक सब पदार्थ स्थिर रहे, जब पापका उदय हुवा तब नाश हो गये, वास्ते किसलिये शोक करकें कर्मबंधने चाहियें ? आत्मधर्मही मेरा है, दूसरी कोइ वस्तु मेरी नहीं है. मात्र सांसार मेरेसें नहीं छूटता है. उस्सें मैं मेरा मेरा करता हु और व्यवहारोचित वर्त्तन करता हु. वस्तुधर्मसें वस्तु मात्र जड है और मैं चेतन हु." इस तरहका विचार करकें आप शोकसें मुक्त रहता है उनकों कर्मबंधन भी नहीं होता है. संपूर्ण शोकका नाश तौ क्षपकश्रेणीमेंही होता हैं. दुगछा सो दुर्गंधीवाली वस्तु देखकर मुंह बिगाड देना, तथा जो जो वस्तु अपनकों नापसंद हो उनसें मुंह बिगाडना वो दुगंछा कही जाती है. अब जिन पुरुषोंने अपने आत्मधर्मकों जान-पहिचान लीआ है उनकों तो दुर्गंधि आनेसें कहते है कि ये पुद्गलके असेही धर्म हैं, अथवा ये पुद्गल असे धर्मके है. उनमें मैं किस वास्ते मुंह बिगाडु ? या जडपदार्थके उपर क्यौं द्वेष करुं ? यहांपर कोइ कहेगा कि-तब क्या गदकीमें ही बैठ रहना ? तो उसका जबाब यह है कि-गदकीके पुद्गल शरीरमें प्रवेश करनेसें-घुस जानेसें रोगोत्पत्ति होती है. वास्ते अव्वल तौ आपके मकानमें खालकुवे, टट्टी वगैरः गंदकीकी चीजेंही न रक्खे. और मोरी भी साफ रक्खे. पानी वगैर नपरासमें लेवै तो पानी सूखकर निर्जीव जगोपर अलग अलग डाल देवै कि जो जल्दी सूख जावै. गदकामैं जीवकी उत्पत्ति होती है और उसके उपर पानी वगैरः गिरनेसें वो जीवोंका नाश होता है, तौ आत्मार्थी पुरुषोंकों कीसी जीवका दुःख हो वैसा कामही नही करना, वास्ते अैसी गदकी घरमें न रक्खे. और जहा अैसी जगह हो वहा रहवे भी नहीं; लेकिन दुनियांकी अंदर सभी जगह स्वच्छ नहीं होती है तब वैसी जगह देखनेमें आ जावे तौ द्वेष न करै. उनकों तौ क्रमसें सर्वथा दुगंछा मोहनीका नाश होता है ओर जीव अनेक प्रकारसें अैसी दुगंछा कीये करते हैं उससें कर्मबांधकर आगें अैसेही कर्म भुक्तने पडेंगे. वास्ते ज्यौं बन सके त्यौं दुगंछाका त्याग करदेनाही मुनासीब है. स्त्रीवेद उनकों कहते हैं कि स्त्री पुरुषकी अभिलाषा करै, पुरुषवेद उसकों कहते हैं कि पुरुष स्त्रीकी अभिलाषा करे, और नपुंसकवेद उसको कहा जाता है कि स्त्री

और पुरुष इन दोनुकी अभिलाषा करें. यह तीन वेद कहे जाते है और यह वेद स-
सारका बीज है उन्में सर्वथा कठिन वेदका उदय नपुपकवेदवालेकों होता है. वो
रात दिन विषय विकारमेंही चित्त रखता है. उनका विकार शात होनेका सबबही
नहीं, उस्सें इच्छाओं हुवेही करती हैं नपुपकसें स्त्रीकों विकार कम होता है ओर
स्त्री करतें पुरुपकों विकार कमती होता है अब यहां कोइ शका करेगा कि–पुरुपकों
स्त्रीके आगे अर्ज–प्रार्थना करते हुवे अपन अपनी आखोंसें देखते हैं, मगर पुरुपके
जितनी स्त्री, पुरुपकों प्रार्थना करती हुइ नजर नहीं आती, तो उसका खुलासा यह है
कि स्त्री मुँहसें प्रत्यक्ष प्रार्थना नहीं करती है, लेकिन नेत्रकटाक्ष वगैर' वहुतसी चेष्टा
करती है और उनके सबबसें पुरुपका चित्त विकारवत नहीं होवे तौभी विकारी हो
जाता है और स्त्री मनमें कामविलास चाहती होय तौभी पुरुपके पास बहुतही आ-
जीजी करवाती है, तथापि चित्तमें मलीनता रहती है, उस वास्ते स्त्रीमें सर्वज्ञजीने
ज्यादा विकार कहा है. उन्में भी जो सती स्त्रीऐं है–जिनकों स्वप्नमें भी परपुरुपकी
इच्छा नहीं होती है वे स्त्रीऐं तो नमस्कार करनेही लायक हैं, कारन कि जगत् का-
मविपयमेंही पडा हुवा है और उनकी झपटसें गुणिपुरुप भी फँस जाते हैं वास्ते
उत्तम स्त्री होती हैं वोही ऐसा शीलव्रत पालन कर सकती हैं ऐसे शीलशाली पुरुप
भी अपनी स्त्रीके साथ, या तो सुशील स्त्री अपने पतिके साथ कुत्तेकी तरह हमेशा
भोगक्रीडाकी वाछना नहीं करते है. फकत ऋतुके समयमेंही अपनी इच्छा शातिकें
लिये अनातुरतासें कामविलासका उपयोग करते है और कामसेवनके वक्त शोचते हैं
कि–ज्ञानीमहाराजनें स्त्रीकी योनीमें बहुतसे जीवोंकी उत्पत्ति कही है जैसें एक भुग-
लीमें रूइ भरकर पीछे उसमें लोहेकी सलाइ खूब तपाकर घुसाड देवे तौ वो रूइ जल
जाती है, वैसेही स्त्रीकी योनिमें पुरुपचिन्हके प्रवेशसें उन्में रहे हुवे जीवोंका नाश
हो जाता है उस्से ये वडी हिंसाका कारन है. फिर वही स्थानमें मूत्रादि दुर्गंध है,
उसका एक छाटाभी लग गया हो तौ उसकों मनुष्य धो डालतें हैं, वैसी खराब दुर्गधी
है वही स्थानकी क्रीडा करनी वो अज्ञानताकीही प्रबलता है फिर भोगसें शरीरकी
स्थिति भी कितनी नरम–शिथिल हो जाती है ? ऐसा मालूम होनेपर भी उन्सी का-
र्यमें सुख मान लैना वोभी अज्ञानताकीही प्रबलता है यहापर कोइ कहेगा कि–ये
सभी कारण अपनी और परस्त्रीमें वरोबरही होते है, तो अपनी और पराइ स्त्रीमें

पापका क्या फेरफार है कि परस्त्रीका त्याग करनेके वास्ते सभी धर्मवाले पुकारते हैं?' उसका खुलासा यही है कि-पराइ स्त्रीका मालिक है वो तो अपनी स्त्रीकों दूसरेके साथ बदकाम करनेकी परवानगी नहीं देवै, उस्से उनकी स्त्री पतिकी चोरीसें बदकाम करै और उसके पतिकों मालूम हो जाय तो बने वहातक उस स्त्रीकों जानसें मार डालेगा और यदि जारपुरुष पकडा जायगा तो उनकों बेजान कर देगा. और कदाचित् स्त्री और जारपुरुषके उपर जोर न चल सकेगा तो गुस्सेके मारे खुद आप जान निकाल देगा. कभी नरम स्वभावका होगा तो मरेगा नही, लेकिन उनके दिलमें बडा रंज-दुःख भरा रहेगा. रात और दिन उसीही दुःखमें गुजारेगा. इस्सें साफ मालूम होता है कि परस्त्री बडी भारी हिंसाका कारन है. फिर बदचलनवाली स्त्रीओंकों अपना खाविंद दूसरे जारपुरुषोंके साथ खेलने न देगा तो वो स्त्री अपने पतिकों जानसें मारदेवें. अगर मार देती हैं वैसी बहुतसी बातें सुन्ने-देखनेमें भी आती हैं, तो इस बदकामसें बडी जीव हिंसाऐं होती है. फिर परस्त्रीका मैं सेवन करताहु तो भी मैं सेवन करताहुं ऐसा कहा भी नही जाता. इस्सें जूंठ बोलनेके सबबसें मृषावादकाभी दोष लगता है. फिर परस्त्रीके उपरं इच्छा होती है वो अत्यत विषयकी इच्छा वाली होती है उस्सेभी ज्यादे कर्मबंधन होता है. फिर अपनी स्त्री तो हमेशां नजर आगेही होती है उसलिये सर्वदा भोगकी विचारणा नही होती और पराइ स्त्रीके लिये तो रात दिन विचारणाही हुवा करती है, कामकथा भी नहीं सूझ सकता और विकल्पही किये करता है. वो विकल्प कर्मबंधनकाही हेतु है. विकल्पका पाप मनुष्य सामान्य समझते हैं, लेकिन विकल्प समान दूसरा ज्यादा पाप नहीं है. वो पाप कितना बांधाजाता है सो ज्ञानीमहाराजही जानसकते हैं और उसीसेंही उन्होंने उस्के समान दूसरा बडा पाप नहीं बतलाया. उन्हींकोंही बडा पाप-कठीन पाप कहा है और भी जितने जितने धर्मवाले हैं उन्ह सभीने भी परस्त्रीमें बहुत पाप दर्शाया है. संसारमें परिभ्रमण करनेका बीज स्त्रीभोग है. भोगेच्छाके लीये स्त्रीए पुरुषकी दासी बनकर जींदगी पूरी करती हैं. इग्रेज लोगोंमें पुरुष स्त्रीका दासत्वपना करते हुवे नजर आते हैं. और जो अति कामी या परस्त्रीलपट होते हैं वैभी स्त्रीओंके दास बनते हैं, कामवासनाके लीये जेवर पहेननेकी और जेवरके लीये धन पैदा करनेकी उपाधि करनी पडती है. ऐसें अनेक प्रकारकी विटंबना कामके लीयेही समारमें भुक्तनी पडती है.

वास्ते ज्यों बन सके त्यों कामका अभिलाप छोड देना. सपूर्ण प्रकारसें तो अभिलाषका त्याग क्षपकश्रेणीमेंही होगा तभी पूर्णतत्त्व प्राप्त होगा यह नौ नोकषाय और सोला कषाय मिलकर पचीश हुए. वो मात्र मोहनीकर्म है-याने ये कषाय होवें वहांतक पूर्ण चारित्र केवलज्ञानीका यथाख्यात वो नहीं आवें. वास्ते उनका त्याग करनेके लीये बहुतही उद्यम करना. ये प्रकृतिये जितनी जितनी कम होवेगी उतना उतना आत्मा विशुद्ध होवेगा-वही धर्म है और ज्यों ज्यो ये कषायोंकी वृद्धि होती जायगी त्यों त्यों कर्मबंध बढता जावेगा. और दुर्गतिके दुःख तथा जन्ममरणके दुःख भुक्तने पडेंगे कोइ कहेगा कि-वै दुःख किसाने देखे नहीं है तो कहेंगे कि-मनुष्यके दुःख देखते हो? कि भगी लोगोंकों रात दिन मैला उठाना पडता है और वैसा झुठा बिगडा हुवा खाना भी मिलता है फिर कितनेक लोगोंकों पहेननेके लीये कपडे भी नहीं मिलते हैं ठड-धूपका दुःख भुक्तना पडता है कितनेककों कोढरोग, जलोदर, विस्फोटक, दमा वगैर' रोग होते हैं ऐसें अनेक रोगोंकी वेदनाओंका दुःख रात दिन सहन नहीं होता है सब चिल्लाते हैं-रोते हैं, तो ऐसे दुःख सख्त पापके योगसेंही प्राप्त हुवे हैं ज्यादे पापसें नरकके दुःख होते हैं वो नास्तिकवादी विगरके सभी धर्मवाले मानते हैं वास्ते शका करनेकी जरूरत नहीं है पापके फल तो अवश्य भुक्तनेही पडेंगे वास्ते ज्यों बनसके त्यों राग द्वेषकी परिणती कम करदेनी कि जिस्सें पाप कम बधा जाय और अनुक्रमसें सब प्रकारपूर्वक राग द्वेषसें मुक्त हुवा जाय

कोइ सरस यहापर प्रश्न करेगा कि 'देवकी गति सजलके कषायसें बधी जाय तो सम्यक्दृष्टिकों अप्रत्याख्यानादिकका उदय तथा श्रावककों प्रत्याख्यानादिकका उदय कहा है, तो किस प्रकारसें देवगति बाध सके?' उसका उत्तर यही है कि जिस वख्त देवगतिका आयु बाधे उस वख्त सजलके कषायका उदय होता है, दूसरे कषायोंका गौणपना होता है ऐसेही मिथ्यादृष्टिकों भी जानना. दर्शनमोहनीके तीन प्रकार हैं याने सम्यक्तमोहनी, मिश्रमोहनी और मिथ्यात्वमोहनी ये तीन हैं. इनमें पहेले मिथ्यात्वमोहनीका स्वरूप लिखते है. जिस जीवने मिथ्यात्वमोहनी कर्म बाधा हुवा है, उसके प्रभावसें अठारह दूषणरहित श्री वीतराग देव है उनके ऊपर द्वेष भाव रखता है. (सातवें प्रश्नमें अठारह दूषण कह चुके है यहासें देख लेना) अठारह दूषण सहित देवकों देव मानता है जो गुरु हिंसामें तत्पर, जूँवोंको ठनेवाले,

चोरीकाभी नियम नहीं, मैथुनमें अत्यासक्त, धन और स्त्री रक्खे, रातदिन तृष्णाभी बनी रहे, और धन वगैरः के लाभार्थ सेवकोंकों उपदेश दीया जावे. असे निर्गुणीकों गुरु करकें स्थापन करे, उन्कोंही तरणतारण गुरु मान लेवें. और जिन पुरुषने ये पाचों अव्रतका त्याग कीया है, पाचों महाव्रत अंगीकार कीये है, पाचों इद्रियोंके तेइश विषय छोड दीये है, फक्त कामके लायक वस्त्र रखते हैं, आहारभी आपके वास्ते न करते है या करवाते है, और न अच्छे आहारकी अनुमोदना भी करते है. फक्त गृहस्थने आपके घर जो रसोइ बनाइ हो, उनमेंसें थोडीसी वस्तु-भोजन पदार्थ लेते हैं, स्वादकी चाहना नहीं करते हैं, आत्माकों अच्छा लगे अैसें विचरते हैं, रात दिन शास्त्राभ्यास कर रहे है और विकथाका तो त्याग करदीया है अैसे महानुभव महात्मा पुरुषकों गुरु नहीं मानता हैं. और कठोर मिथ्यात्वके जोरसें अैसे पुरुषोंमें दूषण न होनेपर भी दूषण आरोपण करता है. रातदिन अैसे गुणवतकी निंदा करता है. फिर अैसे पुरुषोंने जो धर्म प्ररुपण कीया है उनकों अधर्मही मानता है. और दया मूलके नाशरुप हिंसाअें, अविनय, अज्ञानता, विषय तथा पुद्‌गलका पोषण है उसकों धर्म मानता है. अगर तो जो दयामूल, विनयमूल, हिंसाका त्याग, असत्यका त्याग, चोरीका त्याग, स्त्रीसेवनका त्याग, पैसेका त्याग-ये रूप व्यवहार धर्म, तथा आपके आत्म स्वरूपमें रहकर रागद्वेषकी परिणतीसें मुक्त हो, सब प्रकारसें मोहका नाशकारक उद्यमरूप जो निश्चय धर्म उनको अधर्म मानता है. ये मिथ्यात्वमोहनी कर्मके जोरसें धन, स्त्री, पुत्र, परिवार, मकान, दुकान, कपडे, पात्र-बरतन वगैरः पदार्थकों जीव अपना मानता है, और उस सबभी जीव विचित्र प्रकारका अहकार ममकार करता है और पीछे नये कर्म उपार्जन करता है ये मिथ्यात्वमोहनी जिन पुरूषसें दूर हो जाती है, उनकों ससारदावानलके जैसा मालम होता है. जैसें कोइ मनुष्य जगलमें गया हो और वहा चारों ओरसें आग लग गइ हो तो उसमेंसें निकल जानेके लीये अनेक उद्यम करता है, तैसें यह जीव ससारमें रहा हुवा विचारता-शोचता है कि-यह धन कुटुब सब पदार्थ नाशवत है, सयोगसें मिले हैं और वियोगमें जानेवाले है, पूर्व कृतकर्म संयोगसें जाते है और पूर्वकृतकर्म सयोगसें प्राप्त होते हैं उन्में मैं जो राग रखता हु-उससें समय प्रतिसमय नूतन कर्म बंधाते हैं और मेरा आत्मा मलीन हुवा जाता है. अनादि कालसें ससारमें परिभ्रमण करता हुं सो यही जड पदार्थोंके उपर राग धरनेके सबबसेंही

करता हु, लेकिन इस भवमें तो भवितव्यताके योगसें ये सब वस्तु पर है ऐसा विछानकर ये सारे पदार्थोमें निरिच्छकता करकें सभी वस्तुका सयोग त्याग करनाही योग्य है. कॅव ये सब वस्तुका त्याग करकें म मेरे आत्मधर्ममें प्रवर्त्तु और कुच्छअपने आत्माका साक्षात् ज्ञान प्रकट करुं. ऐसी दशा मिथ्यात्वमोहनीके जानेसें होती है. अब मिश्रमोहनीका स्वरूप लिखते है इस मोहनीसें कुच्छ शुद्ध देवगुरु धर्मके ऊपरसें द्वेष दूरहुवा और अशुद्ध देवगुरु धर्मके ऊपरसें राग प्रीति कम हुइमालूम होवे फिर पुद्गल भावक अंदर सपूर्ण आसक्त था सो उन्मैसें मिथ्यात्वके पुदगल जानेसें आसक्त भाव कम होवै, उससें अपना आत्मधर्म प्रकट करनेकी कुच्छ मरजी होवै मिथ्यात्वपनमें तो कुलका धर्म करताथा, मगर वो मिथ्यात्वमोहनी चली गइ और मिश्रमोहनी हुइ, उसके प्रभावसें करकें अपना धर्म प्रकट करनेंके लिये उद्योग करना शुरु करै. फिर ये मिश्रमोहनीका काल अतर्मुहूर्त्तका है और उन अतर्मुहूर्त्तमें भी दो श्वासोश्वाससें नौ श्वासोश्वास तकका है, इस्सें ऐसा सुंदर भाव आत्म हितकारी होवै, लेकिन वो भाव प्राप्त हुवे पर भी अल्प समयके सबबसें अपनकों जानना दुष्कर हो पडता है ये मिश्रमोहनीके पुद्गल भी मलीन हैं, उससें सञ्चा तत्त्व नहिं पहिचाना जाता है, इसके लिये ये भी दूर करनेके योग्य होनेसें उसकु छोड देनेका उद्यम करना चाहियें ये दोनूका (मिथ्यात्व और मिश्रका) अभाव हो जानेसें सम्यक्तमोहनी प्राप्त होवै, उस सम्यक्तमोहनीका स्वरूप कहते हैं शुद्ध देव गुरु धर्मके ऊपर राग प्रकट होवै, झठे देव गुरु धर्मके ऊपर राग नहीं रहेवै, आत्मतत्त्व प्रकट करनेका कामी होवै, गुरुमहाराज और उत्तम श्रावकोंकी अच्छी तरहसें सगति करैं, उन्के पाससें धर्मोपदेश सुनै, देव गुरुकी अच्छी तरहसें भक्ति करनेमै तत्पर होवै, जीव, अजीव, पुन्य, पाप, आश्रव, सवर, निर्जरा, बध और मोक्ष ये नौ तत्त्वोंकी जानै, और जानकर उनपर जैसें आगमोंमे कही है वैसी ही श्रद्धा रक्खै, ऐसा तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा रक्खै, केवल धर्ममय चित्त हो जावे और ससारमें पडा हुवा भी ससारी सुखकों दु ख रूप समझ लेवै.

यहांपर कोइ शका करेगा कि-सम्यक्त्वमोहनी तो मोहनी कर्मका प्रभाव कहा है और यहां तो तुमने गुनवतपनेका वर्णन कीया उसका सबब और समाधान क्या है सो बतलाइये ?

यह शकाका समाधान यही है कि-ये सम्यक्तमोहनीके प्रभावसें जीवादिक

पदार्थोंकी यथार्थ श्रद्धा होवें, लेकिन उन नौ तत्त्वका विस्तार पूर्वक जो सूक्ष्म ज्ञान है उसके भीतर सम्यक्तमोहनीवालेकी बुद्धि मोहकों प्राप्त हो जाती है, यथार्थ अनुभवगम्य आत्मतत्त्व न कर शकें-इस सबवसें आत्म स्वरूप घभडा देता है; वास्ते वो त्याग करने योग्य कही है. मगर मिथ्यात्व और मिश्र ये दोनू मोहनी करतें इसमें ( सम्यक्त मोहनीमें ) धर्मरुचि बढती है, उसके लिये ये गुणोंका दर्शाव कीया है जैसें आंखोंमे जब अवस्था या दोषप्रकोपके सबवसें रोशनी कम मालूम पडे-छाउं छा जावे-कमदेखा जावे, तब चस्मे लगानेसें पदार्थ पहिचाने जाते हैं, तों चस्मोंकी तारीफ ही करते हैं; लेकिन जिसकों चस्मे लगानेकी जरूरत नहीं है-आख साफ और रोशनीदार और अच्छी तरहसें देख सक्ता है वो तो चस्मेकी तारीफ नहीं करेगा, क्यों कि वो जैसा देख सक्ता है वैसा चस्मे लगानेवालेभी साफ साफ नहीं देख सक्ते हैं और इसी सबबसेंही चस्मे लगानेवालेभी वस्तुतासें यही, इच्छा रखते हैं कि आखकी झाख दूर हो जावें, और चस्मे न लगाने पडें तो अच्छा होवेंवैसेही जब तक मिथ्यात्वमोहनी है उसकी अपेक्षासें सम्यक्त-मोहनी अच्छी है, परतु सम्यक्तमोहनीभी मिथ्यात्वमोहनीके पुद्गल हैं, वास्ते ये सम्यक्तमोहनीके पुद्गल त्याग होवे तब जीवकों क्षायकसम्यक्त होता है और तबही यथार्थ पूर्ण स्वरूप समझा जाता है, कुच्छभी शका नहीं रहेती है और सर्वज्ञ प्रभुनें सूक्ष्म ज्ञान शास्त्रकी अदर जो दर्शाया है वों सब ज्ञानीमहाराजके कथन मुजब सुलभतासें समझ सक्ता है और जिसकों सम्यक्तमोहनीका जोर है उनकों यथार्थतासें कुल वातें नहीं समझी जायगी-कुच्छभी शका रहेगी, क्यों कि सम्यक्तमोहनीवालेंसे मिश्रमोहनीवालेंकों ज्यादे शकाए पडे, और उन करतेभी मिथ्यात्वमोहनीवालेंकों तो बहुतही शकायें पडती है सब वस्तु विपरीतही समझनेमें आती है-जो शुद्ध मार्ग होवे वो विपरीत-अशुद्धही मालूम होता है. कुच्छ कुच्छ मिथ्या पुद्गल हठते जायें, उतना उतना सहज कुच्छ सचा मालूम हो आवे, वास्ते हर एक प्रकारसें मिथ्यात्वमोहनी, मिश्रमोहनी और सम्यक्तमोहनी ये तीनूके नाश निमित्तका उद्यम करनाही योग्य है

पूर्वोक्त तीनू मोहनीकी सत्ता, बध और उदयसें संपूर्ण प्रकारसें नाश हो सक्ता है या होता है, तब क्षायकसमकितकी प्राप्ति होती है. फिर ये तीनू मोहनीका नाश होनेके साथही अनतानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभकाभी नाश हो जाता है-इससें भी क्षायकसमकित प्रकट होता है और वो क्षायकसमकिती इसीही जन्ममें मोक्षकों

प्राप्त करता है कदाचित् सम्यक्त प्राप्तिके अव्वल यदि दूसरी गतिका-नारकी, देवताका आयु बाध लीया हो तो दूसरी गतिमें जाय, और वहासें मनुष्यजन्म पाकर मोक्षमें जावे. कदापि युगलियेंमे जावे तो युगलियेंमेंसें देवगतिमें जाकर फिर मनुष्यगति पाकर मोक्षमें जाता है; मगर इनसें ज्यादे भव नहीं करने पडते हे अथात् तीसरे भवमें मोक्ष प्राप्त होता है, यही क्षायकसमकितकी अजब खूबी है

फिर जिनकों सम्यक्तमोहनीका सग नहीं छुटा है उन्कों क्षयोपशमसम्यक्त होता है, उनके उदयसें अनतानुबधी कोध, मान, माया, लोभ नाश होते हैं सत्ताम मिथ्यात्व रहता है, उदयमें नहीं रहेता. ये समकितवालेकों भी मुक्तिका निश्चय होता है, लेकिन क्षायकवालेकी तरह तद्भवमें मुक्ति जानेका निश्चय नहीं हैं. जब ज्यादे विशुद्धता होवे और क्षायकसम्यक्त्व प्राप्त करे तब मुक्ति हासिल होवे. यदि क्षायक सम्यक्त्व प्राप्त नहि हुवा हो तो मुक्ति प्राप्त नहीं होती है. क्षयोपशमसम्यकत्वकी स्थिति कायम रहेवे तो ६६ सागरोपम तक रहती है. और सम्यक्त सहित आयुष भी देवलोकका बाधे, अगर देवता नारकी होवे तो मनुष्यकाही बाधता है, अैसा ये सम्यक्तका प्रभाव है दर्शनमोहनीकों दूर करनेके फल जान लेकर ज्यों बन सके त्यों इनका त्याग करना ये तीनू मोहनी और पचीस चारित्रमोहनी ये सब मिलकर अट्ठाइस मोहनी कर्मकी प्रकृति जानो. इनका सर्वथा त्याग करनेसे केवलज्ञान प्राप्त करता है जब तक ये मोहनीकर्म है वहातक पूर्ण गुण भी प्रकट नहीं होते हैं. और ये प्रकृतियोंमें वर्त्ताव रखनेसेंही पुन कठिन कर्मकी ग्रथी बधाकर जीव ससारमें परिभ्रमण करने लगता है भवभ्रमणाकी वृद्धिका मूलकारण मोहनी कर्मही है, वास्ते इनका त्याग करनाही उचित है. राग द्वेषकी प्रकृतिके लिये जीवकों इस लोककी अदर भी अपयश और परलोकमें भी दु'ख होता हे जिन जिन वस्तुओंका धर्मपदमें निषेध किया है उन उन वस्तुओंका आदर करनेसें इस जन्ममें और अपर जन्ममें दुःखके सिवा और कुच्छ हाथ नहीं लगता है, वास्ते समभावसें मोहनी कर्म क्षय करनेका उद्यम करनेमें तत्पर रहेना चाहियें

अब वेदनी कर्मका स्वरूप कहते हैं वेदनीके दो प्रकार हैं-शाता वेदनी और अशाता वेदनी, याने सुख वेदना सो शाता वेदनी और दु:ख वेदना सो अशाता वेदनी कही जाती है जिसनें पूर्वभवके भीतर नीतिमार्ग अनुसार चलन रक्खा है,

सत्य भाषन किया है, दया पालन की है, चोरीका त्याग कीया है, परस्त्रीका त्याग और अपनी स्त्रीमें सतोष, किंवा त्याग किया है, किसी जीवकों दुःख न होवे वैसा वर्त्ताव रक्खा है, और धनकी तृष्णाकों त्याग कर परोपकारमें वा सच्चे देव गुरुओंकी भक्तिमें द्रव्यका सदुपयोग किया है अर्थात् अैसी पुण्यकरणी करनेसें शाता वेदनी कर्म बाधा होवे उनके प्रभावसें अपनी प्रकृतिके अनुकूळ सुखके पदार्थ मिलते है. और जिसने इन्सें विपरीत कृत्य किये हैं–जैसें कि जीवहिंसा करनी, झूठ बोलना, पराइ वस्तु उठा लेनेका जिसको डरही नहीं, कामभोगमें अत्यताशक्ति और उसीके प्रभावसें अपनी या पराइ स्त्रीका भी कुच्छ शोच विचार नही होनेसें बहुत कामाध हो गया होवे, याने अपनी बहेनी या लडकीके ऊपर भी बद निगाह करनेका जिसकों शोच नही होवे, जिस स्त्रीके ऊपर नजर पड जावे उसीके साथ भोग करनेकी चाहना करे. मतलबमें सब स्त्रियोंके साथ कुछ योग नहीं बन सकता है तौ भी मनकी इच्छासें कर्म बांध लेता है. कदाचित् इच्छित स्त्रीयोंमेंसें कइएक स्त्रीयोंका योग मिलभी जाता हे तौ उन्में भी बहोत लुब्ध होकर काम सेवन करता है. नही सेवने योग्य स्थानपर चुबन प्रमुख भी कर लेवे. और दूसरोंकों ठगनेको लिये विश्वासघात करे उससे दूसेर मनुष्योंकों दुःख होवे वैसे कृत्य करनेमें तत्पर रहेवे, शुद्ध देव गुरु धर्मकी हेलना–निंदा करे, खोटे मनुष्यकी प्रशसा करे, बुरे कामोंमें तत्पर रहेवे, अहंकारी, कषायवत, अति क्रोधी और अैसेही महा आरभकारी कृत्य तथा दुराचरण सेवन करनेसें अशाता वेदनी कर्म बाधता है. उन्में भी एक दूसरेकी प्रकृतिमें तफावत रहता है. बुरा काम दोनू मनुष्य समान करें तौभी एक सख्स मनुष्यकों मार कर उसका प्राण निकाल देवे और दूसरा प्राण लेकर भी पीछे उस मृतक कलेवरके टुकडे टुकडे कर डाले और उस बाद तेलमें भूनकर छोड देवे. इस तरह दुष्टतामें तफावत होता है. और यही तफावतसें कर्म बाधनेमें भी तफावत रहता है. इस लिये समझना चाहियें कि जिसने दुष्ट कठिन प्रकृतिके सबळ योगसें कार्य किये हैं उसकों कठिन अशाता वेदनी कर्मबध होता है और भुक्तनेके वख्त भी कठिन वेदना भुक्तनी पडती है. और जिसने मदतासें कर्मबंध किया होवे तो उस्कों मद वेदना भुक्तनी पडती है. यह कर्मका नाश भुक्तनेसेंही होता है. उसमें अज्ञानी लोग तो दुःख भुक्तते है तौ भी परमात्माकों दोष देकर कहते है कि–'हे भगवान्! मैंनें तेरा क्या बिगाडाथा

कि मुझे ऐसा दुःख दिया ?' फिर कोइ कहते है कि–'अरे ! मुझसें ऐसें दुःख सहन नहीं हो सकते हैं ये दुःख कब दूर होगा ?' इत्यादि कहकर डॉकटर–हकीम–वैद्यके ऊपर गुस्सा करते हैं, या तो अपने घरके मनुष्य किंवा नौकर चाकरके ऊपर चिल्लाकर धूमधाम मचाते हैं, और रोग चिंतवनाके अरिष्ट फल प्राप्त होते हैं. इस तरह अनेक जीव गेरवाजवी विकल्प किये करते हैं, उस्सें जीव पुन. उन्से भी ज्यादे कठिन कर्म बांधता है और जो धर्मिष्ट जीव हैं वो तो दुःख आता है तब अपने कर्मका दोष निकाल कर शोचते है कि–'गत जन्मोंमें मैनें अज्ञानतासें दुष्ट आचरण किये होंगे उस्सें वो कर्म मुझकों भुक्तनेही चाहियें जैसे सरकारका गुन्हा किया हो और उसकी शिक्षा मिल चूकी हो तो वो सरकारके हुकम मुजब यदि शिक्षा न भुक्तेंगे तो सरकार ज्यादे शिक्षा करेगी, तैसें मैं विकल्प करुगा और समभावसें ऐसा दुःख न भुक्तुगा तो फिर नये कर्म बंधे जायेंगे, तो मेरी आत्मा ज्यादे मलीन होगी; वास्ते मुझकों जो जो दुःख प्राप्त हुवे हैं वोः दुःख समता भावसें भुक्तनेही चाहियें कि जिस्सें फिर ऐसे कर्म न बंधे जाँय, ऐसी वर्त्तना करनेकी आवश्यकता है.

फिर भावना भावे कि मैं तो चेतन हु, अनतज्ञान दर्शन चारित्रवत मेरी आत्मा है, लेकिन जडकी सगतिसें मैनें नहीं करने लायक काम किये; मगर उस वक्त मुझकों मेरी आत्माका ज्ञान नहीं था. अब तो मैं जानता हु कि मेरा जाननेका धर्म है वास्ते सुख दुःख आजावे उस्कु जानना किंतु मुझकों दुःख होता है–पीडा होती है ऐसे विकल्प करना यह मेरा धर्म नहीं है ऐसे बिचार करकें समभावमें रहता है उसके तो पूर्वके बंधाये हुवे कर्मभी नष्ट हो जाते है और नुये कर्म नहिं बंधे जाते हैं फिर जो मुनिराज है वे तो अपने ज्ञान ध्यानमें तत्पर रहते हैं, उस्सें अपना स्वभाव छोडकर दुःखकी तर्फ उनका ध्यान नहीं जाने पाता है उस्से किंचित्भी उस सबंधका विचार नहीं करना पडता है जैसें कि कोइ मनुष्य भवाइ–नाटक देखनेकों जावें, वहां खडे खडे अपने पैर दुखने लगें तोभी तमाशा देखनेमें ध्यान होनेके सबबसें पैरके दुखनेकी तर्फ ध्यान या लक्ष नहीं जा सकता है, वेसेंही मुनि महाराजभी अपने आत्म तत्त्वके ध्यानमें लीन हुवे होते हैं उस सबबसें दुःखवेदनामें उपयोग नहीं जा सकता है ऐसे पुरुष तो ध्यानके प्रभावसें अपने बंधे हुवे निकाचित कर्मकु शिथिल कर डालते हैं और पीछेसें तुरत उन कर्मोका नाश करकें मोक्ष प्राप्त करते हैं इसलिये आत्मार्थिज-

नोंकों जो ज्यौं चढे त्यौं समभावकों वढानाही चाहियें–कि जिस्सें कर्म नाश होकर आत्माकी मुक्ति हो जाय, और तवही अव्यावाध सुखकी प्राप्ति होवें. इस मुजब वेदनी कर्मका स्वरूप समझ लेने योग्य है.

अब नाम कर्मका स्वरूप कहेंगे. नाम कर्मकी १०३ प्रकृतियें हैं. और उनके नांव नीचे मुजब हैं–गतिनाम कर्म याने मनुष्य, तिर्यच, नारकी और देवता इनचारों गतिमेंसें जिन गतिमें जानेका पूर्वजन्मके भीतर कर्म बाधा होवें उन गतिमेंही जावें. १, दूसरा जातिनाम कर्म याने एकेंद्रि, बेरेंद्रि, तेरेंद्रि, चौरेंद्रि, पचेंद्रि, यह पाच जाति हैं, इनमेंसें जितनी इंद्रि प्राप्त करनेकी प्रकृति बाधी होवें उतनीही उन गतिमें बांधे, २, तनुनामकर्म याने तनु–शरीर पाच प्रकारके है–उदारिक, वक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण. इन पांचोंमेंसें उदारिक शरीर जो अपने हैं वो, और तिर्यचमेंभी उदारिक शरीरवाले होते है. तथा देवता और नारकीकों वेक्रिय शरीर होता है. पारेकी सदृश अलग अलग हो जानेपरभी पुनः एकत्र हो जैसाका वैसा वनजावे वो वैक्रिय कहा जाता है. नारकीमें पेदा होतेही शरीरके टुकडे टुकडे हो कर फिर जुड जाते हैं. और परमाधामी दुःख देनेके समयभी काटते च्हेरते है तौभी शरीर असल स्थितिवाला हो जाता है, मगर विनाश नहीं हो जाता है. देवतायेंभी अपनी इच्छानुसार छोटा वडा शरीर करलेते है वोभी वैक्रिय शरीरका स्वभाव है. आहारक शरीर तौ अतिशय ज्ञानी कि जो चौद पूर्वधर है उनकों यह शरीर करनेकी लब्धि होती है. वे किसी समयपर कुच्छ शका पडनेके सववसे मुठी प्रमाण शरीर बनाकर शका निवृत्तिके लिये भगवतके पास भेजते हैं और वो बहुतही अल्पकालमें जाकर पीछा आता है. वो शरीर वैसे मुनि महाराजके सिवा किसिकोंभी प्राप्त नहीं होता है. तैजस शरीर वो शरीरकी अदर आहारकों पाचन करता है. और कार्मण शरीर वो अत्यत सूक्ष्म शरीरकी अंदर रहता है जिस वखत जीव इस गतिमेंसें मरण पा कर दूसरे स्थानक जाता है उस वखत ये तैजस और कार्मण सग सग जाते हैं. कर्मभी कार्मण शरीरमेंही रहते हैं. उदारिक वैक्रिय शरीरकी साथ ये तैजस, कार्मण शरीर हम्मेशा रहते हैं यह शरीर, नामकर्म जिस तरहका वांधा होवें वैसा प्राप्त होना है ४ उपांग नामकर्म याने उदारिक अगोपांग, वैक्रिय अगोपाग, और आहारक अगोपाग यह तीन शरीरके अगोपांग हैं वो जैसा बाधा होवें वैसे अंगोपाग होते हैं ५ प्रबहरधन है, याने उदारिक उदारिक वधन, उ-

दारिक तैजस बंधन, उदारिक कार्मण बंधन, उदारिक तैजस कार्मण बंधन, वैक्रिय वैक्रिय बंधन, वैक्रिय तैजस बंधन, वैक्रिय कार्मण बंधन, वैक्रिय तैजस कार्मण बंधन, आहारक आहारक बंधन, आहारक तैजस बंधन, आहारक कार्मण बंधन, आहारक तैजस कार्मण बंधन, तैजस तैजस बंधन, कार्मण कार्मण बंधन और तैजस कार्मण बंधन–इस तरह पंद्रह बंधन हैं वे पूर्वके बांधे हुवे कर्मके साथ नवीन कर्मका एकजीवपना करदेते हैं जैसें मिट्टीका बरतन टूटा फटा होवे तो चपडाके संयोगसें साबित हो जाता है वैसें पूर्वके कर्म संगाथ नवीन कर्मकों जोड देते हैं ५ पांच संघातन ये पांचों शरीरके नाम मुवाफिक हैं. वे प्रकृति कर्मके दलियोंको खींचकर कर्मकी नजदीक करते हैं और पीछे बंधन नाम कर्मकी प्रकृतियें ऊपर लिखी गइ है वे एकजीव कर देती है अब छ: संघयणके विषयमें खुलासा करते हैं. वज्रऋषभ नाराच संघयण याने शरीरकी हड्डीके सांधे असे होते है कि एक दूसरेके परस्पर मणिबंध पकडे गये होवे उसी तरह हड्डीके बंधके सांधे आगे होते है उसकों मर्कटबंधे कहते हैं उसपर पाटा होवे और बीचमें वज्रमय खीली होवे–असे मजबूत सांधे होवें उसको वज्रऋषभनाराच संघयण कहते हैं ये संघयणवाला शरीर बहुतही बलवान् होता है तद्भव मुक्तगामी जीवकों अवश्य यह संघयण होता है क्यों कि यह संघयण विगर क्षपकश्रेणी न कर सकै, और क्षपकश्रेणीके सिवा केवलज्ञान प्राप्त नहीं होवे यहांपर कोइ शंकाशील शंका करेगा कि क्या यह संघयणवाला अवश्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है? तो उस विषयमें हम समाधानके लिये खुलासा करेंगे कि यही संघयण वालाही मुक्ति वरे असा नियम नहीं है, मगर ये संघयणवाला प्रभुकी आज्ञा मुजब सुकृत्य करेगा तो मुक्ति पावेगा, और प्रभुकी आज्ञा विरुद्ध चलेगा तो दुष्ट कृत्यके जोरसें यावत् सातवी नरकमें जायगा सातवी नरक भी यह संघयण विगर प्राप्त नहीं हो सकती है, क्यों कि संघयण बलवान् होवे तभी अतिशय बुरे या अच्छे काम करसकता है और बुरेके परिणाममें नरक और अच्छेके परिणाममें स्वर्गापवर्गकी प्राप्ति हो सकती है दूसरा ऋषभनाराच संघयण है, वो वज्रमय खीलीसें रहित होता है, बाकी सब वज्रऋषभ सादृश कृति होती है तीसरा नाराच संघयण है उनके दो बाजु मर्कटबंध होता है, मगर वज्रमय खीली और पाटा यह नहीं होते हैं चौथा अर्धनाराच संघयण है उसमें एक बाजुपर मर्कटबंध होता है पांचवा कीलक संघयण है

उसमें दो साथेके वीचमे खीली होती है. छट्ठा छेवट्ठ संघयण है उसमें हड्डीके अग्रभाग एक दूसरेके साथ अडकर रहते है. अभी यही सघयण है, लेकिन जिस वक्त श्री तीर्थंकर प्रभु विचरते थे उस वक्तमें छवुं संधयणवाले मनुष्य थे. जिसने जैसा पुण्य संचय किया हो वैसा संघयण प्राप्त होता है. आधुनिक समय महाविदेह क्षेत्रमें ये छवुं संघयणवाले मनुष्य विद्यमान हैं. ७

सस्थान नाम कर्म उनके छः भेद हैं. पहिला समचौरस सस्थान है, वो नाभिसें दोनू खंभे तक डोरी नापकर वोही डोरी पद्मासन लगाकर वैठेहुवे सख्सके गोठन-घूटन तक नापनेसें समान याने नाभिसें खभे और नाभीसें पद्मासनवालेके घूटन तक भरनेसें दोनू बाजु वरोवर लवाइमें होवै तौ उसकों समचौरस सस्थान कहा जाता है. इस सस्थानसें शरीर वहुत सुदर मालूम होता है दूसरा न्यग्रोध सस्थान-वो सस्थानवालेके शरीरका उर्द्धभाग और अधोभाग वेहुदा होता है. इससें कम खुवसुरतीवत तीसरा सादी सस्थान होता है. उससे भी हलके दर्जेका चौथा वामनसंस्थान होता है. पाचमा कुब्ज सस्थान कि जो वडा वेडोल होता है. और छट्ठा हुडक संस्थान, वो सव सस्थानोंसें विपरीत लक्षणवाला होता है. यह शरीरके सवधी संस्थान हैं. पूर्वजन्मोंमें जैसा सस्थान नाम कर्म वाधा हो वैसाही शरीरका संस्थान प्राप्त होता है ८

अव वर्णनाम कर्म याने वर्ण पाच हैं-हरा, राता, पीला, श्याम और स्वेत-उज्वल-गौर ये पाचुं वर्णमेंसें जिस वर्णका नाम कर्म वाधा हो वैसाही शरीरका रंग होता है. ९ गधनाम कर्म याने गध-सुगध और दुर्गंध ये दो है. जिसने जैसे शुभाशुभ कर्म बांधा होवै वैसा शरीर अच्छे बुरे गधवाळा होता है १० रसनाम कर्म याने रस पांच हैं-चरपरा, कटुक, खट्टा, मीठा और तूरा ये पाचमैसें जिसने जैसा कर्म वाधा होवै उनकों वैसेही रसवाला शरीर प्राप्त होता है. ११ स्पर्शनाम कर्म याने हलका, भारी, रूखा, स्निग्ध, ठंडा, गरम, कोमल और कठोर-यह आठ स्पर्श हैं उनमेंसें जो नाम कर्म प्राप्त किया हो वही स्पर्श मुजव शरीरका स्पर्श होता है १२ आनुपूर्वी, नामकर्म याने मनुष्यानुपूर्वी, देवानुपूर्वी, तिर्यचानुपूर्वी और नरकानुपूर्वी-यह चार हैं. इनमेंसे जिस गतिके अदर जीव जानेवाळा हो उस गतिमें वही गतिके आनुपूर्वी पुद्गल उस्में ले जाते है. ये आनुपूर्वीका उदय जव अजल-मरण आ पहुचे तव

होता है. १३ चलन-गति नाम कर्म याने शुभ विहाय और अशुभ विहाय ये दो गति हैं, हाथी और वेहलके समान चाल चलै सो शुभविहाय, और ऊंट किंवा गदहेकी तरह चाल चले सो अशुभ विहाय गति कही जाती है इन दोमेंसें जिस गतिकी कर्म प्रकृतिका बंध हुवा होवें उसी प्रकृतिकीचाल प्राप्त होती है

१४ त्रस नाम कर्म याने चलने हिलनेकी जैसी शक्ति उपार्जनकी हो वैसी प्राप्त होवे बादरनाम कर्म याने दूसरे मनुष्य देख सके वैसा शरीर प्राप्त करै पर्याप्त नाम कर्मसें जीव पूर्ण पर्याप्ति बांध सके प्रत्येक नाम कर्मसें एकही शरीरमें एकही जीव होवै. स्थिर नाम कर्मसें शरीरकी हड्डी स्थिर होवै. शुभनाम कर्मसें नाभिके ऊपरका भाग-अंग जगतमें पूजनीक कहा जावे. सौभाग्यनाम कर्मसें जीव मानका प्रिय लगे. सुस्वरनाम कर्मसें अवाज मीठा प्राप्त होवे आदेय नाम कर्मसें हरकिसीकों वचन कहे वो मान्य करै-उनके वचनका कोइ अपमान न कर सकै. यशनाम कर्मसें जगतमें यशवाद प्राप्त करै-कोइभी उनका अपयश न बोलै स्थावरनाम कर्मसें जीव स्थावरपना बांधता है-जिस्से पृथिवी, अप, तेउ, वाउ और वनस्पतिपना प्राप्त करै. सूक्ष्म नाम कर्मसें जीव ऐसा शरीर बांधे कि उसकों कोइ भी न देख सकै अपर्याप्तनाम कर्मसें पर्याप्ति पूर्ण किये बिगर मरणके शरण होता है साधारण नाम कर्मसें एक शरीरमें अनंत जीवोंकों रहनेका होवे अस्थिरनाम कर्मसें केश, कान, रुधिर, अस्थिर होवें अशुभनाम कर्मसें नाभिके नीचेका अंग अपूजनीक होवे दुर्भाग्यनाम कर्मसें सब जीवोंकों अनिष्ट लगे. दुस्वरनाम कर्मसें सब जीवोंकों अनिष्ट लगे दुस्वरनाम कर्मसें कर्णकटु अवाजवाला होवे-उनका गाना किसीकोंभी पसंद नहीं आवे अनादेयनाम कर्मके प्रभावसें किसीकोंभी सच्ची बात कह देवे तौभी दूसरे मनुष्यकों पतीज लायक मालूम न होवे-कुछभी बोले सो किसीकोंभी पसंद न पडे अपयशनाम कर्मसें सब जगह अपयश पावे पराघातनाम कर्म बांधा होवे उन्सें पर जीव बलवान् होवे तौभी वो जीवका मुख देखे कि भय पावै, उच्छ्वास नाम कर्मसें श्वासोच्छ्वास बराबर ले सके और उनमें कुछ कसर होवे उननी अडचण-हरकत होवे आतापनाम कर्मसें सूर्यबिंब समान तेज न सहन कर सकें ऐशा दिव्य तेजवंत होवै उद्योत नामकर्मसें चन्द्रमा तारेके समान शीतळस्वभावी और उद्योतकारक होवे अगुरुलघुनाम कर्मसें बहुत भारी शरीर न होवे और न बहुत हल्का होवे-मतलबमें जैसा चाहियें वैसाही

होवे. निर्माण नाम कर्मसें शरीरके अवयव जहां चाहिये वहां कायम होवे. उपघात नाम कर्मसें शरीरमें रसोली याने अर्बुद, प्रतिजीव्हा, चौरदत, खीली वगैरः उपद्रव होवे और शरीरकी अदर पीडा होवे. तीर्थंकरनाम कर्मसें तीर्थंकरकी पदवी पावे, असंख्य देव जिनकी सेवामें हाजीर रहै, समवसरण प्रमुखकी रचना होव, प्रभुका मुख देखनेसें आनद होवे, प्रभुका दियाहुवा उपदेश गहण करे, बालजीवोंको धर्म प्राप्तिका मुख्य कारण है, क्योंकि जो मनुष्य चमत्कारके रसिक है. वे रत्नमय समवसरणमें प्रभुको विराजमान हुवे देखकर पहिलें तो उन्के दर्शनकी इच्छा उत्पन्न होवे, बाद देवता वगैरः देशना सुनते होवे वोह देखकर भगवानकी तर्फ विशेष प्रतीति पैदा होवे, वास्ते भगवानकी अमृतमय देशना सुन लेवे कि आसन्न भविजीव तुरत प्रतिबोध प्राप्त कर लेवे.

इस मुजब नामकर्मकी १०३ प्रकृति हैं. उनमेंसें कितनीक पुण्य उदयसें और कितनीक पापके उदयसें जैसी जैसी प्रकृति बाध ली हो उस मुजब जीवको प्राप्त होती है. उसमें भी अशुभ नामकर्मकी प्रकृति उदय होती है तब अज्ञानी जीव दिलगीर होते हैं. और शुभ नामकर्मकी उदय होती है तब खुश होते है, वो खुशी और दिलगीरी अशुभ कर्म बांधनेका स्थान है. ज्ञानवान् पुरुष अशुभ शुभ चाहे सो उदय होती है, तब उनमें खुशी या दिलगीर नहीं होते हैं वे यों मानते है कि 'जैसे पूर्वभवमें कर्म बाधे गये है वैसे उदय आये हैं तो उनमें मेरे राजी या दिलगीर होनेका सबब क्या है ? कुछभी नहीं' अैसा शोचकर आप समभावमें रहते है, उस्सें अनुक्रमसें विशुद्ध होकर कर्मसें मुक्त होते हैं और अरुपी गुण प्रकट करता है उसीसें सिद्धिको प्राप्त करते हैं.

अब गोत्रकर्मका स्वरुप कहते हैं. गोत्रकर्मके दो भेद हैं याने उंचगोत्र और नीच गोत्र. उंचगोत्रके भी आठ प्रकार है कि जो पन्नवणाजी सूत्रमें बताये गये है याने उंच जाति, उंच कुल, सुदर स्वरुप, उत्तम बल, धनवंतता, ठकुराइ–राज्यपद–बडा होद्दा शेठाइ वगैरः और विद्वानता–यह आठ वस्तुकी प्राप्ति उचगोत्रके प्रभावसें होती है. और नीच गोत्रके प्रभावसें यही आठ वस्तु विपरीत रुपमें प्राप्त होती हैं. कर्म भी समभावसें ज्ञानी पुरुष भुक्तते है और उनको व्यय कर अगुरु लघु गुण पैदा करके सिद्धमें रहते हैं.

अब अंतराय कर्मका स्वरूप कहते हैं अतराय कर्मकी पांच प्रकृति है यानें दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय और वीर्यांतराय-ये पाच हैं. उनमेंसें दानातरायके प्रभावसें देने लायक वस्तु हाजिर है, लेनेवाला पात्रभी विद्यमान है, तौ भी दान नहीं दे सके लाभांतरायके उदयसें लाभकी प्राप्तिही न होवे. भोगातरायके उदयसें भोग्य पदार्थ मोजूद होवें, तदपि उनका उपभोग न कर सकें. उपभोगातरायके जोरस उपभोग वस्तु जो वेर वेर भोग्यमें आवे वैसी प्राप्त हुवेपर भी शोक वगेरे आ पडनसें उपभोग न कीया जावे और वीर्यातरायके जोरसें बल वीर्य प्राप्त न हो सके या प्राप्त हावे, तदपि धर्मके काममें वीर्य स्फुरा सके नहीं. यह पांचो प्रकृतिका सर्वथा अत केवलज्ञानकी प्राप्तिके समय हो सक्ता है, तौ भी थोडा थोडा नाश तो आगेभी होता है, उस्सें उतना काम हो सकता है.

अब अतिम आयुकर्मका स्वरूप कहते हैं. मुख्यपनेसें मनुष्य, देव, तिर्यंच और नारकी-इन चार प्रकारके आयुमेंसें जिन गतिका आयु बाधा होवे उन गतिमें जीव जाता है.

इस प्रकारके आठों कर्म कीये जाते है उससें करके जीव ससारमें परिभ्रमण करता है. जब ये आठों कर्मका नाश हो जावे तब सिद्ध भगवान् होता है सिद्ध हुवे बाद पुनः ससारमें आगमन नहीं होता है यानें जन्म जरा मरणका केवल अभाव होताहै.

९३ प्रश्न.—उक्त कथित आठों कर्म क्या क्या करनेसें जीव बाध सकता है?

उत्तर —ये आठों कर्म बाधनेके बहुत कारण हैं, तौभी मुख्यतासें ५७ हेतु हैं सो इस मुजब हैं —पाच मिथ्यात्व यानें अभिग्रह मिथ्यात्व, अनभिग्रह, अभिनिवेशिक, सशयीक और अनाभोग-ये पाच हैं उनमेंसें पहिलेके प्रभावसें, कुगुरु, कुदेव, कुधर्मका झूठा हठ ग्रहण कीया गया है वो छोडता नहीं मेरे बापदादे जो करते आये है वोही करुगा दूसरी तरहसें जो पुद्गलिक वस्तुकों मेरेपनसें अति आग्रह करके मान बैठा है वोभी मिथ्यात्व है दूसरे अनभिग्रह मिथ्यात्वसें सुदेव, और कुदेव ये दोनूकों समानतासें मान लेवे, लेकिन गुणिकों गुणिपनेसें मान लेना और निर्गुणिकों छोड देना ये नहीं कर सकें तीसरा अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके प्रभावसें सच्चे देव गुरु धर्मकों पहिचाने, मगर ममत्वके वशसें उन्होंका आदर न

करे; मगर हेलना करे. चौथा सशयीक मिथ्यात्वके जोरसें सर्वज्ञके वच-
नमें सशय करे और अनाभोग मिथ्यात्वके प्रभावसें धर्म कर्मकी कुछ
भी खबर न होवे, जड जैसा मनुष्य होवे और धर्मकी बिल्कुल रुचि होवे
नही. ये पांच मिथ्यात्वसें करके जीव कर्म बांधता है. फिर बारह अव्रत
याने पाच इद्रिय और छट्ठा मन यह छ. और छ काय. उनमें पांच इद्रियोंके
और मनके विषयमें लुब्ध रहे. और पृथिवीकाय याने मिट्टी, निमक,
धातु वगैरः, अप्काय याने पानी, तेउकाय याने अग्नि, वाउकाय याने
पवन, वनस्पतिकाय याने हरी पत्ती फूल फल वगैरः और त्रसकाय
याने बेइंद्रिय,तेरिंद्रिय,चौरिंद्रिय,पचेंद्रिय-उन्मेंभी पचेंद्रियवाले मनुष्य, तिर्यच-
पशु-गाय-भेंस-घोडा-बकरा-गीदड-हरिण वगैर', तथा पखी, और समु-
द्रके छोटे बडे मच्छ मघरमच्छ वगैरः, बहुत प्रकारके साप आदि है, वो
और देव तथा नारकी-यह चार जातिके पचेंद्रिय जीव हैं. ये छःकायके
जीवाकी हिसा करे उनसें जीव कर्म बाधता है. फिर पचीस कषाय
(जो इस ग्रन्थके पचासवे प्रश्नके उत्तरमें मोहनी कर्मके स्वरूप मध्य चा-
रित्रमोहनीकी पचीस प्रकृतिये कही गइ हैं वही पढकर ध्यानमें ले समजमें
रक्खीये कि) उनके सेवनेसें जैसी जैसी कषायकी प्रकृति होती है वैसा
वैसा कर्म बांधता है. कर्म बांधनेका बीजही वो है, और तिव्र मद कषाय
के ही सबबसें कर्म बधे जाते है. और पदरः योग याने मनके चार वचनके
चार और कायाके सात असें १५ हैं उनमेंसें मनके चार योग कहते हैं सत्य
मनयोग याने सचे विचार करना. असत्य मनयोग याने खोटे विचार करना
सत्यासत्य मनयोग याने सचाहे मगर झूठाहै, जैसें कोइ एकाक्षिकों काना कह
नेसें उनकों महा दु.ख होता है. और दूसराभी जो जो छिद्र सचेहैं मगर प्रकट
करनेसें उस जीवकों महा सताप होता है. देखो ! ये सचा कहनेसें दुःख
होता है, वास्ते असा सत्य बोलनेसें असत्य कथनका कर्म बांधा जाता है.
चोथा असत्यसत्य मनयोग याने जैसें कोइ स्त्री किसी सबबके लिये पु-
रुषका पोशाक पहेनकर आइ होवे उनकों देख पहिचान ली, मगर दिलमें
खियाल आया कि ' यदि इनकों स्त्री कहुगा तो इनका छुपा भेद खुल्ला

हो जायगा और उस्सें नुकशान होगा, ' इस वातके रक्षणार्थ पुरुषके वेषमें देखकर पुरुष नामसें कहकर बुलावे वो जानता है कि मैं सत्यरूप जानता हु तौभी असत्य प्रकाशता हु उसें यह असत्य है, तथापि उन वेषधारीका मान समालनेके लिये असत्य प्रकाश किया जाता है वास्ते असत्य नहीं–ऐसें हर किसीकों नुकशानीसें बचालेनेके सबबसें कहा जावे वो असत्य है; लेकिन मृषा नहीं. इस मुजब मनमें चिंतन करना वो मन योग कहा जाता है. और बोलना वो वचनयोग कहा जाता है वचन योगकेभी इसी मुजब चार योग समझ लैना कायाके सात योग सो उदारिक काययोग, वैक्रिय काययोग, आहारक काययोग, उदारिकमिश्रकाययोग वैक्रिय मिश्रकाययोग, और आहारकमिश्रकाययोग ये मिश्रकाययोग जिस वक्त उदारिकादि शरीर तैयार नहीं हुवे थे उन्के पेस्तर होता है. सातवा कार्मण काययोग एक भवमेंसें दूसरे भवमें जानेके वक्त रस्तेमें उदय होता है उस बाद जीव आकर अपने पिताका वीर्य और माताका रुधिरका पहिला आहार ग्रहण करता है, उसके बाद जब तक शरीरकी शक्ति नहीं बांधी गइ हो तब तक उदारिक मिश्रयोग है उसके पीछे उदारिक काययोग होता है यह सातों योगोमेंसें जो जो योग प्रवर्चे उस मुजब कर्म बधाते है इस मुजब पाच मिथ्यात्व, बारह अव्रत, पचीश कषाय और पद्रह योग–ये सब मिलकर ५७ हुवे सो कर्म बांधनेकेही हेतु है. उनमें जीतने जीतने प्रवर्त्तमान होवे उसमाफक जीवकर्म बाधता है वास्ते यह सत्तावन हेतुमेंसें जितने दूर हो सके उनोंकों दूर करनेका उद्यम करना जब सब हेतु व्यतीत हो जावेंगे तब तो सिद्ध गतिही प्राप्त होयगी.

प्रश्न ५४'—जैन दर्शनके भीतर कर्म बांधतेके साथ उसका अटकायत किया जावे, और पुरातन–पूर्वके बांधे हुवे कर्म नाश किये जावें उसके वास्ते क्या उपाय बतलाया गया है?

उत्तरः—चौदह गुणस्थानक कहे है, उसमें क्रमसें गुण वृद्धि करके अंतिम गुणस्थानक पाकर जीव मोक्ष सिद्धि प्राप्त करता है वो गुणस्थानक इस मुजब है.—

पहिला मिथ्यात्व गुणस्थानकके भीतर जीव मात्र रहे हुवे हैं, उसके प्रभावसें विपरीत बुद्धि होती है. पर वस्तु याने पुद्गलिक पदार्थकों शरीर, धन, कुटुंबादिककों मेरा मानकर उसमें लुब्ध हो रहा है वहांतक संसार है.

दूसरा सास्वादन गुणस्थानक, सो जीव उपशम समकित पाकर पीछे हठते हैं और ज्हांतक मिथ्यात्वकी भेट नहीं भइ है, वहांतक उनके बीचका जो छ आवलिकाका उत्कृष्ट काल है उतने देर ठहरने वाला है. जैसें किसी मनुष्यनें क्षीर सक्करका भोजन किया होवें और पीछेसें वमन होता है तौभी उस वक्त उसकी मिठ्ठता मुखमें मालूम होती है, वैसें समकितसें पड जाता है, तौभी समकित संबंधीके कुछ अच्छे अध्यवसाय रहते हैं, उसका नाम सास्वादन गुणस्थानक है. यहापर किसीकों शंका हो आवेगी कि पहिले दूसरे गुणस्थानकमें विशुद्ध अध्यवसायसें चडता है उनका स्वरूप चाहियें, यहां उसके बदलेमें न्यून भावका दूसरा स्थानक कहा यह क्या? उसके उत्तरमें यही समाधान है कि जो ज्ञानी महाराजने ज्ञानके भीतर बढते घटते अध्यवसायके स्थानक देखे, उसमें एक एकसें बढते हुवे अध्यवसाय देखे, मगर दूसरी पायरीके अध्यवसाय किसीके चढते हुवे देखनेमें आयेही नहीं याने पतित होतेही मालूम हुवे, उसीसे यहां पतित अध्यवसायका स्वरूप कहा. बढते हुवे तो पहिले गुणस्थानकके भावसें विशुद्ध भावरूप तीसरे गुणस्थानके भाव होते हुए नजर आये, उसीलिये पहिलेसें तीसरे गुणस्थानक जाता है.

तीसरा मिश्र गुणस्थानक है. यह गुणस्थानके प्रभावसें मिथ्यात्व भावका नाश होता है, मगर समकित योग्य नहीं होते हैं. बीचके अध्यवसाय होते है सो मिश्रभाव कहा जाता है. (इसका ज्यादा स्वरूप मिश्रमोहनीका दर्शाव पेस्तर दिखाया गया है उससें वाकेफगार होना.) जब मिश्रमोहनीका नाश होता है तब जीव समकित पाता है और चौथे गुणस्थानककी भी प्राप्ति होती है यहा पर कोइ शंका करेगा कि–'जिनकों धर्मकी अंदर रागभी नहीं है और द्वेषभी नहीं है, ऐसी प्रकृतिवाले तीसरा गुणठाणा पाते हैं, तथापि ये गुणठाणेवालेकों तो मुक्तिकी नियमा कही हैं. तब जितने जैनी हैं उन्की तो सबकी मुक्तिकी नियमा हुइ?' इसके समाधानमें यही खुलासा है कि मुक्तिकी नियमा तो, मिथ्यात्व भाव ही–शरीर, धन, पुत्र उसपर मेरेपना वर्तता है सो भाव जब दूर हो जावे और अंतरगमें शुद्ध भाव होवें तब होती है फिर इस ग्रंथके १८ प्रश्नमें विशुद्ध मार्गानुसारीके गुण कहे हैं, वो गुण प्रकट होते

है तब भवकी नियमा होती है वो मार्गानुसारीके गुण प्रकट नहीं हुवे है ओर उस गुणके अभावसें अन्याय प्रवृत्तिमें तो कुशल रहे है, तदपि जैन ऐसा नाम धारण करते है, तो उससें भवकी नियमा नही होती है, लेकिन श्रावक नाम धारण करके अन्यायकी प्रवृत्ति करे उससें जैनधर्मकी लघुता तो होती है तो जिससें लघुता होती है याने जिन जैनोंके लिये लघुता होती है उनसें मुक्तिकी नियमा कैसें होवे ? यहां पर कोइ और भी शंका करेगा कि–' जैनकुलमें उत्पन्न होना सो तो पुण्य प्रभावसें कहा है, तथापि मुक्तिकी नियमा न हुइ ये क्या ? ' इसके समाधानमें यही कहेंगे कि जैनकुलमें उत्पन्न होनेसें तो वडा फायदा है, क्यों कि उद्यम करे तो यथार्थ आत्मज्ञान प्रकट करनेका साधन है और उद्यम करके मिलावे तो आत्माकी अज्ञानता दूर हो जावे और मुक्ति पावे, या तो मुक्तिकी नियमा भी होवें, परतु वो जैनकुलमें जिस मुजव परमात्माने धर्मप्रवर्त्तना करनेकी आज्ञा दी है उस मुजव न करे, जो अन्यायादिकका निषेध करनेका कहा है वो भी दूर न करे और नाम मात्रसें श्रावकपना धारण कर लेवे तो उससें मुक्तिकी नियमा कैसे होवे ? ये तो गत जन्मांतरोंमें पुण्य उपार्जन कियाथा वोभी निकम्मा गुमा दिया, वास्ते प्रभुकी आज्ञा मुजव चलनेसें गुण होगा और जिनके अगमें मार्गानुसारीके गुण आये है वो तो तीसरे गुणठाणेका स्पर्श करके चौथा गुणठाणा पावेगा, क्यों कि कितनेक जीव जिनाज्ञा पालन कर सकते नहीं, लेकिन धर्म सत्य है ऐसा मनमें जानते है और जैनधर्मपर राग है तो यह भी परपरासें करके मुक्ति प्राप्त करनेका सवव है

चौथा अविरति समकित गुणठाणा सो क्षायकभावसें पावे तो अनतानुवधी क्रोध, मान, माया, लोभ, समकित मोहनी, मिश्रमोहनी और मिथ्यात्वमोहनी–ये सात प्रकृति, सत्ता, वध, उदय–यह तीन प्रकारसें भी नाश हो जाती है उनको क्षायक समकित होता है, और जिसको क्षयोपशम समकित होवे उसको तो ये सातों प्रकृति सत्तासें रहती है, मगर वधमेंसें दूर हो जाती है उस विषयमें यही खुलासा है कि तीन मोहनी है, उसमें वध तो मिथ्यात्वमोहनीका है, मिश्र, समकितमोहनीका वध नहीं है–सवव यह कि यह तीन नाम मिथ्यात्वमोहनीके विभाग पडनेसें होते हैं जैसकि चावलोंके उपर तूस है सो चावलोंका ढकन है, परतु तूस दूर हो जावे तो भी तूसका अश रहता है, वो निकल जाते है तब उसका नाम कुशकी ( भूसा ) कहा

जाता है. और कुशकी निकल गये बाद भी चावलोकों पानीसें धोते हैं तब वह पा-
नीका नाम चावलोंका धोवन कहा जाता है. ऐसें नाम और स्वभावमें भी तफावत
रहता है उसी मुजब मिथ्यात्वके पुद्गल हठ जाते हैं; तदपि कुशकीरूप पुद्गल रहते
हैं उनका नाम मिश्रमोहनी कहा जाता है फिर वो जाती है तोभी सहज अंश रहती
है उसका नाम समकितमोहनी है. यह तीनु प्रकृति मिथ्यात्वकी है उससे मिथ्यात्वका
बंध है, सो क्षयोपशम समकितवालेकों दूर होता है. अब उदयसें अनंतानुबंधी क्रोध,
मान, माया, लोभ तथा मिथ्यात्वमोहनी और मिश्रमोहनीका नाश होता है, और
समकितमोहनीका उदय रहता है तोभी ये समकितवालेकों मुक्तिकी नियमा है. एक
वक्त समकितका स्पर्श करकें कदापि त्याग किया होवे तथापि पुनः प्राप्त करेगा और
अंतमें मोक्ष सुख अनुभवेगा. फिर उपशमभावका उपशम समकित होता है, वो उपश-
मभावका चौथा गुणठाणा पाता है. वो उपशम समकितवालेकों सातों प्रकृति सत्तामें
रही हैं, मगर उदय तथा बंधमें नहीं है. ये चौथे गुणस्थानकवालेकों समकितके ६७
बोल प्राप्त होते हैं. [ महोपाध्याय श्री यशविजयजीने समकितकी सज्झाय की है,
उसमें उन बोलोंकी सविस्तर हकीकत है, वो पढकर समझ लेना. ] उनमेंसें पांच
लक्षण यहां कहते हैः—

पहिला उपशम लक्षण सो–अपराधीके संग भी रोषभाव न रक्खे, किसी म-
नुष्यने चाहे वैसा अपराध किया हो और उसीका कोइभी काम उनके हाथमें आया
हो तोभी उनका काम अपना अपराधि है ऐसा जानकर न बिगाडे.

दूसरा संवेग लक्षण सो–देव मनुष्य सुखके सुखकों सुख न जाने. संसारकों
उपाधि जाने. आत्मा जितना कषाय प्रकृतिसें मुक्त होवे और आत्माका गुण प्रकट
होवे उतना सुख माने तथा केवल मुक्तिकी अभिलाषा रहें सो संवेग लक्षण है

निर्वेद सो–संसारमें रहा है; मगर संसारमेंसें निकलनेका अतिशय चित्त हुवा
है, संसार कैदखाने समान लगता है कब ये संसार उपाधि जडभावकी छोडदु, और
मेरे सहज स्वभावमें रहुं? ऐसी भावना रातदिन घनी रही हैं. कोइ कहेगा कि–
'ऐसे भाव है तथापि संसारमें क्यों पड रहा है?' इसके उत्तरमें यही है कि पूर्वके
भोगकर्म तीव्र बांधे होवें उस बंधनके सबब जीव छोड सकता नहीं. छोड देवे तोभी
निकाचित कर्म पीछे उदय आते हैं. कर्मकी गति विचित्र है, मगर वो विचित्र कर्म

दूर करनेका उपाय तत्त्वरमण है जो ज्यों ज्यों विशुद्ध होवे त्यों त्यों जडता नाश होती है.

चौथा अनुकपा लक्षण सो–दु खी जीवका दु ख दूर करनेका शक्ति मुजब उद्यम करे शक्ति है तो दु खीका दु ख दूर करनेमें लापरवाह न रहे. यह द्रव्यानुकंपा कही जाती है और भावअनुकपा सो धर्म रहित जीवकों अपनी ज्ञानशक्तिसें धर्मोपदेश करकें धर्मका सत्कारी करे. यहां कोइ शका करेगा कि–१३ प्रश्नमें तो गुरुमुखसें धर्म श्रवण करना कहा है, तब क्या श्रावकके मुखसेंभी धर्मका उपदेश श्रवण करना? इसके समाधानमें यह खुलासा है कि–श्रावककों भावदया लक्षण यही है कि धर्मका सत्कारी करना, वास्तें मुनिमहाराजका योग न होवे तो वडील–वयोवृद्ध–तपोवृद्ध–ज्ञानवृद्ध श्रावक होवे सो धर्मका उपदेश सुनावे और दूसरे श्रावक श्राविकाए सुनें. श्रावककों धर्म श्रवण करानेका अधिकार श्री भगवतिजीमें, तथा धर्मरत्न प्रकरणमें है. और उपदेशमालामे तथा आवश्यककी चूर्णीमें भी कहा है देखियें वदिताके, भीतर भी यह गाथा मौजूद है'—' पडिसिद्धाण करणे। किचाण म करणे पडिक्कमण॥ असद्दहणे अतहा। विवरीय परूवणाअेय.' इस गाथाके अर्थमें अर्थदीपिकाके कर्त्ताने विस्तारसें वर्णन किया है. फिर श्री शांतिनाथजी महाराजके पूर्वभवोंमें पोषह लेकर शास्त्र सुनाया था अैसा अधिकार है औरभी बहुत जगह पर यह बातकी प्रतीतिके पुरावे मौजूद है. वास्ते उचित है कि श्रावक अपनी शक्ति मुजब धर्मोपदेश करै और जीवकों हरएक रीतिसें धर्ममें जोडदेवें सो भावदयाका लक्षण है.

पाचवा आस्तिक्यता लक्षण सो–जिनराजने प्ररूपे हुवे आगमोंपर, पचांगीपर आस्ता होवे और वोभी शका रहित होवे, क्यों कि जो जिनेश्वर है सो राग द्वेष रहित है उस्सें उन्होंकों कम ज्यादा कहनेकी जरूरत नही अैसा निर्धार किया है फिर जो आगम है सो न्याय युक्त हैं आगमके वचनोंमें किसी जगहपर शका उत्पन्न होवे वैसा हैही नहीं. जो जो बाते हैं सो सो न्यायसें सिद्ध हैं पुनः जो जो वस्तु आगममें कही गइ है उन करते अधिक विवेचनादिके साथ दर्शाइ हुइ कहीं अन्यशास्त्रोंमें नजर नहीं आती है आत्माकों रागद्वेषसें मुक्त करना सो जैनशासनमें कहा है वोही वेदांत, न्याय, सांख्य, बौध–ये सब दर्शनवाले कहते हैं; मगर जैनसें अधिक मोक्षसाधन दूसरे दर्शनामें मालूम नहीं होता है पुन सूक्ष्म आत्मस्वरूपकी बातें जितनी जैनमें बतलाइ गइ हैं उतनी दूसरे कोइभी दर्शनमें मालुम नही होती है. फिर निजस्वरूपमें जोडनेवाले

व्यवहारिक साधन भी जैनमै बताये हैं, उन्सें अधिक साधन दूसरे दर्शनोंमें मालूम नहीं होते है. और जिनकें साधनोंसें जल्दी राग द्वेषकी प्रकृति शांत होती है. पुण्य पापके मानने वाले नास्तिक सिवा यवन भी है, मगर जैनसें ज्यादे मानने वाले कोइभी नहीं हैं. जैनमें पुण्य पापके स्वरूप बहुतही अच्छी तरहसें दिखलाये गये हैं. और मोक्ष साधनके उपाय जो जो दिखलाये है, वै वै सब दूसरे दर्शनसें जैनने अधिक दिखलाये हैं. उससें चित्तमै जैनदर्शन उपर अतिशय आस्ता हुइ है. फिर नास्तिकताका मत न्यारा पडता है. वो मत कुछ न्याजवी नहीं हैं उस मतका कुछ स्वरूप बतलाना चाहता हु, वास्ते रायपसेणी सूत्रमें केशीगणधर महाराजनें परदेशी राजाकों समझाये हैं वो कथन नीचे मुजब साराशरूप हैं.—

परदेशी राजाने प्रश्न किया कि–' आप कहेते हो कि–जीव और शरीर भिन्न है और जैसा करै वैसा भुक्ते, तौ मेरो बाप नास्तिक मतवाला था, बहुत हिंसा व–गैरः करताथा, वो मर गया है, वो नरकमें जाना चाहियें, और वैसाही हुवा होवै तो नरकके दुःख देखकर वो मुजे यहांपर आकर कहेता कि, मैंने पाप किये हैं, उ-सीसें नरकके दुःख सहन करता हु, वास्ते तु भी पाप न कर, धर्म कर कि जिस्से दुःख न भुक्तने पडै. जो अैसा आकर कहै तौ मैं शरीर और जीवकों अलग अलग मान लु.' यह सुनकर केशीमहाराजनें कहा कि–' हे परदेशीराज ! तेरी सूर्यकांता नामक रानी है वो सब प्रकारके वस्त्राभूषण पहेनकर बैठी हो, उस वक्त कोइ तोफानी बदनिगाहवाला पुरुष उनकी साथ बदचलन चलावे और वो तु देख लेवै तौ उसकु घर जाने दे या जानसें मार डालै ?' परदेशीराजाने कहा–' उसको तो शूलीपैं चडा दुं, अनेक विटबना करु, उसकों घरपर कभी न जाने दुं.' तब केशीमहाराजनें कहा कि–' जैसें तु उसका विनाश करै और घरपर न जाने दे, वैसें नरकमेंसें परमाधामी भी आने क्यों देवै ? और न आने देवै तौ किसतरहसें आने पावै ? वहांही दुःख सहन किया करै.' फिर परदेशी राजानें दूसरा प्रश्न किया कि–' मेरे बापकी माता बहुत धर्मिष्ट थी, वो हमेशां पौषध प्रतिक्रमण किये करती थी, दान देती थी वो तु-मारे कथन मुजब देवलोकमें जानी चाहियें, तो वो देवका सुख अनुभवती है तब यहा आकर मुजे क्यों धर्म करनेका नही कहेती है कि मैं देवलोककी अंदर बहुत सुख भुक्तती हु उस वास्ते तु भी धर्म करनेसें वैसाही सुख प्राप्त करेगा, जो अैसा कहे तो मैं सचा मान लु कि जीव भिन्न है और शरीर भी भिन्न है.'

केशी महाराजने कहा–' तु स्नान मजन कर सुदर मूल्य वस्त्राभूषण पहेनकर पवित्र पूजाके उपकरण लेकर देव पूजनेके लिये चला जा रहा होवै उस वक्त कोइ मनुष्य कहे कि यह विष्टाके कमरेमें आओ, विश्राम ल्यो, खडे रहो, बैठो, सो जाओ, अैसा कहे तो तु वहा जायगा ? '

परदेशीराजाने कहा—' जाना तो दूर रहा; मगर उसका कथन मात्रभी न सुनु. ' अैसा सुनकर केशी स्वामीने कहा–' इसी मुजब देवलोककी अदर देवता पैदा होता है, वहा दिव्यसुख, दिव्यभोग–अतिशय सुदर महा सुगधमय है, उनमें लीन होता है, उसके साथ स्नेहगथी बधता है, और अत्रके सगेसबधीका स्नेह तूटता है; तथापि अत्र आनेका विचार करता है कि मै दो घडी बाद जाउगा; लेकिन वहा के आयुष लबे होनेसें वहाकी दो घडी व्यतीत होनेमें अपने दो हजार वर्ष चले जाते इससें यहाके जो सगे होते हैं, उनका अल्प आयुष होनेके सबबसें कितने जन्म व्यतीत हो जाते है, कहो अब कैसें मिलाप होवे ? और यहा न आनेका दूसराभी सबब है कि–मानवक्षेत्रकी अदर उदारिक शरीरके लियेसें निहारादिककी बदबु चारसो या पाचसो योजन तक उछलती है, वो बदबुके सबबसें सुगधमय पदार्थोंमें निवास करनेवाले देव यहा नहीं आ सकते हैं, तो तुझे किस तरह तेरे बापकी माता यहा आ कर कुछ हाल कह सके ? यहा आनाही दुर्धर है '

परदेशी राजाने प्रश्न किया कि–' मैंने एक दिन एक चोरकों लोहेकी मजबूत छिद्र रहित कोठीमे घुसेड रक्खा था, पवन जा सके वैसाभी बारीक छिद्र नहीं था, तथापि कितनेक दिनोंके बाद वो कोठीकों खोलकर देखा तो वो चोर मर गया मालूम हुवा जब शरीरसें जीव अलग था तो उनका जीव किस रस्तेसें बहार निकल कर चला गया ? शरीर और जीव एकही है, वास्ते भिन्न कहना झूठा है '

केशी गणधरने कहा—' सुन, एक बडे मकानमें भूमिगृह है उस भूमिगृहमें जाकर कोइ सख्स उनके सब बारी जाली वगेर. हवा आने जाने के मार्ग–छिद्र बध कर पीछे ढोल बजावे तो ढोल बजानेका आवाज बहार आ सकता है या नहीं ?'

परदेशी राजाने कहा—' बेशक आ सकता है ! ' केशी महाराजने कहा–' जैसे सब छिद्र बध करदेने परभी ढोल बजानेका आवाज बहार आ सकता है, तैसही सब छिद्र बध करनेपरभी जीव चला जा सकता हैं '

परदेशी राजानें फिर प्रश्न किया—'मैने एक चोरकों लोहेकी कोठीमें पूरकर सब छिद्र बंध कर दियेथे, उससें वो मर गया, मगर जब वो कोठीकों खोलकर देखा तो उनके कलेवर में कीडे पडे हुवे नजर आये, तों वो कीडे किस तरह अंदर उत्पन्न हो सके?'

केशी महाराजने कहा—'लोहेकों अग्निसें तपाकर लालचोळ बना देते हैं तब उसमें अग्नि दाखिल होता है. कहिये, उसमें छिद्र तो नथे, तोंभी क्यों कर अग्नि दाखिल हो सका? जैसे लोहेमें अग्नि दाखिल होते मालूम न हुवा वैसेंही अरुपी जीव कलेवरमें दाखिल हुवे, मालूम न हो सका.'

परदेशी राजानें प्रश्न किया—'कोइ युवान, बुद्धिमान या निरोगी मनुष्य बाण छोडे उस मुजब रोगी, बाल्यावस्थावाला बाण छोड शकेगा? मतलब यह कि वो नहीं छोड सकेगा. तुमारे कहने मुजब जीव तो वे दोनुमें है, मगर शरीरकी न्यूनता होनेसें वैसा तफावत मालूम होता है, वास्ते शरीर है सोही जीव है.

केशी महाराजने कहा—'कोइ युवान पुरुष है और बलवानभी है, मगर उनके पास पुरानी कावड है, तो वो कावडसें भार उठा सकेगा? अर्थात् नहीं उठा सकेगा; क्यों कि कावड तूट जावे. उसी तरह जीवके साथ शरीरका संबंध है, मगर शरीर निर्बल है, बाल्यावस्थावत है, तो उससें बाण छोडना क्यों हो सके? मतलबमें नहीं छोड सके.'

परदेशी राजानें फिर प्रश्न किया—'एक चोरको मेंनें जीते हुवे तोल लिया और उस पीछे शस्त्र बिना उसका जान निकाल दे फिर तोल किया तों वजनमें कुछभी तफावत मालूम न हुवा. वास्ते जीव जूदा होता तो तोल कम ज्यादा होता; मगर ऐसा न हुवा तो जीव शरीरसें जूदा है ऐसा संभव नहीं होता है.'

केशी महाराजने कहा—'चमडेकी धमन खाली होवे उस वक्त उसका तोल कर लेवे और फिर उसमें पवन भरकर तौल करें तोभी तोलमें बिलकुल तफावत नहीं होता है. उसी मुजब जीव हे उसमें वजन नहीं होता है, क्यों कि अरूपी है, वास्ते कम ज्यादा तोल हुवा मालूम नहीं हो सकता है

परदेशी राजाने कहा—'मैने एक पुरुषके शरीरमें सब जगह जीवकों देखा, मगर कहीं मालूम न हुवा, तो पीछे उसके टुकडे कीये और फिर जीवकों देखा तो

भी मालूम न हुआ, तो फिर बहुत बारीक टुकडे करके देख लिया मगर जीवका पता न मिला; वास्ते जीव जूदा नहीं है '

केशीमहाराजने कहा—' कोइ पुरुषमंडली जगलमें गइ और रसोइ बनानेके लिये वहां अग्नि पैदा करनेके वास्ते लकडेके बहुतसे टुकडे करके देखा; मगर अग्नि देखनेमें न आया, तब सब उदास हो बैठे. उनमेंसें एक बुद्धिशालीने कहा कि तुम सब न्हा धोकर देवपूजन करना शुरु करो, मैं अग्नि उत्पन्न करकें रसोइ तैयार कर लुगा. ' पीछे उन बुद्धिमानने जगलकी अदरसें अरणीका लकडा ढुढ निकाला और उनके दो टुकडे करकें एक दूसरेके साथ घिसना शुरु किया तो फौरन अग्नि पैदा हुवा और उससें रसोइ पकाकर सबकों भोजन कराया उसी मुजब शरीरके टुकडे करनेसें जीव नजर नहीं आता है, जैसें बुद्धिमानने बुद्धिबलसें अग्नि पैदा किया, लेकिन लकडेके टुकडे करनेसें अवलमें अग्नि पैदा न हुवा और न नजर आया, उसी मुजब शरीरके टुकडे करनेसे जीव नजर नही आता है, लेकिन ज्ञानवत पुरुष ज्ञानबलसें जीवकों देख सकता है '

परदेशी राजाने प्रश्न किया—' यह दृष्टात बतलाये, मगर जब प्रत्यक्षपनेसें जीवकों हाथोंमें पकडकर बतलाया जावे तब मैं सच्चा मानु ? '

केशी महाराजने कहा—' यह दरखतके पत्ते किस सबबसें हिलते है ? कोइ देव हिलाता है ? '

परदेशी राजानें कहा—' पवनसें हिलते है. '

तब केशी महाराजनें कहा—' पवनकों तु देख सकता है ? '

परदेशी राजानें कहा—' मैं नहीं देख सकता हु '

तब केशी गुरुने कहा—' पवन देखनेमें नहीं आता है तो भी पवनही हिलाता है ऐसा ज्यों मान लेता है त्योंही जीव नजर नहीं आता, मगर लक्षणसें मालूम होता है और केवलज्ञानी महाराज प्रत्यक्ष देख सकते हैं–दूसरे नहीं देख सकते है. '

इस तरह युक्तिवाले प्रश्नोत्तर होनेस परदेशी राजाने नास्तिक मत छोडकर जीव अजीवादि नौ तत्वकी श्रद्धा करकें श्रावकके व्रत अगिकार किये

इस मुजब बहुत तरहसें नास्तिकवाद शास्त्रमें निराकरण किया हुवा नजर आता

है, उससें मक्षमार्ग और आगमपर पूर्ण श्रद्धा-आस्ता हुइ है. स्वप्नमें भी संशय नहीं होता वही आस्तिक्यता लक्षण ध्यानमें लैना.

यह पांचों लक्षण सम्यक्त्व दृष्टिवालेकों होते है. उनकों शोचना और जो न होवै तों इन्होंकों प्रकट करनेके लिये योग्य उद्यम करना. मुख्य उद्यम यह है कि-हरएक धर्मकी वातें सुनकर आत्मामें विचार करना कि मेरेमें यह गुण नहीं है वास्ते प्रकट करनेका उद्यम करु परंतु सम्यक् दृष्टिकी धर्म सुनकर दूसरेकी तर्फ नजर न जावै कि अमुक निर्गुणि है. वो तो जिन जिन पुरुपमें गुण होवै वो ग्रहण करै अन्य दर्शनकी भी अच्छी रीतभात होवै तो उसकी निंदा न करै उसपर महोपाध्यायजीने कहा है कि-'दर्शन सकलके नय ग्रहे.' याने जो जो दर्शनवाले जो जो नयसें धर्म करते होवै वो वो नय विचारसें जान लेते हैं और आप अपने सातों नयके विचारमें रहते हैं. फिर जैनदर्शनमें भी पचमकालके प्रभावसें कदापि क्रिया फेरफार मालूम होवै, तो भी मध्यस्थ दृष्टि रखनी. लेकिन एकांत खींचातानमें नही पडना. योग्य जीव होवै और कदापि क्रिया उनके गच्छाचार मुजव करते हो अथवा दूसरे आप अपने गच्छकी रीति मुजव करते होय उसकी निंदा न करते हो तो अपन भी उनके साथ मध्यस्थ रहना, मगर खींचातान करनी नहीं खींचातानसें वहुत विकल्पमें पडनेका होता है और धर्म है सो निर्विकल्प दशाहीमें है, वास्ते जो जो काम करना उन उनमें निर्विकल्प दशा होवै वैसी क्रिया करनी. सोवत करनी उनमें भी स्वगच्छी होवै और उनकी सोवत करनेसें विकल्प होता होवै, और परगच्छी होवै मगर उसकी सोवतसें निर्विकल्पदशा होती होवै तो उनकी सोवत करनी दुरस्त है. हरेक रीतसें राग द्वेपकी प्रकृति कम होवै वैसाही करना. वाद विवाद करनेसें स्हामनेवालेकों गुण होवै अर्थवा जैनशासनका जय हो ऐसा होवै तो करना, लेकिन नाहक कठशोप होवै वैसा वाद करना वो वेमुनासिव है. हरिभद्रसूरीजीने अष्टकजीमें ऐसे वादका निपेध किया है; वास्ते जिसमें दूसरेकों या अपने आत्माकों गुण प्राप्त हो वैसा होवै तो वाद चर्चा या धर्मकथा करनी और ये गुणठाणेवाले यही करै. आतमधर्मका लाभ होवै उसीमेंही काल निर्गमन करै. संसारमें रहा है, मगर सांसारिक सुखकों वेठ (विगर पैसे और विन मरजीकी मजदूरी.) रुप जानता है, लेकिन उसमें प्रसन्न नहीं होता है. जो जो संसारि काम करता है उसमें शोचता है

कि यह कृत्य मेरे करने लायक नहीं है, मगर गत जन्ममें कर्म बांधे हुवे है उसीसें मैं इसीमें बधा हुवा हु, इस उपाधीसें नहीं निकला जाता है, लेकिन जब रागद्वेषकी प्रकृतिसें मुक्त होकर यह ससारकी जालमैसें निकलुगा और मेरे देखने समझनेके स्वभावमें चलुगा वही मेरा कार्य है. अबी भी जो जो शुभ अशुभ कर्मके उदय होवे उसमे मेरें लीन होना वो मेरा स्वभाव नहीं है मै जहां तक ससारमें रहा हु वहांतक मुझे मेरे स्वभावमें रहकर उदय आइ हुइ क्रिया करनी है सहजहीमें समकितके प्रभावसेंही आप लीन नहीं होते है, पुद्गलका तमाशा देखते है और आप अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्रमेंही मग्न हो रहे है. ये गुणमेंही आनद मानते है ससारी-आनद तो अस्थिर है, वास्ते वो आनदकी तो स्वप्नमैभी इच्छा नहीं करते हैं ऐसा समकितका प्रभाव है यहापर कोइ शका करेगा कि-श्रेणिकराजा क्षायक समकितीथे, तथापि उन्होने कुछभी व्रत क्यों न किया? ससारसें ऐसी उदासीनता होनेपरभी क्यों व्रत न ग्रहण किये? इसके समाधानमें यही कहेंगे कि-श्रेणिकराजाने समकितकी प्राप्तिके पेस्तर नरकका आयु बाध लियाथा उसीसें नरकमें जानेवालेथे वैसी सबबसें त्यागभाव नहीं हुवा मगर उन्होंके दिलमें तो त्यागभाव बना हुवाही रहाथा और विरती तो पांचवे गुणठाणेसें होती है, वास्ते कुछभी व्रत नहीं करनेसें समकितमें दूषण नहा, लेकिन सब जीवकों ऐसा नहीं होता है. क्यों कि मार्गानुसारीपना आता है वहांसेही विरतिके भावहो आते है. योग दृष्टिमें स्वरूप कहा है, वहा पाचवी दृष्टि पाता है तब समकित पाता है और पहिलेसें चौथी दृष्टि तक मार्गानुसारीपना कहा है. उसमें पहिली दृष्टिमेंही व्रत प्राप्त होवे ऐसा कहा है, वास्ते बहुतसे जीवको तो यथाशक्ति विरतीके भाव होतेही है किसी जीवकों अतरायका उदय होवे तो व्रतकी अदर वीर्य स्फुरा न सके और जिसकों वीर्यांतरायका क्षयोपशम हुवा है वे तो वीर्य स्फुरा या करे-जो जो पर वस्तुका त्याग बन सके उतना करे और श्रावकके गुणठाणरूप व्रत तो पांचवे गुणठाणमें करे.

पाचवा देशविरती गुणस्थानक जब प्रकट होवे तब अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभका नाश होता है उन्होंके साथ दूसरी प्रकृतिये भी उदय बधसें नाश होती है, वो कर्मग्रथ देखनेसें मालूम होगा इस गुणस्थानपर देशसें अव्रतका नाश होता है, उसीसें समकित गुणस्थान करते भी विशेष करके परभावकी इच्छा दूर हो जाती है ससारसें भी ज्यादे उदास होते है खान-पान-वस्त्र-धन-धान्यकी इच्छा

कम हो जाती है. मनमै तौ संयमके भाव वर्त्तते है, मगर पूर्वकर्मके जोरसें मत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभका उदय रहा है उससें सयम नहा ले सकता है; लेकिन हृदयमेंसें सयमकी भावना नाबूद नहीं हुइ. संसारी काम करता है सो वेठरूप करता है और विरतीमै भी आनंदादिक श्रावकने वहुतही सरताइ की है, वो वात उपासकदशा सूत्र देखोगे तो मालूम होवैगा अब श्रावक किस मुजब विरति पाले ? उसका बयान करते हैं. पहिले स्थूल माणानिपात व्रत लेवे, क्यौं कि जो गृहस्थावासकी अंदर आरंभादिक कार्य किये विगर निर्वाह नहीं हौं सकता है, उससें सर्वथा या समस्त मकारसें दया पालनी वो नही बन सकता है. वहां श्रावककों सवा वसेकी दया मुनिकी अपेक्षासें कही है सपूर्ण दया पालनी सो वीस वसेकी दया है, वो त्रस-हिलते चलते जीव, स्थावर-पृथ्वि, अप, तेउ, वाउ, वनस्पति-ये त्रस और स्थावर दो मकारके जीव हैं उन सबकी दया पाले तब २० वसेकी दया पलती है, परंतु स्थावर तौ खाने पीनेके काममैं आते है उसीसे उन्होंकी दया नही पल सकती है, वास्ते दस वसे चले गये. पीछे दस वसे त्रसकी दयाके रहै उसकी अदरसें भी अग्नि वगैरः के आरभादि करनेसें त्रस जीवका नाश होता है उससें वो भी न पल सकै, वास्ते उनमैंसें भी पाच वसे चले गये. उस वाद भी आरभके काम सिवा कोइ राजा प्रमुख है उनका गुन्हा किया हैं तौ अपराधीकी दया भी ससारमें रहेसें नही पल सकती है वास्ते पाचमैंसें ढाइ चले जाते हैं, तव वाकीमें ढाइ रहै. उसमें भी सापेक्ष हिंसाका त्याग नहीं होता है, जैसैं कि शरीरमें जीव पडे है किंवा अपने स्वजन सज्जनादिकके शरीरमें जीव पडे हैं, अब वो जीवकों दूर करनेके लिये उद्यम करनाही पडता है तब वो जीवोंका नाश हो जाता है, उससें वो दयाभी नहीं पली जाती हैं, तौ ढाइ मैंसे सवा गया तौ सवा वाकीमें रहा याने अनारंभ अपराधसें निरपेक्ष त्रस जीव मारनेका त्याग करता हे उस मुजब पहिला व्रत धारण करै.

दूसरा मृषावाद व्रत वो किसी उत्तम पुरुषसें सर्वथा मृषावादका त्याग होवे तौ वैसा करै और वैसा न वन सकै तो पाच वडे झूठ कहे हैं उनका त्याग कर देवै. याने कन्यालीक-कन्याका विवाह जोडनमे झूठ न वोलना; क्यौं कि जो उलटा सूधा समुझाकरके सयोग जोड देवै उससें उनको जन्मभर दुःख सहन करना पडे, वास्ते उस काममें झूट वोलनेका त्याग करना गोवालीक याने गाय-भैंश-वहेलके काममें

झूठ बोल अर्थात् किसी बेहलकी पाच कोश जानेकी ताकत है और दश कोश जा सकता है ऐसी प्रतीति देवै, उससें विचारेकों वो खरीदनेवाला पांच कोशके बदलेमें दस कोश चलाता है जिस्सें जानवरकों बडा दुःख होता है, वास्ते ऐसे सबबमें झूठ नहीं बोलना भोमाल्लीक याने जमीनके काममें झूठ बोलनेका त्याग करना—मतलबमें जो दो तसू जमीनके बदलेमें ऐसी लडाइ होती है कि जिसके लिये हजारों रुपये कचहरी चडनेमें बरबाद किये जाते है, वास्ते उस सबबमें बडा विकल्प होता है ऐसा समुझकर मृषा बोलना नहीं थापणमोसा अर्थात् किसीने विश्वाससें अपने वहां कुच्छ चीज रखी होवे और जब मालधनी मगनेकों आवे उस वखत उस चीजका इन्कार करना कि ' तूने मेरे वहा कब चीज ररखीथी ? क्या गले पडता है ? वाह ! ' ऐसा जवाब देना उसकों थापणमोसा कहा जाता है उस विचारेकों वो रकम न मिलनेसें आजीविकाका भग होता है और उसी सबबसें बडाभारी दुःख होता है; वास्ते ऐसी बातमें झूठ नहीं बोलना झूठी गवाह याने खोटी साक्षी पूरे, उनसें राजा दड देवै, लोग गाली देवै और अपकीर्ति होवै, वास्ते ऐसे काममें झूठ नहीं बोलना. ऐसी बातोंसें यह लोकमें धर्मिष्ट मनुष्यकी बहुत लघुता होती है और आते भवमें महान् दुःख भुक्तने पडते हैं. इस मुजब दूसरा व्रत अगिकार करै.

अदत्तादान याने पराइ वस्तु किंचित्भी न लेनी, वोभी सर्वथा पालना चाहियें, लेकिन सर्वथा न पल सकै तौ रस्तेमें किसीकों लुट लैना किसीकी घर फोडकर चोरी करना, दूसरी कुजी—चावी लगार माल निकाल लेना या किसेके खीसेकी—जेबकी अदरसें कुछ निकाल लैना ऐसी चोरी अगर सरकारी दाणचोरी वगैर' का त्याग करना.

मैथुनव्रत अर्थात् स्त्रीसभोग या पुरुषसभोगका सर्वथा त्याग बन सकै तौ करना और न बन सकै तौ अपनी स्त्रीसें सतोष रखना और दूसरी स्त्रीओंके साथ विषय सेवनका त्याग करना

परिग्रहव्रत अर्थात् जितना धन धान्य घर दुकान आभूषण स्त्री वगैर' होवै उतनेमैही सतोष ररखै, और उनसें ज्यादा प्राप्त करनेका त्याग करै या आपकों जितनी इच्छा होवै उतनी छूट रखकर उनसें ज्यादा न रखनेका नियम कर लेवै. ऐसा करनेसें तृष्णा शान्त होती है तृष्णा शान्त होवे तो बुरे काम करनेकी जरूरत

नहीं रहती है और धर्मसाधन करनेकाभी वख्त ज्यादा मिलता है, उस्से आणदजी वगैरः श्रावकने आपके पास जो धन-द्रव्य था उतनेसेंही संतोष किया था

दिग्विरमणव्रत अर्थात् चारों दिशाओंमें तथा उर्द्ध, अधो-नीचे ऊपर जानेकी मर्यादा कर लेवें कि इतने योजन तक जाना. येभी कब होता है कि अतिशय धन मिलानेकी, विविध पदार्थ देखनेकी, अनुभव करनेकी तृष्णा कम होती है तब बन सकता है. फिर जितना योजन जानेका नियम किया है उस हदसें बहार जाकर हिंसा करनी, झूठ बोलना, चोरी करनी, मैथुन सेवना, व्यौपार करना, ये सब काम करनेका सर्वथा बंध हो जाता है, उस्से यह व्रत बहुत लाभकारक है.

भोगोपभोग व्रत अर्थात् एक वेर भोगवें सो भोग-खान पानकी चीज, और वेरवेर भोगवें सो उपभोग याने दागीने वस्त्र स्त्री वगैरः वस्तु जगतकी अंदर है उन सबकी कुछ हमेशां जरुरत नहीं पडती है, क्यों कि जितनी वस्तुओंसे निर्वाह करना चाहे उतनी वस्तु-ओंसें हो सकता है क्यों कि उनका चित्त तो आत्मभावोंसें हुवा है फक्त संसारमें कारणसर रहा है, लेकिन उनमें लीनता नहीं है वास्ते अपने खाने पीने पहेनने ओढनेकी जितनी जरुरतकी चीजें होवें उतनीही रखकर बाकीकी चीजोंका त्याग कर देवें. वो चौदह नियममें आता है उनकी मर्यादा कर लेवें पुनः व्यौपार करनेमेंभी बहुत सावद्य व्यौपार जो पंद्रह कर्मादान याने बहुत पाप करना पडे उससें कर्मका आगमन होवें सो कर्मादान कहा जाता है. उन कर्मादानोंका बन सके तो सर्वथा त्याग करना और न बन सके तो निर्वाहके योग करः मगर उनके सिवा न करें. वो पदरह कर्मादान इस मुजब हैः—

इगाली कर्म—अग्निके आरंभसें जो व्यौपार होवे सो—कुम्हारका निमाह, चूनेकी भट्ठीयें, हलवाइ, लुहार, सोनार, अग्निसें चलनेवाले संचेसें काम करनेवाले, तथा कोलसे बनाके वेचनेवाले और दूसरे अैसेही व्यौपार करनेवाले होवे वसा व्यापार बंध कर देवें.

वन कर्म.—वृक्ष कटानेका धंदा, उसमें खेतीका काम, बाग बगीचे बनानेका कामका समावेश हो जाता है.

साडी कर्मः—गाडे रथ वगैरः बनाकर वेचनेका धंदा—रोजगार करें.

भाडी कर्मः—गाडे, ऊंट, मकान वगैर. बनाकर भाडा पेदा करनेका व्यौपार करें.

फाडी कर्म'—जमीनें फोडनेका काम—उसमें त्रस जीवोका नाश होता है

दातका व्यौपार—न करै, क्यों कि हाथियोंके दांत निकलवानेमें हाथीकों वडा दु'ख होता है. पुन वो दातोंकों काटकर उनके टुकडे वनानेके वास्ते पानीमें डालने पडते है उसमेंभी वहुत जीवोंकी हिंसा होती है

लाखका व्यौपार'—उसमें वहुतसे जीवोंकी उत्पत्ति होती है वास्ते त्यागने योग्य है.

रस —घी तेल गुड सकर निमक वगैर नरम पदार्थके व्यौपारमें भी जीवहिंसा होती है

केश व्यापारः—ऊन वेचनेका और मनुष्य वेचनेका व्यौपार नहीं करना.

विष व्यौपार'—अफीम, वछनाग समल वगैर' झेरी चीजोका तथा शस्त्र—तलवार भाला छुरी कटार आदि हैं जिनसें दूसरे जीवका प्राण नाश होवै वो व्यौपार नही करना.

यत्र व्यौपार.—चक्की वगैर' यत्र रखकर उससें काम कर देवै

पीलन कर्म —घाणी—तल एरडी गडे पीलनेकी किंवा कपास पीलनेका चरखा, रु वगैर' की गठडीयें वांधनेके सकजे आदि कि जिस्सें वहुतसें जीवोंका नाश होता है उसका त्याग करना.

निर्लछन कर्म —लडका लडकीके कान नाकमें छद करावे, वहेलके वृपण कटावे, जानवरोंकों डाम देवै उसकों निर्लछन कर्म कहा जाता है उसका त्याग करै, क्यों कि इस्सें जीवोंकों वडा दु.ख होता है

अग्नि मारफत लाह्य लगाना—दव लगाना, खेतरोंकों और जगलोंकों जला देना उसमेंभी वहुतसें जीवका सत्यानाश निकल जाता है, वास्ते त्याग देना

सर याने सरोवर तालाव कुवे टाकेके भीतरसें पानी निकालकर खाली करनेका धदा नहीं करना, क्यौ कि उससें पानीके जीवोंका निकन्दन हो जाता है, वास्ते ये भी त्यागने योग्य है मतलवमें ऊपर कहे गये पद्रह कर्मादानोंका त्याग कर देवै.

यह व्रतवाला वाइस अभक्षकाभी त्याग कर देवै. वे वाइस अभक्ष कौनसे है?

पीपलके फल, पीपलीके फल, गूलरके फल, वडके फल, कुठुवरके फल, मांस, मदिरा, मस्का, सहत, रात्रिभोजन, विदल याने मुग उडद मठ चिने वगैरः के साथ छांछ दुध दहीं खाना, शायद गरम किया जावै तौभी जोश आये बाद काममें लैना, तो अभक्षका वाद नहीं लगता है. गरम न किये हुवे दही वगैर के साथ मुग उडद

चिने आदिका सयोग होता है उससें त्रस जीवोंकी उत्पत्ति होनी है, वास्ते इसका त्याग करना सब जातिकी मिट्टी, सचित्त निमक, हिमालयमें जम जाता हुवा पानी-बरफ, ऑले, जहर, वैगन कि जिसकी टोपीमें त्रसजीव रहते हैं, उसका नाश होनेके सबबसें उनका त्याग करनाही दुरस्त है, बहुबीज याने जिस फलके अदर एक दूसरे बीजके बीच अतर नहीं है वैसे फल, (अनारमें बहुतसे दाने होते है मगर एक एकसें अलग बीज रहते हैं-बीच परदह होता है. वास्ते वैसे फल बहुबीज नहीं गीने जाते हैं.) तुच्छ फल-बेर वगैरः कि जिसमे खानेका भाग कम और फैंक देनेका भाग ज्यादा होवे वैसे फल, धूप दिखाये बिगरका आचार, गत दिनकी बनाइ हुइ रसोइ, अनजाने फल, अनतकाय (जो चीज भांगनेसें समान दो टुकडे हो जावे वैसी वस्तु.) या कदमूल-ये बाइस अभक्ष याने न खाने लायक चीजें हैं-उसका श्रावक अवश्य त्याग कर देवें इस मुजब भोगोपभोग व्रतकी मर्यादा करे, सबब कि जो पुद्गल भावकी वाछना नहीं है, लेकिन आत्मभावकीही वाछना है, उससें जो निभ सके उनके सिवाकी चीजोंका त्याग कर देवे निर्वाहकी चीजोंका त्याग न करे, तौभी मतलब जितनीही छूट रक्खे.

अनर्थ दड अर्थात् आपके वास्ते अथवा स्वजन कुटुबके वास्ते जो करना सो अर्थ, मगर उस सिवा करना सो अनर्थदड गिना जाता है

अपध्यान सो आर्त्तरौद्र ध्यान करना. आर्त्तध्यान उसे कहते है कि-इष्ट वस्तुके सयोगका चिंतवन करना, वा अनिष्ट वस्तुके वियोगका चिंतवन करना, अग्रशोच याने भविष्यका चिंतवन करना, ओर रोगके वियोगका चिंतवन करना अथात् 'ऐसे रोग दूर रहो-मत आओ' ऐसा शोचना रौद्रध्यान उसे कहते है कि-दुष्ट सकल्प करना. उसके चार प्रकार हैं अर्थात् हिंसानुबधी-हिंसा करनेका चिंतवन करना, मृषानुबधी-झूठ बोलनेका चिंतवन करना, चौर्यानुबधी-चोरी करनेका चिंतवन करना, परिग्रह रक्षणानुबधी-परिग्रहके रक्षणका चिंतवन करना ये चार प्रकारका रौद्रध्यान है. ये रौद्र और प्रथम कहा गया सो आर्त्त यह दोनु छोड देने ही लायक हैं

हिंसाप्रदान अर्थात् हिंसाके उपकरण तैयार कर रक्खे और मागे उसकों देवे.

पापोपदेश याने पाप होवे वैसा बिना प्रयोजनसें उपदेश देवे, जैसें कि किसकों कहे-तु मकान क्यों नहीं बनवाता है? क्यों मकानकों नहीं रगवाता है? कुन्हा क्यों

नहीं सुलगाता है? कपडे क्यौ नहीं धुलाता है? इस तरह अपने स्वजन कुटुंबके मनुष्य सिवा दूसरे मनुष्योंकों कहा करै कि जिस्सें जीवहिंसा, झूठ, चोरी वगेरः काम करै, वास्ते ऐसा कहना छोड देवै

प्रमादा चरित—अर्थात् दिनकों सो जाना दस शेर पानीसें स्नान किया जावें वैसा होवे तोभी ज्यादा पानी ढोला करै फुरसद है तौभी ज्ञानाभ्यासमें आलस रख्खै. राजकथा-राजाओंके संबधी कथा करै, देशकथा-देशावरोंकी कथा करै, स्त्री कथा-स्त्रीये संबधी वातें करै, भक्त कथा-भोजन संबधी वातें कहा करै, मगर ऐसी कथाओंमें अनिष्ट बुरी विचारणा दर्शानेसें किसी वक्त बहुत नुकशान होता है, जैसे कि राजा वगेरः कि बात करता होवे और वो बात राजाके कानपर जा पहुचे तौ राजा दंड देवै; वास्ते श्रावक ऐसी विकथायें न करै, क्यों कि जो आत्माभावी है, अपने आत्मभावमेंही रहता है, मात्र निरुपायसें संसारमें रहा है उसकों वैरी वातोंसें क्या मुतलब है? यदि फुरसद मिल जाय तौ अपना आत्मध्यान करै, वा शास्त्राभ्यास करै कि जिस्सें कल्यान होवें

सामायिक व्रत—दो घडीका है, उसमें समता युक्त रहै, शास्त्राभ्यास करै, वा दो वख्त प्रतिक्रमण करै, और, उस व्रतमें जो जो पाप लगा होवे वो आलोये करै.

देशावगाशिक व्रत—अर्थात् चारों दिशाओंकी मर्यादा छठ्ठे व्रतमें की है, उसमेंसें संकोच करै वारव्रतकाभी संकोच करै चौद नियमकाभी संकोच करै ये संकोच करनेसें दिशावगासिक व्रत अलग करता है वो दो घडीसें लगा कर चार घडी, पहेर, दिवस, महीने तकका करै उस्स वाह्यका आरंभादिकका त्याग हो जाता है

पोषध व्रत—अर्थात् पोसह उपवास व्रत हमेशां न बन सके तो ठीक, नहीं तौ पर्वके दिन अवश्य करै कि जिस्सें अहोरात्री संयम जैसी प्रवृति होवें, आत्मा समभावमें रहे, रात्रिमें भूमिसंथारासे सो रहवे-इत्यादि करणीमें शायद संयम लेनेकाभी भाव हो आवे तौ ऐसो आदतसें सुगमता प्राप्त होवे पुन ऐसी करणीसें यहभी परीक्षा हो जाती है कि मेरसें संयम पल सकता है या नहीं? वास्ते महीनेमें दो अष्टमी, दो-चतुर्दशि तथा पूर्णिमा अमावास्या किंवा दो अष्टमी दो चतुर्दशि और पंचमी इन पांच पर्वोंके रोज अवश्य चार या अष्टपेहरका पोषध करै, और वोभी अहार पौषध सर्वथा करै तौ असण-पकाइ हुइ वस्तु, पाण-पाणी, खाइम-मिठाइ मेवा,

सादमं-तांबूल या औषध गुटिका चूर्ण वगैरः चारों आहारका त्याग करै किंवा देशसें पौषध करै तौ फासुक पानी सिवा तीन आहारका त्याग करै, य आंबिल, नीवी, एकासन करै. खरतर गच्छवाले आहारका पौषध सर्वथाही करन चाहियें ऐसा कहते है, मगर तत्वार्थकी टीकामे तथा श्रावक पन्नति सूत्रमे सामायिव संयुक्त देशसें आहार पौषध करनेका कहा है. तथा पचाशकजीमे पत्र ९, २० क अदर आहार पौषधसें कहा है. दूसरा शरीरसत्कार पौषध तौ सर्वथाही करना, याने आभूषण जेवर वगैरः की शोभा कुछभी न करतें मुनिके समान वन जावै. श्रावकपन्न तिमे तथा तत्त्वार्थ वगैरः बहुतसे ग्रंथोंमे आभूषणका त्याग करकें पौषध करना कह है यहांपर कोइ शका करेगा कि क्या सौभाग्यवती स्त्री अपने हाथकी चूडी वगई कडे वगैरः सोनेकी चीजे उतारकर पौषध करै? इसके समाधानमे यही वचन है वि सौभाग्यवती स्त्री अपने सौभाग्यके चिन्हरूप जो जेवर होवै उसका कभी त्याग न करै-सौभाग्यचिन्हरूप दागीने या चूडी वगडी तौ वैधव्यदशा होवै तबही उतर सकते है वास्ते ऐसी चीजे उतारनेकी जरुरतही नहीं है, लेकिन सौभाग्यचिन्हरूप दागीनेसे ज्यादे दागीने पहेनकर पौषध करनेकी मर्यादा नहीं है. परन्तु पुरुष तौ सर्वथा आभू पण त्यागकै पौषध करै. कितनेक धनाढय गृहस्थ सामायिक लेनेके लिये गुरुजीवे पास जाय तव वडे आडवरसें जाय, मगर गुरुके पास जाकर सामायिक लेवै तब सब आभूषण उतारकर अपने खीजमतदारकों दे देवै और सामायिक पूर्ण हुवे वाद धारण कर लेवै-इस मुजव शरीरसत्कार पौषध करै. ब्रह्मचर्य पौषधमे सर्वथा मैथु नका त्याग करना अर्थात् मनुष्य देव तिर्यचादि जातिकी स्त्रीका स्पर्श मात्रभी न करै अव्यवहार पौषध अर्थात् सर्वथा प्रकारसें सावध प्रवृत्तिका त्याग करै याने हिंसा- झूठ-चोरी-मैथुन-परिग्रह ये पांचों सबधीकी प्रवृत्ती सर्वथा प्रकारसें बध करै. हास्या दिककाभी त्याग करै. कुछभी पाप न लगै उस मुजव चारों प्रकारका त्याग करके पौषध करे. और उसमे दो वक्त वस्त्रकी पडिलेहणा करै, त्रिकाळ अष्टस्तुतियोंसे देववदन करै, वाकीका वक्त स्वाध्याय ध्यानमें, काउस्सग्ग ध्यानमें या धर्मध्यानमें गुजारै. किंचित्भी प्रमाद विकथामें काल न गुजारै और हरप्रकारसें रागद्वेषकी प्रवृत्ती कम होवै वैसीही भावना भावै. ससारी भावनाका त्याग करै. यहापर कोइ शका करेगा कि भावना किस मुजब भावै? तौ उसका खुलासा ऐसा है कि.—

श्रावक चार भावनासें युक्त बना रहे अर्थात् मैत्रिभावना, प्रमोदभावना, मध्यस्थभावना और करुणाभावना इन चारोंमें सदैव लीन रहै मैत्रिभावना उसें कहेते हैं कि एकेंद्रिसे लगा कर पचेंद्रि तकके सब जीवोंके ऊपर मित्र बुद्धि रक्खे, क्यों कि सत्तामें सब जीव समान हैं, परतु कर्मके वश या सबबसें अलग अलग जातिके होते हैं, वास्ते किसी जीवके ऊपर द्वेषभाव नहीं है. सब जीव सुखके अभिलाषि हैं, उससें तमाम जीवोंकों सुखी करनेकी भावना-विचारणा अहोरात्र बनी रहै अपनी शक्ति प्रमाणे सुख देवै, किसीके साथ वैर विरोध न रक्खे, एक पक्षी वैरसेंभी जीवकों बहोत भवतक दुःख भुक्तने पडते है, वास्ते किसीके साथ वैर न रखना प्रमोदभावना उसें कहते है कि-मुनिमहाराज, साध्वी, श्रावक, श्राविकाकों देखतेंही हर्षित चित्त हो जावै. ऐसे पुरुषके सयोगकी सदा इच्छा करै किसी वखतभी वियोग न होवै ऐसीही भावना भावै करुणाभावना उसें कहते है कि-सब जीवपर दयाभाव रक्खे कोइ जीवकों दु.खी देखे उसकों सुखी करनेकी भावना रक्खे और सुखी करै, परतु बेदरकार न रहै, क्यों कि दुःख दूर करनेकी शक्ति है वास्ते दरकार रक्खे. दया करनेमे अपने धर्मवाला या परधर्मवाला है ऐसीभी विचारणा न रक्खे, कोइभी दु खी हो उसें सुखी करनेकी बुद्धि रक्खे. मध्यस्थभावना उसें कहते हैं कि-पापिष्ट जीवपर भी रागद्वेष न करै. राग करनेसें आते जन्ममै पापिष्टका सयोग प्राप्त होवै उससें धर्ममे विघ्न आ पडे. द्वेष करै तौ वैरभावसें सयोग मिले और दु ख होवे, वास्ते पापिष्ट जीवकों समुझा सकै ऐसी शक्ति होवे तो समझा देवै और न समुझे तौभी उसकेपर द्वेषभाव न ल्यावे,

पुनः बारह भावनायें है सो भावै उसमै पहिली अनित्य भावना अर्थात् शरीर धन कुटुंब ये सब पदार्थ अनित्य-अस्थिर है जहा तक ये वस्तु रहनेका सयोग बाधा है वहां तक रहेगा. ये वस्तु कायम रहनेकी नहीं है, तौ ऐसे अस्थिर पदार्थपर राग करना सो कर्मबधनकाही कारण है गत जन्मोंमें ये अनित्य पदार्थोंके ऊपर राग धारणा किया है उसीसें अनेक जन्म मरणके शरण हुवा. वास्ते हे चेतन! तु सदैव नित्य है, तेरे स्वाभाविक गुणभी नित्य हैं, आत्माका सुखभी नित्य है, उसकों छोडकर ये अनित्य पुद्गलमें क्यों निमग्न होता है? जितने सासारिक सुख है उसमै उनके साथही दुःख रहे हैं फिर कालातरमें नरकादि दु ख रहे है, वास्ते पौद्गलिक जडपदार्थका सयोग वियोगमें

तुं तेरा स्वभाव छोडकर रागद्वेष करता है सो योग्य नहीं है. जहांतक अनित्य पदा-र्थकी अदरसें रागद्वेष दूर नहीं हुवा है वहातक नित्य सुख प्राप्त होनेकाही नहीं. वास्ते हे चेतन ! नित्य सुख प्राप्त होवें वैसा उद्यम कर. इस मुजब अनित्य भावना भावे. दूसरी अशरण भावना इस तरह भावे कि–संसारमें कोइ शरणभूत नहीं है. जिन जिन कुटुंबके वास्ते मैं पाप करता हु वो मेरे अकेलेकुही भुक्तना पडेगा. दुःख भुक्तनेके वक्त कोइभी दुःखसें छुडानेहार नही हैं इस जन्ममें रोगादिक उत्पन्न होता है सो मैं अकेलाही भुक्तता हुं, उस वक्त कोइ दुःख लेनेमें समर्थ नहीं होते हैं. वैसेंही परज-न्ममेंभी दुःख पडेंगे उस वक्त कोइ शरणभूत नहीं होवेंगे, वास्ते हे चेतन ! तु अज्ञा-नतासें कुटुंबके लिये अनेक पापारंभ करता है. यो नेमुनासिब है. तु तेरे आत्मभावका विचार कर. ज्यों बन सके त्यों जडभावका त्याग कर. बडे राजाओं जैसेंकोंभी दुःखसें कोइ छुडानेवाला नही है. नरककी अदर विचित्र दुःख भुक्तना पडेगा. ऐसा शोच करकें सब पदार्थ अनित्य है, लेकिन कोइ शरणभूत नही है यों निश्चयकर मोहमें दिगमूढ न हो. तीसरी ससारभावना सो ससारमें सगे सबधी जो मिले है वे सब सार्थिही मिले हैं. जिसकों तु मेरा है यों मानता है वो तो उसका स्वार्थ पूरा होगा वहां तक प्यार रक्खेगा और जब स्वार्थ पूरा न होगा तब कोइभी तेरा होनेका नहीं. तुं मेरे मेरे करकें नाहक कर्मबंधन करता है, परतु वो दुःख तेरेही भुक्तने पडेंगे. ससारी सुख है सो भ्रमित सुख है, वस्तुतासें कुछभी सुख नहीं है. सुख तो समभा-वमेंही है, वास्ते हे आत्मा ! मोह करना युक्त नहीं है एकत्वभावना इस तरह भावे कि–आत्मा अकेलाही आया है और अकेलाही जायगा. कुटुंबादिक कोइ संग नहीं आनेकाहै जडपदार्थपर मोह करता है वो सब दुःखके साधन है. जो जो दुःख पडते है वो पर पदार्थके विषे तुनें मेरापणा मान लिया उसके फल है वास्ते हे चेतन ! एक आत्मस्वरूपके स्वभावमें रहना वोही मेरा काम है, ऐसी भावना भावकर परव-स्तु परसें मेरेपणेका राग दूर करे. अन्यत्वभावना उसें कहते है कि–छउं द्रव्य याने धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकासास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, काल और जीवा-स्तिकाय यह छउ द्रव्यमें जीवद्रव्य जो मेरा आत्मा उसका स्वभाव चेतन लक्षण है, वो लक्षण यह दूसरे पाच द्रव्यमें नहीं है, वास्ते मेरेसें ये न्यारे हैं ये आकाशास्ति-काय द्रव्य है सो समस्त द्रव्यका भाजन है उसमें मैं वास करता हु; मगर उनका

स्वभाव अवकाश देनेका है वो देता है, परंतु मैं उससें न्यारा हुं पुनः धर्मास्तिकाय है उसका जीव पुद्गल पदार्थ चलै उसें सहाय करनेका धर्म है सो करता है जैसें मछलीयोंकों तिरनेकी शक्ति है मगर पानी विगर न तिर सकतीहै, वैसे जीव पुद्गलको चलनेकी शक्ति है, लेकिन उसकी सहायता विना न चल सकै वास्ते उनका सहाय करनेका धर्म है सो करता है. परंतु मै ये धर्मास्तिकायमें भिन्न हु अधर्मास्तिकायका स्थिर रहनेवालेकों सहाय करनेका धर्म है वो करता है उसमेंभी मेरा स्वभाव नहीं कालका नइ वस्तुकों पुरानी करनेका स्वभाव है, उसमेंभी मेरा स्वभाव नहीं पुद्गलका जडस्वभाव है सडना, पडना विध्वसनताका स्वभाव है वास्ते ये भी मेरेसें भिन्न हें वास्ते मै ये पांचों द्रव्यसें अलग स्वभाववत हु तोभी अनादिकाल मैने अज्ञानतासें मेरापणा मान लिया उसे करकें अनेक जन्म मरणके दु ख सहन किये और मेरा स्वभाव भूल गया इस भवमें भाग्योदयसें जैनधर्म मिला उस्सें मैंने वस्तु धर्म पहिचाना, वास्ते हे चेतन ! अव तेरे ये द्रव्य अन्य समझकर उसमें लीन न होना–इस मुजब भावै अशुचिभावना इसे कहते है कि–यह शरीर मलमूत्रसें भरा हुवा है यदि उपरसें चमडा मढा हुवा न होता तो महा भयदायक मालूम होता. पुन. शरीरमेंसें मलमूत्र वहन होता है वो मै हमेशा देखता हु. यह शरीरके नव द्वार खुले हुवेही हैं उनमेंसें दुर्गंध निकल रही है. स्त्रीके शरीरमें बारह छिद्र है उनमेंसेंभी रातदिन अपवित्र वस्तु निकलतीही रहती है अैसे अशुचिमय शरीरमें प्यार करना सो केवल कर्मबधकारी कारण है ओर वो कर्मबधसें अैसे अशुचिमय स्थानमें पैदा होना होता है अैसी अशुचि पिताका वीर्य ओर माताका रुधिर है और वोही शरीरोत्पत्तिका प्रथम चीज है. पीछेभी माता के शरीरमें दुर्गंधमय पुद्गल रहे है, उनमैंसें ग्रहण करके शरीर वढता है, वास्ते हे चेतन ! अैसे अशुचि शरीरके वास्ते क्यों मोह करता है ! तु तेरे आत्मिक सुखमें आनद कर कि जिस्सें अैसा अशुचि शरीर प्राप्त करना न पडे अैसी भावना भावे आश्रवभावना उसे कहते है कि–मेरा आत्मा चिदानद मय है, लेकिन मिथ्यात्व अव्रत कषायके योगसें करके प्रवर्त्तता है उससें समय समयमे नये कर्म आते है उसीसें मेरा आत्मा मलीन हुवा जाता है. जितने जितने ससारी सबध है उतने आश्रव आनेके कारण है समय समयमें पुद्गलिक पदार्थपर राग करता है उससें कर्म बांधता है. कर्म ब.धनेके बीजभूत रागद्वेषकी प्रकृति है वो प्रकृति होनेके

छठ बाह्य प्रकारके तप कहे जाते हैं अब छ अभ्यतर तपका संक्षेप स्वरूप कहते हैं. प्रायश्चित यानें जो जो दूषण लगे हैं उसका गुरुके आगे प्रायश्चित लेना. विनय अर्थात् देव गुरु ज्ञानका विनय करना और उन्होंका वयावच करना. सज्जझाय अर्थात् वाचना, पृच्छना, परावर्त्तना, अनुपेक्षा, धर्मकथा यह पांच प्रकारसें स्वाध्याय ध्यान करे काउस्सग्ग यानें कयाका एक जगह रखकर हाथ पाउ हिलानेका बंधकर-स्थिर उपयोग करकें जिनगुणग्राम अंतरगर्म करना, और ध्यान अर्थात् धर्मध्यान, शुक्लल ध्यावे-येह छ प्रकारके अभ्यतर तप है, क्यों कि ये तप किसीके देखनेमें नहीं आते हैं जिस्से आभ्यतर कहे गये हे यह बारह प्रकारके तप समभावसे करगा तो मेरे पूर्वके किये हुवे कर्मकी निर्जरा हो जायगी ऐसी भावना भावे लोकस्वरुप भावना यानी चौदह राजलोक हैं, उसमें उर्द्ध-उंचा, अधो-नीचा, तिर्च्छा-ये अपन रहते है वही ये तीन लोक रहे है उसमें सात राज हैं, उसके भीतर नारकीकेजीवकों रहेनेका स्थानक है, और कितनेक जगह भुवनपति, व्यंतरके देव रहे है तिर्च्छे लोकमें मनुष्य हैं, तथा तिर्यंच और व्यंतरके स्थान हैं. ऊपरके सातराजमें ज्योतिषि तथा विमानवासी देव रहते हैं उनके ऊपर सिद्ध महाराज है और ऊनपर अलोक है यह चोदराजलोक हैं यह चौदराजलोक जेसें कोइ मनुष्य जामा पहेनकर दोनु हाथ दोनु बाजू कम्मरपर हाथ रखकर खडा रहा होवे उस आकृतिका चोडाइ लंबाइसें रहा हे, और उसमें मेरा जीव अज्ञानपणेसें भ्रमण किये करता है वो अज्ञानताकेही फल है, वास्ते हे चेतन! अब कुछ ज्ञानदशा प्रगट करकें परवस्तु परसे मोह छोड दे कि जिस्से तेरा स्वाभाविक गुण प्रकट होवे और सिद्धमें निवास होवे इत्यादि विस्तारयुत स्वरूप शास्त्रमें कहा गया है सो भावे बोधबीज-समकित भावना अर्थात् जीव समकित नहीं पाया उससें अनेक जन्ममरण पाया वस्तुकों अवस्तुपणेसें मान ली और अभी मनुष्य जन्म पाया है वीतरागभाषित शास्त्रका योगभी मिला है, वास्ते वो गुरुमहाराजके द्वारा श्रवण करकें यथार्थ वस्तुधर्म समुझकर-तत्त्वातत्त्वका विचार कर, जैसा जो पदार्थ है उसकी श्रद्धा कर कि सहजसें जडपदार्थपर जो तेरा प्यार बना हुवा रहा है वो उतर जावे और सहजसें आत्मस्वभावमें प्रीति होवे आत्माकों आत्माकी रीतिसें जाने बिगर अकेली व्यवहार क्रिया जीवनें बहोत वक्त की उससें पुद्गलिक सुख मिले, मगर आत्मिक सुख न मिला, वास्ते हे चेतन! अब औसर प्राप्त हुवा हैं इस लिये बोधबीज-समकित

प्राप्त कर कि जिस्सें सब करणी गिनतीमे आवे और भवचक्रका भ्रमण दूर हो जावे, अैसा यत्न कर. प्रथम ज्यौं बन सके त्यौ धनकी उपाधी छोड दे. इस मुजब बोधि-बीज भावना भावे बारहवी धर्म भावना इस तरह भावे कि वीतरागकथित धर्म मिलना दुर्लभ है रागीद्वेषीके कहे हुवे धर्मसें आत्मकार्य हुवाही नहीं और होनेकाभी नहीं. तीर्थंकर देव हैं सो रागद्वेष रहित है, उनके कहे हुवे धर्मसें वीतरागता जाहेर होती है, वास्ते अैसे वीतरागके धर्मकी योगवाइ मिलनी मुश्कील है वो भाग्योदयसें मिली है तो अब प्रमाद छोडकर जिस यत्नसें रागद्वेषकी प्रकृति कमी होवे और आत्माका शुद्ध स्वरूप प्रकट होवे वैसा यत्न कर. अव्वलमे ज्यां बन सके त्यौ उपाधि छोड दे, धनकी विषयकी वांछना छोडकर निर्वाहके जितनी प्रवृत्ति कर कि तुजे अवकाशका वक्त हाथ लगे अवकाश मिले उस वक्त एकांतमे बैठकर सब उपाधियोंसें मनको दूर करके तेरे आत्माका विचार कर कि–' हे चेतन ! तेरा क्या स्वभाव है ? और रात दिन क्या प्रवृत्ति कर रहा है ? तु जडप्रवृत्ति करता है, वास्ते समय समयमे नये कर्म आते हैं. और जो जो जडप्रवृत्ति है वो मेरी नहीं, मेरा तो जाननेका स्वभाव है, तो जो जो क्रिया पुद्गल सगसें होती है उससें मुजको दुःख हुवा, सुख हुवा, अैसे विचार किसलिये किये करता हैं ? तेरा सुख तो सहज स्वभाविक है. कृत्रिम सुख हैं वो जाता रहेगा और स्वभाविक सुख प्रकट हुवा वो तो जानेका नही है इत्यादि आत्माका तथा जडस्वरूपका विचार करेगा और उसमे स्थिर हो जावेगा तो आत्मामे अपूर्व ज्ञान प्रकट होयगा, और वो ज्ञानके प्रभावसें आत्माको सुखका अनुभव होयगा. तो पीछे जडप्रवृत्तिपर हे चेतन ! तेरा राग है सो रहेनेका नहीं वास्ते हरएक प्रकारसें निरूपाधिवत हुवा जावे अैसा उद्यम कर. फिरसें यह जोगवाइ मिलनेकी नहीं है. ' इस मुजब धर्म भावना भावे.

यह बारह भावनाका स्वरूप नाम मात्र मैंने मेरी अल्पबुद्धि मुजब लिखा है, विस्तारसें पूर्वाचार्योंनें बहुत प्रकारसें लिखा है और वर्तमान कालमेंभी आत्मारामजी महाराज उर्फे विजयानदसूरी महाराजनें बहुत ग्रंथ और भावनाओंकी रचना की है, वो देखकर या सुनकर भावनाका दिल हो आवे उस लिये मैंने लिखी है.

श्रावक पौषधमे अैसी भावनाए भावे अैसी भावनाअें भावे उस्सें धर्मध्यानमे भी आ जावे, वास्ते पौषध करके बन सके तो धर्मध्यान करे. परतु वो शक्ति श्रावक

कों प्राप्त होनीही मुश्कील है, सेवव कि हरिभद्रसूरी महाराजने श्रावककों धर्मध्यानकी भजना कही है, उसका परमार्थ ऐसा मालूम होता है–बारह भावना वगैरः भावे उसमें वख्तपर ध्यान आ जावे, मगर ज्यादे वख्त तो भावनामेंही जाता है वास्ते पौषधमें भावना भावे, और वो न बन सके तो स्वाध्याय ध्यान करे, आप नया पढे, या पूर्वकालमें पढा होवे सो याद करे, या ज्ञानका बोध फैलानेके लिये प्रश्नोत्तर करे, या वृद्ध श्रावक शास्त्र पढे और दूसरे सुने इस तरह पौषधकाल पूर्ण करे, लेकिन पौषध लेकर सज्झाय ध्यानादिकमें तो कुछभी उद्यम न करे, वहां निद्रा करे वा विकथा करे तो पोषधमें वडा दूषण लगे वास्ते गुणस्थानकी प्रवृत्तिवाला जीव तो प्रमाद विकथा छोडकर अपने आत्मतत्त्वकों प्रकट करनेका प्रयत्न करे इस मुजब पौषध व्रत वो आत्माकों आत्मस्वभावकी पुष्टि करनी, वास्ते आत्माकी पुष्टि होवे उस तरह पौषधमें प्रवृत्तन रख्खे. बारहवा अतिथि सविभाग व्रत उसे कहते है कि पौषधके पारणेके दिन एकासन व्रत करे पीछे अपने वहां जो रसवती तैयार हुइ होवे उसमेंसे मुनिमहाराजको देनेके लिये मुनि महाराजकी खोजना करे भाग्योदयसें मुनि महाराजकी योगवाइ मिल जावे तो मुनि महाराजकों बुल्लाकर जोजो वस्तुकी मुनिमहाराजकों दरकार हो वो वो वस्तु देवे और जो वस्तु मुनि महाराजनें अंगीकार की हो उसका शेष रहा होवे उसी वस्तुका आप भोजन कर एकासन व्रत करे किंवा ऐसा अभिग्रह होवे कि जो कुछ वस्तु मुनिराज लेवे वही वस्तुका शेष भाग अपने निर्वाहके लिये प्रासन करें इस मुजब पौषधके पारणेके दिन अतिथि सविभाग करे, अथवा अतिथि जो मुनिराज उनकों हमेशा आहार पानी देनेकी भावना रख्खे और जब जोग मिल जावे तब जो जो चीजे मुनिराज मांगे वो वो चीज घरमें होवे तो बहुत भावसहित देवे मुनिराजकों अन्नजल देनेसें बहुतसे प्राणी भव भ्रमणाके पार पहुच गये हैं सुबाहुकुमार प्रमुखका अधिकार विपाकसूत्रमें है वो सुनोगे तो मुनिने प्रतिलाभनेका लाभ क्या है वो मालूम होयगा

इस मुजब श्रावकके बारह व्रत व्यवहार निश्चयसें हैं और अपने स्वभावमें रहनेकी भावना रहती है, मगर पूर्वकर्मकी प्रबलतासें संयम नहीं लिया जाता है उसीसें संसारमें रहा है तोभी सब जीवोंकों मित्रवत् जानता है अपना निर्वाह करनेमें कुछ हिंसा होती है उस संबंधीभी रात दिन बहुतही दिलगीरी रहतीहै, लेकिन ऐसा नहीं

शोचै कि अपन कुछ साधु नहीं है, अपन श्रावक है उससें सब दरवज्जे खुल्ले हैं, वास्ते अपने वहां तो किंचित्‌भी जीव हिंसा होभी जाती है. ऐसा विचार करनेसें निध्वस परिणाम होते हैं वो न करे जो जो काम करै वो लाचारीसें करै. जैसें कोइ मनुष्यकों दरद हुवा होवै तो वो औषध खाता है. वो औषध अच्छा नहीं लगता है, मगर जहा तक रोग है वहा तक खुशीसें औषध खाता है, तोंभी भावना यह है कि कब मेरा दरद दूर हो जाय और औषध खाना न पडै, वैसेंही यह शोचना है कि मै कब संसारसें विमुक्त हो जाउ के यह सब ससारी भोगादिक छुट जाय; ऐसी भावनासें श्रावक प्रवर्त्ते. यह बारह व्रतोंमे कोइ अतिचार लगै या लगा होवै वो पापकों निंदै. और हमशां दो वक्त पडिक्रमण करै (उसका सविस्तर अधिकार आवश्यकके अर्थसें अति चार तथा विधि जान ले कर उस मुजब करना.)

छठ्ठा सर्वविरति वा प्रमाद गुणस्थानक अर्थात् यह गुणस्थानकमे मुनिराज मग्न रहते है, उनकों प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ यह चारों प्रकृति उदयसें नष्ट हो जाती हैं, उससें उनके रागद्वेषकी परिणती कम होती है और आत्मा शुद्ध होता है उसके लियेसें संसारके उपरसें राग छुटं जाता है, शरीरकी ममताभी छुट जाती है, तब व्यवहारसें पाचों महाव्रत अगीकार करते है यानी प्राणातिपात विरमण व्रत अर्थात् त्रस तथा स्थावर जीवकी हिंसाका त्याग करते है. सब जीवकों मित्रवत् समुझकर किसीभी जीवकों दु:ख न होवै वेसे काम नहीं करते हैं.

मृषावाद विरमणव्रत सो सर्वथा झूठ बोलनेका त्याग करते है. और आप झूठ नहीं बोलते हैं अगर झूंठ बोलता है उसकी प्रशसाभी नही करते हैं.

अदत्तादान विरमणव्रत सो किसीकी कुछभी चीज दिये विगर नहीं लेवै. मार्गमे पडी हुइ धूलभी मंजूरी मिले विगर नहीं उठावै. इस अदत्तादानके चार प्रकार हैं याने जीवअदत्त सो कोइ जीवने कहा नहीं कि मुझे मारो, उससें किसीभी जीवकों नहीं मारते है और जो मारते हैं उनकों जीव अदत्तका पाप लगता है. स्वामी अदत्त–जिस वस्तुका जो मालिक है उस मालिकके दिये विगरकी चीज कुछभी न लेवै. और लेवै तो स्वामीअदत्तका पाप लगता है. गुरु अदत्त–गुरुमहाराजनें जो जो आहारादि चीजें करनेकी आज्ञा नहीं दी है तोभी वो वस्तु खावे या उपयोगमे लेवे या वर्त्तना करै वो गुरुअदत्तका पाप लगता है, उससें गुरुमहाराजकी आज्ञा मिले विगर कुछभी व-

चैना न करै तीर्थकर अदत्त-परमात्माने जो जो आज्ञा दी है वो आज्ञासें विरुद्ध आचरण करना उसें तीर्थकर अदत्त कहते हैं वास्ते धर्मको सहायकारी आहार वस्त्र पात्र रहेनेका मकान आदि जो जो निर्दोष वस्तु याने आपने न करवाइ है न की है और न गृहस्थनें मुनिके लिये करवाइ है अपने लियेही बनाइ है और वो वस्तु वर्त्तमानमे अभक्ष नहीं है उससें प्रभुजीनें लेनेकी आज्ञा की है वही वस्तु लवै इस मुजब चार तरहका अदत्तदान विरमणव्रत मुनि पालै

मैथुन विरमणव्रत सो देवकी स्त्री, मनुष्यकी स्त्री, तीर्यचकी स्त्री अर्थात् इन्होंकी कोइभी स्त्रीके साथ मैथुन सेवनेका और स्त्रीकों छूनेकाभी त्याग करै

परिग्रह विरमण व्रत याने धन, धान्य, जमीन, मकान, राऊरठीला, चांदी सुना, कुप्यधातु, मनुष्य, जानवर यह नौ प्रकारकु परिग्रहका जिसने त्याग किया है, कोडी मात्रभी जिसकों नहीं रखनी है, इस मुजब सब तरहका परिग्रह छोड देवै मात्र शरीर ढांकनेके वास्ते वस्त्र पात्र सिवा कुछभी आहार आते दिनके लिये रख छोडनेका नहीं है इस तरह कोइभी वस्तुकी इच्छा नहीं है उससें परिग्रहका त्याग करते हैं परिग्रह पापकाही बीज है

इस मुजब पाचों अव्रत, मन वचन कायासें करें सेवे नहीं, सेवरावेभी नहीं और सवै उस्कों अनुमोदैभी नहीं इस तरह पाच अव्रतका त्याग करकें पच महाव्रत आदरते हैं और सदाकाळ ज्ञानका अभ्यास कर रहे हैं यत्किंचित्भी विकथा आलस निंद्राम वकत नहीं गुजारते हैं ज्ञानका अभ्यास करते हैं वोभी मान महत्त्वताके लिये नहीं लेकिन अपना आत्मस्वरूप प्रकट करनेके वास्तेही फकत उद्यम करते हैं. हमेशां भावना तो समभावनकीही बनी हुइ रहती है. कोइभी पुद्गल भावमें ममता नहीं है निरतर आत्मभावना भावनेमेंही मस्त रहे हैं लेकिन पाच प्रमाद दूर नहीं हुवे है, उससें प्रमाद गुणठाणा कहा जाता हैं सातवा अप्रमाद गुणठाणा है यह गुणठाणेसें पांच प्रमादका नाश होता है याने प्रमाद-मद-मदिरा तथा अष्टमद अर्थात् जातिकामद, कुलकामद, बलकामद, रुपकामद, अधिकारकामद, ठकुराइकामद, तपकामद, ज्ञानका मद यह आठ मद-गर्व हैं विषय-पाच इंद्रीओंके तेइश विषय हैं अर्थात् स्पर्शेंद्रि-शरीरके आठ विषय है हल्का, भारी, रुखा, स्निग्ध, कोमल, खरसठ-करग, ठडा, गरम ये आठ हैं हल्का सो हलका वस्त्र वगैर चीज मिले, मगर नापसद होवे तो

दिलगीर, और पसंद होवै तो खुश होना. भारीमें भारी चीज मिलनेसें राजी या दिलगीर होना. रुखी वस्तुकी प्राप्तिसें राजी या दिलगीर होना स्निग्ध पदार्थमेंभी राजी या दिलगीर होना. सुकोमल और असुकोमल, ठंडा तथा गरम ये पदार्थ पसंदगीकी मुजब मिले तो राजी और नापसंदगी मुजब मिलनेमें नाराजी होना, ये स्पर्शेंद्रियके विषय है. रसेंद्रि–जीभ के पांच विषय हैं याने चरपरा, कटुक, कषायल, खट्टा और मीठा–ये पांच रस है. खारा रस तो सब रसोंकी अंदर होताही हैं इस लिये अलग नही बतलाया गया है यह पांचों रसमें जो जो रस मिला उसमें मुनिराज दिलगीर नहीं होते है जिस वख्त जो रस मिला वो समभावसें खाते हैं और यह पांचों रसोंके स्वादमें जो अनुकूल होवै उसकी अंदर राग–प्रिती और प्रतिकूलमें द्वेष वो विषय कहा है घ्राणेंद्रिय–नाक उनके सुरभी गंध और दुरभिगंध ये दो विषय हैं. अच्छी सुगंधीमें प्रीति और दुर्गंधिसे अप्रीति बतलानी. चक्षुइंद्रियके पांच विषय है अर्थात् सुरख, सफेद, पीला, हरा और काला ये पांच है उसमें जो रंग अनुकूल होवे उसके मिलनेसें राग और प्रतिकूल मिलनेसें द्वेष करना सो विषय कहा जाता है. श्रोत्र इंद्रियके तीन विषय याने सचित्त शब्द अर्थात् स्त्री पुरुषका शब्द, अचित शब्द नगारे ढोल वगैर का शब्द, और मिश्र शब्द–मृदंगादिकका है, उसमें जिसका शब्द प्रिय होवे उसपर राग और अप्रियपर द्वेष करना सो विषय कहा जावे–इस तरह पांचों इंद्रियोंके तेइस (२३) विषय है. उसमेंसें जो अनुकूल मिले उसमें मुनि वो वस्तुका वस्तुधर्म जानते है और जिस वख्त जो मिला उससे अपने शरीरको आधार देते है, लेकिन उसमें यह अच्छा यह बुरा है ऐसा मान कर खुश नहीं होते है और दिलगीरभी नहीं होते हैं. मुनि महाराज तो आप खुद कर्मका क्षय करनेके वास्ते तत्पर हुए हैं. आपके पास कुछभी पैसा तो रखतेही नहीं हैं उससें खरीद करना हैही नहीं और आपके हाथसें आहारादिक बनाने भी नहीं है. गृहस्थके वहांसें जिस वख्त जो चीज मिल जावे उससेंही संतोष मान कर आनंदमें रहते हैं, मगर खुशी या दिलगीरी नहीं होते है. इस तरह तेइस विषय त्याग कर दिये है, बारह कषाय थे सो तो चले गये है और चार जो संजलके रहे है वे भी पतले पड गये है चार विकथायेंभी त्याग दी है. निद्रा कि जिसका स्वरुप मोहनी कर्ममें कहा गया है वो निद्रा निद्रा, प्रचला प्रचला, और थिणद्धी ये तीन चली जाती है.

इस तरह पांच प्रमादका नाश होनेसें अप्रमाद गुणठाणा कहा जाता है यह गुणस्था नकमें आत्म विशुद्धि ज्यादे होती है मगर छठे और सातवे गुणस्थानकका काल अंतर्मुहूर्त्तका है. सो फिर पिछे गिरकर छठे जाता है फिर सातवे आता है–ऐसे अध्यवसायमें फेरफार हुए करता है और गुणस्थानमेंभी इसी सबबसें फेरफार होता रहता है. उसमेंभी सातवे गुणठाणेका अंतर्मुहूर्त्त लघु है और छठेका अंतर्मुहूर्त्त बडा है, इस सबबसें इतना अंतर पडता है पूरे आयुष् तकमें सातवे रहेका काल इकठा कर लेवे तो दो घडीमें कुछ कम जितना काल होता है, लेकिन इसें ज्यादा काल नहीं और छठेका बाकी सब काल होता है यह अधिकार भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके २७७ पानेमें है अप्रमाद गुणठाणेका ज्यादा अधिकार धर्मग्रंथसें समझ लेना यह विशुद्ध भावका स्थानक है इस गुणठाणेमें धर्म ध्यानकी अंदर ज्यादा काल व्यतीत होता है और वो धर्मध्यानके चार प्रकार है अर्थात् प्रथम पाद आज्ञाविचय याने परमात्माकी आज्ञाका ध्यान करे परमात्माकी आज्ञा कैसी है? अविच्छिन्न है फिर परमात्माके वचन कैसे है ? निराबाध है ! किसी प्रकारके दोष नहा आत्माकी सत्ता अनंत ज्ञानमय, अनंत दर्शनमय, अनंत चारित्रमय, अनंत तपमय और अनंत उपभोगमय है. ये आत्माकी सत्ता है वो स्वरूपमें रहना यह आज्ञा है इस तरह प्रथम पादमें ध्यान करे दूसरे अपायविचय पादमें ऐसा ध्यान करे कि जो अनंत ज्ञानमय आत्मा सो मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, योग यह चारों कारणोंसें ढका गया है वो यह जडमें जड जैसी प्रकृति कर रहा है, मगर चेतन ! तेरा स्वभाव नहीं धन स्त्री पुत्र परिवारको देखकर मेरे मेरे कर रहा है, उनके संयोगसें राजी होता है और वियोगसें दिलगीर होता है यह बुद्धि, अनादिके पुद्गलका संयोग बना हुवा है उनके प्रभावसें हुवा करती है, लेकिन चेतन! ये तेरे करने लायक नहीं है आज तक तो अज्ञानता थी उस्सें मेरा क्या है ? और पराया क्या है ? वो ज्ञान न था अब हे चेतन! भाग्योदयसें जैनशासन मिला है जिसमें आत्माका स्वरूप अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतचारित्र, अनंतवीर्य अजर, अमर, अक्षय, अविनाशी, अशरीरी, अगम, अक्रोधी, अमानी, अलोभी, अमायी, अवेदी, अभेदी, अछेदी, अद्वंद्वी, अनाहारी, अकामी, अविषयी, अगंधी, अवर्णी, अरसी, अस्पर्शी, अगोचर, अनूपम, न संज्ञी, न असंज्ञी, न अपर्याप्ता, न पर्याप्ता, न रागी, न द्वेषी, न बाल, न युवान, न वृद्ध, न स्त्री, न पुरुष,

न नपुंसक, सच्चिदानंदमय, और सहज सुखमय ऐसा आत्माका स्वरूप है; मगर पर सगके सबबसें कुबुद्धि प्राप्त होनेसें जड वस्तुका रागी हो हे चेतन! तुने अनेक दुःख सहन किये. वर्त्तमान कालमैंभी चेतन! जो जो सुख मानता है वो सुख कथन मात्रही है. चेतन! तु जो जो वस्तुके ससारी सुखकों सुख मानता है, मगर वो काम तपास कर देखेगा तो मालूम हो जायगा कि क्या क्या दुःख है? पुन भवांतरमें नरकादिकके दुःख यह शरीरकी संगतीसें बहुत सहन किये है, वास्ते अब हे चेतन! तु तेरा स्वरूप विचार कर तेरें आत्मिक सुखमें मग्न रह, और पर सगसे कर्म बांधे जाते है सो शोच तीसरा पाद विपाकविचय धर्मध्यान है उसमें शोच करे कि जीवने पर सगसें आठ कर्म बांधे उनकी १५८ प्रकृतियें हैं (और उनका स्वरूप आठ कर्मके स्वरूपमें लिखा गया है वास्ते वहांसे पढकर माहितगारी मिला लेवें) उसका बंध, जिस वख्त जैसे जैसे अध्यवसाय होवे, वैसे कर्मका बांधना. उसका उदय, नही हुवा है वहांतक रहेना सो सत्ता, पीछे उदय होवे तब सुख दुःख भुक्तनेमे आवे सो उदय कहा जावे. यह बंध चार प्रकारका है याने प्रकृति बंध-कर्मका शुभाशुभ स्वभाव, स्थितिबंध-कर्म कितने काल तक भुक्तना पडेगा? उसका मान, रसबंध-कर्म तीव्र मंद जैसा भुक्तनेका होवे वैसा रस होवे, प्रदेश बंध-कर्मके दलका मिलना यह जब जीव कर्म बांधता है तो जिस वख्त जो अध्यवसाय वर्त्तता हो वैसाही कर्म बांधता है. उसका उदयकाल प्राप्त होता है, तब दुःख भुक्तने पडते हैं आत्माकी ज्ञानशक्ति अनंत है, मगर कर्मके योगमें आच्छादित हो गई है, वास्ते हे चेतन! जो जो सुख दुःख आते है उसमें तु रागद्वेष मत कर. रागद्वेष करनेसेंही यह कर्म बांधे गये हैं और यह जन्म मरण रोगादिकके विचित्र दुःख भुक्तने पडते है इसलिये हे चेतन! जो जो कर्मविपाक उदय आये है वे वे कर्मके स्वभाव है वैसा बनता है. तेरा स्वभाव तो देखने जाननेका है सो जान ले, किंतु अज्ञानतासें अनादिकालका अभ्यास पडा है उस्सें मुझे दुःख होता है-पीडा होती है ऐसा करता है सो अब तु मत कर. अब तो तु तेरे स्वरूपका विचार कर और समभावमें रहे यही तेरा धर्म है तु समभावसें रहेगा उस्सें रागद्वेषमय प्रकृति नहीं बनेगी, इस्सें सहजमें यह कर्म क्षय हो जायगा. आज दिन तक तु तेरे स्वभावकों नहीं जानता था. अब तेरा स्वभाव तुने जान लिया है तोभी ये जडप्रकृतिमें किसलिये सपडाता है? ऐसा यह तीसरे पादमें

ध्यान करें चौथा संस्थानविचय धर्मध्यान है–उसमें चौद राजलोकका स्वरूप शोचे चौदह राजलोकमें जो जो पदार्थ जिस मुजब रहे है उसको शोचें षट् द्रव्य रहे है उनकाभी शोच करें षट्द्रव्यका स्वरूप विचार ले, उस बाद आत्माके द्रव्य साथ दूसरे द्रव्यका स्वरूप विचारे कि जो जो गुण आत्मामें है वो दूसरे द्रव्यमें नहीं हैं, तो हे चेतन! किस सबबसें ये द्रव्यमें मेरापणा मानता है? ऐसा शोच कर अपने स्वरूपमें लीन होता है. मन वचन कायाभी वही स्वरूपमें स्थिर हो जाता है अनुभवज्ञान स्वाभाविकतासें प्रकट होता है यह ज्ञान प्रगट होवे वो अनुभवज्ञानका सुख जानें ये सुख किसीसें कहा नहीं जाता है अपने आत्मतत्त्वमें एकाग्रता होनेसें आनंद होता है वो आनंदका सुख ध्यानसें चलायमान होता है, तौभी कितनीक मुदत तक रहता है वास्ते हे चेतन! तु तेरे स्वाभाविक सुखमें मग्न रहेवे तो तेरे रहनेका स्थान लोकाग्रमें सिद्ध स्थान है वहा होगा इत्यादि चतुर्थपादमें ध्यान करें. यह चारों पादमें स्वरूप विचार लिखा है वो चिंतवन रूप है, और ध्यान तो मन वचनकी एकाग्रतासें अपूर्वज्ञान स्वाभाविक होवे वही कहा जाता है ऐसा कहे उसका समझना कि ध्यानमें श्रुतज्ञानके बलसें प्रथम तो चिंतवन करें और पीछे स्वाभाविक होनें वास्ते चिंतवन करनेसेंही ध्यान होता है. इस मुजब सातवें गुणठाणेमें ध्यानादिककी अंदर वर्त्तन रक्खे.

आठवा अपूर्व–गुणस्थानक है यह गुणठाणेमें आगे नहीं आये हुवे भाव प्राप्त होते हैं यह गुणठाणा उपशम भावसें होता है. उनकी प्रकृति उपशम पाती है और क्षायकभावसे ये गुणठाणा होता है वो सत्ता बंध उदयसें क्षय किये जाते हैं क्षायक भाववाले तो चढकर केवलज्ञानही पाते है और उपशमवाला तो एकादशवे गुणठाणे तक चढकर पीछे पड जाते हैं पीछे पुन क्षायकभाव प्रगटे और चडे वो पडे नहीं ये आठवे गुणठाणे समकित मोहनीका उदय न होवे, सबब कि सातवे गुणठाणेके अंत तक उसका नाश हो जाता है तब यह गुणठाणा प्रगट होता है ये गुणठाणेमें शुक्ल ध्यान प्रकट होता है, अव्वलमें तो शुक्ल ध्यानके बलसें विचार करता है, मगर पीछे स्वाभाविक ज्ञान प्रकट होता है, उसमें करके ध्यान करें भेदज्ञान प्रकट कहेता है यह गुणस्थानमें अनुभवज्ञान प्रकट होता है सो सूर्य उदय होनेके पेस्तर जैसे अरुणोदय हो उद्योत होता है, वैसे केवलज्ञान रूप उद्योत होनेका है उसका-

अज्वलही प्रकाश होता है. यह गुणठाणेमें केवल सहज ध्यान है. कृत्रिम इत्यादिक ध्यान नहीं है. ये गुणठाणेका सुख तथा ज्ञान जिसकों होता है वोही जानें. महा अद्भुत विशुद्धि है. ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनी, अंतराय ये कर्मउदय रहे हैं, मगर उनके रस नास होते जाते हैं. मोहनीकर्मकी १३ प्रकृतिये रही हुइ होती है, लेकिन वे बहुतही रसरहित हो गइ होती हैं. अति विशुद्ध अध्यवसाय हुवे हैं. जड चेतनका केवल विभाग करते हुवे चले जाते है. शुक्ल ध्यानका प्रथम पाद पृथकत्ववितर्क समविचार नामक ध्यानमें ध्याते हैं

नवम अनुवृत्ति बादर गुणठाणा है. यह गुणठाणेमें अतिशय विशुद्ध अध्यवसाय होते है. आठवेके अंतमें हास्य, रति, अरति, भय, शोक, दुगंछा, यह छउ प्रकृतियोंका अंत हो जाता है. यह गुणठाणेमे ये छउ प्रकृतियोंका उदय नहीं है यहापर शंका होगी कि आठवा गुणठाणा पाया वहा उसकी प्रकृत्तिथी उस विषयमें यह समाधान है कि लोककी रीतिके तो छट्ठे गुणठाणेसें निकल गये हैं; लेकिन आत्माके गुणस्वाभाविक प्रकट होते हैं वो देखकर हर्ष होता है, वो रुप हास्य तथा रति है. तथा अरति परभाव पर है भयभी अपने भाव चलायमान होवै उसका है. शोकभी कर्मसें आत्मा मलीन हुवा उसका है. दुगंछाभी स्वाभाविक परपरिणती की है. यह पद् स्वाभाविक हैं. इसका ज्यादे विस्तारपूर्वक स्वरूप विचारसारकी टीकामें किया गया है. यह नवम गुणस्थानकके अंतमें सज्वलन क्रोध, मान, माया, और स्त्रीवेद-पुरुषवेद-नपुंसकवेद-इन्होंका अंत होता है, तब दशम गुणस्थानक प्राप्त होता है.

दशवा सूक्ष्मसंपराय नामक गुणस्थान है. यह गुणस्थानमें सूक्ष्म लोभका उदय रहा है, सो अति विशुद्ध भावसें दशवेके अंतमें उस लोभका क्षय हो जाता है. अब जो उपशम भावसें श्रेणी मंड दी होवै तो एकादशवे गुणस्थानमें जावै, क्यों कि जो गुणस्थानक उपशम भावका है, क्षायक भावका गुणस्थान नहीं है, उससें क्षायक भाववाले बारहवे गुणस्थानमें जाते है.

ग्यारहवा उपशांत मोह गुणस्थान है ये गुणस्थानमें मोहनी कर्मका उदय तो नहीं होता है, मगर सत्तासै रहता है, उसके जोरसें परिणाम पीछे हठ जाते है. उस सबब सें यह गुणठाणेसे चढते नहीं लेकिन गिरजाते है कदापि आयुष् आ रहा होवे और मरण आ जावे तो सर्वार्थ सिद्धि विमानमें जाता है वहासे मनुष्य गतिमें आ करके मोक्ष प्राप्त करता है.

बारहवा क्षीणमोह गुणठाणा है. यह गुणठाणेमें वीतरागपद प्राप्त होता है. यह गुणठाणेमें अभेदज्ञान है, एकत्ववितर्क अप्रविचार नामक ध्यान अभेद ज्ञान है उसका दूसरा पाद वर्त्तता है, उससें अति विशुद्ध भाव होता है उसी सबबस यह गुणठाणेके अंतमें ज्ञानावर्णी कर्मकी पाच प्रकृति, दर्शनावर्णीकी छ. प्रकृति शेष रही हुइथी, वो और अंतराय कर्मकी पाच प्रकृतिका उदय बंध सत्ता सब प्रकारस नाश होकर तेरहवा गुणठाणा प्राप्त होता है

तेरहवा सयोगी गुणठाणा है यह गुणठाणेमें केवलज्ञान, केवल दर्शन प्रकट होता है लोकालोकके ज्ञाता होते हैं, गया हुवा अनंतकाल और आनेवाला अनंतकाल है उसमें जो जो पदार्थ हो गये और होनेवाले हैं वो सबका ज्ञान है कुछभी वस्तु ज्ञात होनेमें अज्ञात नहीं ऐसा संपूर्ण ज्ञान प्रकट होता है, तब तीर्थंकर महाराजजीकी वैमानिक, ज्योतिषी, भवनपति और व्यंतर यह चारों जातिके देवोंके इंद्र भक्ति करनेकों आते है, और समवसरणकी रचना करते है, उसम प्रकट कोट-गढ चांदीका, दूसरा गढ सोनेका और तीसरा गढ रत्नका बनाते है उस रत्नके गढ भीतर प्रभुका सिंहासन रत्नमय बनाते है उसपर प्रभु बिराजमान होकर देवध्वनि पूरित देशना देते है वो प्रभुका ऐसा प्रभाव है कि-चारों तर्फ बैठे हुवे लोग प्रभु अपने सन्मुखही हैं ऐसा देखते है-सबब यह कि तीनू दिशाओंमे प्रभुके प्रतिबिंब होते है प्रभुके मस्तक पर अद्धर तीन छत्र रहते है देवता चँवर वींजते ह प्रभुके पीछे तेजपुंजरूप भामंडल होता है, उसका तेज सूर्यसभी बारह गुना होता है उपर अशोकवृक्ष होता हे, उसकी ऐसी शीतल छांउ होती है कि जहा बैठे हुवे समस्त जीवोंका शोक संताप नाश होता है आकाशमें दुंदभी बजे, उसमें ऐसी शब्दध्वनि होवे कि 'यही देवकों भजो' फिर त्रिगढके चारों और जानु प्रमाण सुगंधित पचवर्णा पुष्पकी वृष्टि देवोंकी तर्फसें होती है इत्यादि रचना देव रचते है वहां प्रभुजी बैठकर धर्मदेशना देते है, उससें बहोतसे जीव प्रतिबोध पाते ह, सबब कि केवलज्ञानद्वारा सब वस्तुकों जानते हैं यदि किसीकों कोइ विषयमे कुछ शंका हो आवे तो वहभी जान लेते हैं उस्सें पृश्न करनेकी जरूरत नहीं रहती है भगवान आपसेंही सब शंकाका समाधानरूप उत्तर देते है उस सबबसे किसीकों शंका नहीं रहती है इस मुजब जबतक आयुष्य कायम रहे वहातक पृथिवी पर फिरकर भव्य जीवोंको प्रतिबोध करते हैं इस प्रकार, तेरहवे

गुणठाणमें वर्त्तते हैं. इस गुणठाणमें चार अघाति कर्म रहे हुये होते हैं अघाति क
नेका यही मतलब है कि आत्माके गुणोंको ये कर्म घात नहीं करते हैं और गुण प्र
करनेमें अटकायत नहीं करते है उससें अघाति कर्म कहा जाता है.

चतुर्दशवा अयोगी गुणठाणा है यह गुणठाणा जींदगीके अतका अ-इ-उ-
लृ-यह पांच अक्षर बोलनेके वक्त जितना वक्त बाकी रहा होवे तब प्राप्त होता
ये गुणठाणेमें योग यानी मन वचन और काया इन्होंका रोध होता है और चारों क
नाश हो जाते हैं तथा सब कर्मोंसें रहित होता है. चरम शरीरका त्याग होता
एक समयमें सिद्धमें बिराजमान होते हैं. वहां सदैव अवस्थित रहते हैं. फिर ससार
आनेका नहीं रहता है; क्यों कि ससारमें परिभ्रमणका कारणरूप कर्म है, उसका ना
होता है उससें पुन' जन्ममरण होताही नहीं. सपूर्ण आत्मिकसुख प्रगट हुवा है औ
पूर्ण सुखकों प्राप्त करते है.

यहापर कोइ शका करेगा कि जो लोकके अतमें जाते है वे अलोकमें क्यों नहीं
जाते है? इसकी समाधानीमें यह है कि अलोकमें धर्मास्तिकाय नहीं है. लोकके अ
तकही धर्मास्तिकाय है. जीव और पुद्गल धर्मास्तिकायकी सहायता विगर नहीं च
सकते है. उससें आगे नहीं जा सकते हैं यदि कहेगा कि यहासे वहा तक आत्माक
जानेका क्या सबब है? उसका उत्तर यही है कि उर्द्ध जानेका स्वभावही है जिस
वहाही जाते हैं. इस मुजब चौदह गुणस्थानरूप धर्म है उन्मेंसें जितना बन सके उतन
धर्म करे उसी मुजब शुद्ध होता है

५५ प्रश्नः—इस मुजबका धर्म जैनवालेही कर सकते हैं या दूसरेभी कोइ कर शके

उत्तरः—बहुत करकें जैनवालेही कर सकते हैं, सबब कि–जिसकों वस्तु धर्म
ज्ञान नहीं होता है, वहातक वस्तुकों वस्तुपणेसें मानना नहीं बन सकता है
उसीसें स्वभाव विभाव नहीं जाना जाता है. और विपरीत जाननें
पर्योंकर मुक्ति होवे? किसी जीवकों स्वाभाविक सहजहीमें वस्तु धर्मक
ज्ञान होवे, तो आपके स्वभावमें रहकर परभावका त्याग कर देवे त
गुणस्थानमय धर्म प्राप्त होवे. जैसें कोइ मनुष्यकों मार्गमें चलते चलतेही
पाँव जमीनमें धुस जाय और वहासें द्रव्य प्राप्त होनेसे धनवान हो जाता
है, वैसे स्वभाविक बोध हो जावे. मगर वो थोडे जीवोंकोही ऐसा बन

आता है, बहुतसें जीवोंको अैसा होना बहुतही मुश्किल है पूर्रपूरा उद्यम करनेसे तो बहुतसे मनुष्य द्रव्य पेदा करते हैं, तेसे जैनमार्गसें निकट मुक्ति है अन्य भावसेंभी जिनधर्मकी मर्यादावत्, आत्मिकधर्म आजावे तभी मुक्ति पाते है

५६ प्रश्न—अैसा समजकर जैनधर्मके उपर राग–प्यार रक्खे और दूसरे धर्मपर द्वेष रक्खे तो युक्त है या नही ?

उत्तरः—जिसने जैनधर्म पाया होवै उसकों मुनासिब है कि किसी धर्मके उपर वा किसी मनुष्यके उपर द्वेष न रक्खे, क्यों कि जैनाचार्योंने तो कहा है कि–'सकल दर्शनके नय ग्रहे, आप रहे निज भावेरे'–इसका परमार्थ यह है कि, जिनधर्मवाळाओंने मार्ग दर्शाया है उसमे सारभूत क्या है ? वो सारभूत जिस पक्षस होवै सो पक्ष जान लेवै और अच्छे पक्षकी व्याख्या करै, विरुद्ध पक्षकी और लक्ष न देवै आप रहे निज भावे–यानी जैनशासनमें सप्त नयसें मार्गका निर्णय है वही भावमें स्थिर रहेवै, लेकिन किसी जीव पर द्वेष न करै निंदा न करै–निंदा करनी ससारमै दुरस्त नही है और वादविवादमैंभी दूसरे जीवकों या अपने जीवकों लाभ–फायदा होवै अैसी प्रतीति होवै तो वाद कर मगर अपने अहकार ममकार के लिये मत कर अष्टकजीमें पत्र (५२) बारहवे अष्टकने हरिभद्रसूरि महाराजनें धर्मविवाद करना कहा है; लेकिन शुष्कवाद–कळशोपरूप–कुछभी फायदा न होवै वैसा वाद करनेका निषेध किया है फिर जिसकों आत्मधर्म प्रकट करना है तो ज्यों बन सकै त्यों वे पुद्गल भावकी प्रवृत्तिसें मुक्त होनेका उद्यम कर रहे है. वे दूसरोंकी पचातमें क्यों पडै ? जिसकों व्यवहार करणी करनी है वै अैसी करै कि जिसमें आत्म विशुद्धि होवै और रागद्वेषकी परिणती कम होवै वैसा उद्यम करे वैसे जीव किसीपर द्वेष रक्खेही नहीं, वो तो हम्मेशा भावदया कर रहते हैं वास्ते आपको फुरसद मिले जब धर्मोपदेश देवें, उसमेंभी किसीके छिद्र जाहेर होवै वेसा न करै लेकिन सुननेवालोंकों जिस प्रकार समता बढे उस प्रकार उपदेश देवें

५७ प्रश्नः—अधर्मि जीवोंके ऊपर द्वेष करै किंवा नहीं करै ?

उत्तरः—अधर्मि जीवोंके ऊपर मध्यस्थ रहेवै यानी रागभी न लावै और द्वेषभी न करै. राग करनेसें अधर्मकी प्रशंसा होवै तो आपकों कर्मबंधन होवै, और स्वप्रशंसा देखकर दूसरे जीव अधर्म सेवन करै तो उनका कारणीक बनै. और द्वेष करनेसें वो जीवके साथ वैर बंधन होवै तो वो कर्म भुक्तना पडै, वास्ते समभावसें रहेवै. अधर्मकी प्रशंसा करनेसें श्रावककों भवभ्रमण करना पडा है. वो कथा अर्थदीपिकामें छपी हुइ किताबके पत्र ७७ में है. वास्ते अधर्मिका बहु मानभी न करै.

५८ प्रश्नः—अन्य धर्मवाले धर्मकरणी करते है वो निष्फळ जाती है या नहीं ?

उत्तरः—अन्य दर्शनीमेंभी कितनेक जीव केवल अपने आत्माकों कर्मसें मुक्त करनेके लिये जीवदया पालते हैं, असत्य नही बोलते हैं, चोरी नहीं करते है, मैथुन नहीं सेवते हैं, परिग्रह नहीं रखते हैं, क्रोध, मान, माया, लोभ पतले पडे हुवेकों ज्यादा पतले करनेका उद्यम करतेही रहते है. किसी धर्मपर द्वेष नहीं लावै येभी क्रमसें चढती दशाका निशान है. जिस्सें हरीभद्रसूरी महाराजने योगदृष्टिसमुच्चयमें पातंजलीकों मार्गानुसारीमें गिन लिये हैं. कितनेक जीव सत्य जैनधर्मपर द्वेष कर रहे है और अहंकार ममकार कर रहे है, हिंसा करकें धर्म मानते है अैसे जो अन्य धर्मवाले होवै उनका कार्य सिद्ध कैसे होवै ? रागद्वेष है सोही संसारका बीज है और वो तो रातदिन कर रहे हैं, तब उसका लाभ तो सब धर्मवाले कह गये है कि संसार फळ—भवभ्रमणही मिलता है उनका दूसरा फल कहांसे प्राप्त होवै ?

५९ प्रश्न.—जैनमेंभी बहुतसे गच्छ है वे सभी शुद्ध है या नहीं ?

उत्तरः—जैनमें शुद्ध आचार्य महाराजका गच्छ तो एक आचार्यका परिवार हो उनकों गच्छ कह गये है, उसी मुजब अलग अलग आचार्योंके परिवारकों अलग अलग गच्छ कहेवै तो उनमे कुछ एक दूसरेकों हठवाद नहीं है. अैसे जो जो गच्छ हैं उन सभीमें धर्मसाधन समान है—सभी मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले है. कभी कुछ समझकी तफावतसें किसी किसी ऊमातेंम

एक दूसरे आचार्यके विचारमें तफावत आता है, तौभी एक दूसरेके उपर द्वेष नहीं होता है दोनू मुक्तिके गामी है उसमें उनके पीछेकेभी आचार्य ऐसा कहते हे कि जिनभद्रक्षमाश्रमणजी यों कहते हैं और सिद्धसेनदिवाकरजी यों कहते हैं ऐसें मध्यस्थ रहते है, लेकिन किसीकों ज्यादे कम नही कहते हैं ऐसे अपनकोंभी मध्यस्थ रहना चाहीए जैसे कि खरतरगच्छवाले सामायिकके आद्यमें करेमिभतेही कहते हैं और पीछे इरियावही पडिक्कमते हैं इस मुजब आवश्यकर्जीकी टीकामें हरिभद्रसूरि महाराजने कहा है और तपगच्छमें प्रथम इरियावही पडिक्कमते हैं, उस पीछे करेमिभते कहते हैं इस विषयके बारेमें श्रीमहानिसिन्थसूत्रकी अंदर कहा है कि इरियावही कहे विगर कुछभी काम नहीं करना इन आधार परसें तपगच्छवाले वैसेंही करते है अब दोनू गच्छवाले दोनू शास्त्रकों कबूल करते हैं, तब दुरस्त है कि दोनू गच्छवालाकों मध्यस्थ रहना चाहियें जैसे पूर्वाचार्य दोनू आचार्यके दोनू मत दर्शाते है मगर किसीका निरादर नहीं करते है, तैसे अपनकोंभी कबूल करना चाहियें कि यह गच्छवाले इस ग्रथके आधारसे क्रिया करते है, और ये गच्छवाले इस ग्रथके आधारसें करते हैं ऐसा कहकर मध्यस्थ रहना. मगर एकके शास्त्रकों सच्चा और दूसरेके शास्त्रकों झूठा कहकर रागद्वेषमें गिरना वो आत्माकों दुःखदायक है जो प्रवृत्ति पूर्वाचार्यकी नहीं है तो वो अपनी मतिकल्पनाकीही गिनी जाती है, और शास्त्रमेंभी विरुद्ध है उसमैंभी जो शातपणेसें समझ सके तो समझाना चाहिये, लेकिन रागद्वेष करना तो बेमुनासिब है अपने आत्माकों गुण प्राप्त होवे वैसी प्रवृत्ति करनी, क्या कि ठाणागर्जीमें चौभगी है कि-परगच्छी है और योग्य जीव है उसकों अपने गच्छके हठसें ज्ञान नहीं देते है वो भगवतकी आज्ञाका उल्लघन करते हैं इससे समझा जाता है कि जो गुणवत होवे और परगच्छी होवे तोभी उनका अनादर नहीं करना, सबब कि गुणवत होवे वा सम परिणतिवत होते है, उसके साथ परिचय करनेसें गच्छकी तकरार आनही नहीं पाती है एक दूसरेकी भूल होवे सो सुधर जाती है, वास्ते गच्छका हठ करके तकरारमें

नहीं झुक जाना शास्त्र तर्फ दृष्टि देकर विचारना. दोनू शास्त्रमें दो बातें अलग होवें वो कुछ दोनू ग्रहण होती नहीं और दोनूंमेंसें एकभी बात असत्य होतीही नहीं, लेकिन वे दोनूके हेतु अलग अलग होते हैं, वो गीतार्थ जान सकते हैं आधुनिक कालमें ऐसे गीतार्थका वियोग है. भगवतीजीकी टीकामें अभयदेवसूरि महाराजभी गीतार्थका विरह कहते हैं, वास्ते अपनी अल्पमतिसें मुकरर नहीं हो सकता है. इसलिये मध्यस्थ रहकर प्रवृत्ति करनी और जिस मुजब करनेसें हठ कदाग्रह न होवे उस मुजब चलना कि जिस्से आत्माकी परिणति न बिगडने पावें. ठाणांगजीके चौथे ठाणेमें छपी हुइ प्रतके पत्र २८२ के दूसरे पृष्ठमें इस मुजब लेख है कि:—पुरुष चार प्रकारके हैं–१ साधुधर्म सो जिनाज्ञा उसकों छोड देवे, और गण–गच्छकी स्थिति यानीं गच्छकी मर्यादा नहीं छोडता है. किसी आचार्यनें ऐसी मर्यादा कही है कि दूसरे गच्छके यति साधुकों सिद्धांत न देना. अब दूसरे गच्छके यतिकों श्रुत न देवे, न पढावे, वो धर्म जिनाज्ञा छोडता है, मगर गच्छकी स्थिति नहीं छोडता है जिनाज्ञा ऐसी है कि–'जो योग्य होवें उन सभीको श्रुत देनाही योग्य है' यह पहेले पुरुषकी रीति है और दूसरा पुरुष गच्छकी आज्ञा छोडकर दूसरे गच्छके यतिकि जो योग्य होवे उस्कों श्रुत देता है वो पुरुष जिनाज्ञारूप धर्म नहीं छोडता, मगर गच्छ स्थितिका उल्लंघन करता है तीसरा पुरुष जो अयोग्य अन्य गच्छवाले यतिकों श्रुत देता है, वो पुरुष धर्म और गच्छ ये दोनूका उल्लंघन करता है और चौथा पुरुष, दूसरेके शिष्य हैं, लेकिन वे श्रुत रखनेके योग्य हैं इसमें अपने शिष्य बनाकर श्रुत देता है, वो पुरुष धर्म और स्थिति इन दोनूकी मर्यादा पालन करता है. इस मुजब ठाणांगजीमें अधिकार है. उस पर लक्ष देकर कदाग्रहमें न गिरते समझनेवालेकों या अपने आत्माको लाभ होवे सोही प्रवृत्ति करनी. ये चौभंगीमें ऐसी शंका होगी कि 'आचार्योंने गच्छकी स्थिति कैसी बनाइ है?' इसके लिये उसी टीकामें कहा है कि–प्रभुके उपदेश रहित आज्ञा बनी गइ है. सबब कि प्रभुका उपदेश समस्त योग्य जनोंको ज्ञान देना ऐसा

है. इस मुजब टीकामें है फिर चौथे भागवालेके लिये गाथा रख्खी गइ है कि–ये पूजनीक है उससे विदित होता है कि ये गच्छकी खोटी रीति परसें चित्तकी रुचि भ्रम हुइ मालूम होती है तत्त्व केवली गम्य है.

६० प्रश्नः—इस कालमें देव आता है या नहीं? न आनेके सबब परदेशी राजाके विज्ञादमें आगे कह बतलाये है, उसी वास्ते नहीं आ सक्ते है?

उत्तर.—चार कारणसें देवता आते हैं यह अधिकार ठाणांगजीमें चौथे ठाणेमें छपी हुइ मतके पत्र २८६ के पहेले पृष्टसें सबध चला है चार स्थानकमें अभीका पैदा हुवा देवता देवलोकमें रहा हुवा चाहता हे और मनुष्यलोकमें आनेके वास्ते समर्थ होता है यानी तुरतका उत्पन्न हुवा देवता देवलोकमें दिव्य काम भोगनेके विषे मूछित न हुवा होवे वो देव अनित्यता ध्यानमें लेकर यावत् अत्यत आसक्त मन न हुवा होनेसें चिंतवन करता है कि–मेरे मनुष्य भव सबधवाले आचार्य, प्रतिबोधक, वा उपाध्याय, सूत्रदाता, प्रवर्तक (जो साधुजनकों आचारमें प्रवर्त्तावे), वा स्थविर वा गणीगच्छके स्वामी, गणधर [गच्छके धरनेवाले], वा गणावच्छेदक [गच्छकी सार करनेवाले] ऐसे महाशय कि जिनके प्रभावसें यह प्रत्यक्ष देवसपत्ति–देवताका शरीर तथा काति प्राप्त हुइ जन्मांतरमें उपार्जन की हुइ पुण्यलक्ष्मी सन्मुख खडी हुइ, वास्ते मैं वहा जाउ और वो उपकारी भगवतका वदन करु यावत् उन्होंकी सेवा करु यह पहिला सबब दूसरा सबब यह होता है कि–तुरतका उत्पन्न हुवा देवता जबतक विषयमें अत्यतासक्तिकों प्राप्त न हुवा होवे तब तक वो देवता चाहता है कि मेरे, मनुष्यजन्म सबधी माता पिता भार्या भाइ भगिनी पुत्र पुत्री हैं उनकों मिलनेके वास्ते वहा जाउ उन्होंकी पास जाकर प्रगट हो खडा रहु वे सब मेरी दिव्य देव सबधी विमान वगैर की सपत्ति, रत्न प्रमुखका दिव्य देवकाति आदि प्राप्त हुइ है वो देखें, यह दूसरा सबब है तीसरा सबब यह है कि–तुरतका उत्पन्न हुवा देवता शोचता है कि मनुष्य भवमें ज्ञानी श्रुतज्ञानादिक सहित हैं, वा बडे तपस्वि हैं, वा अति दुष्कर करणीके करनेवाले हैं उन्हकों वदन निमित्त यावत् सेवा भक्ति निमित्त वहा जाउ. ये तीसरा कारण है. और

चोथा सबब यह है कि—नवीन उत्पन्न हुवा देव मनमें शोचता है कि—मेरे मनुष्य भवके मित्र स्नेही सहचारी वा सगतिक—परिचयवत है उन्होंके साथ मनुष्यजन्ममें था उस वख्त परस्पर संकेत कीआथा या देवतामें संकेत किया था कि देवताकी अन्दरसें प्रथम च्यवन हो मानवमें जावे तब उन्हकों प्रतिबोध देना, ये चार सबब हैं. इस मुजब ठाणागजीकी अदर अधिकार है, वास्ते देव यहापर नहीं आता है ऐसाभी एकांतसें न समझना चाहिये. फिर वीरस्वामीके निर्वाण पश्चात् बहुतसे आचार्य महाराजकी सेवामें देवता आये हैं. देवकी मददसें श्रीसीमधरस्वामीजीके पास शंकाकी समाधानीके स्वालोंके खुलासे मगवाये हैं, लेकिन अत्यत गुणवत होवे उनकी सेवामें देव आता है. हीरविजयसूरीजी तकके आचार्योंनें देवकी सहाय्यतासें शासनकी बहुतसी प्रभावना की है फिर आनदविमळसूरीके वख्तमें श्रावकने देवाराधन कियाथा और उस देवकों पुछाथा कि–' अभी युगप्रधान कौन हैं?' तब देवने युगप्रधानकी पहिचान होनेके लक्षण कह बतलायेथे. उस्सें श्रावकने तजवीज की तो आनदविमलसूरीजीकों युगप्रधान मुकरर कीये थे. यह अधिकार हीरविजयसूरीके रासमें है वास्ते न आवे ऐसा निश्चय नहीं है (शठ अनूपचदजी लिखते हैं कि–) मुझेभी मुनिसुव्रतस्वामीजीके प्रभावसें कुछ अनुभव हुवा है. फिर व्यवहार सूत्रकी भाष्यमें कहा है कि–किसी मुनिकों गुरुमहाराजका योग न होवे और प्रायश्चित लेना होवे तो अठमका तप करकें भरुचमें मुनिसुव्रतस्वामीजीका आराधन करना, उस्सें उन प्रभुके अधिष्ठायक आकर प्रायश्चित देवेंगे, सबब कि मुनिसुव्रतस्वामीजीनें और उन्हीके गणधरोंनें बहुतसें प्रायश्चित दीये है वो उन्ह अधिष्ठायक देवोंने सुने हुवे हैं उस सबबसें वे देवेंगे कदापि वे देव दूसरी गतिमें चले गये होवेंगे तो उन्हीके दूसरे अधिष्ठायक देव श्रीसीमधरस्वामीजीकों पुछ करकेंभी खुलासा देवेंगे, इस्सेभी समझा जाता है कि देव यहा आते हैं यह अधिकार व्यवहारसूत्रकी भाष्यकी टीकावाली प्रत जो मेरे पास है उसमें पत्र २०६ के दूसरे पृष्ट मे पहिला उद्देशाकी समाप्तिके भागमे है.

९१ प्रश्नः—सूत्र, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी और टीका यह पाचों अग तुल्य माननेमे आते है. और कोई नहींभी मानते है, तो उसमें व्याजबी क्या है?

उत्तर —ये पाचों अग समान मानने चाहियें, मगर कि सूत्रमें दश पूर्वधरके वचन तो सूत्र तुल्य कहे हैं अब भद्रबाहुस्वामी चोदह पूर्वधर हुए, उन्होंने निर्युक्ति रची है, तो उसमें तफावतकी भावना ल्यानी वो अज्ञानता है. फिर समवायांग सूत्रमें असा पाठ पत्र २२८ में छपी हुइ प्रतमें है कि– 'कप्पस्स समोसरणणेय '–इसका अर्थ किया गया है सो कल्पकी भाष्यसें समवसरणका अधिकार जान लेना और छपी हुइ भगवतीजीमें पत्र ९१८ में कहा है वो सिद्धगडिआसें जान लेना

यहा पर कोइ शका करेगा कि समवायागजी तो गणधर महाराजने गुथन किया है, और भाष्य पीछेसें रचा गया है, तैसेंही सिद्धगडिआभी पीछेसें रचा गया है, तो उसमें वो अधिकार कहासे आया? उसके उत्तर-में यह समाधान है कि जिस वरूत देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीनें शास्त्र लीखे उस वखत ज्यादा लिखान न बढ जावे उनके लिये एक दूसरे शास्त्रकी भलामण की. जैसें कि भगवतीजीमें पन्नवणाजीकी और जीवाभिगमजी वगैर की भलामण है अब पन्न-वणाजी शामाचार्य महाराजने बनाया है तो वो भलामण भगवतीजीमें कहासें आवे? मगर लिखनेके वख्त एक बात ज्यादे जगह लिखनी न पडे उससें उपांग पयन्ना भा-ष्यकी ये भलामणें करकें सकोच किया इसपरसें शोचनेका है कि देवर्द्धिगणिक्षमाश्र-मणजीको जो ज्ञान था उसमें सूत्रनिर्युक्ति भाष्य वगैर. यादीमें था सो लिखा तब जो सूत्रमें और निर्युक्ति भाष्यमें शका होती तो क्यों लिखते? उन्होंनें तो अपने पर परमोपकार बुद्धि लाकर सूत्रादि लिखाये वास्ते इसमें कुछ शका या फेरफार माननेका बेहुनासिब है फिर आर्यसुरक्षितसूरीजीनें सूत्रका सक्षेप किया, वो अधिकार हरिभद्र-सूरीजीकी रची हुइ आवश्यककी टीकामें है वोभी मानवगणको शका हो आवेगी कि उन्मेंभी कुछ फेरफार किया होगा, लेकिन आर्यरक्षितसूरीजीके पाटपर दुर्बलीपुष्प हुवे उनके वख्तमें गोष्टामाहिल हुवे उस समय देवताके द्वारा पुछवा लिया था कि– 'आर्यदुर्बलीपुष्प कहते हैं वो सचा है या गोष्टामहिल कहते हैं वो सचा है?' श्रीसीम-धरस्वामी महाराजजीने देवताको कहा कि–'आर्यदुर्बलीपुष्पका कथन सत्य है गो-ष्टामहिल निन्हव है ' यह अधिकार उत्तराध्ययनजीकी टीकामें है इससें सबूत होता है कि आर्यरक्षितसूरीके पाटपर आर्यदुर्बलीपुष्प हुवे है तो वे आर्यरक्षितसूरीके वचन

मानते थे, वे वचनोंकी प्रतीति श्रीसीमधरस्वामीजीने दी. तो यह वार्ताभी सिद्ध हुइ. उस पीछे जिनभद्रगणीक्षमाश्रमणजी हुवे, उन्होंने भाष्य रचना की, और चूर्णी आचार्यने बनाइ. और उनमेंसे कितनीक टीका हरिभद्रसूरीजीने बनाइ वैसेही दूसरे आचार्यकी बनाइ हुइभी उन्होंने प्रमाण रक्खी उन हरिभद्रसूरीजीको शासनदेवने १४४४ ग्रथ रचनेका कहा. अब शोचिये कि पाच अगमे विरुद्ध होता तो हरिभद्रसूरीजीकी श्रद्धाभी विरुद्ध ठहरती, तो शासनदेव रचनेका क्यों कहे ? मगर शासनदेवने शुद्ध पुरुष जानकर हरिभद्रसूरीजीका मान्य किया-सच्चा माना तो १४४४ ग्रथ रचनेके लिये कहा. वास्ते ये पाच अग शासनदेवताने योग्य जान लिये थे, इस प्रमाणसें इसमे कुछभी विषमवाद गिनना नही. और गिने तो वो सरस भगवतकी आज्ञाका लोपनेवालाही ठहरे फिर अभयदेवसूरीजीने टीकायें बनाइ तो उन्होंनेभी शासनदेवके कहनेसेंही टीकायें बनाइथी इस तरह बहुत प्रकारकी ये पाचो अंगोंको छाप है फिर दूसरी तरह शोचो कि सूत्र तो सूचकमात्र है और सबका खुलासा तो पंचागीसेंही मिल सकता है. जो लोग पचागीको नही मानते है वेभी गुप्त रीतिसे टीकायें देख कर शोचते हैं तभीही अर्थ हाथ लगता है, वास्ते पचागी प्रमाण करनेमें यथार्थ बोध होता है.

६२ प्रश्नः—उनसठवे प्रश्नमे कहा गया है कि-दश पूर्वधरके वचन प्रमाण करना ऐसा शास्त्रमे कहा है, और देवार्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी तो दश पूर्वधरभी न थे तब वो कथन किस तरहसें प्रमाण कीआ जावे ?

उत्तरः—देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने कुछ नइ रचना नहीं की है. गणधर महाराजकी पाट परपरामे जो पुरुष चले आये उनकी पाससें आपने धारणा कीथी उस मुजब लिखा, वास्ते उसमे कुछ पूर्वकी न्यूनताके बारेमे शका ल्यानेकी जरूरतही नहीं है.

६३ प्रश्न.—बाह्य वा अभ्यतर तपश्चर्या करनेसें निर्जरा होवे कि पुण्य बधा जाता है ?

उत्तरः—जो पुरुष स्वसत्ता परसत्ताका ज्ञान पा चुके है वै पुरुष शरीरको जड कर्मके जानते हैं फिर जानते है कि जो जो कर्म उदीरणा करके उदय होता है और समभावसें भुक्तनेसे नये कर्म बंधाते नही पूर्वके बाधे हुवेभी एक कर्मके साथ दुसरेभी शिथिल कर्म रहे है तब समभाव आनेसे शिथिल कर्म तो प्रदेशस भुक्ते जाते हैं, तब जो पुरुष कर्म खपानेके लिये

उदीरणा करे उसमें तो अवश्य समभावही होवे वास्ते वो प्रदेश उदयके कर्मकी निर्जरा होता है दूसरे कर्म जो निकाचित होवे वोभी शिथिल होवे, मात्र एक उत्कृष्ट स्थानवर्ति निकाचित कर्म है वो भुक्ते विगर अलग होते ही नहीं, और मध्यम स्थान वर्त्ति तो ज्ञानसहित तपसें नाश होती है यह अधिकार विशेषावश्यमें है तप करनेमें अशाताभी होवे तो उसकीभी निर्जरा होती है फिर शुभ योग रहे है उस्सें पुण्यभी बधा जाता है, परंतु पुद्गलिक सुखकी इच्छा नहीं है उस्सें वो पुण्यभी मुक्तिमें सहाय्यकारी होवे, लेकिन मुक्तिकों रोकनेवाला नही है. वास्ते तपश्चर्या करनेसें मुख्य पणे निर्जराही होती है निर्जराके बारह भेद वही तपके बारह भेद कहे है फिर तिर्थंकर महाराजजी और दूसरे मुनि महाराजभी बहुत तपश्चर्या करकें कर्मक्षय कर तद्भव मुक्तिमंदिरमें पधारे हैं, वास्ते जो तपश्चर्यासें पुण्यबध हो अटक जाता तो वे पुरुषोंकोंभी रुकावट होती वो नहीं हुइ है, उस्से समझा जाता है कि निर्जराही मुख्यपणे होती है

६४ प्रश्न—आत्मतत्वका ज्ञान न होवे उसकों तपश्चर्या करनेसें क्या लाभ होवे ?

उत्तर —आत्मज्ञान नही होता, मगर आत्मज्ञानी पुरुषकी निश्रासे रहकर वर्त्तते है वे पुरुषभी कर्म क्षय कर सकते हैं जेसें कि मासतुस मुनिकों एक चरणभी मुँहपर याद नहीं हो सकता था, मगर गुरुकी आज्ञामें रहकर एक चरणका अभ्यास जारी रख्खा तो केवलज्ञान प्राप्त हुवा, सबब कि गुरुमहाराज निश्चय-व्यवहार-उत्सर्ग-अपवाद-द्रव्य-भाव ये सभीके ज्ञाता है, वास्ते शिष्यकों थोडा बोध होवे तौभी मुख्य मुख्य बाबत गुरु समझा देवें उस्से उनके आत्माका कार्य सहजहीमें हो जाता है दूसरे मनुष्य साथ वादविवाद न कर सके, मगर स्वात्माका काम कर सकता है, वास्ते असे पुरुषका तप सफल है. गीतार्थ और गीतार्थकी निश्रा यह दो प्रकारका मार्गही कहा है

६५ प्रश्न—गीतार्थकी निश्रा नहीं और स्वच्छदतासें करे उसकों कुछ लाभ-फायदा होवे या नहीं ?

उत्तर:—भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र १९८ मे चौभगी है, उसमे कहा है कि-जो श्रुतसें करके रहित अज्ञानी बालतपस्वी गीतार्थ अनिश्रितदेश आराधक कहा है, फिर ज्ञाताजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ३४६ मे मेघकुमारका अधिकार है. मेघकुमारने पिछले हाथीके भवमें ससेकी दया कीथी उससें उस जगह कहा है कि संसारका अत लाया. विपाकसूत्रमे-सुखविपाकमे पत्र २६२ सें बाहु तथा सुबाहुकुमारके पिछले भवका अधिकार है. उन्होंने मुनिकों प्रतिलाभे थे उस वक्त कुछ समकित नहीं था. तथापि वहा कहा कि ससार परित किया उस्सें अत आया; वास्ते गीतार्थकी अनिश्रासें मोक्षकी कामना युक्त धर्मकरणी करता है वोभी सफल होती है परपरासें लाभ मिलता है, लेकिन अपने अहकारके लिये गीतार्थकी निश्रा छोड देता है और दिलमे उन्माद करता है कि गुरु क्या करनेवाले हैं? गुरु जो करनेका कहेंगे वो तो मै करता हु. अैसे अभिप्रायसें करनेवालेकों तो फायदा होनेका सभव नहीं है. गुरुकी योगवाइ नहीं मिलती तोभी चित्तकी भावना वर्त्तती है कि-कब मुझे गुरुका योग मिलेगा? फिर मिलनेसें उन्होंकी आज्ञा मुजब चलुंगा-अैसे जीवकों लाभ होता है. इस वृत्ति सिवायके अहकारी प्रमुखकों लाभ नहीं मगर नुकसान तो बेशक होता है.

६६ प्रश्न:—यह लोकके उपर लोककी वाछना रहगइ है और तप वगैरः करै उसकों लाभ किस प्रकार होवै? फिर उपदेशमालाकी गाथा २२५ मे कहा है कि अज्ञानी तप करै वो निष्फल होव वास्ते उसका क्या खुलासा है?

उत्तर:—मुख्य वृत्तिसें यह लोक परलोककी वाछासें तपश्चर्या वगैरः करनेसें ससार बढावे, मगर प्रथम तो यह लोककी वाछासें करे; तथापि उत्तम पुरुषकी सगति होवै तो उससें किसीकोंभीलाभ होता है. जैसे कि सप्रतिराजाके जीवने पिछले भवमे आजीवीकाके वास्ते सयम ग्रहण कीया था, तोभी वो काल कर (मरन के शरन होकर) के राजा हुवा. वहाभी आर्यसुहस्तिसूरीजीकों देखकरकें जातिस्मरण ज्ञान हुवा और समकित पाया. इत्यादि बहुतसें गुण हुवे. यह अधिकार परिशिष्टपर्वणिमे पत्र २७७ की अंदर छपी हुइ किताबमें है वास्ते एकान्त येभी निश्चय नहीं ह, लेकिन ज्यों बने त्यों यह

लोककी और परलोककी वांछना कम होवै वहीउद्यम करना शुरू है मगर कितनेक जीव लालचमें करते होवें उसका तपश्चर्यादिकका उद्यम छुडाना नहीं उनकों उपदेश देकर यह लोक परलोककी वाञ्छना छुडा देनी चाहिये जैसें कि उपाश्रयमें बतासे श्रीफलकी प्रभावना होती है -अब वो लेनेकों आया, लेकिन बटनेकी देर है और दरम्यान धर्मश्रवण किया, वो अच्छा लगा और रुचि हुइ, तो पीछे आत्माका हितभी होवै, वास्ते धर्मकरणी करनेमें किसीकों रूकावट नहीं करनी और धन सकै तो परभावकी जो वाञ्छना है वो छुडा देनी ये अच्छा है हरिभद्रसूरिजी अष्टकजीके आठवे अष्टकमें मेरी पास जो प्रत है उसके पत्र, ४१ में लिखते है-कि-जो ये लोक परलोककी वाञ्छनासें तप करता है, मगर अरिहतजीके भक्तिफलसें मुजकों लाभ मिलेगा ऐसी भावना है, उसमें अरिहतजीके ऊपर राग है वो परपरासे जोडनेवाला है-इस मुजब ल्याये हैं फीर पचाशकजीमेंभी इसी मुजब पत्र १९४ मे तपका अधिकार है, उसमेभी यह बात परपरासें लाभकारक बतलाइ गइ है फिर नंदीजीकी टीकामें ( छपी हुइ प्रतके पत्र २४१ मे ) सबसें कम गृहस्थलिंगसें सिद्ध और अन्यलिंगसें असंख्यात गुणे सिद्ध होवै, उससें साधुलिंगसें जैन के वै असख्यात गुणे सिद्ध होवे. फिर सिद्ध पचाशिकामें एक समयमें गृहस्थलिंगसें चार सिद्धि प्राप्त करनेका कहा है; और अन्य तापसलिंग दश सिद्धि प्राप्त करनेका कहा है. अब शोच ल्यो कि गृहस्थलिंगमें श्रावक सम्यग्दृष्टि सब आगये तोभी चार सिद्धि प्राप्त करते है और तापस्यादिककों कुछ समकित मुद्दल शुरूसेंही नहीं, परभी दश सिद्धि प्राप्त करै उसका सबब इतनाही है कि जो समकित दृष्टि श्रावकनें आत्माका और परका स्वरूप और ससार अस्थिर जान लिया है, लेकिन पूर्व कर्मके योगसें ससारमेंसे नहीं निकल सकता है, इस सबबसें विशेष विशुद्ध न होनेके लिये कम जन सिद्धिकों प्राप्त करते है तापस वगैर का अज्ञानतासेंभी वैराग्य प्राप्ति होनेसें ससार छोड दिया, मगर यथार्थ बोध नहीं हुवा उसमें अन्यदर्शनमें पड रहे है, तोभी भवितव्यताके जोरसें सहजसें खोटे दर्शनका मार्ग

देखनेसें वो खोटा मालूम हुवा, ओर जो वस्तु सर्वज्ञ महाराजजीनें जैसी बताइ है वैसी दिलमें सची मालूम हुइ उससें खोटी वस्तुके ऊपरसें दिल हट गया सचे पदार्थ जो नव तत्त्व वे ज्यों है त्योंही उपयोगमें आये, देवका स्वरूप उपयोगमें आया उसी मुजब ध्यानादिकमें कुशल हुवे, द्रव्यसें ससार खोटा जान कर त्याग कर दियाथा वो अब भावसेंही खोटा समझनेमें आया. अपने आत्मिक सहज भावमें रहना वही प्रिय हुवा–इस मुजब ध्यान करना सुगम पडा, इस्सें गृहस्थसें अन्य लिंग ज्यादे सिद्ध होते हैं तापसोंने अज्ञानपनेसें ससार न त्याग किया होता तो गृहस्थकी तरहसें उनकोंभी मुश्केली उठानी पडती इसपरसें ख्याल करनेका है कि अन्य लिंगमेंभी त्यागभावसें गुण होता है, तो जैनका तपश्चर्याका अभ्यास है वे अनुक्रमसें क्यों गुनकों न जोड दे ? वास्ते धर्मकी अभिलाषा है वही गुणदायक है, मगर कितनेक ऐसी क्रिया करकें अहंकार करे कि अपन तो बराबरही करते हैं, बहुत पढकर क्या करना है ? थोडेही ज्ञानसें बस है फिर कोइ समझाता है कि ज्ञानाभ्यासका उद्यम करनेका कहता है पर ज्ञानाभ्यास नहीं करता है प्रभुकी आज्ञा आराधनेकी बुद्धि नहीं–जो जो वस्तुको बोध नहीं है उसकों मीलानेकी इच्छा नहीं–फक्त जनरंजनार्थके लियेही करता है–उनके वास्ते तो उपदेश मालामें कहा है उसीही तरह तप निष्फल होवे. यह लोककी वांछावाले बहुत करकें देवलोकादिक मिलनेसें देवके सुखोंका अभिलाष है उस्में लुब्ध हो जावे उसमें धर्म करना दुर्लभ हो पडे वास्ते ज्यों बन सकै त्यों वांछा तो कम करनी, लेकिन त्यागभावसें विमुख नहीं बनाना निकट साधन तो प्रभु आज्ञासें चलना और वोभी ज्ञान सहित चलना कदाचित् ऐसा न बन सके तो ज्ञानसहित आज्ञा सहित करनेकी अभिलाषा रखकर बरते वही उत्तम पुरुषका काम है, जेनकी जो जो क्रियाए है उनका अभ्यास करनेसें शुद्ध होता है, इस लिये पचाशकके पत्र ८ वमें सामादिकका अंदर उनके अतिचारमेंभी ऐसा कहा है कि मन स्थिर है वो अभ्यास करनेसें स्थिर होता है, वास्ते अच्छा अभ्यास करना और ज्ञानाराधनमें लक्ष र-

खना जो जो प्रभु आज्ञाकी बहार होता है यानी आज्ञा विरूद्ध होता है उसके वास्ते ऐसी भावना रखनी कि–जो भगवतजीकी आज्ञा है उस मुजब कब चलुगा ? ऐसें भावनावालेकों कार्यसिद्धि समीप है.

१७ प्रश्न —यात्रा करनेके लिये तीर्थोंमें जाना उससें क्या फायदा–लाभ है ? जहां अपन रहेते है वहाभी भगवतजी तो होतेही हैं तो तीर्थभूमिकी जात्रा करनेसें क्या विशेपता है ?

उत्तर.—यात्रा जानेका लाभ, समकित निर्मळ होता है ऐसा आवश्यक निर्युक्तिमें भद्रबाहुस्वामी कि जो चौदह पूर्वधर थे उन्होंने कहा है (वो प्रत हाजिर न होनेसें पत्राक नही दिया गया है ) फिर उपदेशमालामें धर्मदास गणि महाराजनें ३३६ वी गाथामें कहा है कि–श्रावक भगवतके पाचों कल्याणककी जगह यात्रा करनेकों जावे. अब जानेसें क्या फायदा होता है ? उसका खियाल करो कि–घरके आगे व्यौपारकी, ससारकी, कुटुबकी, ऐसी अनेक पीडाये–उपाधिये होती है उनके विकल्प करके धर्मसाधन पूर्णतासें नहीं हो सकता है, लेकिन गॉव घर छोडकर तीर्थयात्राकों जावे जब वे सभी दूर हो जाते हैं, सोवतमें सव धर्मिष्ट भ्राताये होते है उससें बुद्धिभी शुद्ध होती है और शास्त्रका ज्ञान होता है फिर मार्गमे गॉव आवे वहाभी कितनेक उत्तम मुनि महाराज तथा श्रावकोंका योग मिलै, उनकी पाससेंभी नवीन ज्ञान प्राप्त होवे, और तीर्थोंमेंभी वैसेही उत्तम पुरुषोंकी भेट होवे, उन्होंके समीप रहनेसेंभी ज्ञानका बोध होवे तथा वैराग्य हो आवे–यही लाभ होते है यहा पर कोइ प्रश्न करेगा कि–घर परभी ऐसे पुरुषोंकी भेट हो सकती है तो उसके उत्तरमें यही खुलासा है कि घरपर ऐसा पुरुष कभी कभी आ जावे तो लाभ होता है मगर तीर्थस्थलमें वैसे उत्तम महात्मा बहुत प्राप्त हो सकते हैं, वास्ते ज्यादे लाभ होता है. और तीर्थस्थलमें तीर्थंकर महाराज, गणधर महाराज तथा मुनि महाराज जहा जहा निर्वाण पद पाये है वहा वहा, जानेसें ये महान् पुरुष याद आते है और उन्होंके गुणानुवादका गान किया जाता है, उस्सें बुद्धिकी शुद्धि होती है. फिर वे महान पुरुष जिस प्रकारसें गुजरत हुवे वो मार्ग पर वहन करनेकी

अभिलापा होती है और ससारमें उदासीनता होवे. तथा आत्मतत्त्व खोज नेकी इच्छा होती है. परभाव रमण दूर होवे, अपने आत्माका गुण प्रकट करनेका उद्यम लब्ध होवे. जैसी जैसी विशुद्धि होवे वैसा वैसा उद्यम करे. अतिशय विशुद्धिवाले जन पहाडमे गुफायें है वहा एकांतमे बैठकर अपने आत्माकी जडके विभाग करे भेदज्ञान करे धर्मध्यान शुक्लध्यानादिक ध्यावे और बडा लाभ उपार्जन करे और भी बुद्धि शुद्ध होनेका सबब है कि—उत्तम पुरुषोंके अगमें जो पुद्गल [ रजकण–परमाणु ] इकठे हुवे है वे बहुत उत्तमही एकत्र हुवे हैं. जैसें कि क्षपकश्रेणि माडनेकी इच्छा होवे तो वज्रऋषभनाराच सघयण चाहियें–उस सघयण विगर उत्तम ध्यान न कर सके तब पुद्गलकीभी सहायता चाहियें तथा उत्तम पुरुष यानी जिसकी मुक्ति होनेकी है अैसे पुरुषके शरीरमें जो ध्यानमे वृद्धि होवे वैसे पुद्गल एकत्र हुवे हे, वे पुरुष तीर्थस्थलमे निर्वाण प्राप्त हुवे है उससें वहा वे पुद्गल बिखरे हुवे है, वास्ते वहा अच्छे पुद्गलोंका बहुत वडा हिस्सा होता है वो अपनमे दाखिल होता है यदि बहुतसा काल हो गया है, तदपि वें सब उत्तम पुद्गल कुछ नाश नही हो जाते हैं, उससें तीर्थस्थलपर भाग्यवत जीवकों श्रेष्ठ पुद्गलोंका स्पर्श होता है ओर उसीसे बुद्धि शुद्ध होती है उनमेंभी जिस पुरुषकों विशेष अच्छे पुद्गलोंका स्पर्श होता है उनकी विशेषतासे बुद्धि विशुद्ध होती है कवचित् भाग्यहीनकों अच्छे पुद्गलोकी स्पर्शना नहीभी होती है, बुरे पुद्गलोंकाही स्पर्श होता है वो उनके कर्मकी विचित्रता है, परतु मुख्यता तो वहा अच्छे पुद्गलोंकीही है, उसी लिये क्रमसें ज्यादे लाभ होनेकाही कारण तीर्थयात्रा है. अपने गाँवमे जिन बिंब होवें, मगर ये कारण सभी नहीं प्राप्त होते है वास्ते शास्त्रकारोंने यात्रा जानेमें लाभ बतलाया है उसी सबबसें यात्रा करके अैसे साधन साध्य करे कि जिस्से बहुतही फायदा होवे.

६८ प्रश्नः—सामायिक पौषध और प्रतिक्रमणके अदर आभूषण रक्खे जाँय या नहीं?

उत्तरः—पचाशकजीमे सामायिक व्रताधिकार पत्र १८ वे में है, वहा आभूषण उतार डालनेका कहा है, और पोषधाधिकार पत्र १९–२० मेंभी आभू-

पण उतार डालनेकी आज्ञा दी है फिर भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ९७७ में शखजीका अधिकार है, वहाभी आभूषण उतारकर पौंपध लिया है फिर दूसरी तरह भी समझनेका है कि समायिक सयुक्त जो पौंपध करता है उसमें आहारका पौंपध देशसें तथा सर्वसें है, और शरीर सत्कारादिक पौंपध सर्वथा करनेका कहा है तो फिर आभूषण क्योंकर रक्खे जॉय ? फिर तत्त्वार्थमेंभी पत्र २४३ में आभूषण पहरकर सामायिक पौंपध करना योग्य नहीं ऐसा कहा है सौभाग्यवती स्त्रीयें जो अहिवातन-सधवाचिन्ह रूप शृगार पहरती हैं और किसी समयभी जो शृगार परित्याग करने योग्यही नहीं वैसे भूषण रक्खे जावै, मगर उस शिवायके भूषण स्त्रीयेंभी पौंपधादिकमें त्याग कर देवे ऐसी आज्ञा है

६९ प्रश्न —कोइ मुनी सयमसें भ्रष्ट हुवे हैं वे प्रवृत्ति नहीं कर सक्ते, मगर शुद्ध प्ररूपणा करते हैं तो उनके मुखसें धर्म श्रवण करना या नहीं ?

उत्तरः—शुद्ध प्ररूपक गुण उपदेशमालामें बहुत प्रशसनीय कहा है, ऐसे पुरुषोंको शास्त्रमें सवेगपक्षी कहे हैं शुद्ध प्ररूपकपणा प्राप्त होना बडा कठिन है, और जिनकों वो गुण प्राप्त हुवा होवें तो उन्की पास धर्म श्रवण करना चाहियें उन्होंका विनयभी करना उचित है कितनेक कहते है कि जैसे तैसेके पास जावें सही मगर उन्कों वदना न करें ऐसा कहना अयोग्य है, सबब कि जिनके पास श्रवण करना हे और ज्ञान लेना है, तो वेशक वदनाभी करनी चाहियें और वदना करनी योग्य नहीं तो श्रवण करनाभी योग्य नहीं लेकिन सवेगपक्षीकी मुख्य परीक्षा इतनीही है कि दूसरे त्यागी पुरुष है, अच्छी तरहसें सयम पालन करते हैं वो पुरुषकी निंदा नहि करेंगे, मगर उनका बहु मान करेंगे, उनका सेवा भक्तिकी प्रेरणा करेंगे, क्यौं कि आपसें सयम पलता नहीं, मगर समकितगुण आपमें रहा है, उससे वे अपने आपके दूषणकी निंदा करेंगे और आपसें अधिक सयम पालते हैं उन्का अवश्य बहुमान करेंगे गुणवतका ऐसा स्वाभाविक धर्म है, और ऐसे पुरुष है वें श्रावकको सेवा करनेही योग्य है वर्तमान समयमें बकुशकुशल सयमभी है, वास्ते अल्प दूषण देखकर

गुनिपणेकों निषेधनेसें बडा भारी दूषण होता है, इसलिये शुद्ध प्ररुपक पर बहुत लक्ष रखना गुणीकी निंदा होवे तो फिर दूसरे भरतने गुणिका योग मिलना दुर्लभ हो जावे. निर्गुणिकी साथ राग-प्रीति हो जावे तो गुणिजनपर द्वेष हो आवे, तो पुनः धर्मकी प्राप्ति दुर्लभ हो जाती है वास्ते अपने आपके आत्माकी हिफाजत रखकर शुद्ध प्ररुपणा करते है तो वे अवश्य सेवा करनेके लायक है.

७० प्रश्नः—साधुजी महाराजके पास कोइ शख्स दीक्षा लेनेकों आवे तो उन शख्सके माता पिताकी आज्ञा मिल चुकी है या नहीं ऐसा निश्चय कर पीछे दीक्षा देवे या उस विनाभी देवे ?

उत्तरः—माता पिताकी आज्ञा मिल चुके बाद दीक्षा लेनेकी मर्यादा है, मगर जो मर्यादा अष्टकजीमें हरिभद्रसूरी महाराजने दर्शाइ है उनका रहस्य निम्न लेख मुजब हैः—

दीक्षा लेनेवाला अपने मा बापकों समझाकर आज्ञा मांगे, और मावाप आज्ञा देवे वो उत्तम है; लेकिन मातादिक आज्ञा न देवे तो आप खुद, साधुका वेष पहरकर घरमें रहवे और रजा माँग ऐसें कितनेक दिन घरमें रहवे तथापि रजा न मिले तो उस पीछेसें घरमेंसें चल धरे और गुरुके पास जाकर संयम अंगीकार कर लेवे इस विषयमें वहा ऐसाभी तर्क किया है कि-'इस तरह घरसें चला जाय तब घरमें रहे हुवे माततातादिक दु:खी होवे उनका दोष दीक्षा लेनेवालेकों लगे ?' इसका जवाब ऐसा दीया है कि-किसीके माता पिता रोगी हैं और वे किसी गाँवकों जाते होवे तथा इस वख्त उनका पुत्रभी साथ होवे और उस मुशाफरी दरम्यान वडी भारी बीमारी प्राप्त हो जानेसें पुत्र औषध लेनेकों कही चला जाय और कदाचित पीछेसें माता पितादिमेंसें किसीका मरण हो जावे तो उसका दोष पुत्रकों नहीं लगता है. इसी तरह माता पितादिकको समजानेपरभी आज्ञा न देवे तो वो दीक्षा लेनेवालेकों दोष नहीं लगता है जैसें पुत्र औषधी लेनेकों गया और पीछेसें मातादि मरण पावें तो उसकों दोष नहीं, तैसेंही वो पुत्रभी जाने कि मैं दीक्षा लेकर और ज्ञानवत होकर पीछे माता पिताके मनोगत अज्ञानजनित रोग मिटनेका बोध करुगा. ऐसी भावनामें जावे और पीछेसे मातापादिकका मरण हो जावे तो उनकों दोष नहीं होता है ऐसा अधिकार अष्टकजीके पत्र

९२ मे पचीशवे अष्टकजीमे है. वैसेही पचवस्तुमेंभी दीक्षाका अधिकार बहुत लिखा गया है, वहाभी बहुतसे तर्क किये है कि–' मातापिता वृद्ध हे और पुत्र दीक्षा लेवै तो उस पुत्रके दयाके परिणाम किस तरह कायम रहे? ' उनका जवाब ऐसा दिया है कि दीक्षा लेनेवालेको जगतमे जितने जीव है वे सबके साथ अनतकाल व्यतीत हुवा, उससें मातपिताका सबध हुवा है, तब एक मातापिताकी दया पालन करे कि भवोभवके मातापिताकी दया पालन करे? उनके चित्तमें तो चौदहराजलोकके जीवकी दया है, उनमे मातापिताकीभी दया करनेको तैयार है, लेकिन उसके कहने मुजब वे नहीं करते है तो फिर किस तरहस दया पालन करे? नही तो उसके भाव तो दयाकेही हैं. ऐसे ऐसे कितनेक प्रश्न कहे हैं वो पहेले हिस्सेमेंही पांच वस्तुये हैं (वो प्रत हाजिर न होनेसें पत्राक नहीं लिखा है) यह अधिकार तर्फ निगाह करनेसें गुरुको मातापितादिक दीक्षा लेनेवालेको रजा देवै तभीही दीक्षा देवे ऐसा सभव नही है लेकिन दीक्षा लेनेवालेकी परीक्षा तो बेशक करनी चाहियें उसके बारेमे पचाशकजीके पत्र ३३ मे दीक्षा लेनेवाला समवसरणकी रचना करे वहा प्रथम जगह शुद्ध करनेके लिये काजा निकाले, पीछे गधोदकसें छटकाव करे, पीछे समवसरणमे प्रभुजीकी स्थापना करे, तथा पर्षदाकीभी समवसरणमेही रचना करे पीछे दीक्षा लेनेवालेकी आख पर पाटा बाधकर हाथोंमे पुष्प देवे, वे पुष्प तीन दफे समवसरणमे डाल देवै उसमेंसें एक दफेभी पुष्प अदर गिरे तो दीक्षा देवै और तीनु दफे पुष्प बहार–समवसरणकी मर्यादा के बहार गिर जावै तो दीक्षा न देवै ऐसा अधिकार पचाशकजीके पत्र ३४ मे है, तथा पत्र ११७ मे दूसरा अधिकार है–उनमे दीक्षा लेनेवाला श्रावककी पडिमा वहन करै, सबब कि पडिमा वहन की होवै तो उनको दीक्षा पालनी कुछ मुश्किल नहीं पडती फिर इसमें काल विलब होवै उसके वास्ते गुरूकी निगाहमे आवै तो छ महिने तक अपने साथ फिरावै, उस पीछे योग्य मालूम होवे तो दीक्षा देवै और जीव विशेप योग्य होवे तो तरत शिष्यको दीक्षा देवै, ऐसीभी प्रणालिका है, वास्ते दीक्षा देनेका काम गुरूकी आधीनतामे है गुरुमहाराजको जैस योग्य लगै वैसें कर लेवै मगर श्रावक विना विचारमें दीक्षा देनेवालेकी निंदा करे तो वो उससें महा दूषण उपार्जन करता है गुरुनिंदाका बडा भारी दूषण है गुरुकी भक्ति करनेमे सहज

गुरुके शरीरकी मलीनता लगनेसें अग रहित जीव हुवे हैं. यह अधिकार वासुपूज्यजीके चरित्रमैं है. वास्ते जैसें वन सके तैसें गुरुमहाराजका अवर्णवाद नही बोलना गुरु-लाभालाभ देखकर काम कर लेवै, वो अपनी समझमें नहीं आ सकता है

७१ प्रश्नः—श्रावक प्रतिक्रमण करता है वे हरएक वस्तुओंके क्या क्या हेतु हैं ?

उत्तरः—प्रतिक्रमणहेतुगर्भित ग्रथ कि जो जयचद्रसूरीजी कृत हैं, उनके और क्षमाकल्याण मुनीने हेतु दर्शाए है उनके आधारसै लिखता हु कि–गुरु-महाराज होवे तो गुरु समीपमै प्रतिक्रमण करना, और न होवे तो स्थाप-नाचार्यजीकी समक्ष करना. वे स्थापना दश प्रकारसें कही हैं. उनमैंसें जिस स्थापनाका योग मिल जावै उसकी स्थापना करकें नवकार मत्रका उच्चार करै, क्या कि नवकार मागलिकरूप है. सब प्रकारके मागलमैं नवकार मुख्य मगल है, वास्ते प्रथम नवकार पढकर पीछे पचिंदियका पाठ पढै. सबब कि पचिंदियमैं आचार्यमहाराजके गुणोंका वर्णन है वैसे आचार्यकी स्थापना की है, इस हेतुसें पढै. बाद इरियावही पडिकमैं, क्यौं कि हरएक धर्मकरणी शुद्ध होकर करनी चाहियें. उस इरियावहीमैं पापकी आलोयणा होनेसें शुद्ध हो सकता है फिर जो पाप आलोयणासें शुद्ध न होवै तो कायोत्सर्गसें शुद्ध होवै उस वास्ते काउस्सग्ग करनेका है, मगर वो काउस्सग्गके आगार रखने चाहिये, उस वास्ते तस्सउत्तरी अन्न-त्थउससीएण कहेना पीछे एक लोगस्सका काउस्सग्ग करना उसका सबब यही है कि एक लोगस्समें चदेसुनिम्मलयरा तक पचीस श्वासो-श्वास होते हैं वे नही गिने जावै, वास्ते लोगस्स गिनेसें प्रभुका ध्यान होवै और वो वख्तभी पूर्ण हो सकै. काउस्सग्ग पूर्ण कर पीछे पूर्ण लो-गस्स कहेना उसका सबब कि सामायिकके अंदर प्रथम देववदना करनी चाहियें वो लोगस्समें हो जाती है. बाद मुहपत्ति पडिलेहनेका आदेश गुरुके पाससें माग लें और मुहपत्ति पडिलेहवै उसका सबब कि गुरुको वदना करनमैं पचाग एकठे होवें, उसमें किसी जीवकी विराधना हो जावै वास्ते मुहपत्ति पडिलेहनी कि जिस्से जीव होवे सो दूर हो जावै–उस वास्ते मुहपत्ति पडिलेहवै बाद सामायिक सदिसाहु ? यानी सामायिकका

आदेश दो पीछे गुरुजी आदेश देवे फिर दूसरी दफे गुरुजीको
कि सामायिक ठाउ ? तब गुरु आदेश देवें पश्चात् मगलार्थ नवकार प
इच्छकारी भगवन् पसाय करी सामायिक दडक उचरावोजी, पीछे गु
उचरावे गुरुके पास व्रतका उचार करना उससे गुरुका विनय होत
पीछे गुरु न होवे तो श्रावकमें जो वृद्ध-ज्ञानवृद्ध होवे वो करेमिभ
पाठ उचरावे अब सामायिक लेनेकी तथा प्रतिक्रमण करनेकी रीति
खडेही है बैठे बैठे हुवे प्रतिक्रमण करनेका प्रायश्चित एक आंबि
श्राद्धजितकल्पमें कहा है, वास्ते शक्ति होवे वहा तक बैठे हुवे प्रतिक्र
करना योग्य नहीं है फजरका प्रतिक्रमणभी खडे खडेही करनेका
पडिक्कमणाहेतुगर्भित देखोगे तो मालूम होगा कि सामायिक लिये
खमासमण देकर बेसणेसदिसाहु ? यानी मैं बैठु ? तब गुरु आदेश
है उस पीछे पुन खमासमण देकर बेसणेठाउ ? यानी आदेश हो
बैठता हु इससेंभी सानीत होता है कि बैठे हुवे प्रतिक्रमण करनेका ह
तो ऐसा आदेश लेनेकी कुछभी जरुरत न रहती, लेकिन खडा रह
उससे बैठनेकी रजा मांगनी पडी अब बैठकर सज्झाय ध्यान कर
उस वास्ते सज्झाय सदिसाहु ? यानी सज्झाय करु ? गुरु कहेवे कि प
तब फिर ज्यादा विनय बतलानेके लिये कहे के 'करु ?' तब फिर गुरु क
उस बाद तीन नवकार पढकर सज्झाय ध्यान करना नवकार पढने
मतलब यही है कि हरएक कार्य मांगलिक पाठ सहित करना दुरस्त
अब जिसको प्रतिक्रमण करना हो तो वो प्रतिक्रमणमें छट्ठा पचक्खाण
अंतिम आवश्यक आता है उस वक्त प्रत्याख्यानका काल-वक्त व्यत
हो गया होता है वास्ते मुहपत्तिका आदेश मागकर मुहपत्ति पडिले
और शरीरकी उससे शुद्धि कर लेवें मुहपत्ति पडिलेहनेकी वक्त खमास
दे आदेश मांगकर मुहपत्ति पडिलेहवे ऐसा सेनप्रश्नमें कहा है. प
द्वादश वदन करे; क्योंकि पचक्खाण गुरुके पास करना है वास्ते उन्हा
विनय करनाही मुनासिब है, वो विनय करके गुरुमुखसे पचक्खाण क
बाद चार थुइ सहित देववदन करे, सबब कि हरेक कार्यमें प्रथम देववं
करनाही चाहिये देववदनमें प्रथम स्तुति अरिहतजीकी भक्तिकी प

दूसरी स्तुतिमें समस्त अरिहनजीकी भक्ति होती है, तीसरी स्तुतिमें ज्ञा-
नकी स्तुति होती है, और चौथी स्तुतिमें समकित दृष्टि देव शासनरक्षक
है उनकी यादीके निमित्त पढे-इस मुजब चार स्तुतिका हेतु है. नमुथ्थुण
पढकर चार खमासमण देकर चार पुरुषको वदन करते है यानी प्रथम
भगवान् हुं. ये भगवत तथा किसी जगह धर्माचार्यजिनके द्वारा धर्म प्राप्त
हुवा है उनकोंभी भगवान् वदनमें वदना करनी वास्ते भगवान्कों वद-
ना करनेके वख्त भगवान् वा धर्माचार्यकों उपयोगमें लेवे आचार्य तथा
उपाध्याय और साधु ये चारोंकों वदना करे. पीछे इच्छकारी भगवन्
पसाय करी समस्त श्रावकोंकों वदना करु? श्रावकोंकों वदनके निमित्त
पडिक्कमणाहेतुगर्भितमें तथा धर्मसंग्रहमें तथा ज्ञानविमलसूरीकी बनाइ हुइ
प्रतिक्रमणविधिकीसज्झायमेंभी है, वो सज्झायमालाकी बुकके पत्र २०४
मे है और प्रवृत्तिभी कितनेक ठोर पर है. इस मुजब वंदना कर रहे बाद
देवसी पडिक्कमणे ठाउ? यानी अब देवसी प्रतिक्रमण शुरु करता हुं-
दिनके पापका सामान्यपणेसें मिच्छामिदुक्कड देना. देवसिअदुच्चितिअ
कहे बाद करेमिभंते कहनेसें प्रथम आवश्यक शुरु हुवा पहेला सामायिक
आवश्यक कहा जाता है, ऐसा वारवार कहनेकी मतलब इतनीही है कि
प्रतिक्रमण करना सो समता पारिणाममें रहकरके करना. पुनः पुनः करे-
मिभंते कहनेमें समताकी वृद्धि होती है बाद देवसि अइयारोकओ कहकर
तस्सउत्तरी पढ पीछे आठ गाथाका काउस्सग्ग करना. उसका सबब यह
है कि आगे पाप आलोचना है सो काउस्सग्गमें रहकर याद कर लेनी है;
इस वास्ते कायोत्सर्ग करना पीछे लोगस्स कहना यह दूसरा आवश्य-
क है चोविसथ्था नामक यह आवश्यकमें चोविश जिनेश्वरजीके गुणग्राम
करनेके है बाद मुहपत्ति पडिलेहवे तत्पश्चात् गुरुके आगे पाप आलचना
है वास्ते उन गुरुकों वन्दना करनी चाहियें, वास्ते द्वादशावर्त वंदन करना-
यह तीसरा आवश्यक है पीछे देवसी आलाउ कहकर सामान्य प्रकारसें
आलोचनारूप देवसि अइआरोकओ कहकर गमणागमण अठारह पाप-
स्थानक आलोय लेवे. बाद वंदितु कहनेके प्रारंभमे मंगलार्थ नवकार

कहकर समभावकी वृद्धि निमित्त करेमिभते और सामान्य आलोचनारूप देवसि अइआओकओ कहकर विस्तारसे पाप आलोयणके वास्ते वंदितु केहवै यह चोथा आवश्यक है समता परिणाममें स्थिरतायुक्त वंदितु कहना और जो जो अतिचार आवें उनके दूषण लगे होवें तौ उनकी निंदा करै महान् वैराग्यभाव ल्याकर पापकों आलोय लेवै. वंदितु पूर्ण हुए बाद जैसें राजाके आगे अर्ज किये बाद नमन करनाही योग्य है, तैसे पाप बोलये बाद गुरुजीकों नमन करनाही लाजिम है, वास्ते वंदन कर अभुट्ठिओ अभ्यंतर खमाना दुरस्त हैं उसमें जो गुरुजीको खमाये बाद पाप आलोचना शुद्ध न होवें वो काउस्सग्गसें शुद्ध होवै वास्ते काउस्सग्ग करना गुरुवंदना करकें समस्त जीवोंकों खमानेके लिये आयरिय उवज्झाये कह कर समभावकी वृद्धिके वास्ते करेमिभंते कहेवै, बाद जोमेदेवसिओ अइआरोकओ कहकर पाप निंदकें काउस्सग्गके आगारादिक हितार्थ तस्सउत्तरी पढकर चारित्राचारकी विशुद्धिके लिये दो लोगस्सका काउस्सग्ग करना, यह पांचवा आवश्यक है काउस्सग्ग पूर्ण हुवे बाद प्रभुस्तवनाके निमित्त प्रकट लोगस्स कहेना सव्वलोए कहकर समकित शुद्धि होनेके वास्ते एक लोगस्सका काउस्सग्ग करना बाद पुक्खरवरदी कहकर ज्ञानकी शुद्धिके वास्ते एक लोगस्सका काउस्सग्ग करना यहांपर कोइ शंका करेगा कि—चारित्र शुद्धिका काउस्सग्ग दो लोगस्सका क्यों है ? उसके समाधानमै यही जबाव है कि चारित्राचारमें ज्यादे दूषण लगते है वास्ते ज्ञानी माहाराजने दो लोगस्सका काउस्सग्ग कहा है तदनन्तर सिद्धाणबुद्धाण कहकर श्रुतदेवता आराधनके वास्ते एक नवकारका काउस्सग्ग करना, उसका सबब यही है कि श्रुतज्ञानसें समस्त धर्म मालूम होते है और अमलमै लिये जाते है. तौ श्रुतदेवकी साहाता मिलनेसें श्रुतधर्मकी वृद्धि होवै मल्लवादिजीकों कोइभी गुरुका योग नहीं था; मगर श्रुतदेवका आराधन किया था उस्सें श्रुतदेव प्रसन्न हुवे और बौद्धकी साथ जय मिलाया. बौद्धलोगोंकों देश बहार निकाल दिये, वास्ते श्रुतदेवताका काउस्सग्ग करके स्तुति कहनी. तत्पश्चात्

क्षेत्रदेव आराधनार्थ एक नवकारका काउस्सग्ग करना, सबब कि जिसके क्षेत्रमें रहना उस क्षेत्रका देव प्रतिकूल होवे तो धर्माराधनमें विघ्न होवें वास्ते निर्विघ्नतासें धर्माराधन होनेके लिये अेक काउस्सग्ग और स्तुति करना चाहिये. यह अधिकार आवश्यकसूत्रकी काउस्सग्ग निर्युक्तिमें कहा है. फिर भत्तपच्चख्खाणपयन्नामें कहा है कि–मुनि संथारा करे उस वक्त कुल सब क्षेत्रदेवताका काउस्सग्ग करे, सबब कि अनशन करनेवाले मुनिकों कोइ देव उपसर्ग न करे उसी मुजब यहांपरभी ज्ञानदर्शनचारित्रद्वारा मोक्षमार्ग साधक पुरुषके दुरित हरनेके लिये कहना है, सो अैसे मुनिकी भक्ति है, वास्ते करनेके योग्य है. बाद मंगलार्थ नवकार पढ मुहपत्ति पडिलेहवे, और छट्टा आवश्यकमें पच्चख्खाण करना है उस वास्ते गुरुकों वंदना करे. अवसर हो जानेके सबबसें पच्चख्खाण प्रथम करालिया गया है उस्सें पुनः नहीं करना मगर छउ आवश्यककी संख्या बतानेकी मर्यादा है छउ आवश्यक पूर्ण हुए उसकी प्रसन्नता प्रदर्शित करनेके लिये देवकी स्तुतिरूप नमोस्तु वर्धमानाय, नमुथ्थुण स्तवन कहना. बाद १७० जिन वंदनरूप वरकनक केहवे. स्त्रीयोंकों उक्त पाठ पढनेकी मना वै वास्ते वे संसारदावाकी स्तुति पढें. तदनन्तर भगवन् प्रमुख वंदन कर अढाइद्वीपके समस्त मुनियोंको नमन करनेके वास्ते अड्ढाइज्जेसु कहकर उस बाद कुछ दिवस संबंधी पाप रह गया होवै उनके लिये देवसिप्रायश्चितका चार लोगस्सका काउस्सग्ग करना पीछे लोगस्स कह कर सज्झायका आदेश लेकर सज्झाय ध्यान करना यहांतकके हेतु वहां बतलाये गये ह वो दाखेल किये गये हैं.

राइपडिक्कमणेमें प्रथम कुसुमिण दुसुमिण उड्डावणिय राइय पायच्छितविसोहणत्थका चार लोगस्सका काउस्सग्ग करना शुरु होता है. उनका हेतु यही है कि स्वप्न संबंधी दोष निवारणके वास्ते करना. अगर जो निद्रामें–स्वप्नमें चतुर्थव्रत–ब्रह्मचर्यादिकमें दूषण लग गया होवे तो १०८ श्वासोश्वासका काउस्सग्ग करनेका फरमान है, वास्ते सागरवरगंभीरा तक लोगस्स पाठका काउस्सग्गमें उपयोग करना. बाद भरहेसरकी सज्झाय कहेवे–क्यौं कि उत्तम पुरुषके नाम–स्मरण होवे बाद एक लोगस्सका काउस्सग्ग चारित्रविशुद्धिके वास्ते रात्रिमें कचित् दूषण लगे होवे उस वास्ते करना. बाद

विशुद्धि होती है काउस्सग्ग करनेसें कायाका वोसिराना होता है, एक आत्माकी अंदर उपयोग स्थापित होता है उस्सें समभाव वृद्धि पाता है. प्रभुके गुणमें एकाग्रता होती है वही चारित्र है, वास्ते चारित्राचारकी शुद्धि होती है चउविसथ्था यानी लोगस्ससें दर्शनाचारकी विशुद्धि होती है पच्चख्खाण आवश्यकसें तपाचारकी विशुद्धि होती है और वंदन आवश्यकसें ज्ञानाचारकी विशुद्धि होती है, सबब कि गुरुजीका विनय करना ये ज्ञानका आचार है और छठे आवश्यकमें वीर्य स्फुरायमान करना है वास्ते वीर्याचारकी शुद्धि होती है. हम्मेशा संसारमें वीर्य स्फुरायमान कर रहा है वो बलवीर्य है. धर्ममें वीर्य श्रावककों स्फुरायमान करनाहे वो श्रावककों बालपंडित वीर्य कहा है और मुनि आराधकपणेसें प्रवर्त्तते हैं वे पंडित वीर्य है इस मुजब छउ आवश्यकसें पांचों आचारकी विशुद्धि होती है

७४ प्रश्नः—ज्ञान पढनेसें वा श्रवण करनेसें अगर वाचनेसें क्या लाभ होता है?

उत्तरः—ज्ञान दो प्रकारका है यानी एक बाह्य और दूसरा आभ्यंतर उसमें जो बाह्य ज्ञान सो संसारके व्यौपार रोजगार धन पैदा करना, कला कौशल्यता, विषयसेवन इत्यादि बाबतका जो ज्ञान है वो आत्माका हित करनेवाला नहीं है, मगर भवभ्रमणा बढानेका कारणभूत है. और स्वर्ग नरकका स्वरूप जानना उस्सें वस्तुबोध होता है, तथा उत्तम पुरुषोंके चरित्र श्रवण करना और श्रावक, मुनिके बाबके व्रताधिकार जानना वोभी बाह्य ज्ञान है, मगर अंतरमें गुण होनेका कारणभूत है, क्यौं कि उत्तम पुरुषोंने जो जो मार्गसे अंतरंग ज्ञान मिलाकर आत्मा निर्मल किया वैसें करनेका आलंबन है, और अंतरंगविशुद्धिके कारण है बाह्यसें त्याग हुइ भइ वस्तुका अभ्यास पढनेसें उनके पर इच्छा नहीं जाती है ये सुज्ञजनके अनुभव गम्य है ऐसा होनेसें उन चीजोंके संबंधी विकल्प नाश हो जाते हैं, तो -आत्माकी निर्विकल्पदशा जाग्रत होती है फिर व्रतोंसें संसार संबंध छूट जाता है, तो उस संबंधी कारण नाश हो जाते है, उस्सें उनके विकल्पभी नाश होते हैं पुन. हिंसा असत्य भाषण प्रमुखका त्याग होना

है, तब किसी जीवके साथ क्लेश विकल्पभी नहीं होवे, वास्ते ये बाह्यज्ञानसें व्रतादिक अच्छी तरहसें पालन करै तो अैसे अतरग गुणका कारण होवै अब दूसरा अतरज्ञान उससे आत्मा क्या पदार्थ है? यह शरीर मालम होता है वह क्या पदार्थ है? ये शरीरादिककी प्राप्ति काहेसें होती है? ये वर्त्तना होती है वो स्वाभाविक है या विभाविक है? आत्मा नित्य है या अनित्य है? छउं द्रव्यके भावके क्या धर्म हैं? छउ द्रव्यके क्या क्या गुणपर्याय हैं? निश्चय स्वरूप क्या है? व्यवहार स्वरूप क्या है? और विभाविक आनद वो क्या? इत्यादि स्वपर स्वरूपका बोध यह बोध होनेसें होवै. बाद एकांतमे वैठकर अपने आत्मस्वरूपमे स्थिर चित्तकर बाह्यप्रवृत्ति उद्योग हटाकर एक आत्मज्ञानमै लीनता करै. पेस्तर श्रुतज्ञानके जोरसें अपने आत्माके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव शोचे कि द्रव्यसें आत्मा द्रव्य एक पदार्थ है. द्रव्य किसकों कहेते? जिनका तीनों कालमे विनाश नही. जो विनाशी द्रव्य है वो उपचरित द्रव्य है. फिर द्रव्य किसकों कहेवै? गुणपर्यायसें युक्त सो द्रव्य कहा जावै. वो आत्मद्रव्य क्षेत्रसें असख्यात प्रदेशमय है. सूक्ष्मजतुमै सूक्ष्मजतु जितने क्षेत्रमे रहते हैं सो जुगलियोंके तीन गाउ प्रमाण शरीर है, उसमे उन प्रमाणसें विस्तारयुक्त रहते हैं पुन: केवलज्ञानी महाराज केवलिसमुद्घात करते हैं तब कुल चोदह राजलोकमें आत्म प्रदेश फैलाते हैं, तब अखिललोक प्रमाणसें क्षेत्र है. कालसें अनादिकालका है वो कोइ दिन अत होनेका नहीं, उससें अनंत है. भावसें अनतज्ञान, अनतदर्शन, अनतचारित्र, अनतवीर्य, अव्याबाधसुखमय, अगम, अगोचर, अलक्ष्य यह यादि अनतगुण वो आत्माका भाव है अैसा भाव जानकर आत्मा परभावमेंसें चित्तकों हठाकर भावे कि-धन कुटुबादिक जो पदार्थ है वे मेरे नहीं हैं यह शरीर है वोभी मेरा नहीं है, सबब कि जो मेरी वस्तु है वो नाश नही होती, मेरेसे अलग नहीं होवे और यह शरीर तो नाश होता है. मेरा और इसका स्वभाव अलग है ये शरीर सो पुद्गल पदार्थ है, पुद्गलके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव न्यारे है. पुद्गल द्रव्य सो परमाणु है और वैसे अनत पर-

माणु मिलकर जो पदार्थ हुवा है उनकों स्कंध कहा जाता है, उनका ये शरीर बना है. असेही स्कंध बिखरकर पीछे परमाणु हो जाते हैं फिर इसमे जडता स्वभाव है उससें मेरे द्रव्य और शरीरके द्रव्य न्यारे हैं पुन क्षेत्र जितना बडा शरीर वा स्कंध है उतना क्षेत्र अवकाश करहते हैं पर-माणु है सो एक आकाश प्रदेश अवगाहकर रहते हैं, वास्ते आत्मा और पुद्गलका क्षेत्र भिन्न है. कालसे परमाणु अनादि अनत है, शरीरादि स्कधसादि सात है यानी आदिभी है और अतभी है भावसें अचेतन यानी जडभाव वर्ण गध रस स्पर्शमय है तो भावसेंभी आत्मासें गुणसें शरीर जो पुद्गल द्रव्य उसका भाव भिन्न है इस तरह पुद्गल द्रव्यका स्वरूप जानता है आप जडभावसें भिन्न होता है असेही चारों निक्षेपेमें शोचें नामसें जीव वा आत्मा असा नाम है जीव और स्थापना निक्षेपा सो जीव असे अक्षर लिखना, वा मूर्ति बनानी द्रव्य निक्षेपा सो अस-ख्यात प्रदेशमय–ये तीन निक्षेपे तो व्यवहार हैं भाव निक्षेपेसें आत्माका अरुपि स्वरूप, अव्याबाधस्वरूप, अक्षयस्वरूप, सभी वस्तु जानने देखने-का स्वभाव असा आत्माका स्वभाव जानता है जो जो पुद्गलदशाकी प्रवृत्ति मनका चिंतवन बन रहा है जो मेरे स्वभावका नहीं असा निश्चय होनेसें जो 'जो जडप्रवृत्ति उसकेपर उदासीन वृत्ति होवें यहापर कोइ शका करेगा कि–' उदासीन वृत्ति और वैराग्य भिन्न है?' इसके समा-धानमे यही उत्तर है कि शास्त्रमे वैराग्य किसकों कहते है? जो परवस्तुपर भाव जाता है उनकों पीछे हठाकर अपने मनकों दूर हठा लेता है, उसकों उदासीन वृत्ति होवे तो कुछ चिंतवन नहीं करना पडता है, क्यौं कि जो जो वस्तुसें उदासवृत्ति हुइ है उसके पर दिल नही जाने पाता है वास्ते भिन्न हैं असे विचार कर आत्मस्वरूप अनुभवगम्य है उससे स-हजसेंही उनकी बाह्यदशापर चित्तप्रवृत्ति नही जाती है मात्र अपने स्व-रूपमे मग्न होती है, सुख दु ख समान मानता है, वोहकी वोही वस्तु मा-नताही नहीं सुख दु ख भुक्तनकी तो चित्तवृत्ति होतीही है, क्यौं कि अपने स्वभावमेंही मग्न हो रहे है विषयकी तो स्वप्नमेभी इच्छा नहीं ये

कर्मसयोग यह शरीरमे रहा है उसके आधारसें चाहियें वो निरवद्य चीज्ज औसरपर मिल गइ तौभी आनंद है और न मिलगइ तौभी आनद है जैसें कि ऋषभदेवजीकों वर्षदिन तलक शुद्धमान आहार न मिला तौभी उनकों विकल्प न था और समभावसें वक्त व्यतीत किया वैसेही उदासीन वृत्तिवत होते है जो तो अपने स्वरूपकों अपनी वस्तु मानते हैं, उम्मे जितनी कसर है उतनी उतनी पुद्गलभावकी प्रवृत्ति करते हैं, मगर उनमें कोइभी परभावकी इच्छा नही होती, अगर हो आवे तो वहासें वैराग्य लाकर मनकों पीछा लोटाते हैं. यों करनेसें ज्यादे विशुद्धि होती है तव उस वस्तुपरसें उदासीनता भाव होता है पुनः अपनकों कितनी हद प्राप्त हुइ है वो देखनेके वास्ते परमात्माने सप्त नयसें स्वरूप बतला दिया है और सप्त नयके ज्ञानसें बाह्यप्रवृत्तिका अतरग वृत्तिका ज्ञान होता है उससे अपना स्वरूप शोचता है उनमेंभी अपना स्वरूप भासन होता है. वो अनुयोगद्वार सूत्रकी छपी हुइ प्रतके पत्र ६७८-६७८-४१ मे है वहासें देख लेना यहापर मात्र उनके नाम लिखता हुं सप्त नय-नैगमनय, सग्रहनय, व्यवहारनय, ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरुढनय, एवभूतनय, ये सप्तनय हैं उसमै एक एक नयका विषय विशुद्ध है नैगमसें सग्रह, सग्रहसें व्यवहार, व्यवहारसे ऋजुसूत्र, ऋजुसूत्रसें शब्द, शब्दसें समभीरुढ और उससे एवभूतनय है, सो पूर्ण वस्तुको माननेवाला है, तैसे आत्माकी प्रवृत्ति सपूर्ण गुण प्रकट होवें तव एवभूतनय धर्म मानै वहातक जो जो आपकी कसर है उस्सें मुक्त हो आत्माका शुद्ध स्वरूप प्राप्त करनेकी भावना भावे ज्यों ज्यों अतरगमे स्थिरता करनेका अभ्यास करे त्यों त्यों क्षयोपशमभाव वृद्धि होवै और ज्ञान विशुद्धि होवै, नवतत्वका स्वरूप शोचै उसमै त्याग करने और आदरनेके योग्य पदार्थका स्वरूप विचारे आठों कर्मका विचार करे उनके सत्ता बंध उदय उदिरणाका स्वरूप शोचे नौ अनुयोगसें आत्माका स्वरूप शोचे. सतपय-आत्मपद है वो हयात है, वो कुसुम नहीं है द्रव्य प्रमाणमें शोचै कि जीव अनत है वे सत्तामे तुल्य है. अपने अपने स्वभावसें न्यारे है. क्षेत्र विचारमे जहा

माणु मिलकर जो पदार्थ हुआ है उनका स्कंध कहा जाता है, उनका ये शरीर बना है ऐसेही स्कंध बिखरकर पीछे परमाणु हो जाते हैं फिर इसमें जडता स्वभाव है उसमें मेरे द्रव्य और शरीरके द्रव्य न्यारे हैं पुन: क्षेत्र जितना बडा शरीर वा स्कंध है उतना क्षेत्र अवकाश कररहते हैं परमाणु है सो एक आकाश प्रदेश अवगाहकर रहते हैं, वास्ते आत्मा और पुद्गलका क्षेत्र भिन्न है कालसें परमाणु अनादि अनंत है, शरीरादि स्कंधसादि सांत है यानी आदिभी है और अंतभी है भावसें अचेतन यानी जडभाव वर्ण गंध रस स्पर्शमय है तो भावसेंभी आत्माके गुणसें शरीर जो पुद्गल द्रव्य उसका भाव भिन्न है इस तरह पुद्गल द्रव्यका स्वरूप जानता है आप जडभावसें भिन्न होता है ऐसेही चारों निक्षेपसे शोचे नामसें जीव वा आत्मा ऐसा नाम है. जीव और स्थापना निक्षेपा सो जीव ऐसे अक्षर लिखना, वा मूर्ति बनानी द्रव्य निक्षेपा सो असंख्यात प्रदेशमय-ये तीन निक्षेपे तो व्यवहार हैं भाव निक्षेपेसें आत्माका अरूपि स्वरूप, अव्याबाधस्वरूप, अक्षयस्वरूप, सभी वस्तु जानने देखनेका स्वभाव ऐसा आत्माका स्वभाव जानता है जो जो पुद्गलदशाकी प्रवृत्ति मनका चिंतवन बन रहा है वो मेरे स्वभावका नहीं ऐसा निश्चय होनेसें जो जो जडप्रवृत्ति उसकेपर उदासीन वृत्ति होवे यहापर कोइ शंका करेगा कि-'उदासीन वृत्ति और वैराग्य भिन्न है?' इसके समाधानमे यही उत्तर है कि शास्त्रमे वैराग्य किसको कहते है? जो परवस्तुपर भाव जाता है उनको पीछे हठाकर अपने मनको दूर हठा लेता है, उसको उदासीन वृत्ति होवे तो कुछ चिंतवन नहीं करना पडता है, क्यों कि जो जो वस्तुसें उदासवृत्ति हुई है उसके पर दिल नही जाने पाता है वास्ते भिन्न है ऐसे विचार कर आत्मस्वरूप अनुभवगम्य है उस्से सहजसही उसकी बाबदशापर चित्तवृत्ति नही जाती है मात्र अपने स्वरूपमे मग्न होती है, सुख दुःख समान मानता है, वोहकी वोही वस्तु मानताही नहीं सुख दुःख भुक्तनेकी तो चित्तवृत्ति होतीही है, क्यों कि अपने स्वभावमेंही मग्न हो रहे है विषयकी तो स्वप्नमेंभी इच्छा नहीं. ये

कर्मसयोग यह शरीरमें रहा है उसके आधारसें चाहियें वो निरवद्य चीज औसरपर मिल गइ तौभी आनंद है और न मिलगइ तौभी आनद है. जैसें कि ऋषभदेवजीकों वर्षदिन तल्क शुद्धमान आहार न मिला तौभी उनकों विकल्प न था और समभावसें वक्त व्यतीत किया वैसेंही उदासीन वृत्तिवत होते हैं जो तो अपने स्वरूपकों अपनी वस्तु मानते हैं, उसमें जितनी कसर है उतनी उतनी पुद्गलभावकी प्रवृत्ति करते हैं; मगर उनमें कोइभी परभावकी इच्छा नहीं होती, अगर हो आवे तो वहासें वैराग्य लाकर मनकों पीछा लोटाते है. यौं करनेसें ज्यादे विशुद्धि होती है तव उस वस्तुपरसें उदासीनता भाव होता है पुनः अपनकों कितनी हद प्राप्त हुइ है वो देखनेके वास्ते परमात्माने सप्त नयसें स्वरूप बतला दिया है और सप्त नयके ज्ञानसें बाह्यप्रवृत्तिका अंतरग वृत्तिका ज्ञान होता है उससे अपना स्वरूप शोचता है उनमेंभी अपना स्वरूप भासन होता है. वो अनुयोगद्वार सूत्रकी छपी हुइ प्रतके पत्र ६७८–२७८–४१ मे हैं वहासें देख लेना यहापर मात्र उनके नाम लिखता हु सप्त नय–नैगमनय, सग्रहनय, व्यवहारनय, ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरुढनय, एवभूतनय, ये सप्तनय हैं उसमै एक एक नयका विषय विशुद्ध है नैगमसें सग्रह, सग्रहसें व्यवहार, व्यवहारसें ऋजुसूत्र, ऋजुसूत्रसें शब्द, शब्दसें समभीरूढ और उस्से एवभूतनय है, सो पूर्ण वस्तुको माननेवाला है, तैसै आत्माकी प्रवृत्ति सपूर्ण गुण प्रकट होवे तव एवभुतनय धर्म माने वहातक जो जो आपकी कसर है उस्सें

प्राप्त करनेकी भावना भावे ज्यों ज्यों करै त्यों त्यों क्षयोपशमभाव वृद्धि होवे का स्वरूप शोचै उसमै त्याग करने अ रूप विचारै आठों कर्मका विचार का स्वरूप शोचै नौ अनुयोगसें है वो ख्यात है, वो कृत्रम नहीं है वै सत्तामै तुल्य है अपने

हो आत्माका शुद्ध स्वरूप स्थिरता करनेका अभ्यास ज्ञान विशुद्धि होवै, नवतत्व- ग्रहणनेके योग्य पदार्थका स्व- कर्मके सत्ता बध उदय उदिरणा- स्वरूप शोचै. सनय–आ प्रमाणमें शोचै कि जीव अनन्त है न्यारे है. ऐसे विचारमें जरा

-तब शरीरमें रहा है वहां तक शरीर प्रमाणसें है जब शरीरसे न्यारा होता है तब जो अवगाहना होवै उस मुजब उसका तीजा हिस्सा सकोचन कर सिद्धमें रहता है, उस मुजब आकाश प्रदेशकी स्पर्शा कुछ अधिक है कालसें अनादिकालका है और जो जो सिद्धि पाता है तब ससारका अंत होता है और हम्मेशा सिद्धमें रहता है, अभवि जीव अनादि अनत ससारमेंही रहता है अतरगसें शोचते मालूम होता है कि जीवका अजीव होनेका नहीं. और पुद्गल भगमें रहा है वहा तलक पुद्गलके रुप अनेक बनते हैं, मगर वस्तुपणेसें रुप बदल जाता नहीं भाग-हिस्से शोचनेसें समस्त जीव अनत है, उसके अनतवे हिस्से में हु भाव विचारनेसें पाच भाव है, उसमे उदयिक भावके इक्कीस भेद है, सो कर्मसयोगसें हैं उसके नाम —अज्ञानपणा है जिस्से अपने आत्मा स्वरुपसें भूलकर जो पुद्गलिक पदार्थपर मेरेपणेका ममत्वभाव बन गया है, ये पहेला भेद दूसरा भेद असिद्धता-सो आत्मा सत्तासें सिद्ध स्वभाव है सो अवराने के सबबसें असिद्धता हुइ है, तीसरा भेद जो असमयपणा-आत्म स्वभावमें समभावमय रहना सो छोडकर विषयादिकके अदर राग द्वेषकी परिणती हुइ उस्सें धन शरीरमें, कुटुबादिकमें मूर्छितपणा बन गया है सो छउ लेश्या के छ भेद उसमे प्रथम कृष्णलेश्या कही जाती है. नील-लेश्या सो कर्म सयोगसें बुरे परिणामका होना, जैसें कि छउ लेश्यावाले जामनके फल खानेको गये, उसमें कृष्णलेश्या वालेनें कहा कि ये वृक्ष काट डालो ओर पीछे उनके फल खाओ. ऐसे दुष्ट परिणाम सो कृष्णलेश्या वालेने कहा कि इस दरख्तकी डालीयें काट डालो. ऐसे परिणाम होवै वो नीललेश्या. कापोतलेश्यावालेनें कहा कि जिन जिन डालीपै जामन लगे हुवे है उन उन डालियोंको काट डालो. ऐसा शोच सो कापोतले-श्या तेजोलेश्यावालेने कहा कि डालियें काटनेकी कुछ जरूरत नहीं, फकत जामन लगे हुवे होवै वही पतली डाली नीच ल्यो, सो तेजोलेशा पद्मलेश्यावालेने कहा कि फकत जामन जामन चुन ल्यो-ऐसे परिणाम होवै सो पद्मलेश्या और शुक्ललेश्यावालेने कहा कि जामन पकरर नीचे

गिर गये है उनकोंही वीनकर खाओ झाडकों छुनेकीभी क्या जरूरत है? अैसें परिणाम होवें सो शुक्लेश्या इस मुजब छउ जातके परिणाम कर्म सयोगसें होते हैं सो छउ भेद. कषाय सो क्रोध-मान-माया-लोभ. चारों गति सो मनुष्य, देव, तिर्यच और नारकी तीनवेद सो-पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुसकवेद और मिथ्यात्व सो विपरीत बुद्धि-स्वरुपकों भूलकर विपरीत परसुखमे लीनता. ये इकीस भेद कर्म उदयसें बनते हैं अैसा मानकर जो जो वस्तु अपनी मान चित्त बदला देता है और ये स्वरुपकों परस्वरूप जाने इस रीतिसें ये भाव शोचै-विचारे. दूसरा प्रणामिकभाव उसके तीन भेद है-भव्यपणा, अभव्यपणा और जीवितव्यपणा है. तीनभेदमें जीवितव्यपणा है तथा भव्यपणा अभव्यपणाके प्रणाम विचार और जो हाथ लगे सो भावे. तीसरे उपशम भावके दो भेद है-उपशम चारित्र सो उपशम श्रेणिमें प्राप्त होवे तथा उपशम भावका समकित उस श्रेणिमेभी होवै और उस विनाभी होवे सो है या नहीं वो विचारे क्षायक भाव, उसके नौ भेद है सो क्षायक समकित, यथाख्यात चारित्र, केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनतदान, अनतलाभ, अनतभोग, अनतउपभोग और अनतवीर्य ये नौ भेद क्षायकभावके हैं सो प्राप्त करनेका भावे. क्षयोपशमभावके अठारह भेद हैं सो चार ज्ञान, तीन अज्ञान, तीनें दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, क्षयोपशमसमकित, देशविरती और सर्व विरती-यह अठारह भेदमेंसे जोजो भाव क्षयोपशमभावसें प्राप्त होते हैं सो क्षायकभावसें करनेका भावे. ये भाव विचारकें अल्प बहुत्व विचारे कि आत्मा पदरह भेदसें सिद्धि प्राप्त करता है उसमे कौनसें भेदसें बहुतसे जीव सिद्धि प्राप्त करते है? वो आगमसें जान लेवें कि मुनिपणेसें १०८ अेक समयमें सिद्धि प्राप्त करते है दूसरे सब लिंगसें कमसिद्धि प्राप्त करते है, वास्ते मुनिपणेमें प्रवर्तनेका भावे. मुनिभावमें जो जो कसर-न्यूनता है वो प्राप्त करनेका भावे सम भावकी वृद्धि करे. फिर षड स्थानकों ध्यानमे लेवे अर्थात् प्रथम स्थानक चेतन लक्षण सो ध्यानमें लेवे कि आत्मा ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, तप, उपयोग ये छउं लक्षणमय है. दूसरा स्थानक यही है कि-आत्मा

नित्य है, अविनाशि है जन्म मरण पुद्गल सयोगसें बनता है वो मेरा स्वभाव नहीं है तीसरा स्थानक शोचे कि–आत्मा अपने स्वभावका कर्त्ता है और कर्म सयोगसें पुद्गलिक भावका कर्त्ता बन गया है, वहासें उपयोग बदल डाले चौथा स्थानक भोक्तापणा शोचे कि निश्चयनयसें अपने स्वभावका भोगी है, परभावका भोगीपणा पर सयोगसें है पाचवा स्थानक ध्यानमै लेवे परमपदका विचार करे कि आत्माका पद और सिद्धका परमपद समान है, कर्मके सयोगसें भेद पड गया है, वो भेदसें रहित आपका परमपद है उस मुजब रहनेका भावे छट्ठे स्थानकमै शोचे कि ये परमपद प्राप्त होनेके कारण सयम और ज्ञान ये दो हैं, वास्ते दोनू वस्तुओंमें वर्त्तना करे इस तरह भावनाओं भावनेका ज्ञान सो ज्ञान श्रवण करनेसें होता है और ऐसें भावसें स्वाभाविक अनुभव ज्ञान प्रकट हुवे बाद ज्यों ज्यों स्वभावकी अदर स्थिर होवे त्यों त्यों आत्माकी निर्मलता अनुभव ज्ञानकी शुद्धि और निज तत्व प्रकट होवे, वास्ते हर हमेशा सुदर भावनाओंका उद्यम करना पुन हेमाचार्यजीने ध्यानकी बहुतसी रीतियें योगशास्त्रमै बतला दीहै, वहासें देखकर ये उद्यम विशेष प्रकारसें करना. अतिम उद्यम यही है वास्ते आत्मार्थि पुरुष जो जो निवृत्तिका वक्त हाथ लगै वो वो वक्त पर ध्यानका अभ्यास करै यही श्रेय है

७५ प्रश्न —किसी गच्छवाले कहते है कि छउ पर्व और कल्याणक दिवस सिवा पौषध नहि करना उसके सबधमै सत्य क्या है ?

उत्तर —ये बात न्यायसें और शास्त्रसें विरुद्ध मालूम होती है, सबब कि परमात्मा श्रीका तो यही उपदेश है कि–'समय मात्र प्रमाद नहि करना' वो उपदेश आत्मार्थि जनोंके दिलमै रमण कर रहा है हर हम्मेशा भावना तो अप्रमादकीही वर्त्तती हैं, मगर कर्मके सयोगसे–पूर्व कर्मके जोरसें उन प्रकारकी विशुद्धि नहीं हो सकती है इस्सें सयम अगीकार नहीं करते तो भी पर्वके दिन पौषध तो अवश्य करते हैं, और पर्वके दिन सिवा दूसरे दिनोंमैभी वक्त हाथ लगै तो वो वक्त प्रमादमै क्यों गुजारें ? उस दिनभी अवश्य पौषध व्रत धारण करें शास्त्रमै तो

जहा जहा अधिकार होवे वहा वहा पर्वके दिनकाही होता है, सबब कि गृहस्थ ससारके प्रपंचमें फसा हुवाही होता है यदि फसा हुवा न होता तो सयमही अगीकार करता; लेकिन फसा हुवा होनेकेही सबबसें सयम अगीकार नहीं करता है, उस वास्ते हम्मेशा न बन सके वोही हेतुसें पर्व दिन अवश्य पौषध करे. इसी लिये तिथियोंका दर्शाव किया है. अैसा आशय तत्त्वार्थके पत्र २४३ मे है कि–"सपौषधोपवासकोत्रयपक्षयोरष्ट-म्यादि तिथिमभिगृह्य निश्चित्य तुग्यान्यतमाचेति प्रतिपदादि, तिथि मनेन-वान्यासु तिथिषु अनियम दर्शयति नावश्यतयान्यासु कर्त्तव्यः" इस मुजब तत्त्वार्थकी टीकामे है–यानी अष्टमी प्रमुखके दिन अवश्य (पौषध) करना-धास्ते अष्टमीदर्शाइ है, और दूसरी प्रतिपदादितिथिके दिन अवश्य कर्तव्य नहीं. इस्सें कुछ निषेध किया है अैसा नाहि कहा जाता है–मतलबमें अव-काश मिले तो बेशक पौषध और तिथियोंमेंभी करे. अगर जो शख्स इस बातका निषेध करते है उनका तो इलाजही क्या है–उनकी बुद्धिकीही वि-चित्रता है. आत्मार्थियोंको तो जिस वक्त मोका हाथ लगे उसी वक्त धर्म प्रवर्ति करनी वही श्रेय है पुन. प्रतिक्रमणेमेंभी तपचितवनका काउ-स्सग्ग आता है उसमें छ मासी तपसें न्यूनक्रमसें चिंतवन किया जाता है. वोभी तिथि सिगरके दिनोंमें चितवन नही करना चाहियें; सबब कि उप वास आहार पोषध है और पर्व तिथि सिगरके दिनोंमे नही करना है तो चितवन किस वास्ते करना चाहिये? लेकिन ज्ञानीका मार्ग तो हर हम्मेशा धर्मकरणीकाही है ज्ञानीयोंनें शास्त्रकी अदर तप चिंतवन करनेका कहा है तप चिंतवनका अधिकार योगशास्त्रमें तथा प्रवचनसारोद्धारकी छपी हुइ कितानके पृष्ट ३७ मे है. इस सिवाभी बहुतसें शास्त्रोंमें है, वास्ते वक्त मिल जावे उसी वक्त पोषध करना यही दुरस्त है. पुनः वैंही प्रवचन सारोद्धारके पत्र ४० मे अनागत तप पचख्खाणका स्वरूप कहा है कि–अगात पर्यूषणादिक पर्वके दिन किसी सबबके लिये तप बन सके वेसा योग नही है तो नस्सें पीछेसें करे. या तो अतित तप यानी पेस्तरभी करे तोभी कुछ हरकत नही इस अधिकारसे समझा जाता है, कि पर्वके पेस्तर

या पीछेभी तप करै तो कुछ हरकत नहीं है तप है सो आहार पोषध है वास्ते पर्वके दिन सिवाभी पोषध करनेमें कोइ नुकशान नहीं किन्तु लाभही है फिर ये पक्षवाले योभी कहते है कि-'हम्मेशां उपवासका पच्चखाण करना, मगर ज्यादे एकदम पच्चख्खाण करना नहि ये बातभी शास्त्रसें भिन्नता धराती है, सबब कि येही तप चिंतवनमें जितने भक्तका अभी एकदम पच्चख्खाण किये जाते है वितनेही भक्तका चिंतवन है दूसरा चितवन दूसरी तरहसें है. फिर पच्चख्खाण भाष्यमें और प्रवचनसारोद्धार आदि बहुतसी जगे पच्चख्खाणके अधिकार हैं, वहा चोथ भक्तादि पच्चख्खाण करनेके कहे हैं ये आदि शब्दसें उपवाससें अधिक पच्चख्खाण सिद्ध होते हैं वास्ते अधिक पच्चख्खाण चोवीस भक्त तक करनेमें हरकत नहीं है, और जो हरकत होवै तो ये चिंतवन झूठा हो जाता है क्यों कि वन सके वहा रुक जानेका कहा है और वहां तक ही चिंतवन करनेका कहा है पीछे काउस्सग्ग पूर्ण करके पच्चख्खाण करनेका है, वास्ते वन सके उतनाही पच्चख्खाण करना वही रीति अच्छी है

७६ प्रश्नः—पजुसणमें कल्पसूत्र ही वाचना ऐसी परपरा प्रचलित है उसका क्या सबब है?

उत्तर.—कल्पसूत्रमें मुख्यत्वतासें साधुका आचार है, वो वर्ष वर्ष दिन पर सुननेमें आवे तो समस्त मुनि महाराजोंका उपयोग स्मृत रहवे फिर जबसें सभाकी अदर वचाया जाता है तबसें श्रावक प्रमुखकों प्रभुके अद्भुत चरित्र यानी कठिन तपश्चर्या, कठिन आचार, कठिन दुःख प्रसित होने परभी अपने उपशातपणेमें रहे हुवे, कठिन दु ख देनेवाले परभी समताभाव-किंचित्भी द्वेष नहीं, अतिशय ज्ञानशक्ति ऐसी दशा श्रवण करनेसें प्रभुपर आस्तिकता वृद्धि होवे, क्यों कि पुरुषकों देव माने उनके आश्चर्यकारक चरित्र सुननेसें अवश्य रागकी वृद्धि होवे और भगवान् गणधर मुनिमहाराजादिक ऊपर राग बढे और आज्ञा आराधे वही सम्यक्त्व निर्मल होनेका सबब है ऐसे सबबसें उपकारी पुरुषोंने हम्मेश कल्पसूत्र वाचनेका रीवाज रख्खा मालुम होता है

७७ प्रश्नः—अंजनशलाका कौन कर शके ?

उत्तरः—प्रभुकी अंजनशलाका आचार्य महाराज करें-ऐसी षोडशजीमें हरिभद्रसूरीजीने कहा है. और दूसरे भी प्रतिष्ठाकल्पोंमें मुख्यपणेसें वैसाही कहा है. फिर कुलप्रभसूरीजीके शिष्य नरेश्वरसूरीजीने समाचारी रची है उसमें आचार्य करे सो सूरिमंत्रसें करें और आचार्यके अभावमें उपाध्यायादिक वर्द्धमान विद्यासें करे ऐसी रीति है. एक प्रतिष्ठा कल्पकी पुरानी प्रत मैंने देखीथी उसमें श्रावक करें ऐसाभी कहा है, और वो मंत्रभी अलग बताया है. अब यहांपर कोइ शंका करेगा कि-' हीरविजयसूरिजीने हीरप्रश्नमें श्रावक प्रतिष्ठित प्रतिमाजीकों अपूजनीय कही है. उसका क्या सबब ?' इसके समाधानमें यही है कि असी प्रतिष्ठित हुइ प्रतिमाजी मुनिके वासक्षेपसें पूजनीय होती है उससें जाना जाता है कि जिस प्रतिष्ठा कल्पमें श्रावकका मंत्र बतलाया है-उसका यही सबब होगा कि आचार्य, उपाध्याय जीका योग न बनें ऐसा होवे और प्रभुभक्ति करनेकी जरुरत है तो खुद श्रावक प्रतिष्ठा कर लेवें. और जब आचार्यजी वगैरःका योग मिल जावे तब उन्होंकी पाससें वासक्षेप करा लेवें इस तरह वो वार्त्ता वजूद भरी मालूम होती है. कोइ कोइ कहते हैं कि आचार्यजी वासक्षेप करेंही नहीं, श्रावकही करें, मगर ये अयोग्य वार्त्ता है, सबब कि त्रेसठ शलाका पुरुषके चरित्रमें कपिल केवलीजीनें प्रतिष्ठा की है उसके पीछेभी बहुतसें आचार्योंने की है ये वार्त्ता विश्वविदित है, वास्ते मुख्य वृत्तिसें तो छत्तीस गुण युक्त विराजित आचार्य महाराजही योग्य हैं.

७८ प्रश्नः—इस कालमें धर्मसाधन करनेवालोंमें कितनेक दुःखी मालूम होते हैं और अधर्मिजन सुखी दृष्टिगोचर होते हैं उसका सबब क्या ?

उत्तरः—अधर्मि जीव हैं उनकों पिछले जन्मकी प्राय अधर्मकी सज्ञा चली आती है उससें अधर्मकी बुद्धि होती है, पिछले जन्ममें अधर्म सेवन किया है, वो कुछ मनुष्यपनेसें बहुत करकें मनुष्य नहीं होवें. अधर्मि प्राय' नरक तिर्यंचमें जावें, तब उन भवके पाप नरक तिर्यंचमें भुक्तकर मनुष्य होवें तब उसकों कितनेक दुःख कमती होते हैं, लेकिन वो सुख पानेसें फिरकें

पापकर्म करता है उस्स नरक तिर्यचकी दुर्गति पावे वहां दु ख भुक्ते अैसें जीवोंकों मनुष्य भवमे सुख है, वैभी आगत कालमें दु खके हेतु है; वास्ते अधर्मिकों सुखी देखकर मनमे सुख शोचनेकी जरुरत नहीं हैं और धर्मिष्ट जीव तौ मनुष्य किंवा देवगतिमेंसें आता है, वहां धर्म तो कियाह हुवा हे, मगर कितनेक हिंसादिक पाप किये होवें वे यहां भुक्तता है उस्सें दु खी मालूम होता है, लेकिन वो जीवकों धर्मके परिणाम है उससें वो समभावसें भुक्तता है उसी सबवसें वो निर्जरा करकें अति विशुद्ध होकर मुक्ति वा सद्गति पाता है, वास्ते गुणीकों देखनेमे दु ख है सो सुखका हेतु है और निर्गुणिका सुख है सो उसका दु'खका हेतु है अैसा जनकर धर्ममे प्रवर्त्तना तथा दु ख आनेसें समभाव रखना वही आत्माको हितकारी है

७९ प्रश्न —श्रावक आराधक होवे तौ कितने जन्ममे सिद्धि प्राप्त करे ?

उत्तर —आयुरपच्चखाण पयन्नामे कहा है कि सथारा कर सव वस्तु वोसीराके सव जीवके साथ खमतखामणे करकें आराधना किये बाद काल करे तौ उत्कृष्टे सात भव होवें इस्से अधिक भव नहीं होवे, वास्ते अवश्य आराधक होनेकी भावना हम्मेशां करना और आराधना करनेका अंत वक्तमे उद्यम करना

८० प्रश्न —भगवतजी विचरे तव मार्गमे क्या क्या वस्तुयें साथ होती हैं ?

उत्तर —उवाइजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ९९ मे नीचे लिखी हुइ वस्तुयें आकाशमे साथ चलती हैं —

धर्मचक्र आगे चलता है, मस्तकपर तीन छत्र साथ चलते हैं, दोनु तर्फ चम्मर धरे हुएही रहते हैं, सिंहासन पादपीठ सहित साथ चलता है, और धर्मध्वज आगे चलता है ये वस्तुयें साथ चलती हैं तथा चौंतीस अतिशय और पेंतीस वाणीके गुणोंसें विराजमान होते है पुन देवभी साथ बहुत रहते हैं इस तरहसें विचरते हैं

८१ प्रश्न —गर्भमें जीव उत्पन्न होता है वो किस प्रकार उत्पन्न होता है ? और बढता है सो किसतरह बढता है ?

उत्तर—इस बाबतका अधिकार तन्दुलविआली पयन्नेमें है, वो शुरुवातसेंही चला है. स्त्रीकी नाभिके नीचे दो नाडीयें हैं उनकी आकृति-नाडी सहित-कमल फूलके सदृश होती है. उसके नीचे स्त्रीकी योनि है. जीव उत्पन्न होनेका स्थान अधोमुख कमलके आकार होता है नीचे आम्रकी मजरी जैसी मासकी मंजरीयें है वे ऋतुकालके वरत खिलनेसें तब रक्तश्राव होता है, उसका नाम ऋतु कहाता है वो ऋतु आये बाद पुरुषके सयोगसें वीर्य श्रवता है वो वीर्य तथा स्त्रीका रुधिर ये दोनुका अधोमुख कमलमें सयोग मिलता है तब उसमें जीव उत्पन्न होता है वो जीव प्रथम समयमें वीर्य तथा रुधिरका आहार करता है तदनतर कालांतरकाल व्यतीत होनेसें बढता है. सात दिन तक चावलके जल समान होता है, बाद सात दिनमें पानीके बुदबुदेकी समान होता है. तत्पश्चात् सात दिनके बाद मांस पेशी वत् एक मासमें आम्रमज्जासादृश होता है. दूसरे महिनेमें विशेष बढकर मजबूत पेशी—ग्रथीवत् होता है. तीसरे महिने उस्सेंभी ज्यादे बढता है ओर माताकों दोहले—मनोरथ उत्पन्न कराता है पुन्यवंत गर्भ होवे तो अच्छे धर्मके काम करने—करवानेकी तथा अच्छे पदार्थ खाने पीनेकी इच्छायें होती हैं और पापिष्ट गर्भ होता है तो अधर्म और अयोग्य वस्तुयें खाने पीनेकी इच्छायें उत्पन्न कराता है चौथे महिने गर्भ बढनेसें माताके अगोपांगभी बढते हैं पांचवे महिने गर्भके पिंडमेंसें पाच अकुर फटते हैं यानी दोनु हाथ, दो पाँव और एक मस्तक ये पाच वस्तुयें होती हैं. यह देखकर अज्ञानी जीव कहते हैं कि पाचवे महिने गर्भमें जीव सचरता है, लेकिन ऐसे अज्ञजनोंको सोचना चाहियें कि पाच महिने तक जीव कहां रहा था? जीव न था तो आकृति कैसें हुइ और किन सबबसें गर्भ बढता था? वास्ते जीव तो अव्वलसेंही उत्पन्न होता है और उस पीछे उपर बतलाये मुजब बढता है छट्ठे महिने पित्त और रुधिर उपजता है. सातवे महिने सातसो नाडियें, पाचसौ मास स्थान और नौ बडी धमनी नाडीयें ये तैयार होते हैं आठवें महिनेमें सब अगोपागकी पूर्णता बनती है. यह अधिकार भगवान् श्री वीरस्वामीजीने कहा कि तुरत गुरुभक्त गौतमस्वा-

मीजीने पुछा कि–" भगवान्! गर्भमें रहा जीव निहार करता हे ? या नहीं ?" भगवतश्रीने कहा " नहीं." तब फिर प्रश्न किया कि–"कवल आहार करता है ?" तबभी प्रभुश्रीने कहा " नहीं " रोम आहार आदि करता है वो माताकी रसहरकी–रसवाहिनी नाडी कि जो नाभिके नीचे होती है सो गर्भके बालककी नाभिके साथ लगी हुइ रहती है, उस द्वारा बालककों आहार मिलता है और सब शरीरमें फैलता है माताके रुधिरका भाग उत्पत्तिके वख्त यदि ज्यादे होवे तो पुत्री होती है और पिताके वीर्यका हिस्सा ज्यादे होता है तो पुत्र होता है, लेकिन रुधिर और वीर्य दोनु समान होवे तो नपुसक पैदा होता है बालकके शरीरमें मास, लोही, मस्तककी अदरका भेजा ये माताके रक्तसेंही होता है इस लिये ये माताके अग कहे है, और हड्डियें, हड्डिके अदरकी मिंजी तथा रोम ये पिताके वीर्यसें उत्पन्न होते है, वास्ते ये पिताके अग कहे हैं इस मुजब उन ग्रथमें बहुतसा स्वरूप दर्शाया है तथा योगशास्त्रमें हेमाचार्यजीने ओर भवभावना ग्रथ कि जो मलधारी हेमचद्र आचार्यका किया हुवा है उसमेंभी बहुत विस्तार पूर्वक विवेचन है सो वहासें देख लैना.

८२ प्रश्न—वासुदेव नरकमें जाता है उस्का सबब क्या ?

उत्तर—वासुदेव पुद्गलिक सुखका नियाणा करता है, उससें सयम धर्मकी आराधना नहीं हो सक्ती है कृष्णवासुदेवनें श्री नेमिनाथजीसें पूछा कि–' मुजकों दीक्षा लेनेका दिल क्यों नहीं होता है ?' तब भगवतश्रीने फरमाया कि–' पिछले भवमें तुने नियाणा किया है वास्ते इस भवमें सयम उदय नहीं आयगा, मगर तु नरकसें निकलकर तीर्थंकर हो मोक्षमें जायगा ' इस मुजब अतगडदशागजीकी लिखी हुइ प्रतके पत्र २२ मे अधिकार है वासुदेवहिंडमेंभी पाच भव कहे है तत्त्व केवली गम्य हे

८३ प्रश्न—पिंडस्थ ध्यान किस प्रकार करना ?

उत्तर—योग्यशास्त्रमे हेमाचार्यजीनें बहुत प्रकारसें बतलाया है उनमेंसे दो रीति लिखता हु अरिहतजीका ' अ ' नाभिके विषे सिद्ध महाराजकी ' सि ' मस्तकके विषे, आचार्यजीका ' आ ' मुखपर, उपाध्यायजीका ' उ ' हृद-

यमै और साधुजीका 'सा' कठमै स्थापन करना. इस तरह पांचो हुर्फ स्थापन कर एकाग्रतासें उन्होंका ध्यान करना ये १०८ वक्त ध्यान करना. उस्से एक चोथभक्तका फल मिलता है. दूसरी तरहसें पत्र १८८ मै चिंतन करनेका कहा है सो पिंडस्थ ध्यान हैं वो पिंडस्थ ध्यानकी पाच प्रकारसें धारणा कही हैं पृथिवी, अग्नि, वायु, वारुणी और तत्त्वभु ये पाच धारणा करनी यानी प्रथम जितना तछिर्लोक है वैसा क्षीरसमुद्र ध्यावै मतलब कि चोरों तर्फ जल है ऐसा ध्यावै और वो जलके बीच जबूद्वीप है उतना सुवर्णका सहस्र दलमय कमल चिंतवै, वो कमलके बीचमें सुवर्णमय मेरुपर्वत कर्णिकारूप चितवै, वो कर्णिकाके ऊपर श्वेत सिंहासनपर अष्टकर्म छेदन करनेकों उद्यमवत ऐसा मैं रहा वैठाहु ऐसा चितवै. इस प्रकार एकाग्रतासें चितवन करै सो पृथिवी धारणा कही जाती है. पीछे अपना नाभि कमलमै सोला पाखडीका कमल चिंतवै. ये सोला पांखडीके कमलकी मध्य कर्णिकाके मध्यभागमै महामत्र सिद्धचक्र बीज 'अर्ह' एसा मत्र स्मरण करै. वाद कमलकी सोला पाखडीयोंपै अ, आ, इ, ई, उ, ऊ ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अ, अ' एक एक एकस्व स्थापन कर उन्होंका स्मरण करै. पीछे 'अर्ह' ऐसा महामंत्र विंदुकला सहित रेफ एसा अक्षर है. वो रेफ अक्षरमैसें थोडा थोडा वहार निकलता हुवा धुम्रशिखा–धुम्र चिंतवै और उसीका स्मरण करै. पीछे धुम्र निकलती हुइ अग्निकी चिनगीका समूह निकलता हुवा ध्यावै. पीछे अग्निकी ज्वाला दिशि विदिशि आकाश व्यापित महाज्वाला स्मर लेवै और ज्वालाके समूहसें अष्टकर्मरूप अधोमुख कमल कि जो अष्ट पाखडीयोंका है उसकी हरएक पापडीपै एक एक कर्म स्थापन करकै उनके रहनेका स्थान हृदयकमल उसकों जला देवै यानी इस मत्रके ध्यानसें ध्यानरूप सरल अग्नि प्राप्त हुइ है वै अग्नि दहन करती है. उससें वे कर्म जलते हैं ऐसा ध्यावै तदनंतर देहसें वहार दूर प्रकाशवत अग्नित्रिकोण है उस्कों ध्यावै. वो त्रिकोणके तीनू कौनेमै एक एक स्वस्तिक स्मरण कर वो त्रिकोण अग्निरेफ स्मरण करके पीछे अतशरीरमै महामनसें उत्पन्न हुआ जो अग्नि वो अ-

मिकी ज्वाला जाजुल्यमान है उस्सें देह और अष्टदल कर्म, स्थापित किये गये कर्मकों जलाकर खाक कर देवै, जिस्सें आत्मा शांत होवै ऐसा ध्यावै, वो अग्निधारणा कहलाती है अब वायुका स्मरण करै यानी वायु कैसा है ? तीन भुवन-स्वर्ग-मृत्यु-पातालकों पूरित कर रहा है, पर्वतकों भी उन्मूलन करता है, समुद्रकोंभी क्षोभ करता है, मर्यादा मुक्त कराता है ऐसा अति प्रचड वायुसें करकें अगकी धारणासें देह तथा अष्ट कर्म रूप कमलकों जलाकर खाक किया है, उस भस्मकों ध्यानरूप वायुसें उडाये पीछे वायु स्मरण शांत कर देवै ये वायु धारणा कहलाती है बाद जल धारणाकों अमृत रूपिणी अति बहूल वर्गवत दृष्टि करती हुइ मेघमाला परिपूर्ण आकाशमै स्मरण करै वो कलाबिंदु सहित वरणाकित मडल वारुण बीज स्मरण करै बाद वरुणबीजसें पैदा हुवे अमृतरूप जल प्रवाहसें आकाश भर देवै, अग्निधारणासें अग्निपूरसें देह तथा कर्म जल गये है उनकी भस्मकों ध्यानरूप जलकी दृष्टिसें प्रक्षालन करना सो वारु-णीसें स्मरण करै ये वारुणी धारणा कहलाती हैं अब पांचवी तत्त्व धारणा सा सप्त धातुसें रहित, निष्कलक, निर्मल, चद्रबिंब समान उज्वल ऐसा सर्वज्ञ सब वस्तुके ज्ञाता उन समान अपने आत्मापनकों भावै बहुत तेज मय अज्ञानतिमिरसें रहित मणिमय सिंहासनपर बैठे हुवे देव दानव गाधर्व सिद्ध चारणादिकसें सेवित अनेक अतिशय करकें शोभायमान् सब कर्मोसें करकें रहित, सहजसरूपी, परस्वरूपसें रहित, स्वभाव महिमा निधान ऐसा आत्मा अपने शरीरके बीच पुरुषाकारसें स्मरण करै, वो, तत्वभु धारणा कहलाती है ये पिंडस्थ ध्यान योगीश्वर ध्याते हैं उसमै अपने स्वरूपमै लीन होनेसें मुक्तिके सुखका अनुभव करते है पुन वही ध्यानके प्रभावसें योगीश्वरकों दुष्ट विद्या, उच्चाटन, मारण, स्थभन आदिसें पीडा नहीं होवै शाकिनी, डाकिनी, लाकिनी, काकिनी, क्षुद्रयोगिनी, भूत, प्रेत, पिशाचादिक भी योगीश्वरका असह्य तेज मालूम होनेसें तुरत भग जाते है मदोन्मत्त गजेंद्र, व्याघ्र, सिंह, शरभ, अष्टापद, दृष्टिविष सर्प कि जो स्तुतही भयकर होते हैं वे सभी योगीश्वरकों उपद्रव नहीं कर सक्ते

है, इतनाही नहीं मगर देखतेही स्थभित हो जाते है या पलायन कर जाते है. ऐसा पिंडस्थ ध्यानका महिमा है और उससे [illegible] सुखकी प्राप्ति होती है

८४ प्रश्न.—पदस्थ ध्यान किस तरहसें करना ?

उत्तर.—योगशास्त्रके अष्टम प्रकाशके पत्र१९२ मे उस ध्यानकी रीति बतलाइ है-यानी नाभि कंदमें सोला पाखडीका कमल है वो दर पाखडीपें आगे बतलाये गये सोला स्वर क्रमसें स्थापन कर चितकी एकाग्रतासें चिंतवन करै पीछे हृदय कमलमै एक चोवीस पाखडीका कमल चिंतवन करकें उसमै कर्णिका चितन कर और दर पाखडीपर 'क' से लगाकर 'भ' तकके चोवीस व्यजन, स्थापन कर कर्णिकामे 'म' स्थापन करै और पीछे उन्का ध्यान धरै. बाद मुखस्थान अष्टदल कमल चिंतन करकें दर पाखडीपर य, र, ल, व, श, प, स, ह, ये आठ व्यंजन स्थापन कर चिंतवन करै. इस तरह तीनू कमलके ध्यानमै एकाग्रता कर लेवै ये ध्यानमय रहनेसें सब शास्त्रके पारगामी होवै-त्रिकाळज्ञानी होवै. ये आदि वहुतसें फल बतलाये हैं. दूसरी तरह नवकार मत्रका ध्यान करना सो भी पदस्थ ध्यान कहा है उसके ध्यानसें भी खासी वगैरः बडे १६ रोग नाश वचनसिद्धि प्रमुख होवै हलुवे कर्मीकी गति पावै, और परमानद सुख प्राप्त होवे पुनः प्रकारातरसें कहा है कि अष्टदल उज्वल कमल चिंतवन करकें कर्णिकामै मध्य महान् पवित्र मुक्तिसुखदाता आद्यपद सत्याक्षर मत्र 'नमो अरिहताणं' चिंतवै पूर्व दिशा दलमै 'नमो सिद्धाण' चिंतवे, दक्षिण दलमै 'नमो आयरियाण' चिंतवै. पश्चिम दलमै 'नमो उवज्झायाण' चितन करै उत्तर दलमै 'नमोलोए सव्वसाहूणं' तथा आग्नि कोण दलमै 'एसोपचनमुक्कारो' नैऋतकोणमे 'सव्वपावप्पणासणो' वायव्यकोण दलमै 'मगलाणच सव्वेसिं' और इशानकोण दलमै 'पढम हवइमगल' चिंतवन करै. इस तरह नवपदका ध्यान करना और मन वचन कायाकी एकाग्रता करनी इससे महान् फलकी प्राप्ति होवै पुनः प्रकारांतरसें अष्टदल उज्वल कमल मुख मध्य स्थापै और दर दलपर अ, क, च,

ट, त, प, य, श, ये क्रमसे अक्षर स्थापन कर स्मरण करै पीछे ॐ नमो 'अरिहताण' ये अष्टाक्षर अनुक्रमसें स्मरण कर लेवै बाद ये कमलकी केसरामे सोला स्वर कि जो आगे बताये है उन्होंका स्मरण करै पीछे सुखसे सचरता, शातिमडलमै रहता निष्कलक उज्वल चद्रबिंब समान मायाबीज ह्रीँ कार मत्रका स्मरण करै तदनतर उन पाखडीयों के बीच फिरता, आकाशमडळमै सचरता, मनोमल विनासता हुवा, अमृत श्रवता हुवा तालुमार्गसें जानेवाला, भममध्य हुल्लासित हुवा, जाज्वल्यमान् त्रिलोक्य विभुत्व : रक्षक अचिंत्य महिमाका देनेहारा अद्भुत आश्चर्यकारी चद्र सूर्यके तेजको जीतनेहारा योतिमय साक्षात् तेजरूप अति पवित्र नि पाप—ये मत्र एक चित्तसें—मन वचन कायाकी एकाग्रतासें ध्यावै तो जो पाप कर्म किये होवै वे सभीका नाश हो जावै और श्रुतज्ञान सकल वचनमय शब्द ब्रह्म प्रकट होवै इस तरहसें निश्चल मन कर छ महीने तक अभ्यास करनेसें मुंहमेंसें धुम्रशिखा निकलती हुइ मालूम होवै और उस्सें भी ज्यादा एक वर्षतक अभ्यास करनेसें मुंहमेंसे अग्नि ज्वाला निकलती हुइ नजर आवै. और उनसेंभी ज्यादे अभ्यास शुरु रखे तो सर्वज्ञका मुखकमल दृष्टिगोचर होवै और उनसें भी आगे अभ्यास करै तो अष्टकर्म रहित कल्याण महात्म्य आनदरूप समग्र अतिशय सयुक्त भमामडल नजर आवे साक्षात् प्रकट सर्वज्ञ वीतराग देवको देखै पश्चात् निश्चय मन होवै, मनका व्योपार जीतकर परमेश्वरके स्वरूपकी अदर एकाग्र मन करके ससाररूप भयकर वनको छोड कर सिद्धिमदिर-मुक्तिमदिरमै पहुच जावै प्रकारातरसें योगीश्वर मत्राधिराज हकारको उपर और नीचे रेफ सयुक्त कलाबिंदु सहित अनाहत नाद सयुक्त अर्हं कनक सुवर्णका कमलमै रहा निष्कलक चद्रबिंब समान निर्मल, अति उज्वल, चपल, आकाशमै फिरता, दशोदिशाओंमै व्यापित, मुखकमलमै प्रवेश करता हुवा, परस्पर भटकता, नेत्रमत्ये स्फुरता, ललाट मध्य रहता, तालु मार्गस निकलता, अति बहुल शरीरको आनद परमनिर्भर सुख उत्पन्न करता, अमृतरस श्रवता हुवा, अति उज्वलपणेसें चद्रमडलके साथ स्पर्द्धा करता हुवा और ज्योति शरीरमै स्फुरकर आका

शर्मंडलमै सचरता शिव श्री मोक्षलक्ष्मीपु एक भावना श्रीके सव अवयव सं-
पूर्ण कुंभक करके यानी श्वासोश्वास स्थिर कर एकाग्रतासें इस मुजव ध्या
न करै, उससें साक्षात् तत्वकों माप्त करै दूसरेभी वहुत प्रकारसें ध्यान
आठवे प्रकाशमै है. वो देखकर ध्यानमै लेना

८९ प्रश्नः—रुपस्थ ध्यान किस तरहसें करना ?

उत्तरः—योगशास्त्रमै नवम प्रकाशके अदर यह ध्यानका व्यौरा है, उनमैसै किंचित् मात्र यहां लिख वतलाता हु. अव्वलमै भगवत समोवसरणमै विराजमान है उन्होंका ध्यान धरना. वे कैसे हैं ? मोक्षलक्ष्मी जिनके सन्मुख है, अष्ट-कर्मके विनाश करनेहारे, अन्य जीवोंकों अभयदानके देनेवारे, निष्कलक, अति उज्वल चद्रविंव समान, तीन छत्र मस्तकपर धारण किये हुवे हैं, उल्लासवत चकचकित भामडलसें करके सूर्यका तेजभी न्यून मालूम होता है, देवदुदुभी, भैरी, मृदग, आदि अनेक वाजीत्रके शब्दसें कर किन्नर गांध र्वादिकके गीत देवागना—अप्सरा के नृत्य, और देवेंद्रादिककी सेवा इत्यादि ऋद्धिसें सयुक्त, अशोकवृक्ष युक्त शोभित सिंहासनपर विराजित हुवे हैं. और चामर हुल रहे हैं, देवदानव दैत्य गाधर्वादि नमन कर रहे हैं, मदार पारिजातक हरीचदन कल्पवृक्षादि दिव्यवृक्षोंके पुष्पोंसें सुगंधि त हुआ समवसरण, उस समवसरणके कोटमै मृग, वाघ, सिंह, सांप, हाथी, घोडे आदि तिर्यच शातपणेसें स्थित हैं, एक दूसरेका वैरभाव प्रभुके अतिशय प्रतापसें शांत हो गया है ऐसे अनेक अतिशय सयुक्त वीतराग भगवान्कों केवली महाराजभी वदना कर रहे हैं—ऐसे सर्व जीवकों पूजनीय परमेष्टी भगवत अरिहत वीतरागका स्वरुप देखकर—मनमै रमण कर ध्यान करै और वे प्रभुके गुणोंमै एकाग्रता करै. उसकों रुपस्थ ध्यान कहा जाता है. दूसरी तरहभी किया जाता है सो भी कहता हु—राग, द्वेप, मद, मत्सर, क्रोध, मान, माया, लोभ, अहकारादिक महा मोहके विकार-सें अकलकित हैं, शात हैं, काति तैजसें करके चकचकित हैं, मनहर महा सौभाग्यसें करकें सयुक्त है, समस्त १०८ लक्षणोंसें युक्त, अन्यदर्शनसें अगम्य योगमुद्रा महात्म्य है, आंखोंकों अमद वहुत आश्चर्यकारी आनद

परम आनदका हेतु है इद्रियोंका जीतकर मन काबूमै रख्व निर्मल चि
त्तसें और द्रष्टिका मेषोन्मेषसें दूर रखकर श्री वीतरागजीका प्रतिमाका रूप
ध्यावै उसकों रूपस्थ ध्यान कहते है

ऐसे अतिशय अभ्याससें योगीश्वर तन्मयपणा वीतराग प्रतिमापणा पावै. अप.
ना सर्वज्ञपणा देख सकै निश्चयतास जो भगवत सर्वज्ञ वीतराग सो मैंही हु ऐसे एक
मनसें तन्मयता वीतरागपणा पाया तु सर्ववेदी सर्वज्ञ मानकर ये वीतरागका ध्यान
करनेसें वीतराग होकर मुक्ति प्राप्त करेगा और रागी देवका ध्यान करनेसें क्षोभण
उचाटनादिक कर्मका करनेवाला होवेगा अज्ञानतासें यानी वस्तु धर्मकों यथार्थ पढे
बिना जो ध्यान करैगा सो असत ध्यान गिना जावेगा ओर प्रयास निष्फळ होवैगा
वास्ते यथार्थ वस्तुके कथन करनेवाले वीतराग देव उन्होंकी आज्ञा मुजब ध्यान करना
चाहियें इत्यादि बहुतसें ध्यानके स्वरूप योगशास्त्रमें हें जो देखकर ध्यानमें लैना.

८९ प्रश्न —रूपातीत ध्यान किस तरह होता है ?

उत्तर—योग्य शास्त्रके पत्र २०४ मै इस ध्यानके वारे मै कहा है कि–अमूर्त्ति चि-
दानंद स्वरूप नित्य अव्यय निरजन निराकार शुद्ध परमात्माका ध्यान
करना सोही रूपातीत ध्यान कहा जाता है इस मुजब योगीश्वर निराकार
स्वरूप अवलवन करता हुवा–निराकार ध्यान करता हुवा ग्राह ग्राहक व-
र्जित निराकारपणा पावै (जो कुछ पुद्गलिक इच्छासें जप ध्यान किया
जावै उसें ग्राह ग्राहक कहा जाता है, ओर मनकों तावे करकें जप ध्यान
द्वारा किसी देवका आराधन किया जावै उसें ग्राहक कहते हैं ) उससें
रहित जो योगीश्वर–पर स्वरूपसें रहित और निराकार परमात्म स्वरूप
चिंतवन करता हुवा ऐक्य निराकारपणा पावै मनकों और परमात्माकों
जो समरस करै वैसें भावकों एकीकरण कहते है, वही आत्मा परमात्माके
अदर एक करकें लय करादेता है, इस प्रकारसें योगीश्वर इद्रियोंकों जीत मन
वश करकें तत्व अव्यय स्वरूप निरजन निराकार चिंतवता हुवा निरजन
पणा पावै यह ध्यान अनुभव ज्ञानके जोरसें होता है ज्यों ज्यों आत्मा
स्व स्वरूपमें लीन होता जावै त्यों त्यों विशेष विशुद्धिसें अपूर्वज्ञान प्राप्त
होनेसें विशेष अनुभव होवै ये ध्यान कृत्रिम नहीं है इससें इसका विस्तार

अल्पतासें बतलाया गया है

८७ प्रश्नः—जैनमें समाधी चढानेका मार्ग है या नहीं ?

उत्तर —योगशास्त्रमें बहुत विस्तारसे समाधि चढानेका लेख है और कपुरचंदजीके स्वरोदयमेंभी समाधी संबधी बहुत रचनायें कही गइ है. तथा दूसरे ग्रंथोमेंभी बहुतसी जगहपर इसका बयान है. आजकलभी इसके अभ्यासी हैं.

८८ प्रश्नः—कितनेक जैनधर्मि नामधारी तेरापंथी श्वेतांबरी कहते है कि–भगवतीजीमें पत्र ६१३ की अंदर असंजमीको दान देनेसें केवल पाप होनेंका कहा है, वास्ते दान न देना वो दुरूस्त है या नहीं ?

उत्तरः—जैनमार्गकी शैली स्याद्वाद है, उस शैलीके ज्ञानकी ठीक ठीक माहेती मिलाये विना जो सख्स एकांतमार्ग ग्रहण करता है उसके हाथमें सूत्रका परमार्थ नही आता है सूत्रमें जितने वचन है वै अपेक्षित हैं, वो अपेक्षा गुरुद्वारा ज्ञान लेनेसें होती है, लेकिन गुरूके सिवा अपनी स्वच्छंदतासें अर्थ करै उस्के हाथमें परमारर्थ किस प्रकार आ सकै ? सूत्रके अर्थ निर्युक्तिकारने–भाष्यकारनें–टीकाकारनें कहे है, उसपरसें या वै अर्थ गुरु मुखसें धारण करै तब प्रभुके अभिप्रायका ज्ञान होवै मगर पुर्वधर पुरुष अर्थ कर गये हैं उनसे विपरीत–दूसराही अर्थ स्वयंपडितशेखर बनके करलेवै और वसे मदुक्बुद्धिवाले ( अल्पमति ) पंथ चलावै और उस कुपथको प्रमाण कर लेवैं तब तो उनकी अज्ञानताके आगे लाजवाबी हैं–निरूपाय है प्रभुजीने वर्षादान दीये हैं वै दानके लेनेवाले असयमी थे, यदि दानमार्गका निषेधही होता तो प्रभुजी क्यों दान देते ? प्रभुजी सम्यग् दृष्टिवंत और तीन ज्ञानके ज्ञाताथे उन्होंने जो जानबूझकर–गुण समझकर–कार्य किया है वो कार्य ( दानधर्म ) सभी गृहस्थोंको करनाही मुनासिब है. ज्ञाताजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ८५४ में मल्लिनाथजीने दान दिया था उसका अधिकार है ओर उन्हीके पिता कुंभराजानेभी चारों प्रकारके आहारका दान दिया है उसकाभी वर्णन पत्र ८५५ में है जो दान देनेसें केवल नुकशानही होता तो मल्लीनाथजीही निषेध करते; मगर निषेध नहीं किया है पुन' कृष्ण वासुदेवनें थावचाकुमार दीक्षा

लेनेको तैयार हुवे तब सारी द्वारिकावासी प्रजामें उद्घोषणा कराइ-थाली पिटवाइथी कि-" जो कोइ जन दीक्षा लेवैगा उसके पिछले कुटु-बकी मै प्रतिपालना करुगा " अैसें आशयका अधिकार ज्ञाताजीके पत्र ५४६ मे है उस्सें विचार करो कि पिछले लोक सयमी नहीं थे मगर असयमी ही थे, तौभी उन्होंके सरक्षणमें लाभ समझ कर वो काम किया था, वास्ते वो काम दूसरोंकोंभी हितकारक है फिर तीर्थकर महाराजभी जहा पारणा करते है वहाभी साढे बारह करोड सोनैयों-अशरफियोंकी वृष्टि होती है-जैसे कि पूरणशेठके वहा श्री वीरस्वामिने पारणा किया तो वो कुछ समकिति न था तौभी वहां सोनैयोंकी वृष्टि हुइथी और वो लेनेहारा असयमी ही था और इसी तरह मुनियोंकाभी महिमा करनेके लिये सम्यक्दृष्टि देवेता अैसीही भक्ति करते है, मगर ये सम्यक्दृष्टिके किये हुवे अैसे कृत्य प्रभुने निषेधे नहीं, तो उस्से सबुत होता है कि ये कृत्य गृहस्थोंके आचरने योग्यही है पुन' रायपसेणी सूत्रमें परदेशी राजाकों केशि गणधर महाराजाने धर्म पाये पीछे कहा है कि-'हे परदेशी! तु रमणिक होकर पीछे अरमणिक मत होना ' उस वक्त परदेशी राजाने कहा कि-'मै मेरी ऋद्धिके चार हिस्से करुगा उनमेंसें एक हिस्सा दान-शालामे दउगा ' यह अधिकार रायपसेणी सूत्रकी छपी हुइ प्रतके मूल पाठ पत्र २८० मे है इस्सेंभी खुल्ला मालूम होता है कि दान देना ये मुदेकी बात है हां, दानका निषेध है वो मात्र कुपात्रकों सुपात्र बुद्धिसें देना उसकाही है बाकी अनुकपासें दु खीं जानकर देना तथा शासन प्रभावनासें देना उनका किसी ठोर निषेध-मना नहीं है आगमकी परु-पणा गुरु मुखसें धारण करकें करनेसेंही बरोबर समुझा जावे पुन' आ-त्माका दानगुण तौ स्वाभाविक है, मगर जहां तक दानातराय होवै वहा तक वस्तु बराबर नही समुझी जाती है-दान नहीं देना अैसाही दिलमें विचार आवै. पुन जहा जहां तीर्थकर महाराज वा आचार्य महाराज समोसरे है अैसी वधाइ देनेवालोंकों बहुत प्रकारसें प्रीतिदान दीए है उनमेंसें एक अधिकार लिखता हु -चित्रसारथीनें केशि महाराज समोसरे

तब वधाइ ल्यानेवाले वनपालक ( जगल खातेका अमलदार ) कों दान दिया था. ये अधिकार रायपसेणीजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र २३२ मैं है वहासें दरकार हो तौ देख लिजीयें. यदि दानमें लाभ न होता तौ सम्यग्दृष्टि क्यों दान देवै? उसमे प्रभु भक्तिके भावका उत्साह है वास्ते भारी लाभ है उस्सें दान दीये हे. 'ये दानमै धर्म नहीं'—ऐसा कथन करें उसकों शोचना चाहियें कि—भगवतकों वदन करनेके लिये जानेके वक्त काममें लिय जाता रथका नाम मूल पाठमें वहुतसी जगेपर 'धर्म-रथ' ऐसा कहा गया है और ज्ञाताजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र १४९ मै यही वार्त्ता है. वास्ते हरएक वस्तु सब शास्त्रोंका विचार करकें ग्रहण करनी चाहियें. दानके बारेमें ऐसा कहते है कि—'असयमीकों दान देवै उस्सें जो पुष्ट होवे और आरभ करें उसकी हिंसा लगै वास्ते नहीं देना.' ऐसा कहनेवालेकों समझना चाहियें कि—तेरापथी अपने गुरुकों दान देते हैं, और चलकर जायेंगे उसमें पाउके नीचे कितनेक त्रसजीव तथा पेटमै आहारके योगसें कृमि आदि पैदा होंगे और निहार—दस्त करेंगे उस वक्त वै नाश होंगें तो ये सब हिंसा लगेगी. तथा वडीनीत करेंगे उस विष्टामै जीवोत्पत्ति होगी और फिर नाश हो जायगी उसकीभी हिंसा लगेगी, वास्ते तुमारे गुरुवोंकोंभी आहार नहीं देना चाहियें. लेकिन जरा गौरसें शोचो कि शुद्ध सयमी मुनिमहाराज अपना आत्मसाधन करते हे वही अपने देखनेका है पर दूसरा विचार लेनेकी कुछ जरुरत नहीं. मात्र आहार पाणीके आधारसें सुखपूर्वक धर्मसाधन होगा. उसी तरह दु:खी जीवकों दान देनेसें आहार सबधीके सकल्प विकल्परूप उसका दु:ख दूर होगा और उसकों सतोष होगा वही लाभ शोच कर दान देनेका है अपन कुछ दुष्ट काम करनेके वास्ते आहार नहीं देते हैं, उस्सें वो दूषण अपनकों नहीं लगता है. फिर तेरापथी लोगोंकों धर्मोपदेश करते हैं और वो उपदेश सुनकर अज्ञानपणेसें तपस्या करता है सो तपस्या करनेसें देवलोकमें वा मनुष्यमै उत्पन्न हो पुद्गलिक सुख भुक्तेगा वो पापभी धर्मोपदेशककोंही लगना चाहियें, यो कभी ऐसा कहे कि

उन्हका तो धर्मोपदेश देना है उससे वो पाप नहीं लगता है, तो हम कहते है कि दान देनेवालेकोंभी स्हामनेवालेकी भूख्का दु ख दूर करना है–दूसरा विचार नहीं जीव छुडानेवालेकों जीवका मरता हुवा बचानेकी चाहत है– अभयदान करनेका भाव है, दूसरा भाव नहीं है, वास्ते करुणाभावका लाभ है जो पीछेसें क्या करेगा? उसका दोष अभयदान देनेवालेकों नहीं लगता है हरएकवस्तुमै भाव बलवान् है गुरुवदन करतेहै वदन करनेकों जाते है उनमैंभी मार्गमै–उठने बैठनमै हिसा होभी जावे, मगर वदनके लाभार्थ करते है उस लिये वो शोचना युक्त नहीं वैसेही दान देनेमें भाव बलवान है पुन भगवतजीनें सब दानोंमें अभयदान बलवत कहा है ये अधिकार सुयगडागजीकी प्रतके पत्र ११८ मै मूल पाठकी अदर है और उसका अर्थ टीकाकारन पत्र ३२० मैं विस्तारसें किया है, उसमै वसतपुरके राजाकी कथाभी है, उनका सार यही है कि–राजाकी रानीने चोरकों गर्दन मारनेसें देहात शिक्षासें छुडाया है और चोर बच गया है इसपरसें शोचो कि जीव बच जाय और पीछे वो जीव हिंसा करै उनका पाप यदि आता होता तो अभयदानकी भगवत प्रशसाही नहीं करते जीवकों कोइ मारता होवै तो बचाना और कोइ भूखसें मरता हो तो उनकों खाना खिलाकर तृप्त करना वो अभयदान है इस लिये शोचना चाहियें, सबब कि स्याद्वाद मार्ग ध्यानमें लेना सूयगडागजीके दूसरे श्रुत स्कध––पचम अध्यायम छपी हुइ प्रतके पत्र ८७२ के आलावेमें कहा है कि–' कोइ खुदग ऐसा कहे कि एकेंद्रियसें लगाकर पचेंद्रिय तकके जीवका विनास होनेका समान पाप है, या एकांत समान पाप नहीं है ऐसा कहवै तो अनाचार (ये दोनू बोल एकातसें बोलनेमें अनाचार कहा है) अब इसके शब्दका कुच्छ दूसरा अर्थ निकलनेका नहीं, मगर प्रभुजीने गणधर महाराजजीका परमार्थ दर्शाया है वही पाठ परपरासें चला आया है उसी आधारसें पूर्व पुरुषोंनेंभी अर्थ भरे हुवे होवै उससें अर्थ पाते है– इसका खुलासा टीकाकारने किया है वहा देखनेसें मालूम हो जायगा. फिर पत्र ८७३ की अदर आलावा है उसमें कहा है कि —

आधाकर्मी आहार करनेसें कर्मसें करके लिप्त हो जाय ऐसा एकांतमें कहना, अगर तो आधाकर्मी आहार करनेसें अलिप्त रहता है ऐसाभी न कहना चाहियें-ये वातें एकांतसें बोले उससें अनाचार कहा जाता है इसपर सोचेनाकि जो भगवतीजीके पाठके आधारसें दानका निषेध है, मगर टीकाकारने पाठके अर्थमें साफ साफ लिखा है और दूसरे स्थानकी गाथा रखदी है कि-अनुकंपा दान जिनेश्वरजीने नहि निषेध किया है-ऐसा स्पष्टार्थ है उसी मुजब पूर्व पुरुषके अभिप्रायसें तो दानका निषेध किसी जगहपर नहीं है. सूयगडांगजीके शिरोलिखित पाठका अर्थभी टीकाकारके खुलासेसें आ जायगा वैसाही अर्थ अपनकोंभी ग्रहण करना चाहियें जो अर्थ, सूयगडांगजीके पाठका मुंहसेंही प्रमाण विना कहा करै तो वो सच्चा क्यों माना जाय? आधार क्या है? और जिस जीवका मिथ्यात्व दूर न हुवा हो वो कल्पित अर्थ मान लेगा; मगर जिस जीवका थोडा थोडा क्षयाउपशम हुवा होगा वो तो महा पुरुषके किये हुवे अर्थ मुजबही प्रमाण करेगा. वास्ते आत्मार्थिकों रीतसर कहना और वो न समझ सके तो कठशोष न करना वही श्रेष्ठ है पुनः वे लोग आचारांगजीमें हिंसों निषेधका पाठ बताते हैं, लेकिन वो पाठ सब मुनिमहाराज सर्वथा हिंसा त्यागीका है. आचारांगजीमेंभी पत्र २२४ मे ( छपी हुइ मतमें ) जो आश्रवके सबब वही संवरके होते हैं. और जो संवरके सबब हैं वही आश्रवके होते हैं इसमें परिणाम विशेषकी मुख्यता दर्शाइ है वैसें हरकिसीमें परिणाम विशेष विचार लेना फिर ठाणांगजीके पत्र ५११ की अदर ( छपी हुइ में ) दशम स्थानांगमें दश प्रकारके दान बतलाये हैं, उसमें अनुकंपादान अभयदान कहा है, और अधर्मदान अलग बतलाया है.

फिर केवल अधर्ममें तुमारे विचार मुजब अनुकंपादान होता तो अधर्मदानमेंही उसका समास होजाता, अलग बतलानेकी फिर जरूरतही क्याथी? परंतु अनुकंपादान और अभयदान, अधर्ममें न होनेसें अलग दर्शाया गया है वास्ते जिस मुजब भगवंत आप खुद दान देते है उसी मुजब श्रावकके अभगद्वार कहे हैं कि श्रावक शक्ति मुवाफिक दान देवै सम्यक्त्वदृष्टिके सडसठ बोल कहे हैं-उसीके भीतर चोथा अनुकंपा लक्षण कहा गया है, द्रव्यसें दुःखीकों दान देकर सुखी करै, और भावस धर्म प्राप्त करवा के धर्मसें सुखी करै. ये लक्षण होनेपरभी क्यों दान नहीं देवै? अवश्य समकित दृष्टिवाला दान देवेही देवै. सुपात्रकों कुपात्र

बुद्धिसें देना वो महान् दोषरूप है और वैसेही कुपात्रकों सुपात्र बुद्धिसें देना वोभी महान् दोष है जिस सबबके लिये देना वो भाव विचार कर देना उसमें दोष नहीं है उपाशकदशांगजीमें सगदाल पुत्रने गोशालेकों दीया है वहां कहा है-तेरे तप सयमसें करके नहीं देता हु, लेकिन वीरप्रभुके गुणग्राम करता है वास्ते देता हु. अब गोशाला मिथ्याद्रष्टी था तोभी प्रभुगुणग्रामका पक्षकारक समझकर दीआ सो लाभही है. फिर वंदित्तु सूत्रकी गाथा २३ मे अतपदके भीतर कहा है कि 'असइपोस च वज्जा' पापीकों पोपन करनेमें अतिचार है, मगर इसका अर्थ किया है कि व्यापारके निमित्त अँसे जीवोंका पोषन करै-वर्च-पैसा कमा लेवे उस बाबतका अतिचार है अनुकपासें करकें पोपन करनेका अतिचार नहीं है. हेमाचार्यजीनेभी इसी मुजब अर्थ किया है. इन सब बेताका साराश इतनाही है कि बहुतसें ग्रथोंमें ये बात है, वास्ते अँसे मनुष्यकी बार्त्ता कमशक्तिवालोंकों नहीं सुनी चाहिये. महान् आचार्य हो गये हैं उनके वचनोपर लक्ष देना जिस्सें आत्माका हित होवे. और शक्त्यानुसार दानभी देना यही उत्तम मार्ग है.

८९ प्रश्न.—अैसे जैनमें बहुतसे मत हैं, क्या उन लोंगोंकों आत्माका डर नहीं होगा?

उत्तर.—कितनेक जीव डर रखनेवाले होंवे, मगर पूर्वकर्मकी प्रेरणासें उलटा अर्थही सच्चा मालूम पडे इस्से विचारे क्या करें? फिर कितनेक लोगोंकी बुद्धिही मद होती है उस्सें जो मतमें पडे है उसी मुजब चलते हैं-या बातें करते हैं-ये सब कर्मकी गति है अपनभी जैनी नाम कहेलाकर जैनमार्ग क्या है उसकाभी चाहिये उतना ज्ञान नहीं मिला लेते हैं फिर ससारकों असार जानते हैं, तदपि उसका त्याग नहीं करते है, वोभी अपने कर्मकीही गति है और तमाम जीव कर्मकेही आधीन हे. वास्ते जीवके उपर द्वेप न रखकर केवल अपने आत्माकी परिणती सुधर जाय वैसा उद्यम करना ज्यों बन सके त्यों ससारकी उपाधी कम करनी. अपनी आजीविका थोडे विकल्पसें चलती होवे, तथापि जियादे धन मिलालेनेकी-खर्च करनेकी लालचके लिये उपाधी करनी वो लायक नहीं है उपाधी ज्यों बने त्यों छोडकर रातदिन ज्ञानाभ्यास करना और उस ज्ञानसें आत्माका स्वरूप देखना दो घडी एकांतमें बैठकर आत्माका

बिचार करना यही श्रेयकर्त्ता है आत्माकी परिणती बिगड बैठे अैसे वादविवादमें व्यर्थ समय न व्यतीत करना, यही हमारी शिक्षा है

९० प्रश्नः—आत्म प्रदेश हिलेहुवे रहनेका अधिकार आचारागजीमें छपी हुइ टीकाके पत्र १०२ में है उसका सबब क्या है ?

उत्तरः—आचारांगजीमें उष्णोदकवत् उदवर्त्तना कररहे हैं ये बात सत्य प्रत्यक्ष समझी जाती है कि शरीरके सब भागोंमें नसें हिल रही है वे पीछी जीव रहित शरीर हो जाय तब कुछभी नहीं हिलती, उस्से समझा जाता है कि आत्म प्रदेशके चलायमानपणेसेंही हिल्ती है. इस मुजब लोकप्रकाशमेंभी अधिकार है

९१ प्रश्नः—मुनी कखामोहनी कर्म बाधे यह अधिकार कहा—किस ग्रन्थमें है ?

उत्तरः—श्री भगवतीजीकी छपी हुइ टीकाके भीतर और बालावोधमेंभी पत्र ७० में है. तेरह प्रकारके अतर कहे है. उस सबबके लिये मुनी शंका करै तो कखामोहनी बाधे, वास्तेजिन वचनोंमें शका नहीं करनी. कखा शब्दसें मिथ्यातमोहिनी कही है, ईस लिये ज्यों बन सके त्यों परमात्माके वचन पर दृढ विश्वास रखना.

९२ प्रश्नः—भुवनपति वगैरः नीचेके देवता देवलोकमें जावें या नहीं ?

उत्तर'—भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके पाने २५६ में चमरेंद्र गया था अैसा अधिकार है, लेकिन उसमें इतना विशेष है कि अरिहतजीका, अरिहतजीकी मूर्तिका या साधुजीका शरण लेकर जाय तो जा सकता है, उस विगर नहीं जा सकता.

९३ प्रश्नः—तामली तापसने साठ हजार वर्षतक तपस्या की वो मुफतमें गइ कहते हैं उसका क्या मायना है ?

उत्तरः—भगवतीजीके पत्र २३२ में तामली तापसका अधिकार है वहां अल्प फल कहा है, मगर कुछभी न मिला अैसा नही कहा है. फिर इशानेंद्र हुआ तोभी अल्प फल कहा है वो मुनीकी अपेक्षासें कहा है; सबब कि अैसी तपस्या समकित युक्त की होती तो बहुतही निर्जरा होती, लेकिन वो न हुइ, उस अपेक्षासें अल्प फल कहा है. ऋद्धि तो बहुतसी पायी

है, फिर स्थानकभी अैसा पाया है कि समकित प्राप्त किया

९४ प्रश्न —तुगीया नगरीके श्रावकका अधिकार कहा हे ?

उत्तर.—भगवतीजीकी प्रतके पत्र १९१ में अधिकार श्रवन प्रमुखके फलका अधिकार है वहां तुगीआ नगरीके श्रावकका स्वरूप है

९५ प्रश्न.—अभवी कहांतक पढ सके ?

उत्तर.—नदीसूत्रकी छपी हुइ प्रतमें पत्र ३०९ में साडे नौ पूर्व तक पढ सके, अैसा कहा है, मगर श्रद्धा न होनेके सबबसें आत्माका कार्य सिद्ध नही होवे

९६ प्रश्न'—श्रावकके व्रत लिये विगर दूसरे फुटकर नियम करनेकी मर्यादा है या नहीं ?

उत्तर.—भगवतीजीकी अदर पत्र ४६१ में अधिकार है वहा कहा है कि मूल गुन पचखानीसें उतरगुन पचखानी असख्याते हैं, मगर तीर्यचभी श्रावकके व्रत लेते है, उस्से असख्यात गुने कहे है. टीकाकारने विशेपतासें कहा है कि सहत, मख्खन, मास, मदिराका नियम करै वोभी उत्तरगुन पचखानी कहा जाता है, इस तरह वहा अधिकार है

९७ प्रश्नः—छहे आरेमें जो जीव होवेंगे उन्होंका कितना आयुष्य ? और वै समकिती या मिथ्यात्वी ?

उत्तर —छहे आरेके जीवोंका आयुष्य १६ सें २० वर्ष तकका कहा है बहुत करके समकित रहित वहा रहेवेंगे वगैर सब अधिकार भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ४७२ में है सो वहासे देख लेना

९८ प्रश्न —पाच इद्रियोंमें कामी इद्रि कौनसी और भोगी कौनसी ?

उत्तर —श्रोत्र, चक्षु ये दो इद्रिय कामी और स्पर्श, रसेंद्री तथा घ्राण ये भोग इद्रियें है, सबब कि ये इद्रिसें भोगनेसें सुख है—इसका सविस्तर अधिकार भगवतीजीकी प्रतके ४८७ पत्रमें है

९९ प्रश्न—श्रावक संथारा करै तब सर्वथा पाचों व्रत अगीकार करै ?

उत्तर —वरुननाग नतुवेने सर्वथा प्राणातिपात प्रमुखका त्याग किया है ये अधिकार भगवतीजीके पत्र ५६० में है, वास्ते कर सके अैसा मालूम होता है

१०० प्रश्न —श्रावक रात्रिपोषह करे तब दिया रख्खे या नहीं?

उत्तरः—श्रावक पोषदमें दिया न रखे, सबब कि श्रावक प्रतिक्रमण करता है तब दो घडीकी सामायिक है, उसमें काउस्सग्ग करता है तबभी आगार रख्खा गया है कि दिया-विजलीकी उजेइ आ जाय तो वस्त्र ओढ लेना तो कायोत्सर्ग भग न होवै, इस लिये आगार है. अब शोचो कि अकस्मात् कोइ दिया वगैर. लगावे तो कपडा ओढ लेना, तब रखा क्यु जाय? यहांपर शका होगा कि उजेइ यानी उजाला उसमें किस वास्ते वस्त्र ओढना? उसका ऐसा समझना कि उजेइ है सो अग्निकायके जीव है, उनका अपना स्पर्श लगनेसें वे जीव विनाश पाते है ये अधिकार समयसुदरजी के प्रश्नमें है फिर महानिसिथ सूत्रजीमें चोथे अध्यायकी अदर पत्र पाचसेंम सुमतिनागीलका अधिकार चला है, उसमेंभी एक मुनिराजने विजलीका प्रकाश हुवा तब वस्त्र न ओढा, उसीसें वहा कहा है कि अग्निकायके जीवोकी विराधना हुइ, उस्सेंभी अग्निकाय सिद्ध होते हैं. फिर भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ५१८ मे अग्नि सुल्गानेहारा महा आरंभी या बुझानेवाला महा आरंभी? वहा आग सुलगानेवाला महा आरंभी कहा है—वगैर' अधिकार चला है, उस पीछे प्रश्न हुवा कि जैसे अचेतन अग्निकाय प्रकाश करता है वैसें अचित्त पुद्गलकी ऐसी प्रभा होवे या नहीं? तब भगवतजीने फुरमाया कि—जब मुनि तेजोलेश्या किसीके पीछे छोडता है तब वे अचित्त पुद्गलका प्रकाश होता है इससेंभी समझा जाता है कि अग्निकी प्रभा सचित्त कही फिर मुनि पक्खी अतिचारमें तथा श्रावक पक्खी अतिचारमेभी उजेइ आलोयसें है पुन' श्राद्धजितकल्पमें उजेइका प्रायश्चित कहा है. बृहत्कल्पमेंभी जहा दिएका उद्योत हो वहा किसी सबबके मारे एक दो रोज रहै; मगर विशेष रहे तो प्रायश्चित लगे ऐसा कहा है. पुनः टीकामें सविस्तर अधिकार है कि अणसण किया हो तो दीपक रखे. ऐसें साधके वास्ते दीपक रखनेकी मर्यादा है, लेकिन सबबके सिवा निषेध है तो फिर पोषधमें श्रावक पढनेके वास्ते रखे वो सो असभव है, सबब कि 'समणोइव सावओ.' ऐसा पाठ है, वास्ते ज्यों रात्रिको साधु दीपक नही रखते त्यों श्रावकभी रात्रीमें

दीपक न रक्खे, असी हमारी समझ है उजेइके वास्ते कपडा ओढनेका अधिकार वृदारवृत्तिमें पत्र २८ के भीतर है, फिर सेनप्रश्नके अदर प्रश्न १८ में पत्र ६४ के अदरभी दीपककी उजेइका प्रश्न है, उसमेंभी काउस्सग्गनिर्युक्तिकी गवाइ है ये कुछ हकीकत देखनेसें दिया रखना वेमुनासीब मालुम होता हे

१०१ प्रश्न.—श्रावक जिनमदिरका द्रव्य व्याजु रख सकता है? और पूजनके कार्यमें उनका व्यय करै तो कुच्छ हर्ज है?

उत्तरः—अभिके वक्तमें श्रावकोंको जिनमदिरके कर्मचारी जबरदस्तीसें व्याजु देते है, मगर श्राद्धविधिमें पत्र १०१ के अदर श्रावकको जेवर रखकरभी धीरधार करनेकी मना फुरमाइ गइ है, सबब कि श्रावक कम व्याजसें लेवै और जियादे व्याज पैदा कर लेवै, वो फायदा देवद्रव्यके अदरसें हासिल किया फिर श्राद्धविधिमें सागर शेठकी कथा है, उसमेंभी फक्त जिनमदिरके मनुष्योंकों पैसेके बदलेमें अनाज दीआ था उसमें एक रुपैकी ८० कागुनी होवै उनमेंसें फक्त १००० कागुनीका लाभ हासिल हुवा था इसमें कितना ससारमें भ्रमण किया? वो कथा जब पढोगे तो वेशक हृदय भेदा जायगा, क्यौं कि उतने लाभकी एवजीमें क्या क्या दुःख उठाने पडे है! वास्ते श्रावकको सकटमें डालनेवाले रुवै देनेवालेही हैं फिर जिस वक्त श्रावक पैसा लेता है उस वक्त तो अच्छी हालत होती है, लेकिन जब मुश्कील हालत हो जाय तब बडी फजीती होती है सबके सब दिन एक समान नहीं रहते है जब दिन पलट जाय और खानेकेभी फाके पडनेका वक्त आ जाय तब शेठीयोंका लेहेना यदि होवै, तो अव्वलमें आपका लेहेना वसूल करले ते है. यदि आपका लेहेना न होवै तोभी आपस एकधर्मी होनेके सबबसें शरमके मारे उसपर जियादे तकाजा नही किया जाता है उससें दूसरेका कर्जह वसूल हो जाता है, मगर जिनमदिरका कर्जह युही रह जाता है. इसमें मदिरका द्रव्य जावै और लेने वालेकों वहुत भवभ्रमण करना पडे देवद्रव्य भक्षणके फल वहुतसें शास्त्रोमें लिखा है उपदेशपदमें हरिभद्रसूरीजीने

कोइ देवद्रव्य खाता हो उसकी सभाल न रक्खे, तो उस श्रा वकके लिये कितने कटुफल वतलाये हैं और खानेवालेके भवभ्रमणका तो पारही नहीं पुन श्रावकको पैसे धीरनेका रिवाज होवे तो खुद शेठियेभी पैसे उठा जाते हैं और अभीके वक्तमें तो इसी तरह होनेसें जगे जगे औं स्वाहा कर जानेके बनाव बनते हुवे मालुम होते हैं. इससे बहुतही देव-द्रव्यका नाश हुवा है, वो सब भाइयोंके जानमेंही है. फिर षष्टीशतककी टीकामें इतने तक कहा है कि देवद्रव्य वढानेके वास्ते बहुत मूल्य देकरके भी मदिरकी चीज लेते हैं ओर खुद वापरते है उस्कों नरकगामी जीव कहे है, वास्ते देवद्रव्यसें तो ज्यों बन शके त्यों दूरही रहना.

फिर जिनपूजन करनेमेंभी सब उपकरण शक्तिवालेकों तो अपने घरसेंही ल्याने का फरमान है आरसिया वगरः पदार्थभी श्रावक खुद अपनी पदरका धन देकें बना लेवै जो जियादे धनवान है वो ऐसी वस्तुएं बना रखवावे साधारन धनपात्र ऐसी चीजें नें बना सके तोभी केसर–चदन–पुष्प वगैरः तो हर्गीज वपरासमें न लेवै. वो चीजें तो घरके पैसोंकीही लेवै, क्यौं कि मदिरके द्रव्यमेंसें ल्याइ हुइ ऐसी चीजें काममें लेनेसें लाभ नहीं होता हे. आत्म प्रबोधमें कथा है कि–‘ एक समकितीकों पीछले जन्ममें देवद्रव्यसें नुकसान हुवा है, उससें ये जन्ममे ऐसा नियम किया है कि में मदिरमें लाये जलसेंभी हाथ न धोउगा ’ फिर श्राद्धविधिमेंभी कथा है कि–एक लक्ष्मीबाइने देवद्रव्य वढानेके लिये बहुतसें उत्सव कियेथे, उसमें मदिरके उपगरण वपरासमें लिये, यदि उसका नकराभी दिया, तौभी कुछ नकरा कम पडनेके सबबसें भोगांतराय बाधा जिस्सें दूसरे जन्ममें जन्म लिया जबसेंही पियरमें शोक पडने लगे, और सादी हुवे पीछे ससरेके घरमे शोक पडने लगे. पीछे मुनि मिले तब पुछा कि–‘महाराज! मेरे जन्म भरसेंही शोक पडताही मालूम होता है उसका सबब क्या?’ पीछे गुरुजीने कहा–पूर्व जन्ममें मदिरके उपगरण कम नकरा देकर वपरासम लियेथे उसका ये फल है’ सोचो कि कम नकरेके लिये ऐसा हुवा तो मुफतमे मदिरकी चीजें घर काममें ल्याकर वपरासमें लेवै तब तो फिर नुकसानीका कहनाही क्या? वास्ते मदिरकी या साधारनकी, ज्ञानद्रव्यकी चीजोंसें बहुत दूर रहना और कोइभी अशमें अपने घर कार्यमें न आवे ऐसा खूब खियाल रखना, ये द्रव्यकी न्यायसें वृद्धि करनेमें

तत्पर रहना, और पूजन सेवनम पदरके पेसेसेंही चित्त प्रफुल्लित रहता है वास्ते सुंदर शुद्ध द्रव्य घरसेंही लेकर वापरना

साकेतपुर नगरमें सागरशेठ नामक श्रावक रहताथा उसकों धर्मी जानकर दूसरे श्रावकोंने मंदिरका द्रव्य सुपरद किया और कहा कि–' इन द्रव्यमेंसें मंदिरके काम करनेवाले शिलवट, सूतनार, मजुदूरकों उनकी मिहनतके पैसे चुकाते रहना ' वो द्रव्य सागरशेठके हाथ आनेसें लोभमें पडा, उससें वो सुतार वगेर कों नकद पैसें न देत उसकी एवजीमें अनाज गुड कपडा वगेर' देने लगा उनमेंसें एक रुपैकी ८० कागुनी होती है इस तरह १००० कागुनी उनने पेदा की और वो पैसास अपने घरमें रख्खी उससें मडा पाप उपार्जन किया और विगर आलोचे मरकर वो समुद्रमें जलमनुष्य हुवा जो जलमनुष्यकी इडगोली होती है वो इदगोली जो मनुष्य पास रखकर समुद्रमेंसें रत्न निकालनेकों जावे तो वो नही डूबता हे उससे समुद्रके उपकंठनिवासि वनियाने सागरशेठके जीव जलमनुष्यकों पकडकर चक्कीके नीचे दबा रख्खा छ महीने बाद चक्कीके नीचे दबाकर मर गया और तीसरी नरककों गया वहां नारकीके दु ख भुक्तकर आयुष्य पूर्ण हुवे बाद पाचसो धनुपके शरीरका मच्छ हुवा वहा मलेच्छोंने पकडकर अंगोपाग काट डाले उससें मरकर चौथी नरकमें गया वहासें निकलकर एक एक भवके अंतरसें पाचवी, छट्ठी, सातवी नरकमें दो दो वक्त जा आया असें नरकके परमाधामीकी वेदना क्षेत्रवदना सहन कर पीछे फिर तीर्यचके भव करके एक हजार कुत्तेके भव भुक्ते, और दूसरेभी एक हजार भव नीचे मुजव लेने पडे

सूवरके, बकरेके, घेटेके, ससेके, हिरनके, सावरके, शियालके, बीलीके, चूहेके, घूसके, छिपकलीके, पटलागोहके, सापके, बिच्छुके, विष्टाकेकीडेके, शंखके, सीपके, जोकके, कीडेके, पतंगीएके, मच्छरके, कछुआके, गदहेके, भेंसके, बेलके, ऊटके, खचरके, घोडेके, और हथ्थीके असें एक एक जातीमें १०००, हजार भव किये फिर पृथिवीकाय, अपकाय, तेउ, वाउ, वनस्पतीकाय वगेर में लाखों भव भ्रमणकर किसी ठोर शस्त्र अस्त्रके प्रहार सहन किये, वडी वडी पीडायें भुक्ति, और बहुत हैरान हुवा बाद देवद्रव्य भक्षणका पाप बहुत क्षय होनेसें वसंतपुर नगरमें कोटीध्वज वसुदत्तशेठकी वसुमतिके कुखमें पुत्रपणेमें उत्पन्न हुवा वो सागरशेठका जीव गर्भमें

आया जबसेंही वसुदेवशेठका द्रव्य नाश होने लगा. जिसदिन जन्म हुवा उसदिन वसुदेव मर गया. पांचवे वर्ष उसकी मा मर गइ. लोगोंने उसका निपुन्निया नाम रख्खा. दरिद्रि रंककी तरहसें वडा हुवा. एक वक्त उसकों बुरी हालतमें उसके मामुने देखा तो वो अपने घर ले गया. उससें उसी रातमें उन निपुन्नियेके पाउके सबवसें चोरोंने घर लूट लिया. वहांसें वो दूसरी जगहपर गया वो जहा जावे वहां उसकों चोर लूट लेवे या आग लगे और आपत्ति पावे. हरकोइ विपत्ति उसकों आ भेटे ऐसी स्थिति देखकर कोइ उसकों खडा नहीं रहने देवें, और लोग निंदे कि ये तो जलती उपाधि है. ऐसी अनेक तरहकी लोगनिंदा होने लगी. वो सुनकर उसका मन उद्वेगतावंत हुवा. उस सबबके मारे वो परदेशकों चला गया. तामलिप्त नगरमें रहने लगा. वहां विनयधरशेठ रहता था उसके घर चाकर बन कर रहा. मगर रहा उसी रोज उस शेठके घरमें आग लगी, उसके लिये उसकों बावले कुत्तेकी तरह हकाल दिया तब पश्चाताप करता-शोचने लगा और पुर्वका किया हुवा निंदनीय कर्मकों निंदने लगा जो जो कर्म स्ववशपणेसें करता है वो कर्म उदय आवे तब परवशपणेसें भुक्तने पडते हैं. ऐसें निंदा करता हुआ वहांसें दूसरी जगहपर गया, और चलता चलता दरियावके किनारेपर पहुचा. उसरोज धनवान नामक शेठ जहाजपर सवार होकर धन उपार्जनार्थ विदेशकों जानेवालाथा, उसीका नौकर बनकर उनके साथ जहाजमें बैठ गया जब जहाज रवने होकर कुशलता पूर्वक दूसरे द्वीपकों पहुच चुका, तब निपुन्निया शोचने लगा कि-यह बडी आश्चर्यकी बात है कि मे जहाजमें सवार हुआ तोभी जहाज न भागा! न डूब गया!! ऐसा शोचता हे उतनेमें तो दुष्ट दैवने दडसें करके जहाजकों भग्न कर डाला. निपुन्निया समुद्रमें डूबा किंतु वहा पाटीआ हाथ आ जानेसें उसके सहारे सहारे किनारे पहुचा और बच गया. वहांर निकलकर नजदीकके गॉवमें वहांके ठाकुरके वहां नौकर बन रहा. तो उस जगे धाड पडी निपुन्नीएको ठाकुरका लडका समझकर चोर-धाडुलोग पकडके ले गये और उसकों अपने रहनेकी जगहपर रख्खा. वहां दूसरे पल्लीपतीने चडाइकर उन धाडपाडुओंकी पल्लीका नाश कर डाला. ऐसा होनेसें धाडपाडुओंने निपुन्नियेकों वहांसे मार हकाल दिया. तो बेलके वृक्ष नीचे जा बैठा और बेलका फल गिरनेसें सिरमें चोट लगी, तो वहांसें भागकर हजारोह जगहपर भटका जहा जावे वहा चोरका, पानीका, आगका, परसैन्यका

और मरनका अैसे अैसे उपद्रव होतेही रहे उसी सबबसें कही ठहरने न पाया सभीने मार हकाल दिया अैसे कष्ट उठाते उठाते एक अटवीमें जा पहुचा. वहां सेलक नामक यक्ष कि जोर बडा प्रभाविक था, उसका उसने एकाग्रचित्तसें आराधन कर अपना समस्त दुःखभी निवेदन किया, और एकीश रोजका छठ्ठा पूरा हुवा तो यक्ष प्रसन्न हो कहेने लगा—अय भोले आदमी! हर सायकाळके वक्त मेरे अगाडी सुवेके हजार चंद्रयुक्त वडा सुशोभित मोर नाच करेगा, उन मोरके निरतर पर खीरते रहेंगे, वे पर लेकर मौज करना.' अैसा सुनकर निपुन्निया हर्षेरत हुआ, और हरहमेशां सुवर्णेपर लेकर मौजमें रहने लगा जब नौसो पर इकट्ठे हुए तब वो शोचने लगा—'इस घोर जगलमें कहा तक पडा रहु? मोरके पर मुट्ठीये भर भरके नोंच लु के बेडा पार हो जाय और चलेजानेकाभी मोका हाथ आ जाय' दुष्टदैवकी प्रेरणासें उसने युही किया, तो मोर उडकर सारे इकट्ठे किये पर लेकर चलता हुवा निपुन्नि या बहुत शोचने लगा—'धि क्कार है मेरे बदनशीबकों, जो मूर्खता करके सतानी की तो मिलाइ हुइ चीजभी चली गइ' सच है कि देवकी आज्ञा उल्लघन करनेसें बेशक निष्फलता प्राप्त होती है निपुन्निया आया था वैसाका वैसाही चला और जगलमें भटकने लगा वहां एक उपकारी मुनीराजका मिलाप हुवा तो नमस्कार कर उसने महाराजके आगे सारा हाल कहकर पिछले जन्मका वृत्तान्त पूछा मुनीमहाराजने कहा—'हजार कांगुनी देवद्रव्यमेंसें खाइ है उसी पापके मारे तूने यह जन्ममें ओर दूसरे जन्मोंमें दुःख पाया है' अैसा कहकर सारा पूर्वके जन्मोंका हाल सुनाया. और पीछे देवद्रव्य भक्षणके पापसें निवृत्त होनेका उपायभी कहा कि—'हजार कागुनी खाइ है, उससे जियादा धन दे देना, देवद्रव्यका रक्षण करना, और देवद्रव्यकी वृद्धि करनी, उससें दुष्टकर्म दूर हो जायगा सब जीवाकों भोगलक्ष्मीसुखका लाभ होवे' अैसा सुनकर उसने नियम लिया कि उससें हजार गुना द्रव्य देवद्रव्यमें दउगा और वस्त्र आहारदिमेंसें जो धन बचेगा वोभी देवद्रव्यमें दे दुगा थोडाभी द्रव्य में पास न रख्खुगा अैसा मुनीराजके पाससें नियम लिया और शुद्ध श्रावकधर्म अगीकार किया. उस पीछे जो जो व्यापार किया उसमें द्रव्य पैदा किया उससें गत जन्ममें हजार कांगुनी खाइथी उसके बदलेमें दश लाख कागुनी देवद्रव्यमें दी. तब देवद्रव्यके ऋणसें मुक्त हुवा और उसीसें बहुत उसने धन पैदा किया पीछे अपना व्याज बढाने लगा और

बहुतसा धन पैदा किया सो खोराकी पोपाकी करतें बचा सो कुल्ल देवद्रव्यमेंही दे दिया. इसमुजब बहुत देवद्रव्यकी वृद्धि की. इन वृद्धि करनेके पुन्यसें तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया. समय हाथ आनेसें दीक्षा अंगीकार करकें गीतारथ हुवे. धर्मदेशनादिकसें, देवभक्तिके अतिशयसें करकें जिनभक्तिका पहिला स्थानक आराध कर तीर्थंकर नामकर्म निकाचित करकें कालधर्म पा सर्वार्थसिद्धिमें पहुचे, वहांसें चवीके महाविदेहक्षेत्रमें तीर्थंकर पदवी भुक्तकर सिद्धि पावेंगे. इस तरहकी कथा श्राद्धविधिमें पत्र १०१ सें १०३ तक है.

अब साधारन द्रव्य और ज्ञानद्रव्यपर कथा कहते हैं. भोगपुर नगरके अंदर धनवा नामक शेठ था वो चोवीश कोडी सोनैयेका मालिक था उसकी धनवती स्त्रीने पुत्रकी जोडीकों जन्म दिया. एकका नाम करमसार और दूसरेका नाम पुन्यसार था. एक वक्त पिताने निमित्तियेसें पूछा कि-'ये पुत्र कैसे निकलगे?' निमित्तिया कहने लगा-कर्मसार जडप्रकृतिवाला निर्बुद्धि होगा, और विपरीत बुद्धिसें करकें घरका सब धन गुमा बैठेगा नया धन पैदा न कर सकेगा. बहुत काल तक बडी दरिद्रतासें चाकरी कर दुःख उठायगा. और पुन्यसारभी है उसीके जैसाही, मगर व्यौपारमें विचक्षण निकलेगा. दोनूकों वृद्धावस्थामें धन पुत्रादिकका सुख मिलेगा.' तदनतर दक्ष पिताने उन दोनूकों चतुर उपाध्यायके पास विद्याध्ययनके लिये रक्खे. पुन्यसार सुखपूर्वक सब विद्या पढा, लेकिन कर्मसार बहुत मिहनत करनेपरभी एक अक्षर नहीं शीख सका. बिलकुल पशुतुल्यही रहा, उससें उपाध्यायनेभी पढाना मोकूफ किया. जब दोनू उमर लायक हुवे तब धनवानोंकी लडकियोंके साथ उसीके पिताने शादी करवादी और दोनूकों बारह बारह कोडी सोनैये बाटकर अलग कर दिये. उस पीछे मात तात दीक्षा लेकर देवलोकवासि हुवे.

अब कर्मसारने सज्जन लोगोंकी मना तरफ बेदरकारी बतलाते हुवे व्यौपार किया, अपनी बुद्धिके मारे धनकी हानी हुइ और थोडेही दिनामें पिताकी दी हुइ दौलत बरबाद कर डाली

पुन्यसारकों जो दौलत मिलीथी उसकों चोर लूट ले गये. दोनू दरिद्री बन बैठे. स्वजनोंनें उन दरिद्रीओंकों छोड दिये औरतेभी भूखे मरती हुइ उनको छोड छोडकर पियरमें जा रही धनके सिवा गुणिजनभी निर्गुणि हो जाता है अपने स-

संबंधीजनभी चाकरके मिसालभी निर्धन संबंधीको नहीं गिनते हैं और धनवतमें थोडीसी चतुराइ होवै वो उसें चतुर कहते हैं. मगर वै दोनू भाइ तो निर्धन होनेसें उन्होंकों निर्बुद्धि निर्भागी कहकर बुलाने लगे, तब उन्होंने लाजकेमारे विदेशका रस्ता पकडा और वहां जाकर अलग अलग रहना दुरुस्त मान लिया. कर्मसार किसी धनवानके वहां और उपायके अभावसें नौकर बन रहा. वो सेठ झूठा बोलनेहारा, अदत्तका लेनेहारा और चाकरोंके पगारभी वख्तसर न देनेहारा होनेसें कर्मसारकों खानेपीनेकी बडी तकलीफ उठानी पडी पुण्यसारने तकलीफ उठाकरकेंभी कुच्छ धन पैदा किया पर छुपा रख्खा तो धूर्तोंने छल करकें, धन उडा लिया इसतरह बहुत जगहपर चाकरी करकें, धातुर्वादीसें खान खोदकर रसायन सिद्ध किये, रोहणाचलपर रत्न लेनेकोंभी गया मंत्रसाधना कर रुद्रवती वगैर जडी लेनेका महा पराक्रमभी ११-१२ दफें करकें धन प्राप्त किया; मगर वो हाथ न रहा. कर्मसारकोंभी धन मिलकर फिर चला गया दैव विपरीत होनेसें मिहनत व्यर्थ जाती है. उस पीछे दोनू भाइ उदास-निरास हो जहाजपर स्वारी कर रत्नद्वीपमें जा पहुचे. दोनूने सांमत्य रत्नद्वीपकी देवी जानकर मरण अंगीकार करकेंभी उन देवीका आराधन करना शुरु किया जब आठ उपवास हुवे तब देवी प्रकट होकर कर्मसारसें कहने लगी-' तेरे भाग्यमें धन नहीं है, वास्ते ये काम छोडदे ' ऐसा सुनकर कर्मसारने आराधना बंध की पुण्यसारने पचीस रोज तक आराधना शुरुही रख्खी उससें देवीने प्रसन्न हो उसकों एक चिंतामणि रत्न बक्षा यो देखकर कर्मसार पश्चाताप करने लगा तब पुण्यसारने कहा-' खेद मत कर. इस रत्नसें तेराभी काम फतेह होगा ' ऐसा सुनकेसें कर्मसार खुश हुवा और दोनू भाइ प्रीतिपूर्वक जहाजपर स्वार हुवे पूर्णीमाकी रात्री होनेसें पूर्णचद्र उदय हुवाथा, तब कर्मसार बोला-' भाइ! तेरे पास रत्न है उसका तेज विशेष है या चद्रका? वो अपन देख लेवै. ' ऐसा सुन पुन्यसारनेभी पूर्वकर्मकी प्रेरणासें रत्न निकालकर हाथमें रखल जहाजके किनारेपर बैठ चद्र, चिंतामणीके तेजका मुकाबला करने लगा अभाग्यवशसें रत्न समुद्रमें गिर पडा. मनोरथ निष्फल हुवे. दोनू भाइ जैसी हालतसें विदेश गयेथे वैसीही हालतसें दु ख पाते हुवे अपने वतन जा पहुचे वहां ज्ञानी गुरुका मिलाप हुवा, उन्हीके चरनमें शिर झुकाकर पीछे पूर्वभव वृत्तान्त पूँछने लगे ज्ञानी महाराजने कहा-' चद्रपुर नगरमें जिनदत्त और जिनदास

अैसे दो श्रावक परमअरिहंतजीके भक्त थे. एक वक्त सब श्रावकोंने मिलकर बहुतसा ज्ञानद्रव्य और साधारणद्रव्य उन दोनु श्रावकोंको एक एक द्रव्य समालनेके वास्ते दिया. और वे दोनु अच्छी तरहसें संमाल रखने लगे. जिनदासने अपने लिये पोथी पुस्तक लिखायाना और अपने पास दूसरे द्रव्यका अभाव था जिस्से शोचा कि मेरी पोथी लीखी गइ है वोभी ज्ञानकाही ठिकाना है. अैसा शोचकर ज्ञानद्रव्यमेंमें बारह दाम लेखककों दिये. जिनदत्तने साधारण द्रव्यमेंसें अपने घर बहुतसे प्रयोजनके कार्यनिमित्त दूसरे द्रव्यके अभावसें अपने काममें व्यय कर डाला. यों दोनु श्रावक द्रव्यका विपरीततासें व्यय करनेके सबबसें मर कर पहेली नरकमें गये. नरकमेंसें निकलकर सर्प हुवे. वहासे मरकर दूसरी नरकमें गये. वहासें निकलकर गीधपंखी हुवे. वहासे मरकर तीसरी नरकमें गये. एक एक दो भवके अंतर सातों नरककी सफर की एकेंद्रि, बेरेंद्री, तेरेंद्री, चौरेंद्रि, पंचेंद्री, तीर्यंचके बारह बारह हजार भव करकें वारवार दु:ख भुक्तकर बहुतसे कर्म क्षीण हुवे बाद वा दुष्ट्कर्मके लियेसें उन दोनूकों बारह हजार भव बारह दामकी एवजीमें दु:खपूर्वक भुक्तने पडे. फिर इस भवमें बारह क्रोड सोनेये गुमा दिये. हर वक्त बहुतसी तदबीरसें धन पैदा किया; मगर वो नाश हो गया. दूसरेके घरकी चाकरी कर दु:ख भुक्तना पडा. कर्मसारकें जीवने ज्ञानद्रव्यका भक्षण किया उससे निर्बुद्धि हुवा—बुद्धिभ्रष्ट हुआ और बहुसा दुःख उठाया. पुण्यसारने साधारण द्रव्यके भक्षणसें वेर वेर धन गुमाया.' इस तरह मुनीमहाराजके मुँहसे पूर्वभवका चरित्र सुनकर दोनु भाइने श्रावकधर्म अगीकार किया. और प्रायश्चितके बदलेमें बारह हजार दाम ज्ञानद्रव्यमें और साधारण द्रव्यमें देअेंगे अैसा नियम ग्रहण कर लिया तत्पश्चात् दोनु भाइयोंने पूर्वकर्म क्षय हो जानेसें बहुतसा धन पैदा किया साधारण द्रव्य तथा ज्ञानद्रव्य बारह गुना दिया. और बारह बारह क्रोड सोनैयेके मालिक होकर अच्छे श्रावक हुवे. अच्छी तरहसें ज्ञानद्रव्य और साधारण द्रव्यका रक्षण किया. और इच्छा युक्त ज्ञानद्रव्य, साधारण द्रव्यकी वृद्धि की. श्रावकका धर्म प्रशसनीय पनेसें आराधकर दीक्षा ले मुक्तिमें पहुचे. यह कथा सुनकर ज्ञानद्रव्य, देवद्रव्यकी तरह श्रावककों नहीं कल्पे अैसा खास ध्यानमें रखना. साधारण द्रव्यभी संघका दिया हुवा काम आसक्ता है. आपके हाथसें न ले लेना. संघकोंभी सात क्षेत्रके कार्यमें व्यय करना दुरुस्त है, लेकिन याचकोंको दैना नादुरुस्त है.

ज्ञान सबंधी द्रव्य या कागज वगैरः साधुकों दिया हो उनसें श्रावक अपने काममें न लेवे अपने घरका पुस्तकभी उस द्रव्यमसें न लिखवावे गुरुकी आज्ञा विगर गुरुके लहियेके पाससेंभी न लिखवा लेना चाहियें थोडासा जीनेके खातिर प्रमाणसें अधिक कठोर पाप जानकर विवेकीजनकों थोडासाभी देवद्रव्य किंवा ज्ञानद्रव्य व्यय नहीं करना. वो ज्ञानद्रव्य और साधारणद्रव्य या देवद्रव्य देनेका कहा हो तो देनेमें विलब न करना तुरत देनेसें जियादा लाभ होवे और विलब करनेसें कदाचित् दुष्ट भाग्योदयसें सब धन नाश हो जाय या मरण हो जाय और देना रह जाय तो भला श्रावकभी दुर्गतिकों पावे उसपर कथा कहते है —

महापुर नगरके अदर धनवान् ऋषभदत्त शेठ था, और वो परम अर्हत्का भक्त था वो पर्वके दिन जिनालयमें गया, मगर उस वक्त उसके पास नकद पैसे न थे उस सबबसें उधारसें मदिरका द्रव्य लेकर प्रभुकों चडाया लेकिन वो द्रव्य तुरत वापिस न दे दिया, क्यों कि दूसरे कार्यमें व्यग्रचित्त था उस्सें देना रह गया कितनेक दिन वीत चुके बाद धाडपाडुओंने धाड पाडकर उसका कुछ धन लूट ले उस शेठकों जानसें मार चल दियें. शेठ मर कर उसी नगरमें निर्दय दरिद्री भैंसेवाले वीहीस्तीके वहा भैंसा हुवा वो हमेशां पानीकी पखाले उठाया फिरताथा नदी नीची जमीनमें थी और शहेर वडी उची जमीनम था, उससें उतना ढाल चडकर रातदिन भार उठाया करताथा वीहीस्ती निर्दयतासें चमडेकी साटका मार देताथा वो और भूख प्यासभी सहन करताथा इस तरह रातदिन ऐसा दुःख उठाया करताथा, उम अरसेमें जिनमदिरका कोट नया बनताथा उसमें चुना वगैरःमें पानी डालनेके वास्ते वही भैंसा मारफत पानी लाया जाताथा उस मदिरमें श्रावकलोग पूजा करतेथे, उसें देखकर उन भैंसेकों जातिस्मरण ज्ञान हुवा, उस्सें पिछले जन्मका स्वरूप समझनेमें आया मदिरका द्रव्य देना रह जानेसें मैं भैंसा हुवा हु ऐसा समझमें आनेसें वो भैंसेने वहासें एक कदमभी न उठाया दरम्यान एक ज्ञानी गुरु आ पहुंचे, उन्होंने उन भैंसेका पूर्वजन्म वृत्तान्त जाहिर किया. उस्से उन शेठके पुत्रने एक हजार गुना द्रव्य देवद्रव्यके देनेमें वसूल करवा दिया. भैंसेके मालिककों पैसे देकर भैंसेकों छुडा लिया पीछेसे उन भैंसेने अनशन किया और अनशन आराध कर देवलोकमें देवपना प्राप्त किया और क्रमसें मोक्षमें जायगा यह कथा सुनकर

मदिरके, साधारणके अंदर जो देनेका कहा हों वो तुरत दे देना. मंदिरके उपगरण उजमणेमें या उत्सवादिकमें उपयोगमें ले उसका पूरापूरा भाडा-किराया-नकरा न देनेसें लक्ष्मीवतीकी तरह महा हानि होती है वो कथा इसतरह है कि:—

लक्ष्मीवती बाइ महान् ऋद्धिवत थी और धर्मवतीभी थी वो बाइ देवद्रव्य बढानेके लिये उद्यापनादिक पुण्यकार्यके बहुत आडबर किया करतीथी. लेकिन जो मदिरके उपगरण लेतीथी उसका नकरा कुछ कम देकर उन उपगरणोंका उपयोग करतीथी. और जन्मभर असाही श्रावकधर्म उत्साहपूर्वक आराधन करकें आयु क्षय होनेसें देवलोकमें गइ. मगर हीनबुद्धिसें करकें नकरा कम दियाथा उससें हीनजातीकी देवागना हुइ अनुक्रमसें वहांसे देवायु पूर्ण कर धनवत अपुत्रिये शेठके वहा पुत्रीपणेसें उत्पन्न हुइ. जबसें वो माताके गर्भमें आइ तबसें यानी श्रीमतोत्सवमें परचक्रका भय उत्पन्न हुवा उससें उत्सव बराबर न हो सका फिर जन्मोत्सवादिकके अदरभी राजाकें वहा शोक पडा उससें उसके पिताने भारी भारी आडबर कियाथा सब निष्फल हुवा फिर मणि रत्न सुवर्णादिकके दागीने करवाये, मगर चोरोंका भय बढ जानेसें उनका वो उपभोग न कर सकी पुनः भोजन वस्त्रादिकका उपयोग करनेकाभी वक्त न आ सका, क्यौं कि पूर्वकर्मके सयोगसें शोक आ पडा. इस तरह कोइभी कार्यमें उत्सव पूरा न हो सका. तब उसके पिताने पुत्रीके विवाहके वक्त वडा भारी ठठारा किया, मगर जब लग्नका दिन नजदीक आ पहुचा तब उसकी मा मर गइ, उसीसें लग्नभी उत्साह रहित हुवा. बाद सासरेमें गइ, वहांभी पूर्वकी माफिक नये नये भय शोक उत्पन्न हुवे, उससें सासरेमेंभी मनोवांछित भोगसुख प्राप्त न हुवा. तो वाइने वडी उदासी युक्त सवेग पाकर केवलज्ञानी महाराजसें पूंछा, तबज्ञानी फुरमाये कि–'तूने पिछले जन्ममें उद्यापनके अदर मदिरके लिये हुवे उपगरणोंका नकरा कम दिया और बहुतसा आडबर दिखलाया, उससें ये दुष्ट कर्म भोग अतराय उपार्जन किया.' असा उपदेश सुनकर उन्हने दीक्षा ली और क्रमशः मुक्तिमेहलमे पहुचकर शाश्वतसुख प्राप्त किये इस मुजबकी कथा श्राद्ध विधिके पत्र ११० में है. वास्ते हरएक उपगरण अपने घरके रखने चाहियें, और कदाचित् मदिरके लेने पडे तो उन्होंका पूरापूरा नकरा देकर उपयोगमें लेवै

मदिरमें दीपक कर वो दीपक घरपर लाकर घरके काममें उसका उपयोग न

करना. अगर मंदिरके दीपकसें कागजभी न पढना. रुपैभी न परख लैना. और मंदिरमें धूप कर उस किये हुवे अगारेकोंभी घरपर लाकर उपयोगमें न लैना. उसपर श्राद्धविधिमें कथा नीचे मुजब हैः—

इंद्रपुर नगरमें देवसेन नामक व्यापारी था, उसके वहां धनसेन नामका ऊटवाला चाकर था. उस चाकरके वहांसें हरहमेशां एक सांढनी देवसेनके मकानपर आया करती थी धनसेन बहुतभी मारपीट कर घर पर छोड आता था तौभी वो पीछी आये विगर नहीं रहती थी. सांढनी पर देवसेनका, और देवसेनपर सांढनीका बहुत प्यार मालूम होताथा. दरम्यान कोइ ज्ञानी महाराज आकर समोसरे तो उन्सें देवसेनने सांढनी और आपके बीच प्यार था उसका खुलासा पूँछा ज्ञानीने फ़ुरमाया कि, वो सांढनी तेरी पूर्वभवकी माता है. उनने गतजन्ममें प्रभुके अगाडी दीपक कर पीछे वो दीपक घरकाममें लियाथा, और फिर प्रभुके आगे धूप किये हुवे धूपधानेमेंसें अगारे लेकर घरपर ला चूल्हेमें आग सुलगाइथी. उस कर्मसें सांढनी हुइ है और पूर्वके स्नेह सबबसें तुम दोनूके बीच स्नेहभाव बना रहता है इस मुजब कहकर फिर कहा कि–मंदिरके चंदनसें तिलकभी अपने भालमें न करना और मंदिर तरफसें लाये गये जलसें हाथभी न धोना. देव संबधी शेषभी (प्रसाद) न लैना. देवकी झालरभी 'गुरुके आगे न बजानी चाहियें.' इस तरह श्राद्धविधि पत्र १०८ में लेख है और पत्र ८० में लेख है कि कची पुष्पकली न छेदनी चाहियें माळीभी कची कली नहीं नोच लेता है, तो अपनको कची कली तोडकर चडानी वो कैसें योग्य होय? वास्ते कची कलीयें चडानी उचित नहीं.

१६२ प्रश्न —गृहमंदिरमें नैवेद्य–फल–अक्षत वगैरः रखते है उसका क्या करना?

उत्तर'—गृहमंदिरमें जो चीज भगवानके आगे रख्खी जावै वो बडे मंदिरमें भेजवा देनी चाहियें. फिर नैवेद्य माली वगैर'कों दिया जाता है उसके बदलेमें माली फूल देवे तो दूसरेकों कहकर बडे मंदिरमें चडावै और कह देवें कि ये मेरे पैसेके फूल नहीं है नैवेद्यके बदलेमें आये हैं वही हैं. गृहमंदिरमें अपने घरके पैसेसें भक्ति करनी, ये अधिकार श्राद्धविधिमें पत्र ११२ में है और वहां उसकी विस्तारपूर्वक व्याख्या है.

१०३ प्रश्न—सचित्त, अचित्त, मिश्र क्या क्या समझना?

उत्तरः—श्राद्धविधिके अंदर पत्र ९२ के अंदर नीचे मुजब लेख हैः—

सचित्त वो सब ज़ातीके धान्य, जीरा, अजवायन, सोंफ, सोये, राइ, खस-खस (पोस्तके बीज), सब जातीके फल पत्र, लूण, ख़ारी, राता खारा, सिंधानोंन, खानाके अदरसें निकला हुवा कालानमक, (बनावटी कालानमक अचित्त है.) खारीमीटी, हिरमजी, हरे दतवन है अब मिश्र कहे हैं वो इसमुजव है कि–पानीसें भीगोये हुवे चिने, या गेहुं वगैरः धान्य और चिने, अरहर वगैरःकी दाल पानीमें भीगोइ हुइ हो उससेंभी कुच्छ छोत–छिलका रहजाय उससें मिश्र कहते हैं. भुन डाला गया धान्य, और वोभी रेतीमें भुना हुवा हो तो अचित्त हो जाता है, या तो निमक वगेरे क्षार लगाकर भुनागया हो तो अचित्त हो जाता है, मगर रेती विगर भुनगये चिने वगैरः मिश्र कहा जाय. भुने हुवे तिल, पहोंक, चिनेके फल आगपर रख शेके हुवे, शेकी हुइ फली, व्हालपापडी–बाफ दी हुइ, ये मिश्र, और ककडी वगैरः फ-घेकों हींग वगैरःसें बघारके तैयार किया व्यंजन मिश्र, कच्चे आममें निमक दिया गया हो, मगर जहांतक नरमाश न हुइ हो वहांतक मिश्र हैं. बीज सहित पक गये हुवे फलभी मिश्रकी गिनतीमें हैं. और बीज गुटली अलग हुवे बाद दो घडी पीछे अचित्तमें गिनना होती है. तिलपापडी बनी उसी दिन मिश्रमें गिनी जाती है. माल-वेमें और महाराष्ट्रमें ज्यादा गुड डालकर बनाइ जाती है तो उन देशोमें उसी दिन अचित्त हो जाती है. वृक्षसें तुरंत उखाडकर लिया गया गोंद या नारेलका पानी, आमका रस, शेलडीवगैरः वनस्पातिका रस, घानीमेंसें तुरतका निकालागया तैल, और अलसी, अरडीका तैल, या बीज निकाले हुवे नारेल, शिंगोडे, सुपारी, फल वगैरः और पक्का या बहुत मर्दन किया हुवा, कनी निकालके दुरुस्त किया हुवा जीरा अजवायन वगैरः एक मुहूर्त्त तक मिश्र समझ लैना, पीछे अचित होता है. पानी और कच्चे फल, कच्चे धान्य, कररा नोंन, वगैरः अग्नि पानीके कठीन शस्त्र लगे विगर अचित नहीं होते हैं; क्यों कि भगवतीजीमें कहा है कि–वज्रमय पापाणके खरलमें वज्रके दस्तेसें निमक वगैरःकों इक्कीश दफे पीसें डाले तोभी कितनेक जीवकों शस्त्रका स्पर्शभी नहीं हो सकता है ! वास्ते अग्नि पानीके स्पर्श विदून अचित्त नहीं होता है. अब अचित्त क्या उसका खुलासा करते हैंः—

सो योजन पानीके मार्गद्वारा जहाज–बोटमें आइ हुइ चीज अचित्त हो जाती

है चिरायता, हर्र, छाहारा, छोटी द्राक्ष, वडी द्राक्ष, खजूर, मिरी, पींपर, जायफल, बादाम, अखरोट, नीमजे, जरगो, पिस्ते, कवावचीनी ये अचित्त है फिटकरी जैसा सुफेद सिंधानोंन, सज्जी, भट्टीमें पकाया गया नोंन वगैर बनावटी क्षार, खोदी हुइ मीट्टी, इलायची, लोंग, जायपत्री, सूकी मोथ, कोकन वगैर' पके हुवे केले, उवाले गये शिंघोडे, सोपारी वगैर. ये अचित्त होते हैं और आदि शब्दसें हरताल, मनशिल, पींपर, खजूर, द्राक्ष, हर्र येभी सो सो योजन जलमार्ग वहन किये वाद अचित्त हो जाते है, लेकिन उपयोगमें लेने लायक नहीं होते हैं इस मुजब श्राद्धविधिमें है. फिर दूसरे काल, पत्र ५५ में हैं वो निम्न लेख मुजब हैं.—

सॉवन और भादो मासमें चार दिन मिश्र

काती, मिगशर और पोषमें तीन दिन मिश्र.

अघहन और फागुनमें चार पहेर मिश्र

चेत, वैशाख, जेठ मासमें तीन पहेर मिश्र

इतना काल व्यतीत हुवे वाद अचित्त होते हैं छाना हुवा आटा दो घडी वाद अचित्त होता है छाना हुआ आटाभी वर्ण, गंध, रस वदल देवे तो अभक्ष होता है चातुर्मास [वर्षाकाल] में पंद्रह दिन, और शियालेमें एक महिना आटा रखनेकी मर्यादा है वाद ग्रहण करने लायक नहीं रहता है पक्कान्न वगैर का काल वर्षाकालमें पंदरह दिन, उन्हालेमें वीश दिन, और शियालेमें एक महिना काम लगें, पीछे ग्रहण करना वेमुनासिव है तौभी ये कालके पेस्तर कभी वर्ण-गंध-रस-स्पर्श बदला हुवा मालूम पडे तो ग्रहण करना अयोग्य है दहीं दो दिनके उपरातका न खाना, कच्चा दूध या दहीं या छासके साथ द्विदल खानेसें वेंद्रीय जीव पैदा होते है; वास्ते वो न खाना गइ रातका बचा हुवा भोज्य पदार्थ, गीला हो गया हुवा पदार्थ वगैरः चीज दूसरे दिन खाने लायक नहीं रहै, ऐसा प्रभुका फरमान है ३ तीन दफे उछाला देने तकका उवाला गया पानी वर्षाकालमें तीन पहेर, और उन्हालेमें पाच पहेर तक अचित्त रहवें, पीछे सचित्त होता है वास्ते पीछे पीने योग्य नहीं रहता है. ऐसा श्राद्धविधिमें लेख है

१०४ प्रश्न —वकुश कुशील दो नियंठे-ये कालमें कहे है उसमें कुशील तो भगवतीजीके पचीशवे शतकमें मूल गुनस्थानकके अंदर प्रतिसेवी कहे है जब मूल गुनमें दूषण लगें तब संयम गुणठाणा कैसे रह सके ?

उत्तरः—हरीभद्रसूरी महाराजने आवश्यककी टीका की है उसमें कहा है कि–मूल गुण प्रतिसेवीकों सजलके कपायसें होवे और जो अतिक्रम व्यतीक्रम, अतिचार ये तीनों भागे तक होवे अनाचार नहीं होवे, उससें समझा जाता है कि ओलोयकर पडीकमीकें शुद्ध होवे अनाचार सेवीकों सजलके कपाय शिवा दूसर कपाय वर्त्तते हैं, तब गुणस्थान जावे.

१०५ प्रश्नः—अठारह भाव दिशा किस प्रकार है ?

उत्तरः—आचारांगजीमें पत्र ९ के अंदर [ छपी हुइ प्रतमें ] है. १ समुर्छीम मनुष्य, २ कर्मभूमिके मनुष्य, ३ अकर्मभूमिके मनुष्य, ४ अतरद्वीपके मनुष्य, ५ वेइंद्री, ६ तेरेंद्री, ७ चौरंद्री, ८ पचेंद्री, ९ पृथ्विकाय, १० अपकाय, ११ तेउकाय, १२ वायुकाय, १३ वनस्पतिकाय सो मूलबीज, १४ स्कंध बीज, १५ पर्वबीज, १६ अग्रबीज, १७ देवता और नारकी ये अठारह भावदिशा कही, उसका सबब कि जीव उतनी (१८) जगहमें संसारमें भ्रमण करता ह, वास्ते आप शोचे कि–में कोनसी दिशासें आया ? यानी कोनसी गतिमेंसे आया हु ? आदि शोचे और संसारसे विमुख होवे.

१०६ प्रश्नः—नौ प्रकारसे पुण्य बाधे वो किस ग्रंथमे लेख है.

उत्तरः—ठाणांगजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ५१४ मे नो प्रकारसें पुण्य बांधनेके कहे ह —

१ अन्नपुण्य यानी अन्न देनेसें होता है.

२ पाणपुण्य यानी पानी देनेसें होता है

३ वस्त्रपुण्य यानी वस्त्र देनेसे होता हे

४ शयनपुण्य यानी मुनिकों सथारा देनेसे होवे.

५ लेणपुण्य यानी मुनिकों उतरनेका स्थल देनेसें होवे.

६ मनपुण्य यानी मन शुभ प्रवर्त्तनेसें होवे.

७ वचनपुण्य यानी गुणी पुरुषके गुण गानेसे होवे.

८ कायपुण्य यानी कायासें देवगुरकी भक्ति करनेसें पुण्य बाधा जाता है.

९ नमस्कारपुण्य यानी देवगुरु स्वामी भाइको नमस्कार करनेसे होता है.

इस तरह नौ प्रकार है यहांपर किसीकों शंका हो आयगी कि–'जिन-प्रतिमाकी पूजा कौनसे प्रकारमें आ समा गइ?' उसका खुलासा यह है कि–मनवचन कयासे करके भक्ति करनी उसीमेंही जिनपूजाका समावेश हो गया है, क्यों कि किसी जीवकों दुःख न देना और सर्व जीवोंकों सुख करना या देवगुरु उपकारीकी भक्ति करनी इसमें त्रिकरणकी शुद्धतासें पुण्य बधाता है. इसीसेही जिनपूजा वगैर का समावेश होहि जाता है

१०७ प्रश्नः—व्याख्यान करनेके योग्य कौन है?

उत्तर'—आचारागजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र १९५ में सोलह वचन समझनेवाला हो वही उपदेश देनेके योग्य होता है वे सोलह वचन नीचे मुजब है.—

१ एक वचन.—वृक्ष, घट, पट, नर, सुर, ये सस्कृत है, रुक्खो, घडो, पडो, नरो, सुरो ये प्राकृत है जो जो एक वचन हो सो उसकों ध्यानमें रक्खै.

२ द्वी वचन —वृक्षौ, घटौ, पटौ, सुरौ ये सस्कृतमें है और रुक्खा, घडा, पडा, नरा, सुरा ये प्राकृतमें है–उसको जाने

३ बहु वचन —वृक्षा घटा, पटा, नरा, सुरा ये सस्कृत भाषामें और रुक्खा, घडा, पडा, नरा, सुरा, ये प्राकृतभाषामें है वोभी समझै.

४ स्त्री लिंग शब्द

५ पुरुष लिग शब्द

६ नपुसक लिंग के शब्द

७ अध्यात्म वचन सो अंतरंग वचन

८ उपनीत वचन सो प्रशसाकारी वचन.

९ अपनीत वचन सो परनिंदाके वचन

१० उपनीत अपनीत वचन सो पहेली प्रशसा और पीछे निंदा होवै

११ अपनीत उपनीत वचन सो पहेली निदा और पीछे प्रशसा करनी

१२ अतित वचन सो गुजरे हुवे समयका वचन जैस गतकालमें अनत तीर्थंकर हुयेथे

१३ वर्त्तमान वचन सो चल्ते हुवे समयकी व्याख्या.

१४ अनागत वचन सो भविष्यकाल वचन, जैसे कल अैसा करेंगे-आते कालमें तीर्थंकर होवेंगे.

१५ प्रत्यक्षवचन सो इसने मुझकों कहा है.

१६ परोक्षवचन सो भगवतजी कह गये हैं

यहरूपके सोला वचन समझे वो शुद्ध उपदेश दे सकै ये ज्ञान विगर शुद्ध परुपणा नहीं वन सकती है.

१०८ प्रश्नः—सिद्ध भगवान् कौनसें अनतमें हैं?

उत्तरः—समकितविचार गर्भित महावीरस्वामीके स्तवन [ छपे हुवे दूसरे भागमें पत्र ७४९ ] के अंदर दूसरे शास्त्रकी गाथा रक्खी है, उसमें अभवी चौथे अनतमें, पडवाइ पाचवे अनंतमें और सिद्धादि आठवे अनंतमें कहे हैं. मतातरमें सिद्ध पाचवे अनतमें हैं अैसा कहा है. मगर विज्यानदसूरी महाराजके कहनेमें था कि आठवे अनतमें समझना सुगम पडता है. दिगबरके शास्त्रमेंभी आठवे अनतमें सिद्ध है.

१०९ प्रश्नः—पौषध कब लेना? और उसका काल किस तरह है?

उत्तर.—श्राद्धविधिमें फकत दिनके चार पहेरका समय-काल कहा है. और अहोरात्रिके पौषधका आठ पहरका काल कहा है. पौषध लेनेका विधि पत्र २४९ में बतलाइ है, सो प्रथम पौषध लेकर पीछे राइप्रतिक्रमण पडिलेहन करनी इसतरह है और इसीतरह करनेसेंही चार पहरका काल पूर्ण हो सकता है और मांडा लेवे और मांडा पारे वो बात पाठमें नही हैं, वास्ते सूर्योदयके पेस्तर पौषध लेना वही योग्य है. और पचाशकजीमें पौषध पारकर पूजा कर पीछे पौषध लेनेकी मर्यादा बतलाइ है. मगर वो प्रतिमाधर श्रावकके सबधमें है. सबब कि पडिमाधरकों पीछली पडिमा सहित है. वास्ते वो पडिमा समालनी उसे वो विधि बतलाइ है. पडिमाधर शिवाके श्रावकके वास्ते तो श्राद्धविधिमें कहा है उसी तरहसें है.

११० प्रश्नः—पौषधकी अदर वर्षाकालमें श्रावक जमीनपर सथारा करै या पाटके उपर?

उत्तरः—वर्षाकालमें तो पाट परही सथारा करना कहा है. विचार रत्नाकर ग्रंथ

जो कीर्तिविजयजी महाराजका वनाया हुवा हे उसमें आवश्यककी चूर्णीका पाठ लिखा है वहा काष्ट आसनके आदेश लेनेका कहा है उसी तरह श्राद्धविधिमेंभी कहा है फिर श्रावकके वास्ते पाट पटले कराकर उपाश्रयके अदर श्रावकही कराकर तैयार रक्खे ऐसाभी अधिकार श्राद्धविधिमें है फिर हुडीवाक रके प्रश्नरूप ग्रथ हे उसमें वर्षाकालमें पाट पटले न काममें लेवै उसें पासत्था कहा है

१११ प्रश्न'—साधुजी पुस्तक रक्खें या नहीं ?

उत्तरः—इस कालमें साधुजी पुस्तक रक्खें ये अधिकार तत्त्वार्थके पत्र २८९ में है, उसमें वतलाया है कि दुषमकालमें धारणाकी खामीके लिये आज्ञा की है वास्ते पुस्तक रखनेमें कुछ हरकत नही है, लेकिन शिष्य अच्छे न हो तोभी [ कु शिष्यका ] वो पुस्तक देकर जाना और वो वेच देवै सो योग्य नहीं ये पुस्तक सघने रक्खें लीया है, उससें पुस्तकपर मालिकी सघकी रखनी कि जिस्सें विगाडा न हो सके शिष्यको पढनेके लिये जरुरत हो तो श्रावक उसें देवे, मगर वेच खावे वैसे शिष्य हो तो श्रावक उसे पुस्तक न देवै इस तरह साधुजीको पुस्तकके सबध रखना चाहियें.

११२ प्रश्न'—देवता और देवीके सग काम भोग किस तरह होवै ?

उत्तर —भुवनपति–व्यतर–ज्योतिषि और सुधर्म, इसान देवलोक तकके देवताकों तो मनुष्यकी तरह भोग है और सनत्कुमार, माहेंद्र देवलोकवालोंको मात्र स्पर्श करनेका है ब्रह्म, लातक देवलोकवालोका रुप देखे उतनाही काम है शुक्र, सहस्रारके देवोंकों शब्द सुनेका विषय है आनत, प्राणत, आरण, अच्युत इन चार देवलोकवालोंकों एक दूसरेके मन मिलापका विषय हे दूसरे देवलोकपर स्त्री नहीं है, उससें वहासे दिलमें चाहत करै और स्त्रीभी वैसीही चाहत करे उससें सतोष होवे, सबब कि ज्यौं ज्यौं दूसरे देवलोकसें उपर चडते जाय त्यो त्यौं विषयवासना कमी हो जाती है और वारहवे देवलोकके पीछे नव ग्रैवेयक या पाच अनुत्तर विमानके देवोंकों तो बिल्कुल कामकी इच्छाही नही है यह अधिकार पन्नवणाजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ७७८ मे हे

११३ प्रश्नः—देवता मनुष्यके साथ भोग करे और मूल स्वरूपमें आवे ?

उत्तर.—पन्नवणाजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ६२९ म तेजस शरीरकी अवगाहना अंगुलके असंख्यात भागकी कही है उसका कारण यही है कि पूर्वभव संबंधी मनुष्यकी स्त्रीके उपर गाढ अनुराग हो तो देवता देवलोकसें आकर स्त्रीसंग करता है और भोग करते मरजाय तो उसी स्त्रीके उदरमें तुरत पैदा होवे. इसतरहका अधिकार है इससे समझनेमें आता है कि मूल शरीरसें आ सके तो तेजस शरीरकी अवगाहना अंगुलके असंख्यात भागकी हो और भोगकी बातभी उसीमेंही है

११४ प्रश्नः—चंद्रमा पूर्णिमाके बाद थोडा थोडा ढकाया हुवा चला जाता है और शुक्ल पक्षकी प्रतिपदासें खुलता हुवा चला आता है उसका क्या सबब ?

उत्तरः—जीवाभिगमसूत्रमें ( छपी हुइ प्रतके पत्र ७७० में ) यह अधिकार है और वहां कहा है कि–नित्य राहु और पर्वराहु ऐसें दो प्रकारके राहुके विमान है उसमें नित्यराहु है सो चंद्रके विमानसें नीचे है, और उसकी गति ऐसी है कि वदि १ सें चंद्रविमानके नीचे थोडा थोडा आयेजाता है और चंद्रमा उससें ढकाहुवा चलाजाता है. अमावशके रोज पूर्ण प्रकारसें नीचे आजानेसे चंद्रमा तमाम उसके नीचे ढंकजाता है तो चंद्र मालूमही न हो सकता है. और शुदि प्रतिपदासें हमेशा नित्य राहु दूर हठता चलाजाता है सो पूर्णिमाके दिन बिल्कुल हठजानेसें पूर्ण चंद्र प्रतीत होता है. पर्व राहु कोइ वक्त नीचे आता है तब ग्रहण हुवा कहाजाता है ग्रहणके वक्त भोजन नही करना. ऐसा श्राद्धविधिमें कहा है. वो निमित्त अच्छा नहीं है वास्ते भोजनकी मना की है.

११५ प्रश्नः—आचार्य पंचमहाव्रत रहित होवे तो वो आचार्य कहे जावे या नहीं ?

उत्तरः—पंचमहाव्रत रहित आचार्य होवेही नहीं पंचमहाव्रत रहितकों आचार्य पदवी देनेकी किसी जगह रजा नहीं व्यवहारसूत्रमें मूल पत्र २७ के अंदर ऐसा कहा है कि–जो बहु श्रुत होनेपरभी मृषा बोले, उत्सूत्र बोले, पापकर्म करीकें आजीविका निभावे उसको आचार्यकी, उपाध्यायकी और प्रवर्त्तक स्थिविर–गणि आदिकी पदवी न देनी. जावजीवतक

नहीं दैनी चाहिये–ऐसी मर्यादा है फिर पचमहाव्रत रहितकों साधुभी न कहाजावे तो आचार्य होनेकी बातही कैसी ?

११६ प्रश्न'—ऐसे गुनवत आचार्य न हो तो क्या करना ?

उत्तर'—बहुतसें गुणि पुरूष क्रिया उद्धार कर शुद्ध रीतिसें आप प्रवर्त्तते है. जैसेंकि सर्वदेवसूरिमहाराज चैत्यमार्गी थे उन्होंने क्रिया उद्धार करकें शुद्ध मार्ग प्रवर्त्ताया फिर आनदविमलसूरि महाराजके वस्तमेंभी मार्ग शिथिल पडाथा तो उन्होंने क्रिया उद्धार करके शुद्ध मार्ग चलाया फिर व्यवहारसूत्रमें ऐसाभी कहाहै कि जो आचार्य पदवीके योग्य पुरूष न हो तो गच्छके साधुमेंसें जहातक योग्य आचार्य न प्राप्त हो वहातक उ-सकोंही आचार्य स्थापन कर मार्ग चलाना जब योग्य पुरूष हाथ लगै तब उसकों आचार्य पदवी देवें उस वस्त जो वो पाटधारी साधु न उठे तो उसकों गच्छ बहार कर दैना ऐसा अधिकार व्यवहारसूत्रके पत्र ३१ में है, वास्ते गुणवतकों आचार्य पदवी दैनी अबीभी सवत १९४२ के काती वदि पचमीके रोज मुनिमहाराज श्री आत्मारामजी महाराजकों श्री सिद्धाचलजीके उपर बहुत देशके श्रावक साधुओंने मिल एकमता करकें गुणवंत जानकर उन्होंको सूरिपद दिया गयाथा. ( मेंभी वहा हा-जिर था ) पचीश हजार जैनी इकठे हुवेथे और मुख्य मुख्य शहेरोंके विद्वान् श्रावकवर्गभी हाजिर था उस वस्त आत्मारामजीकों विज्यानद-सूरि महाराज अैसे नामसें आचार्य पदपर नियत किये गयेथे इसतरह लायक पुरुष मिल जावें तो आचार्यपद देकर पीछे साधुमंडल विहार करै–अैसा व्यवहारसूत्रका फरमान है. वास्ते समस्त साधुसमुदायमेंसें जो पुरुष उत्तम–त्यागी, विरागी, ज्ञानवान् हो उन्कों आचार्य बनाकर उन्हके हुकम मुवाफिक चल्ना चाहियें इस पचमकालमें शुद्ध परपरा चल सके वो तो दुष्कर है. श्री महानिशीथसूत्रमें युगप्रधान स्वामी होने-का अधिकार चला है वहाभी कहा है कि युगप्रधानस्वामी शुद्ध मार्ग चलावेंगे–और मेरी आज्ञाका हायमानपणा टाल देंगे फिर युगप्रधान स्वामी निर्वाण पहुचे बाद मेरी आज्ञाका हायमानपणा होयगा. इस मुजब

कहा है वास्ते जिस वख्त जो उत्तम पुरुष विद्यमान हो उन्को आचार्य पदवी देकर मार्ग चलाया रक्खै. क्यौं कि इक्कीश हजार वर्ष तक शासन जयवत रहेवेंगा अैसा मेरा समझना है.

११७ प्रश्नः—एक परमाणमें कितने वर्ण होवे ?

उत्तरः—एक परमाणुमें एक वर्ण, एक गध, एक रस और दो स्पर्श होते हैं. अैसा कथन अनुयोगद्वारसूत्रकी छपी हुई प्रतके पत्र २७० में है. पर्यायके पलटनेसें पाच वर्णका होता है; क्यौं कि सत्ताके विषे पांच वर्ण, दो गध, पाच रस, और आठ स्पर्श रहे हैं. ये द्वादशनायरनयचक्रमे कहा है. वास्ते सत्तामें होवे उससें पुनरावृत्तिमें पाचों वर्णमेंसें एक वर्ण, एक गध, एक रस और दो स्पर्श होवै सो पर्यायके पलटनेसें होते हैं.

११८ प्रश्नः—गौतमपडघा तप करते हैं और चदनबालाका अठम करते हैं और जतीजीकों व्होंराते है सो क्या करना ?

उत्तरः—गच्छाचार पयन्नाके बालावबोधमें कुगच्छके लक्षनमें कहा है कि विस्तारनेके लिये लोगोंके पाससें इसतरहके तप करवाकर पैसा लेते हैं सो कुगच्छ है.

११९ प्रश्न.—एक स्थितिस्थानकर्में अध्यवसाय स्थानक कितने होवे ?

उत्तरः—कम्मपयडीमें ५२ गाथेकी टीकामें असख्यात अध्यवसाय कहे हुवे हैं—तीव्र–तीव्रतर–मद–मदतर आदि होवे.

१२० प्रश्नः—जो गतिका आयुष बाधा हो वो कायम रहेवे कि फार फार हो सकै ?

उत्तरः—भगवतीजीकी टीकामें अपवर्त्तनका अधिकार चला है वहां कहा है कि सातवी नरकका आयु बाधा है, मगर अध्यवसायके फेरफारसें छठ नरक कमी जास्ती हो सकती है जैसे कृष्णमहाराज–वासुदेवने सातवी नरकका आयु बांधाथा, वो अठारह हजार मुनिके पद वदनसें तीसरी नरकका हो गया. इसी तरह चारों गतिमें फेरफार होवै; मगर इतना विशेष है कि देवलोकका बदलकर मनुष्यका न होसके, और नरकका बदलकर दूसरी गतिकाभी न होसके जो गतिहो उसीमेंही फेरफार हो सकता है.

१२१ प्रश्नः—वर्त्तमानकालमें आयुष कितना होवे ?

उत्तर —जंबुद्वीप पन्नतिमें तो मुख्य वृत्तिसें १२० वर्षका कहाहै और बहुतसे जीवोंका उतनाही आयु होता है और नजरभी आताहै. क्वचित इस मर्यादासें विशेष आयुभी सुननेमें आता है ते इस उदयके यत्रमें पहेले उदयमें अंतिम युगप्रधान स्वामीका १२८ वर्षका आयु कहा है. उस्से मालूम होताहै कि किसि किसि पुरुषका आयु १२० सेंभी विशेष वर्षका होता है यह बात शतावधानी शा. रायचंद रवजीभाइए भद्रबाहु संहिता देखीथी उसमें उन्होंके कथनसें ऐसा था कि धन लग्नमें जिसका जन्म हो और उसमें चोथे मिनराशिका गुरू हो, ग्यारहवेमें तुलका शनि हो शुक्र हो और वो अपने योग्य अंशोंसे करके बलवान् हो, और आठवेमें कोइ ग्रह न हो, शनी और शुक्रकी दशामें जन्म हो तो २१० वर्षका उस जन्मकुंडलीवालेका आयु होवे इस्से साबित होता है कि कोइ जीवका विशेष आयुभी होता है और शास्त्रभी साक्षी देते है फिर आवश्यककी बाइस हजारी टीकामें आर्यरक्षितसूरि महाराजने इंद्रका हाथ देखा, उसमें दोसो तीनसो वर्षतकका हाल देखकर—कहकर कहा कि 'यह तो इंद्र है' वास्ते विशेष आयु हो तो कुछ विरुद्ध नहीं है परमात्माके वचन कितनेक बहुत जीव आश्रित हैं कितनेक जीव अपेक्षित हैं वो गुरु परंपरासें परंपरागत जाननेवाले पुरुष जानते है. सो वर्त्तमानकालमें परंपराका यथार्थ ज्ञान नहीं रहा है आत्मार्थी पुरूषकों परंपरागत ज्ञान जाननेवाले गुरूका योग नहीं मिलता है शास्त्रमें जो टीकाकारोंने ज्ञान दर्शायाहो वही जान सकते हैं दूसरा क्या इलाज है ? ये पंचमकालका प्रभाव है. वास्ते दो शास्त्रमें भिन्न भिन्न अधिकार देखकर श्रद्धाभ्रष्ट न होजाना उन दोनुके आशय खोजनेकी मिहनत करनी योग्य है यों करनेसें किसी शास्त्रके अंदरसें या किसी पंडित द्वारा खुलासा मिल जायगा

१२२ प्रश्न —शुद्ध अशुद्ध क्षायक समकितके भेद किस ग्रंथमें किस जगह बतलाये है ?

उत्तर —तत्वार्थकी टीकामें पत्र २० के अंदर या नवपद प्रकरणकी टीकामें केवल ज्ञानी महाराजका शुद्ध क्षायक समकित कहा है, और छद्मस्थका—श्रेणिकादिकका अशुद्ध कहा है

१२३ प्रश्नः—चार अनुयोग है उन्में निश्चय कौनसा और व्यवहार कौनसा ?

उत्तरः—आगमसार और नयचक्र तथा द्रव्यगुणपर्यायके रासमें चरणकरण अनुयोग, गणितानुयोग, धर्मकथा अनुयोग ये तीन व्यवहारमें कहे है. और फकत द्रव्यानुयोग सो निश्चयमें कहा है और आचारागजीकी शिलांगाचार्यकृत टीकामें तो चरणकरण अनुयोगकों निश्चयमें कहा है. और दूसरे तीन योग व्यवहारमें गिने हैं. अब इन दोनुकी मतलब अपेक्षित समझी जा सकती है. आचारांगजीका कहना है कि द्रव्यानुयोगसें स्वपरका ज्ञान हुवा, मगर परका त्यागना वो चरणकरण अनुयोगसें है वो परप्रवृत्ति छाड देवै तभीही आत्म प्रवृत्ति होवै, और वही आत्मधर्म है वास्ते ये सिद्ध निश्चय हैं. फिर आगमसार वगैरःका कथन है कि द्रव्यानुयोगका जानपना नहीं किया है और द्रव्य चारित्र पालता है, तो वो स्वपरका ज्ञान नहीं उस्सें आत्मा निर्मल क्यों कर होगा ? वास्ते द्रव्यानुयोगका ज्ञान होनेसें स्वपरका धर्म जान सकता है उसीसें वो निश्चय है, ऐसा अपेक्षासें है. बाकी वस्तुपनेसें तो अंध पंगू अलग अलग काम करनेकी इच्छा करे वो सफल नहीं हो सकै जैसें कि पगू आंखसें देखता है कि आग लगती है; मगर पॉव नहीं उससें वो चल सकता नहीं उसलिये वोभी आगमें जलबलके खाक हो जाता है. और अंधा आग लगी देख नहीं सकता है उससें उसके पॉव तो है मगर चलनेका उसके दिलमें नहीं आसकता उसीसें वोभी जलबलके भस्म हो जाता है, वैसे अकेला ज्ञानवाला पगू जैसा है जैसें पगू, अंधकों कहेवै कि आग लगी है वास्ते तु मुझे यहासें उठा ले तो मै तुझे भागनेका रस्ता बताउं कि जिस्सें अपन दोनू बच जावै. ऐसा करै तो दोनू बचै. इसतरह द्रव्यानुयोग और चरणकरण अनुयोग इन दोनुका योग मिल जानेसें शिघ्र मुक्ति फल मिल जाय.

१२४ प्रश्नः—नोकारशीका काल सूर्योदयसें दो घडी ? या हथेलीकी रेखा मालूम हुवे बाद दो घडी ?

उत्तरः—धर्मसंग्रहग्रंथ कि जो मानविजयजीका बनाया हुवा है, और यशविजयजी

उपाध्यायजीने उसका संशोधन किया है उसमें कहा है कि चौविहारवाला शामके वक्त जब पिछला दो घडी दिन होवे तब चौविहार कर लेवे और प्रात कालमें नौकारसी सूर्योदयसें दो घडी बाद करे. कदाचित् ऐसा योग न बनसके तो नौकारसी न करे, लेकिन सूर्यका धूप देखे विगर दतधावन करे तो रात्रिभोजनके नियम भग होनेका दोष लगे इसपरसें समझ लेनेका है कि सूर्यका धूप मालूम होवे वहांतक तो नौकारसीका काल होताही नहीं, तो फिर सूर्योदयसेंही दो घडी साबित होचुकी. फिर शेन प्रश्नमें पत्र ८६ के अदर प्रश्न ९१ वेमें लेख है कि सूर्योदयसें दो घडी कही है. और उसपर योगशास्त्रकी गवाह दी है. फिर उसी मुजब प्रवचन सारोद्धारकी टीकामें और पचाशकजीकी टीकामें तथा श्राद्धविधिमेंभी सूर्योदयसें दो घडी पूर्ण हुवे बाद नौकारसी व्रत पूर्ण होवे ऐसा अर्थ मालूम होता है; वास्ते नौकारसी करके जल्दी दतवन करना सो दुरस्त नहा.

१२५ प्रश्नः—प्रभुजीको वस्त्र पहनानेका अधिकार शास्त्रमें आता है और नहीं पहनाते हैं उसका क्या सबब है ?

उत्तरः—शेन प्रश्नमें इस विषयका प्रश्न २४ पत्र १७ में है कि जिनबिंबको वस्त्र पहनाना; परतु प्रधान वस्त्र–आंगी प्रमुख आभरणकी तरह उचित करना दुरस्त है, मगर मस्तकपर रखना योग्य नहीं–इस मुजबका खुलासा है. इससें समझाजाता है कि कितनेक वर्षोंसें प्रवृत्ति बध होगइ है, लेकिन आंगी प्रमुखमें वपरास होती है फिर शास्त्रमें किसी आचार्यने बध किये एसा अधिकार मालूम नही होता है

१२६ प्रश्नः—देवताको अवधिज्ञान कहांतकका होवे ?

उत्तर —सौधर्म और इशान देवलोकके देवताओंको नीचा–पहेली रत्नप्रभा नरकतक होता है सनत्कुमार और माहेद्रके देवताओंको दूसरी शर्कप्रभा नरकतक होता हैं ब्रह्म ओर लातकके देवोंको ( नीचा ) तीसरी वालुप्रभा नरकतक होता है शुक्र और सहस्त्रारके देवोंको नीचा–चौथी पकप्रभा नरकतक होता है आणत और प्राणत देवलोकके देवोंको पांचवी धूम-

प्रभातकका अवधिज्ञान होता है आरण और अच्युत देवलोकके देवोंको ६ तमप्रभा नरकतक होता है. और पहेलेसें लेकर छठे ग्रैवेयकके देवोंको- भी धूमप्रभातकका ज्ञान होता है, लेकिन वो बारहमे देवलोकके देवोंसें विशुद्ध विशुद्ध देखै ७-८-९ ग्रैवेयकके देव सातवी तमतमा नरकतक देखें. अनुत्तर विमानके देव भिन्न चौद राजलोक देखें यानी चौद राज- लोकमें कुछ न्यून देखें. वे देव तीर्छो असंख्यात द्वीप समुद्रतक देखे; मगर उचा अपने विमानकी ध्वजा तलक देखे भुवनपति व्यंतरदेवोंमें अर्द्ध सागरोपममें कुछ कम आयुवालेकों तीर्छा संख्यात योजनका ज्ञान होवे. अर्द्ध सागरोपमसें उपरके आयुवालेकों तीर्छा असंख्यात योजनका ज्ञान होवे दस हजार वर्षका आयु होवे उसें पचीस योजनका ज्ञान होय असंख्यात वर्षके आयुवालोंको असंख्यात योजनका तीर्छा ज्ञान होता है. इस मुजब नंदीसूत्रजीकी टीकामें पत्र १७८ ( छपी हुइ प्रतके अंदर ) में और आवश्यकजी प्रतमें कहा है.

१२७ प्रश्नः—तीर्थंकरजी कौनसे आरेमें होवें ? और कौनसे आरेमें सिद्धि वरें ?

उत्तरः—छपीहुइ नंदीसूत्रजीकी प्रतके पत्र २०८ में कहाहै कि ऋषभदेवजी अव- सर्पिणी कालके तीसरे आरेमें तीन वर्ष साढेआठ महीने बाकी थे उस वक्त मोक्ष पधारेथे. और दूसरे सभी तीर्थंकरजी चौथे आरेमें हुवे. अं- तिम प्रभु महावीरस्वामीजी चौथे आरेके तीन वर्ष साढेआठ महीने बाकी थे उस वक्त निर्वाणपद पा चुकेथे. त्योंही आती चौवीसीमें तीसरे आरेके तीन वर्ष साढेआठ महिने व्यतीत हुवे बाद तीर्थंकरजीका जन्म होगा और तीसरे आरेमें तेइस तीर्थंकरजी होवेंगे चौथे आरेमें चौइसवे तीर्थं- करजीका जन्म होगा और निर्वाणभी होगा और दूसरे सामान्य केवळी दूसरे आरेके जन्मे हुवे तीसरे आरेमें केवलज्ञान पावें सो वर्त्तमानकालमें चौथे आरेके जन्मे हुवे पाचवे आरेमें केवलज्ञान पाये यह मर्यादा है.

१२८ प्रश्नः—मनुष्य गर्भजकी संख्या कितनी कही है ? और सामान्य मनुष्यकी कितनी ?

उत्तरः—अनुयोगद्वार सूत्रजीकी टीकाके पत्र ४८८ मे मनुष्य गर्भजकी संख्या छः

वर्गसें जितनी रकम होवै उतनी कही है उस वर्गकी समझ ऐसी है कि एकका वर्ग होता नही, उससे दोका वर्ग चार होवै ये पहिला वर्ग चारका वर्ग सोला होवै ये दूसरा वर्ग. सोलाका वर्ग २५६ होवै ये तीसरा वर्ग २५६ का वर्ग ६५५३६ होवै ये चौथा वर्ग. इसका पाचवा वर्ग करनेसें ४२९४९६७२९६ होवै. ये पांचवा वैका वर्ग करनेसें १८४४६७४४०७३७० ९५५१६१६ होवै ये छट्ठा वर्ग. इसके साथ पांचवे वर्गकी अदरका वर्ग करनेसें ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६ सख्या होवै. इतनी सख्यामें उत्कृष्टपदसें गर्भज मनुष्य कहे है. और उत्कृष्टपदसें समूर्छिम गर्भज एकत्र गिननेसें असख्यात कहे हैं. ये मनुष्य अढाइ द्वीपमें मिलकर होवें

२१९ प्रश्न— अढाइ द्वीप किसतरह कहे है ?

उत्तरः—अपने निवास करते है सो जबूद्वीप है उनकों बीचसें नापो तो लाख योजनका होवै ये गोलाकार है इसके चोगिर्द लवण समुद्र है वो दो लाख योजनका है उसके पीछे धातकी खड नामक द्वीप है वो चार लाख योजनके विस्तारका है उसमें मनुष्य हैं उसके चोगिर्द आठ लाख योजनका कालोदधि समुद्र है उस पीछे सोला लाख योजनका पुष्करावर्त्त द्वीप है—उसमे अर्द्ध विभाग मनुष्यकी वस्तीवाला है इस सबबसें अढाइ द्वीप है अढाइ द्वीपके सिवा मानवकी वस्तीही नहीं, उससें दूसरेकी गिनती लक्षमें लेने योग्य नहीं—आगे असख्यात द्वीप समुद्र मनुष्यकी वस्ती बिगरके है

२२० प्रश्न.—जिन मदिरमें दीपक खुले रक्खेजाते हैं सो योग्य है या नहीं ?

उत्तरः—इकीस प्रकारकी पूजामें सकलचदजी उपाध्यायजीने लालटेनमें दीपक रखनेका कहा है फिर भद्रबाहुकृत पूजाप्रकरणमेंभी कहा है कि दीपक इस तरकीबसें रखना कि प्रभुजीकों गरमी न लगै जैसें अपनकों गरमी लगती है वैसाही समझकर प्रभुजीकों दीपककी गरमी न लगे उस तरह रखकर दीपक पूजा करनी गृहस्थ अपने मकानमेंभी खुले दीपक नहीं रखते है और जिनमदिरमें खुले रक्खै तो अन्यदर्शनीभी कहने लगें कि—

'श्रावकलोग देरके आगे तो दीपक खुल्ला रखते हैं और मकानमें ढके-हुवे रखते है ये क्या ? यहभी लघुताका कारण है फिर पचाशकजीमें कहाहै कि जिनपूजनमें जितनी यतना होवे उतनी करनी–उसमें प्रमाद नहीं करना. इसपरसे किसीके दिलमें आयगा कि क्या बिल्कुल दीपक करनाही नहीं ? पानी पुष्प नहीं चडाना ये समझना भूलभरित है. सबब कि स्थावरकी हिंसाका कुछ श्रावकके त्याग नहीं–त्रसकी हिंसाका त्याग है पुन' प्रमाद करै तो त्रसकी हिंसा होवे. ओर प्रमाद छोडदेवै तो प्रभु भक्तिमें त्रसजीवकी हिसा नहीं होवै. स्थावर बिगर तो भक्तिही नहीं बन सकती फिर श्रावकको अष्टद्रव्यसें भक्ति करनी महा निशिथजीमें और आवश्यकसूत्रजी वगैर.में योग्य कही है, वास्ते विस्तारयुक्त भक्ति करै तो वहुत लाभ उपार्जन करै–जिस्सें प्रमाद छोडकर भक्ति करनी.

१३१ प्रश्नः—मदिरके खात मुहूर्त्त करनेकी जगह देखनेकी रीति जैनोंकी और अन्य दर्शनियोंकी समान है या अलग है ?

उत्तरः—विक्रम राजाके वख्तमें कालीदास पडित हुवाथा उसने ज्योतिर्विदाभरण नामके ज्योतिषशास्त्रका ग्रंथ वनाया है ओर उसकी टीका जैनाचार्यने कि है उसमें जैनकी रीति अलग बतलाइ है. उसी मुजब आरंभसिद्धिनामक जैन ग्रथभी है. पुनः ज्योतिर्विदाभरणमें प्रतिष्ठाके नक्षत्रोंमेंभी जैनोंके नक्षत्र अलग वतलाये है. ( इसपरसें ढुढीए लोगोंकोभी खियाल करना चाहियें कि अन्यदर्शनीभी दो हजार वर्ष करीव पर जैन चैत्य सिद्ध करते है )

१३२ प्रश्नः—सामायिकमें घडी रखते हैं वो आज्ञा है ?

उत्तरः—वृदारवृत्तिमें घडी रखनेकी कही हे और उसमें नीशीथजीकी चूर्णीकी गवाह दी है.

१३३ प्रश्नः—श्रावकको चरवला और मुहपत्ती रखनेकी मर्यादा शास्त्रसमत है ?

उत्तरः—यशविजयजीकृत आवश्यकका बालावबोध है उसमें, और अनुयोगद्वारजीकी छपी हुइ टीकाके पत्र ७८ में जो सम्मती है फिर श्राद्धविधि निश्चय ग्रथमें अचलगच्छकी चर्चामेंभी अन्चीतरहस वो वात स्थापित की है.

१२४ प्रश्न—श्रावककों सूत्र पढनेकी आज्ञा है या नहीं?

उत्तर—श्रावक अथवा साधुकों हरएक चीज गुरुके पाससें पढनी चाहियें अपनें आपसेंही नहीं पढनी. उसके लिये विशेषावश्यकजीमें कहा है कि—सामायिक अध्ययन पढना वोभी गुरुके पाससें पढना नहींके पुस्तक चुरा लेकें पढना, तो आपही आपसें पढनेका—वाचनेका तो मजूरही नहीं होता. गुरुके सिवा सूत्र वाचे तो उसका पूरापूरा आशयभी समझनेमें न आ सकें, तो उत्सूत्र दोष लगें. फिर श्रावककों आवश्यकसूत्रजीके और दशवैकालीकके चारही अध्ययन तक, तथा आवश्यकसूत्र पढनेकी [प्रभुजीनें] आज्ञा दी है पुनः श्रावककों अर्थ ग्रहण करनेहारे कहे है—यानी गुरु अर्थ सुनावें वो सुने इसपरसें श्रावककों सूत्र पढने—वांचनेकी आज्ञा संभवित नहीं है प्रकरण ग्रंथ बहुतसे हैं. उसमें पूर्वाचार्योंने सब रचना लाकर रख दी है वो पढतेभी हैं. यहांपर किसीकों शंका हो आवेगी कि—, आनंदादिक श्रावक क्या पढते होंगे? इस संबंधमें विशेषावश्यकजीमे श्रुतज्ञानके भेद चले हैं उसमें उपांगसूत्रका अधिकार पत्र १७१ में हैं. वहां प्रश्न हुवा है कि उपांगादिककी रचना किस लिये की? उसके उत्तरमें कहा है कि साध्वीजीकों दृष्टिवाद नहीं पढाना—और उस दृष्टिवादके भाव समझे पढे सिवा क्योंकर बोध हो सकै? उस वास्ते साध्वी श्रावकके लिये उपांगादिककी रचना की है इस जगेपर श्रावक शब्द है, मगर उपांगछेद सूत्र वगैर पढानेके वास्ते व्यवहार सूत्रमें मुनीकों कितने कितने वर्षकी दीक्षापर्याय होवे तब पढाने कहे हैं उससें उपांगकीभी श्रावककों आज्ञा नहीं, लेकिन श्रावकपयन्ना पढते होंगे ऐसा मालूम होता है. वर्त्तमान समयमेंभी चउसरणपयन्नादिक श्रावक पढते हैं, एैसी तरह वे लोगभी पढते हुवे ऐसा मालम होता है. यहांपर कोइ सरस मुझकों पूँछेगा कि जब सूत्र पढे विगर तुमने सूत्रकी साक्षीयें दी वो किस तरहसें तुमकों समझनेमें आइ? उसका खुलासा यही है कि बालकबुद्धिके वक्तमें मेरे मनमें ऐसा आयाथा कि अर्थके ग्रहण करनेवाले श्रावक कहे है वास्ते अपनकों मूल सूत्र न पढना, लेकिन अर्थ पढनेमें क्या हरकत है? ऐसा

समझकर सूत्र पढेथे, मगर सूत्रके गहन अर्थ देखकर अब मेरे मनमें आया कि वीतरागजीके आगमकी गहन शैली मलीन आरभी संसारमूर्छित श्रावक क्योंकर समझ सके? कुछका कुछ धारणमें आ जाय तो श्रद्धा भ्रष्ट हो जावै, वास्ते भगवतजीने निशेध किया है वही योग्य है. एक आवश्यक पढें तो उसमें बहुत प्रकारका ज्ञान हो जाय. वास्ते प्रभुजीकी आज्ञा बहारका काम कभी नहीं करना. और मैंने सभा समक्ष तो सूत्र पढकर नही सुनाया है. फकत ग्रथ हो वही पढाकर सुनाता हु और उसके वास्ते शास्त्रमेंभी आज्ञा है. लेकिन विरुद्धता इतनी है कि वो ग्रथ गुरुके पाससें पढकर सुनाने चाहियें; परंतु पचमकालके प्रभावसें वैसे गुरुओंका योग न मिलनेसे युहीं वांचना पडता है वो प्रभुजी स्वीकारें तो सत्य है; सबब कि उद्यम छोडनेसें अज्ञानता दूर नहीं होती उससें न छूटकेसें करना पडता है. जो पुरुष गुरुमुखद्वारा पढकर उपदेश देते हैं उन्होंकों धन्य है! मेराभी वैसा भाग्योदय होगा उस दिन धन्य मानुगा. अबीभी कोइ कोइ उत्तम पुरुषका सयोग प्राप्त होता है तो उनकी समीपमें जो जो धारणा हो सकती है उन्हकों में कल्याणकारी मानता हु और उस बिगर अपने आपहीसें जो पढता हु उसमें प्रभुजीकी आज्ञा विरुद्ध होता होवै तो त्रिविध त्रिविधसें मिथ्या दुष्कृत देता हु. फिर योग शास्त्रकी टीकाके पत्र १०७ में सामायिकके अतिचारमें कहा है और शास्त्रकी गाथा रक्खी है उसमें कहा है कि-न करना उस करतें अविधिसें करना वो श्रेष्ठ है. इस आधारसें गुरुके पास पठन किये बिगर चूपचाप बैठकर प्रमाद कीये करतें तो गुरुमहाराजके समीप पढनेकी इच्छा रखकरें योग न मिले वहांतक प्रमादमें काल न जाय उस वास्ते वाचता हु और उसकों हितकारी मानता हुं.

१३५ प्रश्नः—जैनमें लाखों रुपै दूसरे शुभ मार्गमें व्यय करते हैं वैसे ज्ञानमें व्यय नहीं करते हैं उस्का सबब क्या?

उत्तर'—जैनधर्मका मूल स्वरूप नहीजाना वही ऐसा समझताहै जैनमार्ग जान लिया या जैनधर्मका जानपना होनेका समीप होय या थोडेही भवमें पार जानेका होय उसकों तो अवश्य ज्ञानपरही लक्ष होवै, सबब कि आत्माका केवल ज्ञान ढकागया है सो प्रकट करना, उसका मुख्य साधन

ज्ञान–श्रुतज्ञान है क्यों कि केवलज्ञान पानेके पेस्तर क्षपकश्रेणी माडते हैं उसमें प्रथम श्रुतज्ञानमें चिंतन करते हैं उससें अपूर्वभाव प्रकट होते हैं, और स्वाभाविक ज्ञान होता है, वास्ते ये सब होनेका कारण श्रुतज्ञान है. और वो श्रुतज्ञान ज्ञानावर्णी कर्मके क्षयोपशमसें होता है ज्ञानावर्णी कर्मका क्षयोपशम ज्ञान पढनेसें–पढानेसें–पाठ करनेसें–ज्ञानदानका–पुस्तकका–ज्ञानके उपकरणोंका विनय करनेसें या पुस्तक लिखवानेसें या विद्याशालाऐं खोलनेसें और श्रावकोंको पढानेसें तन मन धनकी जैसी शक्ति हो उस मुजब खुदकों और दूसरोंकों ज्ञानकी वृद्धि होसकें वैसी प्रवर्त्तना करनी, उस्सें ज्ञानावर्णी कर्मका क्षयोपशम होवे और ज्ञान प्रकटे जिसकी धन संबधी ताकत हो तो धन ज्ञानमें व्यय करे जिसकी शरीर संबधी ताकत हो तो शरीरसें ज्ञानकी संभाल रख्खे जितनी जितनी बने उतनी शरीरसें सेवा भक्ति करे. जो जो ज्ञान संबंधीके कामकी मिहनत करनेकी हो सो करे फिर मनकी शक्तिवाले यानी पढेले होवे सो दूसरोंकों पढावे. दृष्टांत युक्तिसें करकें ज्यों समझसके त्यों समझानेका उद्यम करे, मगर स्वार्थही किया न करे ये लक्षण ज्ञान निकट होनेके हैं, वास्ते नजदीकमें ज्ञान होनेवाले तो इस तरहसें वर्त्तन रख्खे यानी ज्ञानके काममें जरुर पैसा व्यय करे. लेकिन जिनकों ज्ञान प्रकट होना दूर है वे जीव तो विचित्र काम करते हैं कितनोंकों तो मैने समझाये है उन्होंने मुझकों जवाब दिया कि शास्त्र तो वहुत हैं, उन्हकों इस दुनियामें पढने –वाचनेवालाभी कौन है ? वहुतभी पुस्तक सड फट पसारीके दुकानकी पुडिया होनेका सस्कार पाते हैं. फिर कोइ कहते है कि हमकों कुछ पढते आता नहीं तो पुस्तकोंकों हम क्या करे ? ऐसे अज्ञानताके जोरसें अनेक तरहके जवाब देते हैं. फिर शासनमें कितनेक कारभारी होते है उनके तावेमें पैसे होते हैं, वो पैसे इकठे कर वढायेजाते हैं, मगर उन पैसेके अंदरसें ज्ञानके काममें खर्चते नहा व्याज उपार्जन कर रकम वढायेजाते हैं. कोइ ज्ञानमें खर्चनेकी प्रेरणा करे तौभी आपकों ज्ञानावर्णी कर्मका उदय है उसके प्रभावसें उत्साहयुक्त विराये पैसेभी ज्ञानमें नहीं खरचते है और

फारण सिवा जीव ज्ञानावर्णी कर्म बाधता है. उस जीवपरभी ज्ञानवानकों तो करुणा ल्यानी चाहिये, मगर द्वेष नही ल्याना, क्योंकि वो जीव क्या करे? कर्मराजा मार्ग देवै नहीं और इस भवमें तो समकित विगर बुद्धिवान गिनाये हैं, लेकिन उसकी भवितव्यता ऐसीही है कि आते भवमें ज्ञान विशेष आच्छादन होजानेका है उर्से उन विचारेकी बुद्धि ऐसी होती है फिर ज्ञानवतोंने ऐसोंकों समझाने चाहिये. मगर प्रायः कितनेक कारभारी धनवान होवै उस्सें, उनको कहनेकों जाय तो उलटा ज्यादे द्वेष प्राप्त होवै. इससें ज्ञानवानकोंभी मौन होकर बैठना पडता है अब पैसेके देनेवाले मनुष्य तो ज्ञानमें खर्चनेकों देते हैं, तथापि वो पैसे न खर्चनेसें उन्हका विश्वास उठजाता है. फिर, एसी खबर पडनेसें, जो पसेके खर्चनेवाले होते हैं वैभी ज्ञानके काममें खर्चते नहीं–और कहते है कि ज्ञानके पैसे हम देते हैं सो गोलकमें गुम होजाते है. ऐसे अनेक कारण, मिलजानेसें ज्ञानमें पैसे खर्चनेके बंध होगये हैं, मगर लाइलाज है. तथापि आत्मार्थीओंकों तो सातों क्षेत्र हैं उनमें छउ क्षेत्रकों पहिचान करानेवाला ज्ञान है वास्ते ज्ञान जैसा कोइभी क्षेत्र नहीं है., मरणके समयभी जीव लरखो रुपै मान मतिष्ठाके मारे शुभ काममें व्यय करते हैं; मगर ज्ञानमें व्यय नहीं करते है, युं आत्मार्थीकों न करना आत्मार्थीयोंकों नो ज्यादे भाग ज्ञानमें व्यय करना, सबबकि दूसरे क्षेत्रमें कितनेक आत्मार्थ और कितनेक मानके खातिरभी खर्चते हैं, उस्से वे काम तो चलतेही रहते हैं, उसमें हरकत नहीं और ये ज्ञानक्षेत्रमें, तो वडी अडचण है कि ज्ञानके पुराने भडार है, उसमेंसें कितनेक भडार ऐसे शेठिये या साधुवोंके अख्त्यारमें हैं कि कोइ कुछ वाचनेकेलिये प्रत मगे तो एक पत्रभी नहीं देते हैं. पुस्तक सडजाते हैं, मगर उस पुस्तकसें किसीका उपकार होनेवाला नहीं. फिर कितनेक भाग्यशालीओंके हाथोंमें भडार हैं तो वो पुस्तक आत्मार्थीओंके उपयोगमें आता है; लेकिन कुछ चीजकी कालस्थिति है, वास्ते पुस्तकोंकोंभी विशेष वक्त होनेके सबबसें उन्हका नाश होनेका सभव है तब जो नये लिखाये जाने होवै तो अगाडी पिछाडी तयार होनेही रहे और ऐसा

न होवे तो अभी जो शास्त्रोंके नाम कायम हैं, लेकिन वो पुस्तक मिलतेही नहीं, या तो कितनेक अपूर्ण पुस्तक हैं, और कितनेक पुस्तकोंकों दीमग लग जानेसें निकम्मे होपडे है अगर जीर्ण होगये हैं ऐसा हुवा है फिर वैसा जास्ती जास्ती हुवा करै तो अखीरमें क्या हाल होय सो आपही शोच लीजीयें फिर ऐसाभी कोइ स्थल नहीं है कि सबी पुस्तक एकही जगह मिलजावे. ऐसी पुस्तकोंकी दशा हुइ है, वास्ते आत्मार्थीओंकों तो ज्यों बनसके त्यों ज्ञानमें खर्चकर सबी पुस्तक एकही जगहसें प्राप्त होय ऐसा करना चाहियें ये काम बडे धनवानोंका है, अगर तो विशेष मनुष्य मिलकर करै, या तो ज्ञानद्रव्य होय उनमेसें करै लेकिन यह विचार जिनकों निकट ज्ञान होगा उनकोंही मालूम होयगा, दूसरोंका तो उधर ध्यान नही नहीं जायगा मुझकों तो मेरे भाग्योदयसें मैं दस वर्षका हुवा जबही सें ज्ञानमें पैसा व्यय करनेकी बुद्धि ऐसी हुइ कि जितने पैसे ज्ञानमें खर्चु उतने दूसरे काममें खर्चनेका चितही न होवे; मगर ऐसी बुद्धि होनेसें मेरे गांवमें कोइ पढानेवालेका योगही नहीं मुनिमहाराजका आगमनभी नहीं और पढेहुवे श्रावक प्रेरणा करनेवालेभी मिले नहीं, तोभी नाम मात्र कुछ जैनधर्मका ज्ञान प्राप्त हुवा, वो सबी फल ज्ञान पर प्रेम होनेकाही है

फिर इग्रेजलोग परदेशी हैं, धर्मभी भिन्न है तोभी इस देशके लोगोंकों फला-हुन्नर शिखलानेके वास्ते हजारों रुपै खर्चते हैं तो उससें उन्ह लोगोंकों कितना क्षयोपशम हुवा है कि अनेक प्रकारकी बिगर देखी हुइ कलाओं ढुंढ निकालकर नइ वस्तु अनेक हाथ हुइ है-होती जाती है और जिसका कृत्य समझमेंभी नही आ सकता है इतनी बुद्धि मिलनेका कारण यही है कि ज्ञानका उत्तेजन करनेमें अत्युत्साह है इसपरसें शोचनेका है कि ससारी ज्ञानके उत्साहसें इतना लाभ मिलता है तो वीतरागके ज्ञानकी वृद्धि करनेसें कितना लाभ होवे ? वास्ते आत्माका हित करनेके लिये, अपने लडकेकों और दूसरेकों हित होय उस वास्ते जैनशास्त्र पढाना. जैनशास्त्र पढनेसें सब काममें बुद्धि बढेगी और पढानेवालेकों लाभ

होगा. फिर पुस्तक विगडते होवें तो उसकी सभाल रखनी. जैनके तमाम शास्त्र अमरपद पावें औसा करना चाहियें. पंजाबसें आत्मारामजी महाराज गुजरातमें आये और शास्त्र थे सो देखे और वो देखकरकें ज्ञान मिलाकर समस्त देशोंका उन्होंनें उपकार किया. यवनके मुल्कमेंभी उन साहबनें जैनधर्म प्रसिद्ध किया और जैनका बहुत मान्य करवाया. उसमें निमित्त कारण शास्त्र थे तो औसा हुवा. न होते तो वैसा न हो सकता. अपनकों पढते-वांचते न आता होवें तो कुछ हर्ज नहीं. पुस्तक होगा तो वाचनेसें बहुतसें पुरुषोंकों लाभ होगा.

११६ प्रश्नः—नातरे-गांधर्वविवाह करनेका रीवाज हिंदुवोंमें न होनेसें स्त्रीए बालहत्या करती हैं तो वैधव्य हुवे पीछे दूसरा पती करनेका रीवाज हो तो अच्छा कि नहीं ?

उत्तरः—दूसरा पती करना सो तदन शास्त्र विरुद्ध है. फिर तुम बालहत्या होती है उसलिये विधवाविवाह शुरु होनेसें वो हत्या रुकजाना मानतेहो; लेकिन मेरे एक शेसनजज्जके साथ गुफतगो हुइथी जब मैंनें पुछाथा कि-'आपके हजूर खूनके मुकदमे आते हैं उसमें स्त्रीओंकी खटपटके खून बाबत जियादे मुकदमे आते है ? या उस सिवाके जियादा आते है ?' उन्होंने जवाब दियाथा कि-'स्त्रीओंकी खटपटके खून सबंधी जियादे मुकदमे आते हैं.' फिर मैंनें दूसरा सवाल किया कि-'जिसकी ज्ञातीमें नातरे होते है उसमें स्त्रीओंकेलिये विशेष खून होते हैं या नातरे बिगरकी ज्ञातीमें विशेष खून होते हैं ?' जवाब मिला कि-'नातरेवाली ज्ञातीमें स्त्रीके सबधी विशेष खून होते हैं.' अब इसपरसें सोचनेका है कि-स्त्रीअं जैसी निर्दय जाति दूसरी नहीं है शास्त्रमें एक कथा वाचीथी जिसमें-एक राजा दशहरेके दिन माताकों नमन करनेकेलिये गयाथा, वहां माताने आशिर्वाद दिया कि 'स्त्री जैसी छाती ( कठोर ) होना.' राजाकों वो वचन नापसंद होनेसे राजाने मातासें पूछा कि-'ऐसी आशीष क्यों दी?' माताने कहा-'स्त्री जैसी कठोर छाती पुरुषकी नहीं होती है उससें ऐसी कठोर छाती होनेका आशिर्वाद दिया-उसका मतलब यही है कि-तु हुकम

कर कि जो अपनी औरतका शिर काटकर ल्यावे उसकों में आधा राज्य दुगा पीछे आशीपका मायना पूरा पूरा मिलजायगा ' राजानें वैसाही किया, मगर किसी पुरुषने अपनी स्त्रीका शिर काटकर हाजिर न किया. दूसरी दफै ढंढेरा फिराया कि-' जो औरत अपने खाविदका शिर काट लावै उसकों आधा राज्य दियाजायगा. ' वो सुनकर वहुतसी स्त्रीयें अपने खाविंदके शिर काटकाटकर लेआइ. राजाके दिलमें खियाल हुवा कि स्त्रीके समान कोइ क्रूर नहीं. इस कथापरसें समझनेका है कि स्त्रीकों नातरेकी छुट्टी दीजावे तो ऐसी क्रूरता अमलमें लेवै. पुरुषकों पाणीग्रहण करनेकी ( दूसरी दफै ) छुट्टी है, तोभी क्रूरता अमलमें नहीं लेवै और स्त्री निर्दयता,तुरत अमलमें लेवै, वास्ते नातरेकी छुट्टी नहीं दी है क्यों कि आपके खाविंदका खून करनेमें या करानेमे अपना लाभ तपासती है कि जन्मभर पहनने-ओढनेका और खानेपीनेका सुख चलाजायगा और वैधव्यपना भुक्तना पडेगा उस्से बने वहांतक खून न करै और नातरेकी छुट्टी होवै तो खाविंद मरजायगा तो में नातरा करलुगी-दूसरा खसम कर बैठुगी-यांनी आपके सौभाग्य सुखमें न्यूनता होनेकी नहीं उसें धणीकों मारडालिनेमें नही डरै-और वडे लोगोंकाभी खून करै फिर वालहत्या तो कमती होती नहीं, क्यों कि अभी नातरे नहीं करते है तोभी वर न मिलनेसें कितनीक ज्ञातीमें कन्यायें वडी उमरतक कुवारीही रहती हैं और नातरे होवै तो उसकी एवजीमें उतनी कन्याका विशेषपणा होवे, वै वडी होवै तव वेदचलनवालीही होवै उस्से गर्भपात करै. मेरे सुननेमें आयाहै कि अभी इग्लॉडमें कुवारी कन्याये वहुत है और वै वालहत्याऐं करती हैं त्यौंही यहापरभी इज्जतदार उच्चकोमके अदर नातरे न होनेसें अच्छा है, नहींतो वाल-हत्या और वडोंके खून ये दोनु जारी रहें, वास्ते पूर्व पुरुषोंने जो रीवाज रख्खा है वोही अच्छा-वेहेतरी है कोइ ऐसा सवाल करेगा कि ब्राह्मणोंमें पेस्तर नातरे होतेथे, तो उस विषयमें समझना कि जैसें अभी कितनेक मनुष्य नातरे-पुनर्लग्नमें फायदा मानते हैं वैसें उसी वख्तमेंभी माननेवाले होंगे उन्होंने वैसा किया होगा और

बालहत्या, जुवानहत्या इन दोनुका शोच करनेवाले सुज्ञ जनोंने यह बात अंगीकार न की उससें वही रीवाज चालु रहा सो अद्यापि चलता है, वो फिरानेमें कुछ फायदा नहीं मगर नुकशान है. पुनः अपन जैनधर्मीओंको तो ज्यों बनसके त्यों विषयवासना कमती हो काममें मुक्त हुवा जाय वैसा करना योग्य है, और वो प्रत्यक्ष देखतेही है कि-जितनी विधवाऐं धर्मसाधन करती है और ससार छोडकर दीक्षा लेती हैं उतनी सौभाग्यवती स्त्रीए नहीं करसकती है. जवराइसें शील-कुलकी मर्यादासें पालन कियाजाय तोभी महा नीशीथजीमें धन्य कृतार्थ कहेगये हैं; वास्ते शील पालनेमें वडा फायदा है-वो नातरेकी छुट मिलनेसें वंध होजाता है. वहुतसी विधवाऐं तो चिंतन करती है कि मेरे जहातक खाविंदका योग था वहातक तो मेरा चित्त विषयसें विरक्त न हो सकताथा, मगर अव आपही आप स्वामी न होनेसें शील पालन किया जायगा ऐसी सुंदर भावनाका चिंतन करती है और आत्माको निर्मल करती हैं वो नजरसें देखतेही है. फिर जिसकी न्यातमें नातरे होते है उनमें ऐसी उत्तम भावना आनेकीही नहीं. और उन्हमेंभी जो विशेष खानदान होती हैं, वो दूसरा घर नहीं करती है वोभी देखते है, वास्ते नातरेमें लाभ दर्शाते है सो वेमुनासीब है

१३७. प्रश्न:—आत्मा निर्विकल्प है कि सविकल्प है ?

उत्तरः—आत्मा निर्विकल्प है. विकल्प करना सो जडकी सोवतसें आत्माका उपयोग विगडनेसें होता है.

१३८ प्रश्न—बारह भावना और चार भावनाका चिंतन उपयोगमें लैना उसमेंभी विकल्प करनेमें आता है ?

उत्तरः—वै विकल्प हैं सो निर्विकल्पदशाको ल्यानेवाले हैं, वै प्रथम अवस्थामें आदरने योग्य हैं जब शुकलध्यानका दूसरा पद ध्यावे उस वक्त अभेदज्ञान होता है, तब विकल्प दूर हो जाते हैं. मगर शुकलध्यानका प्रथम पद ध्यानेके अव्वल श्रुतज्ञानका चिंतन होता है उससें असंग अनुष्ठान रूप यानी कुम्हार जैसें चक्र हिलावे और उससें वो पीछे आपहीआप

योगसें कर्ममय परिणत हो विभावमय पुद्गलकी करणी विषयकषायकी कररहा है अब व्यवहारनयसें कर्मबंधके कारण सेवन करता है, मगर उसमेंसें भवितव्यताके योगसें कछुक स्वाभाविक कर्मसें हलका हुवा और जैसें कोठारमें अनाज कम भरै और ज्यादे निकाला करै तो सहजही कोठारमें अनाज कमती होजावै वैसेंही जीव विशेष कर्म भुक्ते और अकाम निर्जरा करै–उससे नये कर्म थोडे बांधे उससें हलका होवे वीतराग सर्वज्ञ पुरुषपर प्रीति जाग्रत होवे और सत्संग करै सत्संगसें अपने आपका स्वरुप सुने कि निश्चयनयसें तो मेरा आत्मा सर्वज्ञतुल्य है जो ऐसा आत्मा न रहा होवे तो आत्मा कोइ दिन शुद्ध न होवे. आत्मा आच्छादित होता है वो जैसें स्फटिकके नीचे जैसा डाख रखखाजाय वैसे रंगका वो मालूम होता है, मगर वो डांख निकलजावें तो जैसा निर्मल है वैसाही मालूम होवे लेकिन ऐसा डाख एक रुप न हुवा है कि पुन स्फटिकका रुप प्रकटही न होसके उसी तरह आत्माकों ऐसे कर्म नहीं लगे है कि कभी विशुद्धि होवेही नहीं. कर्मके आवरण ज्यौं ज्यौं दूर हठते जाय त्यौं त्यौं विशुद्ध होवे और वो प्रत्यक्ष अनुमान होता है कि जैसें कोइ जीव ज्ञानका विशेष अभ्यास करता है तो विशेष विद्वान होता है तो यदि अभ्याससें आवरण दूर नहीं हठते होवे तो बुद्धिमान क्योंकर होय ? मगर ऐसे आवरण है कि आत्मतत्त्व प्रकट करनेका अभ्यास करै तो आवरण नाश होवे, वास्ते आत्माकी स्वाभाविक दशा कायम है, जाती नहीं रही वो प्रकट करनेकेलिये व्यवहारनयसें गुणस्थानका व्यवहार प्रभुजीने बतलाया है त्यौं करना, और वैसा अभ्यास करनेमें आत्मा शुद्ध होवैगा और निश्चयनयसें अकर्त्ता कहा है वोभी है यदि अकर्त्तापनेका निज स्वरुप न जाने तो शुद्ध करनेकी बुद्धि होवेही नहीं और जो विभाविक करणी है वो तो मेरे कर्त्तापनेसें करने योग्य नहीं ऐसा समझै वास्ते निश्चयनयकी तर्फदारी हृदयमें अच्छी तरहसें रक्खे, मगर निश्चयनयसें आत्माविभावका कर्त्ता है ऐसा जब तलक जीव जाने तब तलक आत्मा शुद्ध करनकी बुद्धि होवैही नहीं जहातक आत्मा पुद्गल भावका समझै वहातक शरीरकों दुःख होवे तो मुझकों दुःख

हुवा है, धन गया तो मेरा धन गया हे, स्वजनका वियोग हुवा तो मेरे सगे मरगये हैं अब क्या करुगा? मेरा घर जातारहा, मेरा वस्त्र बिगड-गया, मुझको मारा, मुझे गालिया देता है, ऐसें परवस्तुमें मेरापना मनमे मानरहा है जो जड पदार्थमें मेरापना मानता है–उसका कर्त्तापना मानता है. मेने सुखी किया–करवाया, मैंने दुःखी किया, ऐसा मानता है उसका त्याग करके निज स्वभावमे रहना निश्चयनयसें स्वभावका कर्त्ता जानकर विभावका कर्त्तापना छोड देना.

१४१ प्रश्नः—आत्मा निर्विकल्प और अकर्त्ता होनेपरभी कर्त्तापनेसें व्रत, पचख्खान, प्रतिक्रमण करें, शास्त्र वांचे और उससें अकर्त्ता निर्विकल्पता होवे वो क्यों घटना हो सके?

उत्तरः—कर्म है सो परवस्तु है. जैसें कोइ मनुष्यको कांटा लगा है, वो कांटा परवस्तु है, फिर नाखुन उतारनेके ऑजारसें कांटा निकालता है वो ओजारभी परवस्तु है, तो परवस्तुसें परवस्तु निकलती है, वैसें आत्माको जो कर्म लगे हैं वो परवस्तु परवस्तुके योगसें निकलजावे और हरएक वस्तु अनुक्रमसें शुद्ध होती है. वस्त्रको मैल लगा है वो परवस्तु है उसको क्षारादिक परवस्तुके योगसें शुद्ध–साफ करे तो शुद्ध होवे. हीरे वगैर. रत्न पदार्थ है वो खानमेंसे निकालेजाते है तब मैले होते हैं, उनको घिस-कर साफ करनेके ओजार लगे तब वो मैल दूर होजाता है और शुद्ध रत्न प्रकट होते हैं. उसमेंभी तमाम मैल पहेला नहीं चलाजाता है, पहेलें तो अल्प अंश जाता हैं, मगर घिसनेका अभ्यास करनेसें क्रमसें करके सब मैल चलाजाता है, लेकिन मैल दूर करनेमें परवस्तुका योग चाहियें, वैसें आत्माभी कर्मसें आच्छादित हुवा है उससें आत्माकी निर्विकल्प दशाभी मालुम नहीं होती, अकर्त्तापनाभी मालूम नहीं होता वो आच्छा-दित हुवेका प्रभाव है. वो ढकन दूर हटानेके वास्ते जिस तरह कपडा धोनेमें पहेले क्षार लगाते है, उससें ज्यादे मैला मालूम होता है, मगर व स्तुपनेसें वो क्षार मैलको निकालनेवाला है, उसतरह व्यवहारकरणी दे-खनेमें तो परभावकी मालूम होती है, किंतु वस्तुपनेसे अंश अंशसें आत्माको

शुद्ध करती है ज्यों ज्यों अंशसें शुद्धता होतीजाती है त्यों त्यों व्यवहा-रकी करणीऐं छूटतीजाती हैं जैसेंकि श्रावक पौषध करता है तब पौषधम पूजा प्रमुख नहीं करता है, मुनीकों पूजा, श्रावककों स्वामीभक्ति ये सबी छूटजाती है इसतरह क्रमसेंकरकें समस्त करणीयें छूटजावै और आत्माका अकर्त्ता गुन निर्विकल्प गुन प्रकट होता है, वास्ते कुछ करणी निर्विकल्प दशा लानेके वास्ते करनी योग्य हैं पेस्तर अशुभ क्रियाका त्याग कर शुभ क्रिया करती है पीछे ज्यों शुद्ध दशा प्रकट होती जाय त्यों शुद्ध क्रियाका त्यागकर अक्रियपद प्रकट होता जाता है

१४२ प्रश्न.—ज्ञानीनें तो पुण्य पाप दोनु त्याग करने योग्य बतलाये हैं और तुम तो एककों छोडकर एककों आदरनेका बतलाते हो वो किस तरह समझना ?

उत्तर—ज्ञानी जीने कहा सो सत्य है. जैसें कोलीकी कोम चोरी करनेका धंदा करती है, उससें सामान्य वचनसें कोलीकी सोबत करनेका त्याग कहा-जाता है, मगर चोरके डरसें रक्षण करनेके वास्ते यदि कोलीकों रक्षक करकें रखलेवै तो अपना रक्षण होता है और रक्षकनें जब चोरकों मार हकाला तब निर्भय हुवे, पीछे चौकीदारकी जरुरत नहीं तब चोर और चौकीदार दोनुका त्याग होवै उसतरह अशुभ प्रवृत्तिकों दूर करनेकेलिये शुभ करणीरुप चौकीदार है वो सब अशुभ प्रवृत्ति दूर हुवे बाद शुभ करणीकाभी त्याग होवै, वास्ते ज्ञानीने दोनुका त्याग कहा है सो सच है सर्व कार्यमें आत्मा अज्ञानपनेसें अनादि कालका कर्त्तापना मानरहा है, और उसीसेंही आत्माके ज्ञानकों आवरण होते जाते हैं जब जीव प्रभुके आगम सुनता है और स्पर्शज्ञानरुप ज्ञान जीवकों परिणमता है तब आत्माकों आत्माका स्वरुप अनुभवगम्य होता है तो जानताहै कि—अहा! मेरा आत्मा अरुपी, अनंतज्ञानमय, सर्व भावका जाननेहारा, निर्विकल्प ज्ञानी है जड भावका जोजो कर्त्तव्य कियाहुवा है, वो मेरा स्वभाव नहीं जब मेरा कर्त्तव्य नहीं तब उनका मैं कर्त्ता बनताहु वोभी अज्ञानता है ये वस्तु अनुकूल प्रतिकूल जिसकों मिले उसमें मै सुख दु'ख मानता हु वोभी

अज्ञान है. मेरा स्वभाव तो समझने देखनेका है वो स्वभावका मैं कर्त्ता हु और वो करने योग्य है ऐसा ज्ञान होता है, वास्ते निश्चयनयसें आत्मा स्वभावका कर्त्ता है. व्यवहारसें विभावका कर्त्ता है. ज्यौं ज्यौं निश्चयगुण प्रकट होता है त्यौं त्यौं अशुद्ध व्यवहार त्याग हुवाजाता है और परभावका कर्त्तापना दूर हुवाजाता है, और जैसें आत्माका स्वरुप है वैसा प्रकट होता है.

१४३ प्रश्नः—तुम जो जो भावना करनेकी कहते हो वो आत्म घरकी है कि परघरकी ?

उत्तरः—जितना व्यवहार वर्त्तता है उतना पुद्गलसें करके वर्त्तना करनेकी है और उसी वास्ते भावना चितनेकी है, वो सब व्यवहार परघरका है यानी पुद्गल मिश्रित है, सबब कि आत्माके स्वाभाविक गुण तो समझने देखनेके है, मगर विचार करना सो आत्माका धर्म नहीं है. जहातक सपूर्ण केवलज्ञान प्रकट नहीं हुवा वहातक पुद्गल करकें सहित विचार है. क्योंकि मति श्रुतज्ञान हैं वो इंद्रियजनित ज्ञान हैं. इद्रियोंका बल है. अववोध होय सो पाच ईद्रि और छट्टा मन उन्होंके संयोगसें ज्ञान होता है. वो ज्ञान आत्मा और परके सयोगसें होता है, वोभी जीवका आत्मा आच्छादित होजानेसें मति श्रुतज्ञानका जितना वोध है उतना नहीं होता है. ज्ञानकी भक्ति-ज्ञानवानकी भक्ति-ज्ञान प्रकट करनेकी अतिशय उत्कंठा और पढाने वचानेके काममें अतिशय अभ्यास, जिस जगह ज्ञान मिलनेका हो, या दूर हो, या नजदीक हो और उसका वक्त सभालना पडे वो सहन करना पडताहो, किंवा जो हुकम फरमावे वो अमलमें लेनापडताहो, वो कुछ हुकम और दुःख सहन करकें-ज्ञान मिलानेमें आलस छोडकरकें रात दिन उद्यम करता है, तब ज्ञानावर्णी कर्म थोडे थोडे ज्यौं ज्यौं क्षय होते जाँय त्यौं त्यौं मति श्रुतज्ञानका बोध वढताजाता है, तब जीव मेरा स्वरूप और पराया यानी जडका स्वरूप पहिचानता है शास्त्रमें जडकी सगति छोडनेके जो जो उपाय वतलाये हैं वो जानता है उससें उसकी विचारणा करता है वो विचारणा ऐसी है कि जिससें आत्मा अपने

स्वरूपकी सन्मुख होताजाता है, और परभावमें चित्त हठता जाता है
जितना परभावसें चित्त हठगया उतना आत्मा शुद्ध होताजाता है. जैसें
कि अपने कुटुंबके मनुष्य सिवाके मनुष्यकों घरमें मुनीम करकें रक्खें तो
उसकों द्रव्य व्यवहारसें तो कमती हुवा लगता है, मगर दूसरी तर्फ शोच
करै तो अपना जो धन है उसका रक्षण करता है और नया व्याज वगैरः
पैदा करकें धन वढादेता है उसी तरह ज्ञान और भावनाओं जो पुद्गलमें
मिलकर करनी सो आत्मस्वरूपसें पररुप देखनेमें व्यवहारसेंही है, मगर वस्तु-
तासें आत्माकों आत्मस्वरूपसें जानै, जडकों जड स्वरूपसें जानै, आत्मा-
का निरावरण करनेका उद्यम कररहा है, विषयकषायके काम कमती
होतेजाते है और पूर्वके कर्म क्षय होतेजाते है ये सब काम परवस्तुसें
होता है वास्ते जहातक केवलज्ञान प्रकट नहीं हुवा वहातक भावनाओं
आदि वहुतही उपकार करती है लेकिन जैसें लडके और मुनीमकों वस्तु-
पनेसें बाप अलग जानता है, वैसेंही वस्तु धर्म पहिचानसें जो ज्ञान आत्म
उपयोगके है वो अवधि, मनपर्यव, केवलज्ञान या मति श्रुतज्ञान इंद्रिय-
जनित है उसकों तो स्वरुपसें जानलेवै, मगर आत्मजनित ज्ञान प्रकट न
हुवा वहांतक ये ज्ञानका अभ्यास छोडदेवै तो उसके आवरण किसतरह
नाश होसके ? ऐसें जिस जिस तरह सर्वज्ञ महाराजने बतलाया है उस
तरह सेवन करकें आत्माका आत्मभाव प्रकट करना. ज्यौं ज्यौं आत्म
विशुद्ध होवै त्यौं त्यौं नीचेकी प्रवृत्ति छोडते हुवे जाना है ओर समभाव
वढातेजाना है जो जो परभावके संयोगसें सुख दु ख अनुकूल प्रतिकूल
शरीरमें होता है उसमें अपना समभाव नही छोडदेता है. कोइ मार मार
जाता है, कोइ पूजन करजाता है, कोइ गालियें देजाता है और कोइ गुण
ग्राम करता है वो सबमें समवृत्ति है ऐसे गुण ज्यौं ज्यौं वढै त्यो त्यौं
समझना कि मैं चडती पायरीपें हु उसस गुणस्थानपर चडाभी समझा-
जाय और ज्यौं ज्यौं गुणस्थानपर चडताजाय, त्यौं त्यौं ज्ञानीने नीचेकी प्र-
वृत्ति छोडदेनेकी बतलाइ है वैसेंही छोडदवै. ऐसे पुरुष तो मर्यादा मुजवही
चलेंगे और वीतरागजीके ज्ञानसें स्वचेतनकों चेतनरुपसे जानेंगे, परपुद्गल-

कों पुद्गलरूप जानेंगे, आत्मा अक्रियपनेसें जानेंगे, और क्रिया पुद्गलके सगसें होती है वोभी जानेंगे. जहांतक आत्माका अक्रिय गुण प्रकट नहीं हुवा, वहांतक नीचेसें ज्यों ज्यों उंचे चडता है और जितना जितना शुद्ध स्वरुप प्रकट होता है, उतनी उतनी क्रिया छोडता जाता है. दशा तो अक्रियपदकी भावता है, स्वधर्म तो जितना आत्मधर्म प्रकट होता है उसमें स्थापन किया है. साधनरूप धर्मकों साधनरूप मानता है. जैसें कोइ मनुष्यके घरमें लाख रूपैकी दौलत है, मगर वो जीव नहीं जानता है उसकों किसी दूसरे पुरुषने उस दौलतके गुणोकी माहेती दी कि तेरे घरमें ये वडी दौलत है, उसकेपर सब फ़ुस–धूल–मिट्टी–पत्थर वगैरःका थर चडगया है उससें वेमालूम है; वास्ते उद्यम कर, उद्यम करनेंसें तेरी सब दौलत तेरे हाथ आवेंगी. अब जिस पुरुषकों माहेतगारी देनेवाले पुरुषकी प्रतीति है उसने तो, वो दौलत तो जमीनमें रही है, उससें और द्रव्य विगर कुछ काम होसकता नहीं और आपके पदरमें पैसा नहीं था, उसलिये कर्जा करकें खर्च किया–मजदूर बुलवाये–खोदनेकी मिहनतकी और अखिर द्रव्य हाथ किया उसीतरह सर्वज्ञ महाराजने आत्मद्रव्यका स्वरूप दर्शाया है उस्सें आत्माका स्वरुप समझलिया; मगर अभी तो जडकी सगतिमें है वास्ते वो स्वरुप मालूम नहीं होता है. उसकों प्रकट करनेमें जिस तरह धन निकालने वालेने कर्जा किया और फतेह मिलाइ, उसी तरह आत्माकों अज्ञान सगतिमेंसें मुक्त करनेके उपाय जो जो ज्ञानीने वतलाये हैं वो अमलमें लेवै तो वेशक आत्मधर्मरुप धन प्रकट होवै पुनः एक पुरुषकों एक दौलतकी माहेती वालेने दौलत वतलाइ; मगर उस पुरुषके वचनकी प्रतीति न की उससें उसकों दौलत हाथ न लगी. एक पुरुषने कहा कि–' दौलत है तोभी में दूसरेकी–पराये मनुष्यकी मदद न लुगा दूसरेका कर्जा कौन करे ? आपही आपसें दौलत निकलेगी तो लुंगा. ' उन दोनु पुरुषोंकों द्रव्यकी प्राप्ती नहीं हुइ. उसीतरह सर्वज्ञके वचनसें श्रद्धा नहीं करते हैं उनकों आत्मधर्मका ज्ञान नहीं होता है आत्मधर्म है ऐसा नाम मात्र जानलिया, मगर उसके साधनकी श्रद्धा सर्वज्ञ-

के वचनसें विपरीत करकें निरयमी हुवे. आत्माकी वातें करनी, लेकिन काम-क्रोध-विषय-कषाय नहीं छोडते है-किंतु विषय कषायकी वृद्धि करते हैं वैसे जीवकों धर्म कहांसें होगा ? कितनेक जीव अकेले व्यवहार मार्गकोंही सत्य मानते है कितनेक जीव अकेले निश्चय मार्गकों सत्य जानते हैं, मगर प्रभुका मार्ग तो निश्चय और व्यवहार सहित है उस्सें स्याद्वादमार्ग कहाजाता है. दूसरे धर्ममें ऐसा स्याद्वाद धर्म नहीं है उसी-सेही मिथ्यात्व कहा है उतनेपरभी जैनधर्ममें रहकर स्याद्वाद मार्गका ज्ञान न हुवा तो आत्माका कार्य कैसें होसकै ? वास्ते ज्यौं बनसकै त्यौं सर्वज्ञजीने दोनु ( निश्चय व्यवहार ) मार्ग कहे हैं उसी मुजब प्रवृत्ति कर-नेसें निकटमें आत्माकी शुद्ध प्रवृत्ति होवै इसलिये अव्वलमें अशुभ प्र-वृत्ति छोडकर शुभ प्रवृत्ति करनी पीछे ज्यौं ज्यौं आत्मा शुद्ध होवै त्यौं त्यौं शुभ क्रिया छूट जावै

४४ प्रश्न.—आत्माकी शुद्ध प्रवृत्ति किस तरह हो सकै ?

उत्तरः—सर्वज्ञजीने आत्माका स्वरूप वतलाया है वो जान सकैः मगर आत्माके अनत गुण हैं वो सब छद्मस्थपनेसें नही जान सकता है कितनेक स-र्वज्ञके मुख्य गुण सिद्धांतसें जान लेवै कि आत्मा अरुपी, अनत ज्ञान, अनत दर्शन, अनत चारित्र, अनत वीर्य, अव्याबाध, अगुरु लघु, अक्षय ये गुण आत्माके हैं इन्सें विपरीत वो जडके गुण हैं रूप, गध, रस और स्पर्श ये चार मुख्य गुण जडके है तीक्ष्ण बुद्धिवालेनें ये दोनु स्वरूप चेतन और जडके जान लिये, उससेंही विचार करता है कि-वर्ण, गध, रस, स्पर्श रहित सो चेतन है, ज्ञानशक्तिवान है उस्से समझे सो चेतन है, तव मैं अभी मेरे गुणमें वर्त्तता हु कि परगुणमें वर्त्तता हु ? उ-सका शोच करै प्रथम यह मेरा शरीर देखनेमें आता है उस्सें रूपी है श्वासोश्वास लेता हु उसका स्पर्श-उष्ण वा शीतल होता है तो वोभी रूपी है शब्द बोलता हु वोभी कानोंमें शब्दके पुद्गल स्पर्श करते हैं वोभी रूपी हैं इस शरीरमें लोही मांस है वोभी रूपी हेः वास्ते ये कुछ शरीर जड है इस लिये मेरा नहीं है. लडकेका स्वरूपभी दिखता है उस्सें

वोभी मेरा नहीं है. स्त्रीभी मेरी नहीं है, ये मकानभी मेरा नहीं है, बैठताहु वोभी मै नही हु, चलताहु वोंभी मै नहीं हुं, आहारके पुद्गलभी रूपी है और मेरा गुण अरूपी है तो वोभी मेरे ग्रहण करने लायक क्यौं हो सकै ? भूख लगी कहनाहु वोभी मै नहीं, मुझकों खट्टा लगा, कषायला लगा, खारा-तीखा लगा, वोभी मेरे करने योग्य नहीं है उसमें जो मोहवंत होताहु-घभडाताहु वो अज्ञानता है, मुझकों सुगध, दुर्गंध आती है, मुझकों ये राग अच्छा मालूम होता है या बुरा मालूम होता है, ये स्पर्श सुकोमळ या कठोर लगता है-ये सब पुद्गलकों होता है; तथापिं मुझकों होता है ऐसा मान लेता हुं वो मेरी अज्ञानता है. मेरा स्वरूप मैंने न जाना, उससें मै मानता हु मुझकों मारता है वो मै नहीं हु. मुझकों गालियें देता है ऐसा मानता हुं सो मेरी अज्ञानता है, मेरा धन चला गया, मै धन पैदा करता हुं, मै कपडे पहनता हु, मैने कपडे ओढे हैं, मैनें बिछाये हैं, मै सोता हु, मै बैठा हुं, ये मै करता हुं, वो अज्ञान है. मै सुखी करता हुं, मै दुःखी करता हु, मै धनवान हु, मै ऋद्धिवंत हुं, मै परिवारवाला हु, मेरा सब कहा मानते हैं, मै सबकों शिक्षा करता हु, मै सबके ऊपर हुकम चलाता हु, मै प्रधान हु, मै राजा हु ऐसें जो जो गर्व करता हु वो मेरी अज्ञानदशाके प्रभावसेंही करता हु. मैने मकान बनवाये, मेरा मकान गिर गया, लेकिन वस्तुतामें वो वस्तुही मेरी नहीं है तोभी मेरी मानकर बैठा हु, वो अज्ञानता है. मैंनें धन दिया, मैंनें धन लिया, मैंनें शास्त्र वाचे, मैंनें पढाये, मैंनें चेले किये, मैंने व्रत दिये, मैंनें गृहस्थ किये, मैंनें समझाये, ये सब विकल्प अज्ञानतासें करताहुं. अज्ञानताके योगसें अहकारदशा प्रकट होनेसें होती है. परवस्तु मेरी नहीं. पर जो पुद्गल है उसकों मैं क्या करु ? और वो अहकारके मदसें करकें जडकर्त्तव्यको मेरा या मै शब्दसें बुलाता हु, मगर बोलना वो मेरा धर्म नहीं है. रोग आनेसें मुझकों बीमारी आइ-दर्द हुआ कहता हुं, लेकिन अरुपी आत्माकों रोग होता है ? नहीं नहीं कभी नहीं होता ! जो रोग होता है वो तो इस उदारिक शरीरकों होता है. वो उदारिक शरीर मेरा

नहीं और मेरा मानालिया उस्सें मुझकों रोग हुवा असा मानता हु सो अज्ञानता है. मुझको जगतजन नमन करते है-सत्कार करते हैं महत्त्वता करते है, मगर जो मेरा नाम है सो तो पुद्गलका है वो पुद्गल सो मै नहीं, तो नमन करते ह, ऐसा मानना सो अज्ञानता है अनेक प्रकारके आभूषण धारण कर मनमें मानता हु कि मैनें दागीने पहने हैं वो पहननेवाला तो शरीर है, मै तो अरुपी हु वो ज्ञान नहीं हुवा उस्सें मै मान रहा हु स्त्रीओंके मुंह देखकर मानता हु कि-अहा! क्या सुदर स्वरूप है? इसके सग कब सोगत करु? कितनीक वख्त योग बनता है तो उस्में आनदित होता हु-ये मेरी कैसी मूढता है? जो शरीर जडपदार्थ है वो मै नहीं फिर स्त्रीओंका शरीर वोभी जड है, इन दोनु जडपदार्थके सयोगमें मेरे क्या आनद करना? उसका कुछ शोच न करतें मेरी मूढता छा रही है वो कैसी धि कारने लायक है? कोइभी परसुखमें लीन होना वो मेरा धर्म कैसें होवे? अहा! असा स्वरूप जानता हु तोभी अनादिके अभ्याससें वो विषयादिकमेंसें मूर्छितपना नहीं जाता है पूर्वसमयमें अनेक महापुरुष हो गये उन्होंनें अपने आत्माकों जडसें मुक्त करकें निज रूपमेंही आनदितपना अगीकार कियाथा अहा! तेरेमें कर्मके आवरण कैसा जोर करते हैं कि वीतरागजीकी वानी स्वपर स्वरूपकी सुन ली तोभी उसकी असर होतीही नहीं? और अब तकभी आत्मा ढकाया जाय असी प्रवृत्ति किये करता हु, मगर अब तो मेरे अरूपी स्वरूपमें रहना वही उत्तम है. जैसें कोइ दीवाना मनुष्य चाहे वैसा बकवाद करे, चेष्टाऐं करे, मगर सच रीतिसें वो नहीं जानता है कि मुझकों क्या करना लाजिम है? उसी तरह मैभी कर्मके सयोगसें मूढ हो मेरे आत्मस्वरूपकों भूल कर जड पुद्गलकी प्रवृत्ति रात दिन दीवानेकी तरह कररहा हु ससारमें अनेक प्रकारके कर्त्तव्य होते हैं, वो सब मेरेही समझके लिये करताहु और जडके कर्त्तव्य करकें अहकारमें मशगुल बन फिरताफिरताहु-अहा! क्या अज्ञानता है? अनेक जीवोंकों अनेक प्रकारके दुःख देताहु धिक्कार है अज्ञान दशाकों!! ये मै जड

सगतिसें क्या कृत्य करताहुं ? स्त्रीओंके महा दुर्गंधमय स्थानक जिसकी विभाविक जीवभी दुगछा करते है ऐसे स्थानकोंको जीव चुंबनादि अनेक चेष्टा करता है ! ये सब कृत्य आत्माके स्वरूपसें भिन्न हैं. व्यापारादिकमें लुचाइ-ठगाइ-चोरी आदि अनेक प्रकारके कृत्य जडकी सोबतसें करताहुं ऐसी जड प्रवृत्ति अनादि कालकी पड रही है, वो मेरे स्वरूपसें भिन्नपना है. और ये नजरके आगे वडी वडी रौनकदार हवेलीयें देखताहु-नइ नइ रचनाकी उसमें कारीगिरी देखकर आनंदित होताहु वो मेरे करने लायक है ? नहीं! नहीं ! ये सब जडसगतका प्रभाव है. मेरे मकानमें क्या उमदा रग कियागया है ? कैसी सुंदर बिछायत या बिछौने बिछाये है ? ऐसी वस्तु देखकर मुझकों जो आनंद होता है वो कैसा आश्चर्य है ! जो वस्तु जड सो मेरा धर्म नहीं, विनाशी है वोभी नहीं शोचताहु, जडकी संगतमेंभी वो चीज स्थिर रहनेकी नहीं, तु उसकों छोडकर जायगा या तो वो तुझकों छोडकर चली जायगी उसकाभी तुझे ज्ञान नहीं होता, और आसक्तता होता है-निज स्वरूपसें भूला पडता है. अब मैंनें मेरे आत्माका स्वरूप जानलिया, वास्ते अब तो उससें मै न्याराहु. ऐसा चोकस होता है तोभी ज्ञानीके कथन मुजब अवतक स्पष्ट ज्ञान नहीं हुवा है-उसलिये अद्यापि पर्यंत उसपरसें विचार बध नहीं पडता है, वास्ते अब मेरे क्या करना, सो चेतन ! तु विचार कर. वीतरागदेवका उपदेश सुना, मेरे आत्माका स्वरूप जानलिया, जडका स्वरूपभी जाना, तोभी जडसें चित्त हठता नहीं, उसके वास्ते भगवनजीने उपाय बताये है वो मेरे करना योग्य है जैसें ये सब विचार होते है, वैसे वोभी विचार होने चाहियें यानी आत्माके स्वाभाविक धर्ममें निश्चयनयसें स्वरूप प्रकट हुवा नहीं वहातक अनुभवसें विचार करना योग्य लगता है. और आत्माका हरहमेशा विचार करना-रोज शास्त्रकाभी अभ्यास करना. जैसें कूपके उपर पत्थर या लकडे गडे-जडे हुवे होते हैं उसके साथ रस्सीका निरंतर घसारा लगनेसें उसमें बडे बडे खड्डे पडजाते हैं, उसी मुवाफिक निरंतर अभ्याससें कर्मकोंभी घसारा लगेगा तो आत्मा निर्मल होवेगा. वास्ते

अहनिश और तमाम उपाधियोंको छोडकर शास्त्रका अभ्यास करु, मगर जहातक ससारकी उपाधि है वहातक एक चित्तसें शास्त्रका अभ्यास ठीक ठीक नहीं होसकता वास्ते ससारको छोडकर सयम लेलु तो ससारी कुटुवकी उपाधि, व्यापारकी उपाधि छुटजाय तो पीछे निर्विघ्नपनेसें ज्ञानाभ्यास होसके लेकिन इत्नी सारी मेरी विभावदशा छुटगइ नहीं कि जिस्सें मे साधुपना पालन करसकु तव मेरा जो श्रावकधर्म जिस तरह वारह व्रतरूप कहा है उसतरह अगीकार करु, उससें जितनी श्रावककी मर्यादा करुगा उतनी उतनी निरुपाधिकता होवेंगी जैसें कि श्रावक सामायिक करुगा उतनी देर शास्त्राभ्ययन करनेमें मेरा ससारी काम हरकत न करेगा सारे दिनका या अहे रात्रिका पौषध करुगा तो सव वक्त ज्ञानाभ्यास वन सकेगा फिर जितनी जितनी चीजें व्रत लेकर त्याग करुगा उन सवचीजकी उपाधियें मेरी छुटजावेगी और जितनी जितनी जड प्रवृत्ति कमती होवेंगी उतनी उतनी निरुपाधिकताका सुख होवेंगा अनेक प्रकारकी विषयवाच्छना होती है वे सव-इच्छा तो रुकती नहीं, मगर जितनी जितनी रुकीजाय उतनी रोककर स्त्रीके विषय, खानपानके विषय, पहननेके विषय और सुगधीके विषय रात दिन मुझको हो रहे है वो सव छोडदु ऐसी विशुद्धि नहीं मालूम होती है, तो जितने जितने छुटजावै उतने छोडकरकें व्रत धारण करु ऐसा शोच करके श्रावकके व्रत लेवै, प्रभुभक्ति करे, प्रभुभक्ति करनेको जाय उतने वख्ततक ससारके कार्य छुट जाय प्रभुके स्हामने वैठकर भावना चितन करै. ( भावनाका स्वरूप इस पुस्तकमें आगे आगया ह उस मुजव करै ) उन भावनासें वहुत विशुद्धि होगी एसा शोच करकें भाव यहापर कितनेक मनुष्योंके दिलमें आवै कि ससारपरसें राग कमती किया और प्रभुजीपर राग वढाया-विषयका राग छोड व्रतपर राग वढाया तो वो आत्माको वधन है-पीछा उपाधिमें पडता है फिर व्रतका अहकार होवै, दूसरे नही करते हैं उन्होंकी निंदा होवै-वगैर वहुतसें कारणोंसें आत्माकी मलीनता होती है उस विषयमें समझना कि-ससारपरसें राग उतारकर प्रभुजीपर राग कायम किया, वो राग प्रभुपर न कायम करै तो ससारका राग कायम रहजाय, तो वधन

न छूटे-घरमें बैठाहुवा जितनी विभाविक वर्त्तणुक करेगा उतनी वर्त्तना कुछ जिनमंदिरमें जाकर करनेका नहीं-प्रभुजीके गुण वगैरः गायगा, तो उससें विभावमेंसें चित्त हठानेका साधन हाथ रहेगा. जहांतक पूर्ण विशुद्धि न हुइ है जहांतक जीवकों चडनेका मार्ग यही है इसलिये वीतरागजीने बताया है, तोभी ऐसी अपनी विकल्पनासें कल्पै कि येभी रागबंधन है सो कहनेरूप है वस्तुतासें तो विभावपणसें राग दूर हुवा नहीं, उससें ऐसा बतलाकर प्रभुगुण गाने नहीं. जिनकों आत्माका कार्य करना है उन्हकों तो जितनी विशुद्धि होवै उस मुजब करनेका प्रभुजीनें बतलाया है वेसेंही करेगा.

पेस्तर बहुतसें दृष्टांत दियेगये है-जैसें कि कोइ मनुष्यनें विष खाया है. अब उस मनुष्यको खबर हुइ कि विष मेरे खानेमें आया है वो मिटनेके वास्ते कुछ औषध सेवन करु पीछे विष दूर होनेके औषध खानेसें निर्विष हुवा. एक मनुष्य कहता है कि औषध तो कटु है ये कुछ खानेका पदार्थ नहीं कि उसें मै खाउ. तो उस मनुष्यका विष न उतरेगा. वैसेंही प्रभुभक्ति वगैरः है सो विषहर औषधरूप हैं. विष उतारडाले बाद औषधका काम नहीं, रागद्वेष रहित होवै उसकों शुभ रागकी जरुरतभी नहीं, मगर संसारके राग नहि उतरे हैं और शुभ रागकों बंधनरूप माने यह तो जैसें विषवाले कटु औषध जानकर उसका उपयोग न करै जिस्सें निर्विष न होवै, वैसें अशुभ राग छोडकर शुभ राग नहीं आदरता है उसकों आत्माकी विशुद्धि होनेकी नहीं. फिर अहंकारादिक विषयमें कहना है सो अहंकार कुछ शुभ करणीसें नहीं आते है, मगर उसकी परिणती अबतक जड भावमेंसें हठगइ नहीं वो करवाते है अभी ज्ञान नहीं हुवा उससे वो खुद अहंकार करता है कि हम प्रभुजीकी भक्ति करते हैं. व्रत करते हैं. हजारहु रुपे खर्च करते है-बडे बडे शासनके काम करते हैं. हमारे जैसा कौन है? ये दशायें होती है वो महा अज्ञान दशाका जोर है उससें उन विषयमें तो जिन्होंकी समझमें आया है कि-अहा! मेरे आत्माकी स्वभावदशा तो जानना देखना है जड प्रवृत्ति कुछभी करनी वो मेरा

आत्मधर्म नहीं फिर यह शुभ करणीभी मात्र अभी जड भावपरसें चित्त नहीं हठता है वो हठानेके वास्ते करनेकी है-वस्तुतासें मेरा धर्म नहीं है जिनकों ऐसी बुद्धि प्राप्त हुइ है उनकों क्यों अहंकार आयगा ? और यु करते थोडी विशुद्धि होगी उससें मनमा आयगा तो उसकोंभी परवृत्ति जानकर उस अहंकारकी निंदा करेगा. उससे पीछे हठनेकी भावना भावेगा अहा ! यह मेरी दशा क्या जड सगतीसें होती है ? जगत्में यह जड शरीरकों मान मिलता है तो वो शरीर में नहीं तो वो मानसें मेरे क्या ? ऐसी भावना आत्मार्थी भावता है. रात दिन कषायसें पीछे हठनेकीही दशा: जिनकी बनी है और जितना जितना पीछा नहीं फिरा जाता वोभी आत्माको प्रतिकूल है ऐसा भाव रहे हैं पुन जडकी दशा दूर करनेकेलिये व्रत नियम धारण करते हैं. वो वस्तुओंका जहातक खाने पीनेका अभ्यास है वहातक वो खानेकी वस्तुअें न मीलेंगी, या प्रतिकूल मिलेंगी तो मुझकों विकल्प आयगा. वास्ते जो जो वस्तु त्याग करगा उसका अभ्यास छूटजानेसें वो वस्तुपर चित्त न जायगा, तो उसका विकल्पभी नहीं होवेंगा. ऐसा समझकर आहार-पानी-वस्त्र-आभूषण वगैरः का नियम करके बाकीकों वापरनेकेलिये त्याग करता है. व्यापारभी बहुत पापके इ वो पदरह कर्मादान वगैर का त्याग करता है दूसरेभी व्यापार विकल्पके कारण हैं वास्ते अपना निर्वाह होवे उतना व्यापार रखकर दूसरे व्यापारका त्याग करता है स्त्रीयादिकके विषयकीभी मर्यादा कर बाकीकी त्यागकें-यह प्रवृत्ति जड भावकी कमती होयगी तभीही मेरा आत्मा स्थिर होयेगा जहातक ससारके काम करनेके हैं, वहांतक वो वो काम धर्म ध्यान करते वख्त याद आयगा और आत्माकी परिणती बिगाडेंगे, वास्ते जो जो कारण ससारके कमती होंनेंगे उतने उतने विकल्प कमती होवेंगे ध्यानमेंभी समाधी रहेगी जैसें कि जो मनुष्य राजा नही है तो उसकों लश्कर वगैर का विचार चित्तमें नहीं आयगा, क्योंकि उस काममें उसकी प्रवृत्ति नहीं है, वास्ते जितनी जितनी प्रवृत्ति शुरु है उतनी उतनी विकल्पता आवेगी ऐसा समझकर खाने-पीने-बैठने-सोने-फिरने

तमासे देखने व्यापार करने और स्त्रीयोंके विषय संबंधी जितने जितने कारण छुटजाय वो छोड दे कि जिस्सें तेरा आत्मा समाधीमें रहै. न छूटे उसमें अपने आपकी अज्ञानता विचारता है कि-अबतक मेरा मन जडसें दूर नहीं हटता है, वास्ते सत्पुरुषकी सेवा करु, और संसारसें दिल हटजाय वैसे शास्त्रोंका अभ्यास (सुनने वाचनेका) करु कि कोइ वक्त वो उपदेशरुप अमृतसें करकें मेरा चित्त सुंदर होजाय, और विभावसें चित्त हटजाय-स्वभाव सन्मुख होवै. ऐसा चिंतन कर तनमन धनसें ज्ञानादिकका अभ्यास करता है, वो ज्ञानसाधनमें कोइ विघ्न न आवै उस वास्ते सामायिक पौषध देशावगाशिक करै फिर विशेष सामर्थ्य जाग्रत होवै तो ध्यान करु. ऐसा शोच कर आर्त्त रौद्र ध्यानका त्याग करकें धर्मध्यान करै कि जिस्से आत्मा निर्मल होवै, और निजस्वरूप सन्मुख हो जाउ. ऐसा चिंतन कर ध्यानादिकका उद्यम परवस्तुसें हटनेके वास्ते करै. ऐसें अनेक प्रकारके उद्यम आत्मार्थी कर रहे हैं. हरएक प्रकारसें आत्माकी प्रवृत्ति विभावसें छूट जावे; उस सन्मुख दृष्टि बन रही है. संसारका स्वरूप विचारनेसें, जैसें कोइ पुरुष घरमें होवे और चारों ओर आग लगे तो उस घरमेंसें निकलनेका जैसा उद्यमवंत होवै, वैसें आत्मार्थीकों संसारदावानल जैसा लगता है. जो जडप्रवृत्ति करता है उसमें आनंदता नहीं होती है. एक विटंबना समझकर करता है वो दशाभी आत्मा निर्मल होनेकी है. यह संसारमें सब चीज हैं, उसमे स्त्रीयादिकके काम सबसें जियादे दुःखदायक हैं, सबब कि कामदेव जिसके वश्य हो गया उसकों पीछे दूसरी उपाधि छोड देनी कुछ मुश्कील नहीं पडती और जिसकों काम न छूटे उनकों कुछ उपाधि नहीं छूट सकती हैं. कामदेवके लिये स्त्री चाहियें, स्त्रीके लिये वस्त्राभूषण चाहियें, वस्त्राभूषणके लिये द्रव्य चाहियें, द्रव्यके लिये व्यापार करना चाहियें, व्यापारके लिये उलटासुलटा करना-ठगाइ-अन्याय-अनेक आरंभ करना चाहियें, स्त्री होवै तो लडका लडकी होवै और वै होवै तो उन्होंकी सादी करवानी चाहियें. उन्होंके लिये न्यात जातसें हिलमिलके चलना चाहियें, उन्होंकी दाक्षिण्यता रखनी

चाहियें, असा सब कामदेवके तावे होनेसें होता है कामवश न होवे वहांतक अनेक प्रकारकी उपाधि रहती है, और आत्मा शुद्ध होनेमें विकल्प उस सबवी आ पडते है. वास्ते अनेक प्रकारके पूर्व समयमें महा पुरुषोंने शास्त्र रचे हैं उसका अभ्यास करके काम कब्जे हो जाय वैसा करना कामकों जीतनेसें बहुतही विकल्पके कारण छूट जावेंगे इसी वास्ते पूर्व पुरुषोनें अव्वलमें कामकों जीत लियाथा. अहा! स्त्रीका दुर्गंधमय शरीर, जो जगाभी महा दुर्गंधमय उसमें क्या मग्न होना? कितनेक जीव चौथा व्रत धारण करते है, मगर धनकी तृष्णासें दूर नहीं हो रहते हैं वो लोभका महात्म्य है लेकिन जीव विचार करै कि अनेक प्रकारके पाप करकें द्रव्य मिलाया वो क्या तु साथ ले जायगा? नहीं! नहीं! यो तो कुछ बननेकाही नहीं. फकत जगतमें कहा जायगा कि, मैं करोड-पति-लक्षपति हु इस सिवा बहुत धनसें और कुछ लाभ नहीं हैं, तो उस द्रव्य परवस्तुमें क्या मूर्छित बन जाता है? वो योगसें जो जो कर्म बांधेगा उनके दुःख तेरेही भुक्तने पडेंगे धनका सुख लडकोंकों या दूसरोंकों दे जायगा, वे धनका उपयोग कर मौज लेवेंगे फिर जो लडके वगैर' मिले है वो सब क्या सबबसें मिले हैं? सो तु विचार कर कितनीक वक्त स्नेहसें मिलते हैं, कितनीक वक्त वैरभावसें मिलते हैं, और कितनीक वक्त पिछले भवका लहेना वसूल करनेकों आ मिलते हैं-असें अनेक सबबसें मिलते हैं वो तु नहीं जानता है फक्त मेरे फरजद जानकर मूर्छित हो कर्म बांधता है और आत्माकों मलीन करता है, वास्ते आत्मा शुद्ध करना हो तो पुत्र धन वगैर की ममता कमती कर. जो जो बनता है वो पूर्व कर्मबंधानुसारसें बनता है, उसमें राजी क्या होना? और दिलगीरभी क्या होना? फक्त जो जो बनै उसमें जान लेनेका आत्माका स्वभाव है वो समझ लेना मगर उसमे खुशी दिलगीर होना वो आत्म-धर्ममें बहार है वास्ते आत्माका धर्म समझ लिया, अब क्या जडके काममें राजी-दिलगीर होना? उसके विकल्प करना? नहीं, कुछ नहीं करना! आपके सहजसुखमें मग्न होना ऐसा चिंतन करनेसें विशेष

विशुद्धि होती है, तो संसारकों छोडकर सयम लेकें आत्माकों सुखप्राप्ति होवे वैसें विचरते हैं. शरीर है सो आहारके आधारसे रहता है, तोभी आहार न मिले और क्षुधा लगी तो विचारे कि अहा! आत्मा! तेरा अणआहारी धर्म है, आहार करना वो जडका धर्म है, वास्ते उसमें तेरे विकल्प करना वो केवल कर्मबंधका कारण है. उससें आत्मा मलीन होता है ऐसा शोचकर आप समभावमें रहै. यों करते आहार मिल गया-वो स्वादिष्ट अगर बेस्वादवाला मिला तो विचार करे कि जो जो पुद्गल मिले हैं उसमें वैसा स्वाद है, मगर वो पुद्गल ग्रहण करना वो तेरा धर्मही नहीं, तो अच्छे है या बुरे है ऐसा विचार करना सोही बेमुनासिब है. शरीरमें रहा है और अभी इतनी विशुद्धि नहीं है कि आहार न करु, शरीरमें पीडा होवै और मेरा आत्मा समभावमें रह सके नहीं उस लिये आहार ग्रहण करना है, लेकिन विकल्प करना वो मेरा धर्म नहीं ऐसा शोचकर अपनी समभावदशामे रहेवे. तृषा लगे तोभी इसी मुजब तृषाका विकल्पभी न करे. शीतकालमें ठंडी बहुत ही होनेसें शरीरमें शीतकी वेदना होती है वो वेदनामें शोचे कि-ठंड-जाडा पुद्गलकों लगै है वो समझनेका मेरा धर्म है-स्वभाव है सो मैंने जान लिया, उसमें मेरेकों जाडा लगता है ऐसा शोचु वो अज्ञानता है गर्मीकी मोसममें धूपके पुद्-गल आनेका स्वभाव है उस मुजब पुद्गलकों स्पर्श करते है उसमें मेरे क्या? मैं तो अरुपी हु जिस्से कोइ पुद्गल स्पर्शते नहीं और धूप लग-तांही नहीं. घाम होनेसें हवा मिलनेकी इच्छा होती है वो मेरी अज्ञानता है. जडमेंसें ममता नहीं निकल गइ है उस्से हवा खानेका दिल होता है-उसमें नये नये कर्म बंधाकर मेरा आत्मा मलीन होवेगा ऐसा चिंतन कर हवा खानेकी इच्छा रोककर घामका विकल्प छोड अपने आत्माके आनंदमें आनंदित रहवे, लेकिन चित्तमें उपाधि नहीं चिंतते हैं. फिर डास-मच्छर काटे उस वक्तभी आपका समभाव नहीं छोडते है, और उनकों उडानेके वास्ते शोचभी नहीं करते वो काटते हैं सो मुजकों नहीं काटते है मगर पुद्गलकों काटते है उसमें मेरे क्या है? कोइभी मनुष्य

दूसरेका घर जलता होवै उसमें आप फिकर नही करता है, वीसी तरह यह जडशरीरकों काटते है उसमें तुजकों विकल्प करनेका कुछ मतलबही नहीं तु तेरे आनदमें रहै-असा शोचते है फिर कपडे फटे हुवे हैं या मैले हैं, जाडेकी जरुरत हो और महीन-पतले मिले हो, अगर पतलेकी जरुरतमें वोजदार मिले हो असा वस्त्र सबंधी कारण मिलनेसें अपने समभावसें दूर हठते नहीं और शोचैं कि-वस्त्र पुद्‌गलकों पहननेके हैं आत्माकों वस्त्र पहनने नहीं हैं, तो उसमें मैं किस वातका राग द्वेष करु ? जैसा कर्म पूर्व समयमें बांधा है उसके उदय माफक मिलते हैं उसमें अच्छा क्या ? और बुरा क्या ? आत्माकों तो परिधान करनेही नहीं है तो आत्मा किसलिये विकल्प करै ? ऐसे भावसें समभावमें वर्त्तते है फिर शरीरमें पीडा होनेसें किसी प्रकारकी अरति उत्पन्न होनेके कारण मिलजाय, मगर जिसने स्व परका स्वरूप जानलिया है वै पुरुष अरति चिंतवतेही नही, सबब कि स्वभाव बहारके काम बनैं उसमें आत्माकों अरति करनेकी मतलब नहीं इसलिये अरति नहीं करते हैं फिर खुबसूरत अलकारित औरत कभी इद्रकी इद्राणी आकर मुनीके आगे हावभाव करती है-विषयकी चेष्टा करती है-नेत्रकटाक्ष चलाती है-हास्यविनोदी शब्दप्रयोग करती है, वो सुनकर मुनी शोचते हैं कि अहा ! जीव पुद्गलके रंगमें क्या रजित होगया है ! पुद्‌गलकों सुभिता करकें आनदित होता है, पुद्‌गलकी चेष्टा करकें खुश होता है ! क्या जीवकों अज्ञान पीडता है ! मेरे तो इसके स्हामने देखनेकीभी दरकार नहीं है, क्यौं कि अनादि कालका मैभी पुद्‌गलका रंगी था उससें औरतोंका रागी था. मैंभी अज्ञानतासें इन स्त्रीकी तरह चेष्टा करताथा, वो चेष्टा शायद याद न आ जाय ! और पीछी इनके जैसी प्रवृत्ति होजाय ! वास्ते मेरे तो कामिनिके साथ बोलनाही नहीं-इसके अगोपांग देखनेभी नहीं, मै इसकों देखु तो मेरे आत्माका आत्मतत्त्व भूलजाउ वास्ते नहीं देखना है इसलिये ज्ञानीनेभी जैसें सूर्य सन्मुख दृष्टि पडगइ हो तो फौरन पीछी हठालेते है, वैसी तरह दृष्टि हठालेनेका कहा है, वोभी सत्य है. इस स्त्रीकी संगतिसें मैनेभी

पूर्व समयमें बहुतसी अज्ञानता की है, वास्ते इसके कर्मकी विचित्रता मुजब करनी है उसमें मेरे क्या ? ऐसा शोचकर स्त्रीपरिसह जीतता है ऐसें स्त्रीयादिकके रागबन्धन होवे उसवास्तेंही मुनीविहार करते है. एक जगहपर नही ठहरते. विहार करनेमें चलना पडे उसका थक मार्गमें लगे, पाव दूखने लगे, तो उसवक्तभी मुनी शोचे कि–अहा आत्मा ! थक तो पुद्गलको लगता है दूखता है वोभी पुद्गलकों दुःख होता है, तु किस लिये विकल्प करता है ? ऐसा शोच अपने आत्मस्वभावमेंही मग्न रहते है मगर अपने आत्मभावसे चित्त चलायमान नहीं करते हैं और उस स पधी कुछभी विकल्प नहीं करते हें वो प्रभुजीके वचनसें और आपके अनुभवसें अपने आत्मधर्मकी श्रद्धा की है उसके फल है हरकोइ मकान निरवद्यतासें मिलता है उस मकानमें रहते है वो मकान यदि प्रतिकूल हो या बहुत सुंदर होनेसें अनुकूल हो तोभी उन सबसें राग द्वेष नहीं धरते है प्रतिकूल करतें अनुकूल परिसह जीतना बडा कठीन है. लेकिन आत्मज्ञानी पुरुष तो चाहे वैसा हो, मगर निज स्वरुपसें दूर नही हठते है उसमें विकल्प आताही नहीं बिछानेका संथारा अनुकूल या प्रतिकूल मिलजाय, उसमेंभी कुछ चिंतन नहीं करते हैं, और आत्माका उदासी भाव होगया है सो अनुकूल प्रतिकूलमें चित्त जाताही नहीं, उस सबबमें कोइभी विचार करना पडताही नहीं. चाहे यु होवे मगर आप अपनेही स्वरूपमें रहते हैं, और जड प्रकृतिकी और लक्ष देतही नहीं. समझ लेने-का धर्म है सो उसका स्वरूप जानलिया जाता है आक्रोष परिसह उपने सो कोइ आकर कटु वचन–मर्मवचन–द्वेषमय वचन–यद्वातद्वा बोले या मकार चकार बोले, तोभी बिलकुल निजस्वरूपसें चलित नहीं होते है. आप जिस आनंदमें वर्त्तते हैं, उसी आनंदमें वर्त्तते कोइ आकर नाश करे तोभी समभाव नहीं छोडते है, जैसें कि मेतार्य मुनिवरकों चमडेकी रस्सी लपेटकर सिर चीर दिया और प्राण गये. गजसुकुमालजीकों सोमिल सस-रेने अग्निके अंगारेकों सिरपर मिट्टीकी पाल बांधकर भरदिये बाद सिं चन किये तोभी बिलकुल अपने आत्मभावकों चलायमान न किया;

मगर ध्यानधारा वढाकरके केवलज्ञान पाकर सिद्धिपद पाये. पांचसो मु-
नियोंकों पापी पालकने घाणीमें घालकर पील्वा दिये तोभी वै समभावमें
रहे उससें केवलज्ञान पाये इसतरह जो कोइ मारकूट करे उसकी दया
शोचते हैं कि-यह विचारा अज्ञानतासें कर्मबंधन करता है, लेकिन आ-
पकों दुःख होता है उस तर्फ लक्ष नहीं देता है. इसतरह मुनीमहाराज
समभावमें रहते मारनेवालेपर किंचित्‌भी द्वेषभाव नहीं ल्याते है भगवान्
श्री वीराधिवीर महावीरस्वामीजीकों संगमादेवने वहुतही कठीन और वहुत
उपसर्ग किये, तोभी भगवतजी चलित न हुवे उसीतरह आत्मज्ञानीकों
अध्यात्मज्ञान प्रकट हुवा है उसके प्रभावसें चाहेसो उपसर्ग आता है वो
समभावसें सहन करता है लेकिन रहामनेवालेकों स्वप्नमेभी दु.ख देनेका
शोचते नही आहार विगर रहा जाता नहीं उससें शरीरकों आधार देनेके-
लिये आहारपानी लेनेकों जाते है उसमें ऐसा चिंतन करते नहीं कि मै
गृहस्थाश्रममें चक्रवर्ती-वासुदेव-मांडलिकराजा या शाहूकार था सो मै
याचना करनेकों क्यों जाउ? फक्त उतनाही शोचे कि यह शरीर आहा-
रके आधारसें चलता हें, उससें इसका आहार न हुवा और शरीर बीमार
पडजायगा तो मेरा समभाव कायम नहीं रहेगा, वास्ते यह शरीरकों आ-
हार देनाही है उसवास्ते तीर्थंकर महाराजजीने याचना करनेकी मर्यादा
वतलाइ है वो करनी उसमें मे वडा राजाहु ये विचार कुछ करनेका नहीं
क्यों कि राजा और रंकपना तो पुद्‌गलकों है आत्माकों तो राजा और
रंकपना कुछभी हेही नहीं - आपके आनंदमय है पुद्‌गलकों आहार पो-
षनके लिये पुद्‌गल फिरते है याचना करते है उसमें मेरे कुछ विकल्प क-
रनेकी आवश्यकता नहीं है पूर्वकर्मके योगसें जो जो क्रिया करनेकी है
वो होती है याचना करनेंसभी शायद आहार न मिला वो अलाभ प-
रिसह उत्पन्न हुवा तोभी अलाभसें राग द्वेष नहीं करते हैं और शोचते
है कि-आहार संबंधी पूर्वसमय अंतराय बांधा है वो उदय आया है
उससें आहार नहीं मिलता है, वास्ते उसमे कुछ विकल्प करनेका कारण
नहीं ऐसा विचारकें अपने स्वभावमें रहते है फिर पूर्वकर्मके प्रभावसें

शरीरमें रोग उत्पन्न होवे तो वोभी अपनी आत्मदशामें रहकर मुक्तता है; लेकिन रोग सबगी कुछभी चिंतन नहीं करता. जानता है कि रोगकी पीडा पैदा हुइ है उसमें मै विकल्प करूंगा तो पीछे ऐसे कर्म बधेंगे, तो आत्माकों कर्मसे मुक्त करनेकों प्रवर्त्तताहु उसके बदलेमें कर्मके बधनमें पड जाउगा ऐसा उपयोग बनगया है, उसीसेंही अपने समभावकी धारा-वर्त्तन किंवेकरती है और जो होता है वो जानलेता है, मगर उसमें लीन नहीं होता कदापि पॉवमें घास वगैरःका तृण-ककर चुभता है,.क्यौं कि मुनीकों जूते पहननेकों नही उससें पॉवमें चुभे फिर आप सुकोमल भाग्यशाली होवें, तोभी किंचित् उसमें खेद नहीं धारण करते हैं. मात्र कर्म स्वरूप जानलिया है, उससे उन सबधीका विचारही चित्तमें नहीं आता. कदाचित् थोडी विशुद्धिवालेको विचार आवे तो फिर विचार करता है कि पावकों चुभता है. आत्मा अरुपीकों कुछ नही चुभता है, वास्ते किस लिये मै विकल्प करु ? यु करकें समभावमें रहता है शरीरमें मल वगैर' होता है' तोभी शरीरकी विभूषा वा सुश्रुषा कुछभी न करनी, उस्सें शरीर पर मैल होवे तोभी शरीर सो मै नहीं. ये भाव होनेसें विकल्प नहीं होता सत्कारपरिसह सो वडे वडे राजालोग आदर बहुत मान करते है. अहा महात्मा ! आपके जैसें सत्पुरुष इस दुनियामें नहीं पंचेंद्रिय वश करली है, बिलकुलभी शरीरकी ममता नहीं केवल आत्मभाव आपने सच्चा जाना है, कोइभी वक्त आप आत्मभाव नही चूकतेहो. आपके जैसे ज्ञानी इस जगत्में नहीं, आपके समान उपकारीभी कोइ नहीं आपने जो मुझकों धर्म बतलाया है, और जो उपकार हुवा है वोभी मेरे शिरोधार्य है. आप साहबजीकी जितनी भक्ति करु उतनी कमती है ऐसी अनेक प्रकारकी स्तुति करे, मगर किंचित्भी अहकार नहीं करते है. मनमें शोचते हैं कि-अभितकमें पुद्गल दशामेंस तो दूर हुवा नहीं, ये लोग तो इतनी वडाइ बतलाते हैं तो मुझकोंभी जोजो पुद्गल दशामें उपयोग जाते है वो पीछे हठाने चाहियें ये ज्ञानदशाके महान् मान्य करते है वैसी ज्ञानदशा अनतक हुइ नहीं, वास्ते जो जो ज्ञान सबधी खामीं है वो प्रकट

करनेका उद्यम करना चाहिये. अहा ! सर्वज्ञके ज्ञान मुजब अबतक तो मेरे में ज्ञानकी बहुत न्यूनता है. ऐसे विचारसे अहंकार नहीं आता है और आपके समभावमें कायम रहता है ज्ञानपरिसह यानी दूसरोंसें आपमें बहुत जोर हुवा होवे उससें दिलमें आवे कि मै ज्ञानी हु वैसा काइ जगतमें ज्ञानवान नहीं है एसे विचार करीके कर्म बांधकर आत्माकों मलीन करता है, मगर ये कौन करता है ? जिसनें अपना आत्मधर्म जाना नहीं है और बहारसें ज्ञान मिलाया है वेसे जीवकों ज्ञानीपनेका अहंकार आता है और वे जीव आगामिक भवमें अज्ञानी होवेंगे मगर ज्ञानीजीव तो ऐसा शोचते है कि-मेरे आत्माका स्वभाव तो केवलज्ञानमय है, उसमेंसें तो अबतक कुछ ज्ञान प्रकट हुवाही नहीं है. फिर श्रुतज्ञानीभी पूर्वकालमें चौदह पूर्वधर हुवे है, उनकी अपेक्षासें मुझकों क्या ज्ञान हुवा है कि मैं अहंकार करु ? ऐसें आपकी अपूर्णता चिंतन कर ज्ञानका अहंकार नहीं करते है-आप आपकी दशामेंही निमग्न रहते हैं

अब अज्ञानपरिसह सो आप अपने आत्मभावकों गुरु मुखसें जानलिया है पुद्गुलभावकों जानता है उससें स्वपर भेदका ज्ञान हुवा है, और जैसें गुरुमहाराज करते है वैसें आत्मतत्त्वकी श्रद्धा करकें अपनी आत्मदशामें प्रवर्त्तता है, मगर तर्कवितर्कका बोध नहीं षट्शास्त्रका ज्ञान नहीं उससें किसीके साथ वाद करनकी शक्ति नहीं, दूसरेकों बोध करनेकी शक्ति नहीं, उसलिये दूसरे जीव निंदा करते हैं अहा मूढ ! अज्ञानी ! शिर मुंडवाया मगर कुछ ज्ञान तो है नहीं ऐसे कठोर वचन कहते है, तब समभावी मुनी थोडा पढे है, लेकिन आप अपना विचार कर ऐसा शोचते हैं कि-ये जो कहते हैं सो सत्य है, मेरेमें ज्ञान नहीं और पिछले भवके आवरण हैं उससें मुझे बोध नहीं होता है तब ये कहते है, ये तो मेरे सद्गुरु है तो मै इसमें खेद किसलिये करु ? फिर दूसरीतरह शास्त्र पढता है, मगर आवरणके लियेसें मुखपाठ नहीं होता है तब उसकों आत्मार्थिपना प्रकट नहि होता है वो क्या शोचता है कि मुझकों याद नहि होता, तो फिर पढनेका वख्त निकालकें क्या करु ? ऐसा शोच कर

ज्ञानाभ्यास बध करता है उसकों ज्ञानावरणी कर्म बधातेजाते है. मासतुस मुनि सारिखे आत्मार्थी है वे तो पढना याद नही होता तोभी उद्यम नही छोडते हैं और उद्यम नही छोडनेसें कदापि ज्ञान नही आता, तोभी समय समयसें ज्ञानावरणी कर्म क्षय होतेजाते है, वास्ते आत्मार्थी पुरुष तो ज्ञान नहीं आता तोभी ज्ञानका अभ्यास नहीं छोडते ओर हमेशा ज्ञानका उद्यम-मेंही प्रवर्त्तते है. ऐसे पुरुष अज्ञानका परिसह जीतते है.

सम्यक्त्वपरिसह सो यह चौदह राजलोकके अदर छः द्रव्य रहे हैं उसमें पाच द्रव्य अरूपी और पुद्गल रुपी है, तोभी पुद्गल परमाणु बहुतही छोटा है. दृष्टिमें नहीं आता असे बहुतसे परमाणु इकट्ठे हो बादरस्कध होता है, वो देखनेमें आता है. मगर सूक्ष्मस्कध देखनेमें नहीं आते. अरूपी पदार्थभी देखनेमें नही आते. वो पदार्थोंका वर्णन सर्वज्ञ कर गये हैं वे सर्वज्ञ तो रूपी अरूपी सर्व पदार्थ जानते हैं उनकों जानना कुछ मुश्केल नहीं सहजसे जानलेकरके वो प्रकाशित किये हैं. अब ऐसे पद् द्रव्यके भावोंका वर्णन शास्त्रमें है, वो देखकर अज्ञानपनेसें अनेक प्रकारकी शका होती हैं और सर्वज्ञके वचनोंपरसें आस्था उठ जाती है; लेकिन जिनकों सम्यक्त्वज्ञान हुवा है उन पुरुषनें अनुमानसे कितनीक वस्तुओंका निर्णय किया है उस्सें वो जानता है कि यह सर्वज्ञ निष्पाक्षपाती है जिनकी बहुतसी बाते सत्य मालूम होती है, और कोइ कोइ सूक्ष्म बाते नहीं समझी जाती तोभी प्रभुवचनोंके ऊपर श्रद्धा रखनी योग्य है श्री महावीरस्वामीजीने आत्मधर्म प्रकट करनेका जो मार्ग बतलाया है उससें अधिक किसी धर्मवालेका नहीं देखते हैं, तो मैं किसवास्ते अश्रद्धा करु? कितनीक बातें तो प्रत्यक्ष सिद्ध होती है तो जैसे भरे हुवे वर्त्तनमेंसें चावल पकानेकों आगपर रख्खे होवे उनमेंसें एक दाना पका हुवा देखकर सब चावल पक गये मानते हैं, वैसें ये पुरुषके बहुतसे वचन न्यायसें सिद्ध होते है और दूसरे कुछ नहींभी समझमें आते है, उसका सबब मेरा अज्ञान है. कारण कि अज्ञानके जोरसे यथार्थ न्याय

जोडा नहीं जावै उसमें कुछ सर्वज्ञकी भूल नहीं ऐसा विचार करकें सूक्ष्म बातोंकी श्रद्धा करै वो पुरुष सम्यक्त्वपरिग्रह जीता यु कहा जाता है. और कितनेक अज्ञाना जीव दूसरे जीवोंकी बाह्यकी बावत सबधी तकरारे सुनकर उसमें घभडा जाते है-मोहवत होते है जैसे कि अभी इग्रेजलोग पृथिवी फिरती है और सूर्य स्थिर है ऐसा कहते हैं और उसपर अनेक दुर्बीनोंसे देखकर मनुष्यको समझाते है, वो समझमें लेकर मनुष्य कहते है कि शास्त्रमें तो सूर्य फिरता कहा है, यो बात मिलती नहीं आती, वास्ते जैनशास्त्रपर क्या श्रद्धा करे? ऐसी दशा होती है मगर उसके अदर विचारनेका है कि, जैसें लाखो रुपै इग्रेजलोग ऐसे काममें खर्चते हैं और वैसी मिहनत करते हैं, मिहनत करनेवालोंकोंभी हजारो रुपैका पगार या इनयाम मिलते ह, वैसी तरह वर्तमान समयमे जैनमें कोइ राजा नहीं और वैसे पैसे खर्च करना वो राजाओंका काम है और पैसे खर्च विगर पृथिवीपर फिर सकै नहीं और उसका निर्णय हो सकै नहीं और जहातक निर्णय हो सकै नहीं वहांतक प्रभुके वचन पर प्रतीत रखनी चाहियें. अपनी शक्तिकी कसूरके वदलेमें शास्त्रपरसें आस्ता उतारनी योग्य नहीं पुन' इग्रेजलोक कहते हैं वो बात न्यायसेंभी जुडती नहीं, तोभी उन्हके वचनोंकी मनुष्य श्रद्धा करते हैं उस करतें प्रभुजीके वचनोंकी श्रद्धा करै वो श्रेष्ठ है

इग्रेज कहते है कि यहासें सूर्य तीन करोड माइल दूर है और इस पृथिवीका व्यास-घेरावा २४ हजार माइलका है उसकरतें सूर्य चौदहलाख गुना बडा है-इसतरह मानते है अब शोचो कि-पृथिवीसें सूर्य चौदह लाख गुना वडा है तो पृथिवीमें रात पडनीही न चाहियें; क्यौं कि बाजुपरसें सब जगेपर प्रकाश जाना-पडना चाहियें जैसें एक इचकी सुपारी एक बाजुपर होवें, आर एक बाजुपर चौदह लाख इचका उजाला होवै तो सुपारीकी किसी बाजुपर उजाला न होसकै ऐसा होसकताही नहीं, तैसेही पृथिवीका गोला मानते हैं, वो गोलेपर सब जगे प्रकाश होना चाहियें-रात पडनीही न चाहियें. इस विषयमें कितनेक युभी कहते हैं कि

तीन करोड माइल दूर है उससे गोलेकी एक बाजुपर उजाला न आसके-हम कहे तहे कि वो कथन अकलसें विरुद्ध है वो २४ हजार माइल तो गोलचक्र भरनेसें है, मगर एक जाडाइकों ल्वाइ गिनलेंवे तो आठ हजार माइल होवे. अब जो तीन करोड माइलतक प्रकाश आ सकता है उसकों आठ हजार माइल आनेमें कुछ हरकत होय ये वार्ता संभवित नहीं कदाचित वो लोग कहे कि पृथिवी श्याम है जिस्सें उसका परछाया या परदा पडता है. ये वार्त्ताभी असंभवित है. गोल वस्तुकी चारों और प्रकाश व्याप्त होवे उसमें कुछ हरकत होसके ये बातभी अकलसें दूर है यु होनेपरभी कितनेक लोग इंग्रेजोंकी कलाकौशल्यता देखकर श्रद्धा करके धर्मश्रद्धा उठा डालते हैं वो अज्ञानता है ऐसा समझना चाहियें. सांसारिक कलाओं करनेका जीवकों अनादि कालका अभ्यास है वो कलाऐं आवें उसमें कुछ नवाइ-ताजुबीकी बात नहीं, मगर धर्मकी कला आनी वो बहुत दुष्कर है. हजारों मनुष्यमेंसें धर्मप्रवर्त्तक बहुत कम होते है-धर्मज्ञपना बहुत मुश्कील है. इंग्रेज लोग दूर देश रहे और सर्वज्ञ इस देशमें हुवे, उस्से इस देशके लोगोंकों तो कुछ कुछ वासनाभी सर्वज्ञकी आडहूथी; लेकिन दूर देश-वालोंकों कुछभी वासना आड नहीं उस सबबसें धर्मकी बाबतमें वो लोग कुछभी नहीं समझते है. व्यवहारिक कलाऐं तो अपने हाथसेंभी शीख ले-नेसें आ सकती हैं, मगर अरूपी पदार्थका ज्ञान सर्वज्ञके वचनसेंही हो सकता है. वास्ते सर्वज्ञके वचनपर जिनकी श्रद्धा कायम रहती है उनने सम्यक्त्व परिसह जीतालिया है यु कहेना योग्य है यहापर कोइ शंका उठावेगा कि-भगवतजीने फरमाया वही कबूल करना और कुछ विचारही नहीं करना. उसके बारेमें ऐसा समझना कि सर्वज्ञकी पहिचान अव्वलसेंही करनी. उसमें सब प्रकारसें शुद्धता देखनी, वो देखलिये बादभी किसी ठौर विरोधपना न मालूम होवे तब उन्होंके ऊपर आस्ता रखनी वही योग्य है.

मनुष्य सूर्य पृथिवीकी बात प्रत्यक्ष गिनते है, मगर वो प्रत्यक्ष नहीं है; क्यों कि ये लोगने तीन करोड माइल सूर्य दूर है उसका मुकरर करना अनुमानसें किया है-सूर्यका और पृथिवीका मानभी अनुमानसें करते

है, वास्ते अनुमानमें बहुत फरक रह जाता है जैसें कि पहाड है सो ऊचे है, मगर दूरसें देखे तो नीचे मालम होते हैं. एक मनुष्य नीचे खडा है ओर उसकों सात मजल्लेकी हवेलीमेंसें देखेंगे तो वो मनुष्य छोटासा दिखाइ देगा. फिर कुछ चित्र चित्रे है वो दोनु आखें खोलकर देखेंगे तो चित्रही मालूम देगा सब अग नही मालूम होगा वही चित्र यदि एक आंख मुदकरकें निगाहपूर्वक एक आखसें देखेंगे तो चित्रमें चित्रा हुवा मनुष्य साक्षात जैसा मालूम होवेगा सच रीतिसें देखे तो चित्र है वो कुछ वस्तुताम मनुष्य नहीं तथापि मनुष्य मालम होता है—अैसेंही दुर्बिनसेंभी विचित्र प्रकार मालूम होवे उसमें भ्रम रह जाय, वास्ते जहा जहां जो वस्तु है वो वस्तु उस ठिकानेपर जाकर नहीं देखी वहा तक वो बात मान लेनी वो, वाजब नहीं. किसीके कथनसें सर्वज्ञके वचनकी आस्ता छोड देनी नहीं सब जगह फिरकर निर्णय करना चाहियें, वो बन सकता नही तब इग्रेजोंका कथन अनुमानवाला माननेसें तो सर्वज्ञकथित मानना वेही अच्छा है अैसे विचार करकें आत्मार्थीयों वो कुछभी व्यामोह होता नहीं दूसरी तरह तो आत्माकों तो ससारसें मुक्त होना है वो मुक्त होनेके उपाय जो सर्वज्ञने बतलाया है उसका अभ्यास करनेसें सर्वज्ञता प्रकट होवे, तब सब कुछ मालम हो सकें अभी उस तकरारमें में मेरी शक्ति विगर कहां पडु ? जो तकरारमें पडु तो उसमें सब तपास करनेसें मेरी उम्मरभी खल्लास हो जाय, तो फिर मेरे आत्मसाधन करना उसका वक्तभी हाथ न रहै वास्ते अभी तो आत्मसाधन करकें जडभावमें जो मेरी प्रवृत्ति है उससें मुक्त हो जाउ, ओर समभावमें रहनेका उद्यम करु. ऐसा विचार करकें दस प्रकारका यतिधर्म है वो पालन करै—उसमें प्रथम क्षमा यानी क्रोधपर जीत मिलानी कोइ जन अनेक प्रकारका तिरस्कार करै—कठोर—मर्मवचन कहदे—कोइ चीज ले जावे—नुकशान करै, मगर क्षमागुण आया है उससें उनकेपर द्वेष नहीं होता, क्यों कि सब वस्तु वहार बनती है—तिरस्कार मेरे नामकों करता हे या शरीरकों करता है, तो शरीर सो में नहीं अैसा जान लियी है कुछ चीज ले जाता है वो

ऐसा जानना और जो जो बनता है वो वो कर्मके योगसें बनता है वो देखना है. उसमें कुछ रागद्वेष करनेका कारण नहीं? ये दशा हो जानेसें क्षमागुण आता है उस्सें गुस्सा होताही नहा तैसेंही मानका जय करता हैं. मान कौनसी बाबतका करना? यह शरीर, धन, स्त्री, पुत्रादि पदार्थ कुछ मेरे नहीं ऐसा निर्धार किया है उस्सें किस बातका मान हांवे? फिर आप ज्ञानवान है उस विषें आपके मनमें है कि मेरे आत्माकी शक्ति तो केवलज्ञानकी है वो अभीतक प्रकट न हुइ और आच्छादित हो गइ है वो मेरी वस्तु होनेपरभी प्रकट न हुइ तो मेरी लघुताका स्थान है, तो अब मैं किस बातका मान करु? ऐसी दशा बनी है उस्सें मार्दव गुण आया है उसीमें मानदशा सहज छूट जाती है. मान-छोडनेका विचारभी अपूर्णका करनेका है. पूर्ण पुरुषकों तो विचार कर-ना पडताही नहीं, क्यों कि मान आवे तो छोडनेका विचार करे, लेकिन ऐसी दशामें मान आताही नहीं अब आर्जव सो मायाका त्याग वो कपट रचनापना सहजही छुटगया है मुनीने आत्मपना जानलिया है. उसमें सब जड पदार्थ पर जानलिये हैं उसमें कितनीक प्रवृत्ति करते है, सो मात्र निज स्वरूप आच्छादित हुवा है उसकों प्रकट करनेके लियेही करते हैं तो अब कपट किस वास्ते करना चाहियें? चेलेकी इच्छा नहीं, श्रावककी इच्छा नहीं, धनकी इच्छा नहीं, ये मेरे और ये मेरे नहीं ऐसाभी करने का नहीं. फक्त पूर्ण ज्ञान उत्पन्न नाहि हुवा वहांतक पूर्ण ज्ञान उत्पन्न होनेका उद्यम करता है. उसमें निर्वाह करना चाहियें वो वस्तु मिलजाय तो ठीक और न मिलजाय तोभी ठीक ये दशाके वर्तनेवालेकों कपट करनेकी क्या जरुरत पडे कि करे? वास्ते निष्कपट आर्जवगुण प्रकट हो-नेसें सहजसें वर्त्तते हैं निर्लोभता गुण सो अपने शरीरकों मेरा नहीं जा-ना है तो लोभ किस बातका रहे? शरीर मेरा नहीं और शरीरसरक्षणके पदार्थ मेरे नहीं, ये सब जड पदार्थोके ऊपरसें राग उतरगया है इससें लोभ किस बाबतका करे? वास्ते निर्लोभता उत्पन्न हुइ है कोइ वस्तु शरीरके निर्वाह वास्ते चाहियें वो मिलगइ तो लेवे और न मिलगइ तो उस

चावतका विकल्प नहि करते, ऐसा विचारते है कि पुद्गलकों वस्तु चहीती है और पुद्गलकों मिलती नहीं-ऐसा विचारक पुद्गलिक वस्तुका लोभ नहि करते हैं. यहापर कोइ प्रश्न करेगा कि-ज्ञान पढनेका लोभ होवै कि नहीं ? उसके जवाबमें ज्ञान पढने-वाचनेका लोभभी निश्चय दाशमें जाता है, और जब ध्यानी पुरुष होते है और आठवे गुणस्थानकमें क्षपकश्रेणी मांडते हैं तब ज्ञानका लोभभी नहीं रहता है. मेरे आत्मामें अनंत शक्ति है उसमें मेरे क्या प्राप्त करना है ? जिसके पास वस्तु न हो वो वस्तु प्राप्त करनेका लोभ करै, मगर मौजूद होवै वो किस बातका लोभ करै ? और इन पुरुषनें अपना सत्ता धर्म जानलिया है और उसमें सहज सुखका अनुभव हुवा है, अपूर्व ज्ञानभी प्रकट हुवा है इससें ज्ञान प्राप्त होनेकी इच्छाभी वहा रुकजाती है, मगर वो दशा केवलज्ञानप्राप्तिकी अतर्मुहूर्त्त-काल बाकी रहता है तब प्राप्त होती है-उसके अव्वल नहीं, बनसकती हैं, तोभी वो लोभ करते हैं वो निर्लोभता प्राप्त करनेके वास्तेही है. वास्ते नीचेकी हदमें त्यागने योग्य नहीं, मगर ज्ञानके लोभसें नीति छोडकर न चलै. न्यायसें चलै. एक ज्ञान मिलानेकी इच्छा वर्त्तती है-उस रुप लोभ है; लेकिन वो इच्छाकेलिये ससारी जीव अन्यायकी प्रवर्त्ती करते हैं वैसे नहीं करते हैं; मात्र सब काम छोडकर मुख्यतासें ज्ञानका उद्यम कर रहे है. बाकी सब पुद्गलिक चीजोंपरसें लोभ हठगया है फिर तप सो बारह प्रकारका करते हैं वो सहज भावहीसें होता है आत्माका अणाहारी गुण समझलिया है आहार करना सो मेरा धर्म नहीं ऐसा समझनेसें आहार-परसें इच्छा हठगइ है, उससें तप करते हैं सयम सो स्वगुणमें रहना और पुद्गल प्रवृत्ति रोक देनी वो सयम गुण प्रकट हुवा है उसीसें इंद्रियोंके विषयकी इच्छा नही वर्त्तती है अव्रतकी प्रवृत्ति नहीं करते हैं कषाय रहित वर्त्तते है मन-वचन-कायासें बुरी प्रवृत्ति रुकगइ है उसकोंभी आत्मा निर्मल होवै वैसी प्रवृत्तिमें वर्त्ताते है-इसरुप सतरहा प्रकारसें सयम धारण करते हैं बाह्य सयम सतरहा प्रकारसें पालनेके सबबसें अतरग निज स्वभावमें स्थिर होता है ये रूप सयमगुण वर्त्तता है सत्य सो

सचा बोलना. जिसकों आत्मज्ञान नहि हैं वो शरीरकों मेरा कहता है. आत्मज्ञानी मुनी वैसा नहीं कहते हैं व्यवहारसें तो जैसा बोलाजाय वैसा बोले, मगर वस्तुधर्मसें पिराया जानलिया हैं उस्सें बोलते हैं. लेकिन अतरग उपयोग मेरा नहीं ऐसा चलरहा है. जो पुरुष पुद्गलकोंही मेरा नहीं मानते हैं वो पुरुष दूसरी बावतमें असत्य बोलेही क्या ? प्ररुपणाभी सहजसें यथार्थही होवे-ये सत्यगुण प्रकट हुवेका फल है. अब शौचगुण सो निरतिचार वर्त्तते हैं. अतिचारादिक दूषण लगे नहीं इस्सें पवित्रपना वर्त्तता है-यानी निज आत्मतत्वमें वृत्ति रही है.-ये रुप पवित्रता होरही है, उस्सें पुद्गल प्रवृत्तिके दूषण नहीं लगते है इससें सहजसें निरतिचार वर्त्तते हैं, कुछभी पुद्गलीक काममें राग द्वेष नहीं करते है. जो होवे उसमें कर्मोदय समझकर वर्त्तते हैं. अकिंचन गुण सो बाह्यपरिग्रह त्याग-धन धान्यादि नौ प्रकारसें और आभ्यतर परिग्रह-शरीरादिकपर मेरे पनेका ममत्वभाव वो सब प्रकारसें त्याग किया है उससें बाह्यपरिग्रहपरसें सहजही मूर्छा उतरगइ है-वस्त्र वगैरः रखते हैं वो निर्मूर्छापनेसें जगतका व्यवहार समालनेके लिये रखते है, मगर वो अच्छे बुरे-जैसे मिले वैसे पहनते हैं-किंतु विकल्प नहीं करते हैं ये मूर्छा गइ उसके फल है. ये रुप मुनी अकिंचन गुण प्रकट करते हैं. ब्रह्मचर्य सो बाहरसें सब तरहसें स्त्रीका त्याग किया हैं अतरगसें पचेंद्रियके विषयकी तृष्णा नाश होगइ है. स्वात्मज्ञानमेंही आनदपनेसें वर्त्तते हैं ज्ञानाचारमेंही उपयोग लगरहा है. स्वप्नमेंभी कामकी वाछना नहीं, अतरगके सुख अगाडी तुच्छ स्त्रीओंके विषय सुख दु खरुप जानलिये हैं उनकों कामकी इच्छा क्यौं होवे ? उस सबबसें सहजसें ब्रह्मचर्य गुण प्रकट हुवा है. इसतरह दस प्रकारका यतिधर्म प्रकट हुवा है और आत्मार्थी इसतरहके उद्यम करके पुद्गलभावसें मुक्त होता है. प्रथम थोडीसी शुद्धता होती है तब मार्गानुसारी होता है, उससें विशेष विशुद्धियुक्त सम्यक्त्व दृष्टि होती है और विशेष विशुद्धिसें श्रावकपना प्रकटता है, उससेंभी विशुद्धि होवे तब मुनिपना प्रकटता है उनमेंभी ज्यौं ज्यौं विशुद्धि बढती जावे त्यौं त्यौं गुणस्थान चढ-

ते जावे, और केवलज्ञान प्रकट करता है ऐसे अनुक्रमसे शुद्ध होता है

१४५ प्रश्न.—निर्जरा तत्त्वके भेद अरुपी गिने हैं, और कर्म है वो तो रुपी है, उसकी निर्जरा होवे वो अरुपी क्यों होवे ?

उत्तर.—कर्म है वो दो प्रकारके हैं एक द्रव्य कर्म सो आठ कर्म रुपी हैं. और दूसरे भावकर्म सो अरुपी हैं अब भावकर्म सो क्या पदार्थ है ? द्रव्य-कर्मके योगसें आत्माकी अशुद्ध परिणती रागद्वेषमय होती है, वही भाव कर्म कहेजाते हैं उन भावकर्मोंकी निर्जरा होती है उनकोंही निर्जरातत्त्वमें गिनी है. वो निर्जरा सम्यक्दृष्टि आदि पुरुष करते हैं. सम्यक् ज्ञान विगर सकाम निर्जरा नहीं होती. चौथे गुणस्थानसें लगाकर चौदहवे गुणस्थानतक होती है वो निर्जरातत्त्वमें है उस सिवाके जीव अज्ञानपनेसें द्रव्यकर्मकी निर्जरा करे, मगर भावकर्मकी निर्जरा नहीं करसक्ते हैं, वास्ते द्रव्यकर्मकी निर्जरारुपी और भावकर्मकी अरुपी कहते हैं

१४६ प्रश्न.—जीव अरुपी है और नवतत्वमें जीवके भेदरुपीमें गिने है उसका हेतु क्या है ?

उत्तर —जीव तो अरुपी है, मगर शरीर वहार मालूम होता है वो शरीर, इंद्रिये पुन्य योगसें मिली हैं. उन शरीर इंद्रियोंसें जीव पहिचाना जाता है कि यह एकेंद्रि, यह पंचेंद्रि है, वास्ते कर्मके सयोगसे जैसी जैसी कर्मकी मलीनता वैसे वैसे शरीरादिकके अलग अलग भेद पडे हैं, उससें शरीर, इंद्रि अपेक्षितरुपी भेद गिने हैं

१४७ प्रश्न —संवरके सत्तावन भेद अरुपी कहे है, और संवरकी प्रवृत्ति वहारसें मालूम होती है वो तो शरीरसें है तो अरुपी कैसे कहे ?

उत्तर.—वाहसें पुद्गलपरसें मोह उतरजाय, तब बरोबर बाह्यवर्त्तना होवे और ज्यों ज्यों संवरकी बाह्यवर्त्तना होवे त्यों त्यों पुद्गल दशामेंसें प्रवृत्ति रुकतीजाती है और निज आत्मस्वरूपमें लीनता होती है. ज्यों ज्यों निज ज्ञानमें लीन होवे कि आते हुवे कर्म रुकजाते हैं. आत्मस्वरुपमें रहनेसें

द्रव्यकर्म, भावकर्म दोनु रुकजाते हैं, जो भावकर्म रुकगये सो अरूपी हैं वास्ते सवरभी अरुपी है उस्सें सवरके भेद अरुपीमें गिने हैं.

४८ प्रश्नः—सवर निर्जरा मिथ्यात्वी करै या नहीं ?

उत्तरः—मार्गानुसारी मिथ्यात्व गुणस्थानमें अशसें सवर, अशसें निर्जरा करै ऐसा हेमाचार्यजीने योगशास्त्रमें कहा है; वैसेंही विचारबिंदुमें यशविजयजी उपाध्यायजीनेभी कहा है

४९ प्रश्नः—जिनमदिरमें प्रभुजीके अगलूहने मैले वा फटेलेका उपयोग किया जाय तो उसका दोप कार्यभारीकों लगै या सब श्रावकोंकों लगे ?

उत्तरः—प्रभुजीकों तो सर्व उत्तमोत्तम चीज चढानी चाहियें अपना शरीर पुंछनेकों किसीनें फटेला मैला टुवाल दिया होवै तो वो अनुकूल नहीं आता है और देनेवालेपर द्वेष आता है. फिर अपने घरपर कोइ विदेशी महेमान आये होवै उनकों फटेला वा मैला टुवाल नहीं देते हैं, तो प्रभुजीके अगलूहने फटेले या मैले वापरै तो अपनेकों अपने महेमान करते प्रभुजी अधिक हैं ऐसा दिलमें न आया, और जब प्रभुजीकी आधिक्यता मनमें न जमी तब आत्माकों लाभभी किसतरह होगा ? और मुँहसें प्रभुजी बडे हैं यु कहते हैं, पर चित्तमें मोटाइ न आइ, तब लाभ तो न होगा, मगर अवश्य मिथ्यात्व लगेगा. फिर दूसरी रीतिसें शोचै तो–प्रभुजीका महत्त्वपना मनमें न आया तो मिथ्यात्व गयाही न समझना. जब मिथ्यात्व गया नहीं तब दूषणका तो कहेनाही क्या ? लेकिन ऐसा विचारकर थककर बैठ रहना नहीं, किंतु प्रभुमदिरमें गये, और वैसे फटेले मैले अगलूहने नजर आये तो तुरत धोनेकी तजवीज करनी, अगर नये ला देनेकी योजना करनी. यदि साधारन पुन्यशाली हो तो उन अगलूहनोंकों आप धो डालैं और पुन्यवत होवें तो अपने मनुष्योंके द्वारा धुलवावें मदिरके कार्यभारीकों मालूम पडे तो वो तुरत धुलवाके साफ करावे या नये ला देवे किसी औरकी नजर पडै तोभी उसका वैसाही बदोबस्त करै. लेकिन ऐसा न करै कि–कार्यभारी समझे कि दूसरे भाइ उसकी तजवीज करेंगे. दूसरे भाइ समझे कि कार्यभारी तजवीज करेगा. ऐसा होनेसें काम

नहीं होता और आशातना जारी-रहती है वास्ते जीसकी वैसे अगलूहने पर नजर पडे कि वो फौरन उनके लिये योग्य बदोबस्त कर लेवे. कुछ बडे खर्चका काम नहीं. अब कोइ कहेगा कि-जिनके नजर आया नहीं, या जो नजर करकें किसी रोज देखताही नहीं उसकों दोष नहीं. जो ऐसा कहें वो निध्वस परिणामके लक्षण हैं जिसकों देखना नहीं उसकोंभी प्रभुजीपर प्रीति होती तो क्यों न देखता ? वा पूजाकी प्रवृत्ति क्यों न करता ? मगर प्रमादी है वास्ते उसकों देखनेमें न आया. उसकों कुछ कम दूषण है ऐसा न समझना जितना प्रमाद ज्यादा है उतना दूषणभी ज्यादा है वास्ते जो ससारसें तिरनेकी इच्छा करते हैं उन सबकों तो ये काम करना योग्यही है अगलूहने बराबर धुले हुवे नहीं होते है सो कडक हो जाते हैं, तो उन अगलूहनोंसें प्रभुजीकों घसारा लगे उनका दूषण लगे, वास्ते मुलायमदार-सुकोमल-अच्छी तरहसें धुले हुवे अगलूहनेका उपयोग करना, उससें सुदर भक्ति होगी पुन्यवतोंकों ऐसा विवेक अवश्य रखना, और कभी पुन्यवत बेदरकार रहेवे तो पच मिलकर सामान्य पुन्यवाले करलेवें. हरएक प्रकारसें अच्छे, उमदा द्रव्य चडाया जाय वैसाही करना एसा न करे तो तमाम श्रावकोंकों अशुद्ध वापरनेकी आशातना लगे

१५० प्रश्न'—मदिरमें वरतन साफ किये विगर उपयोगमें लेवे तो क्या होवे ?

उत्तर.—मदिरमें ससारी काममें वपरास किये विगरके बरतन साफ करकें उपयोगमें लेना. अच्छे द्रव्य होवे तो मन प्रसन्न रहेवे, और लाभभी होवे, और वैसा न होवे तो दूषण लगे ये अधिकार श्राद्धविधिमें है

१५१ प्रश्नः—मदिरमें मकडी वगैर.के जाले होवें उसकों न निकालडाले तो आशातना लगे ? और उनकों रखकर पूजा करे तो क्या होवे ?

उत्तर'—मंदिरमें जाकर प्रथम आशातना टालनी चाहियें. पहेली निसीही कहे बाद वोही काम करनेका है, वास्ते मकडीके जाले वगैरः जो जो आशातना हो सो पहेली दूर करकें और क्रिया करनी. मदिरकी आशातना दूर करनेमें ऐसा शोचे कि 'ये काम तो नौकरका है' तो ये बुरे परिणा-

मका कारण है. आपके वहा नोकर होवै तो नौकरकी मारफत काम करा लेवै, और नौकर न होवै तो आप खुदही आशातना दूर करे. अपने घरमें कुछ अनिष्ट वस्तु पडीहो तो वो तुरत निकालडालते हैं उसीतरह मंदिरमेंभी न करें तो प्रभुजीपर प्रेम घर जैसा न रहा, वही बडा दूषण है; वास्ते पहेली आशातनाऐं दूर करकें पीछे पूजा करनी. आशातना दूर किये विगर पूजन करनेका काम नहीं किये जैसा हो पडता है.

२ प्रश्नः—प्रभुजीकों जहांपर केसरके तिलक कियेजाते हैं वहांपर सुने चांदीके पतरे लगायेजाते हैं वो वाजब है या नहीं ?

उत्तरः—प्रभुजीकों सुन्ना चांदीके पतरे लगायेजाते हैं वो रीत अच्छी है, क्यों कि श्राविक श्रावकवर्ग बहुतसा केसर चडाते हैं उस्सें जा जहा पतरे नहीं, लगायेहुवे होते हैं वहांपर जिनबिंबमें खड्डे पडजाते हैं, और जो चकते-पतरे लगायेहुवे होते हैं तो केसर नहीं लागु होसकता है, उससें बिंब दुरस्त रहता है, वो बडा लाभ होता है, और पतरे न लगाये होवै तो बिंब बिगडजानेसें आशातना लगती है, वो बडा दूषण है फिर थोडी समझवालोंकों पूजा किस किस अगपर करनी वोभी खबर नहीं होती है उसकों वो पतरोंके निशानसें नव अंगकी पूजाभी सहजसें समझमें आती है ये फायदा है. मुख्यतासें तो अगमें खड्डा पडे नही ये लाभ शोचकर पतरे लगानेका योग्य लक्ष रखना और तमाम जिनबिंबकों वैसे पतरे लगादेना. खड्डे पडे पीछे लगाये करते पेस्तरसेंही लगामा कि जिस्सें आशातना होवेही नहीं.

३ प्रश्नः—पुष्पकी जगे केसरवाले चावल चडावे तो कैसा ?

उत्तरः—स्नात्र भनाते वक्त दूसरे फूल यदि न मिलसकै तो वैसे चावल चडानेमें कुछ हरकत नहीं; क्यों कि आपकी पुष्प चडानेकी भावना है; मगर पुष्प मिलते नहीं तो अपनी भावना पूर्ण करनेके बदलेमें केसरवाले चावल चडानेसें कोइ हर्ज नहीं

४ प्रश्नः—जिस जीवने मरणके समय शरीर वोसिराया नहीं वो शरीरसें शुभाशुभ जो क्रिया होवै उसका शुभाशुभ दोनु फल होवै या नहीं ?

उत्तर—जो शरीर वोशिराये विगर मरता है और उनके शरीरसें जो जो दुष्ट क्रियायें होती है उसके कर्म उन शरीरके मालिककों आते हैं. ऐसा भगवतीजीमें पांच क्रियाके अधिकारमें कहा है वास्ते हरएक प्रकारसें आयुष्यका ज्ञान मिलाकरकें मरन समय संथारा कर सब वस्तु वोशिरानी और वोशिरा करकें मरजानेसें आराधक होवै उससें तीसरे भवमें मुनी और सप्त भवमें श्रावक मोक्षमें जाता है फिर वो शरीरसें शुभ कर्म होवै उस सबधीभी वासुपूज्य स्वामीजीके चरित्रमें जो जो एकेंद्रियपनेसें शरीर भगवतजीकी भक्तिके काममें आये है, उसकी अनुमोदना की है वो देखनेसें अनुमोदना करनेसें शुभ कर्मकाभी लाभ होता है.

१५५ प्रश्न.—जो जो वस्तु वोशिरावेमें आती है वो इस भवके अत तक वोशिरानेमें आती ह तो अंत भवमें उसका पाप आवै या नहीं?

उत्तर—इस भवमें जो जो वोशिराते ह तो उनके ऊपरसें रागदशा छूट जाती है और रागदशा छूटनेसें उन वस्तुपर मेरेपनेकी सज्ञा नहीं रहती है, उससें उन वस्तुकी क्रिया उनकों नहीं जाती है और जिसनें यु वोशिराया नहीं उसकों रागद्वेषकी सज्ञा कायम रहती है, और वो सज्ञा कायम रहनेसें रागद्वेषके कर्म बधे जावे. और जिसने वोशिराया है उसकों दूसरे भवमें अव्रत प्राप्त होता है अव्रतकी क्रिया अव्रत हावै वहातक आवै, मगर सज्ञा सबधी नहीं आवै. सज्ञा उदासीन भावसें वोशिरानेसें उठ जाती है, वास्ते वोशिरानेवालेकों पाप नहीं आता है

१५६ प्रश्न—विवेक सो क्या?

उत्तर.—देवकों, अदेवकों, मुक्तिकों, ससारकों जडकों, और चेतनकों जानै और आत्माका तथा जडका क्या स्वभाव है? आत्माकों ग्रहण करने और अग्रहण करने योग्य क्या है? इस तरह जो जो द्रव्य है, उसके धर्म जानकर आपक आत्मासें जो जो परवस्तु जानै उसकों ग्रहण न करै उसमें मग्न न होवै, जडवस्तुका कर्त्तापना न करै, आत्माके धर्ममेंही आनदित रहै जडवर्गमें किंचित्भी राग करै सो जडकी सगती नहीं छूट गइ है, और किसी तरहसें परकों ग्रहण न कर एसी विशुद्धि नहीं बनी उससें

जो जो क्रिया करता है वो जडकी वृत्ति हटानेके लियेभी जडकी क्रियामें मग्न नहीं होता है आहार बिगर चित्त शांत नहीं होता उस लिये आहार करता है, मगर उसमें प्रसन्नता नहीं और बने वहांतक तपस्या करता है. आत्माका अणइच्छा धर्म चिंतवता है. जो जो पुरुष आत्मधर्म बतला गये है, उसके आधारसें वर्त्तमानमें जो आत्मधर्म बताते हैं इसका उपगार चिंतन करता है. आपकी आत्मदशा प्रकट नहीं होती उससें लघुता चिंतवते है ऐसे तत्त्वज्ञानी पुरुषोंकी सदा संगति करता है. जो जो आत्मधर्म निर्मल होता जाता है, उसीमेंही मात्र खुशवर्त्ती है उद्यम निमित्तभी जो जो सेवन करनेसें आत्मधर्म प्रकट होवै वैसाही सेवन कर रहे हैं विषयादिकके निमित्त आत्माकों घातकर्त्ता जान लिया है उससें उन निमित्तोंसें हमेश दूर रहता हैं, और जितना दूर नहीं रहा जाता वो दूर होनेकी मनोवृत्ति रहती है. जो जो काम करता है, उसमें जडकामकों जडपनेसें और आत्माके कामकों आत्मपनेसे जानता है.

१५७ प्रश्नः—शांतपना सो क्या ?

उत्तरः—कोइ शांत-पुरुषकों उपद्रव करै-मारै-कूटै-अयोग्य वचन बोले, जो भूल होवे सो कहदेवै, कोइभी अयोग्य काम किया होवे तो कहकर निंदा करै या बिगर कारणसे निंदै, तोभी उनके ऊपर द्वेषभाव न होवे. उसकों मारनेका या कटुवचन कहनेका भाव न उठै और उसका बुरा करनेका भावभी न होवै, क्यों कि शांतपुरुषने कर्मका स्वरूप जानलिया है कि इस शरीरने मार खानेका कर्म बांधाहोगा तो मारता है. गालिया खानेका कर्म बांधा है तो गालि देता है. निंदनीकपणेका कर्म बांधाहोगा तो निंदता है. ये जीव तो निमित्तमात्र है, इसमें इन जीवोंका क्या दोष हैं ! ऐसें आत्मामें चिंतन कररहा है, उससें कोइ वैसे जीवपर द्वेष-खेद नहीं आता है और चिंतवता है कि खेद करुंगा तो पीछे नये कर्म बंधे जायेंगे तो फिर आगे उदय आनेसे ऐसेंही भुक्तने पडेंगे, और समभावसें भुक्त लेउंगा तो ये कर्मकी निर्जरा होवेगी फिर स्वाभाविक धूप लगता है, ठंडी लगती है, हवा चलती है, नहीं आवे तो वो सब ऋतुका स्वभाव जान-

लेवे, मगर उसमे विकल्प न करे आहारपानी वस्त्र वगैर' जो कुछ जर रतकी चीज हो, पर न मिले तो उसका बिलकुल विकल्पही नहीं मात्र अंतराय कर्मका उदय विचार लेवे, और अपने आत्मस्वरूपमेंही आनंदित रहे अनुकूलतामें प्रसन्नता नहीं और प्रतिकूलतामें अरति नहीं जडभाव जानलेवे वो पुरुषका शांतपना कहाजाता है वास्ते उत्तम पुरुषको ये दशा लानी योग्य है.

१५८ प्रश्नः—दांत सो क्या?

उत्तर —पचेंद्रिय वश की है कोइभी इंद्रि छूटी नहीं आहारपानी फक्त शरीरको आधार देनेकेलिये देते है ओर वोभी चाहियें जितना हरकोइ पुद्गल मिले है तो देते हैं उसमें अच्छा बुरा नहीं देखते मात्र शरीरको व्याधि उपद्रव न होवे वैसे पुद्गल ग्रहण करते हैं इसीतरह फरसद्रियको वस्त्र मिलते हैं वो मुलायमदार या कर्रे मिले उन दोनुमें समभाव है जानता है कि यह शरीर मेरा नहीं, तो मुलायमदार और कर्रे वस्त्रकामी मेरे विकल्प क्यों करना? ऐसें पचेंद्रियके विषयमें चिंतन कररहा है. कोइभी इंद्रिको पोषन करनेका भाव नहीं कोइभी विषय जोग करता नहीं विषयपर उदासीनभाव हुवा है, उससें दिलको खींचकर नहीं रखना पडता है आत्माकी दशा सहज प्रकट हुइ है उनके सबबसें इंद्रियोंके विषयका मन होताही नहीं—उन पुरुषको दांत कहाजाता है

१५९ प्रश्न.—कामका जय सो क्या?

उत्तर —स्त्रीको पुरुषका अभिलाष, पुरुषको स्त्रीका अभिलाष और नपुसकको स्त्री पुरुष दोनुका अभिलाष—इसतरह कामकी इच्छा है अपने आत्मस्वरूपका जानपना हुवा है उससें पर स्वरूपमें नहीं वर्त्तता है, वास्ते सहजसें अभिलाषा बंध पडगइ है—होतीही नहीं स्वप्नमेंभी स्त्री याद नहीं आती स्त्री सामने दृष्टि पडती है उसीवक्त अपनी दृष्टि खींचलेता है, मगर नजर लगाके देखता नहीं जैसें सूर्यके सहामने नजर पडती है तो ताप न सहन होनेसें फौरन पीछी हठालेते हैं वैसें निष्कामी पुरुषनें स्त्रीका स्वरूप देखना दुःखकारी मानाहुवा है, उससें सहजसेंही नजर पीछी हठजाती

है स्त्रीका सगर्भी नहीं करते और कदाचित कोइ स्त्री चालत करनेकेलिये यत्न करें तोभी वो निष्फल होती है. कभी स्पर्श करलेवै तोभी पुरुषचिन्ह जागत होताही नहीं,. और उसकी दशा वदलातीही नहीं जिसतरह सुदर्शन शेठकों अभयाराणीने कितनेही उपसर्ग किये, पुरुषचिन्हकों बहुतसी विटंवना की तोभी नपुसक जैसा कायम रहा ऐसे पुरुषने काम जीतलिया है ऐसा कहाजावै, वास्ते काम जीतकर ऐसी दशा बनानी योग्य है.

१६० प्रश्नः—मुक्तिमें क्या सुख है कि मुक्तिका प्रयास करना ?

उत्तर'—मुक्ति जैसे सुख इस दुनियामें नहीं, और वो विचार करोगे तो तुमकों ससारमें खात्री होगी ससारमें रहाहुवा जीव अज्ञानतासें संसारमें सुख मानता है जो सुख ससारमें होता है वो तपासकें देखो–सारादिन ससारी मौज शोख व्यापार करता है, उन व्यापारमेंसें फरसुद मिलती है और जब कुछभी काम न हो तब सोनेका वख्त मिलता है.- और जब सोता है तब प्रसन्न होकर कहता है कि मुझकों निवृत्ति मिली. लेकिन लडके वगैर कुछ सोरगुल मचादेवै तो सोनेवाला कहेगा कि मै आनदसें सोताहु वास्ते अभी मुझकों क्यु पीडा देतेहो ? वो लडके जावे उतनेमें फिर कोइ नइ उपाधि आ खडी रहवै–कामकी चिंता याद आवै, तो निंद नाहि आती. कुछभी वात यादीमें न आवे तो निंद आती है.

अब वाचकवर्ग ! विचार करो कि जितनीवक्त कामकी निवृत्ति मिली, उतना वक्त सुखका मिला कामके वक्त अज्ञानतासें सुख मानताथा वो सुख झूठाही था क्यों कि उसवक्त सुख होता तो आनदसें सोया उसवक्त सुख नहीं मानता ? और आनदित नहीं होता ? लेकिन जीव कार्मेंसें फरसुद पाता है तबही आरामसूचक शब्द मुंहमेंसें निकलता है. वास्ते इस ससारमेंभी ससारके कामोंसें और विकल्पोंसें रहित होता है तबही सुख होता है तो मुक्तिमें तो कुछ कामही नहीं है काम करनेका नहीं तो विकल्प चिंतन करनेकाही नहीं, उससें सारा वक्त सुखमेंही जायगा. वास्ते मुक्तिके बराबर इस फानि दुनियोंमें सुख हैही

नहीं फिर इस जहांमें अज्ञानतासें पदार्थ देखकर, जानकर सुख होता है अच्छे मकान, आभूषण और वागबगीचे देखकर खुशी होता है, लेकिन उसके साथ कोइ अंधा होवे तो वे पदार्थ उसके देखनेमें न आनेसें नाखुश होता है, मगर अंधेकों देखनेवाला वो हकीकत सुनावे-समझावे तब उसकी समझमें आता है तो उससे जो खुश होता है सोनेकी बिछायत मुलायमदार होवे और अंधा हाथ फिरावे तब मुलायमदार मालूम होवे उससें वो अंधा खुश होता है अब शो चलो कि-कितनेक पदार्थ देखनेमें समझनेमें आते हैं तब उसीका सुख होता है, मगर जो देखा-समझा नहीं उसका सुख होनेका नहीं, लेकिन सिद्ध महाराज तो जगतभरमें जितने पदार्थ हैं जो सब रूपी अरूपी जानकरकें देख रहे हैं अपन तो सिद्ध महाराजजीके अनंतमें भागकाभी नहीं जानते हैं वे अपनमें अनंते पदार्थ जान देख रहे हैं, तो अनंत सुखभी सिद्ध महाराजजीकों है वो सिद्ध होता है

यहापर कोइ शंका करेगा कि नजरसें लड्डु देखे, मगर खाये विगर क्या सुख मिले ? उसके जवाबमें यही खुलासा है कि-लड्डु खानेमेंभी रसेंद्रिकों विषय ग्रहण करनेकी शक्ति न हो तो स्वादका सुख नहीं मिलता है जेसें कि कुछ रोग हुवाहोता है तब नमकीन चीजकों फीकी बतलाता है और फीकीकों नमकीन बतलाता है, ऐसी विषय लेनेकी शक्ति बिगडजाती है तब लड्डु कैसे हैं ? वो विषय लेनेकी शक्ति न हो उसकों लड्डु अच्छे बुरेका सुख नही होता है जिनकों लड्डुके अच्छे बुरे विषय समझनेकी शक्ति हो वही लड्डुका सुख जानसकता है वास्ते खानेसें सुख नहीं-लड्डुका स्वाद जाननेसें सुख है. निंदमें कोइ मनुष्यके मुँहमें मिसरी डालदेवै, लेकिन उसे कुछ मिसरीका सुख नहीं मिलता दर्दी बेहोशमें हो उसके मुहमें अमृत रक्खे तो कभी निकलजायगा, मगर समझमें आये विगर अमृतका सुख नहीं मिलता, वास्ते जो जो वस्तु जाननेमें आती है उनकाही सुख जगतमें है मुक्तिमें तमाम वस्तु जाननेमें आती है उससें तमाम सुख है फिर क्षुधातुर जन खानेमें सुख

मानते है. भोजनसें तृप्त हुवे बाद जबराइसें कुछ खिलायाजाता है तो वो तृप्तिवतजन नाखुश होता है, लेकिन सुख नही मानता है, वैसेंही मुक्त आत्माकों भूख लगतीही नहीं उससें भोजन करनेकी इच्छा होतीही नही. तृप्त हुआ जन खानेकी इच्छा नही करते हैं हरहमेशा तृप्तही है. कोइरोज भूख लगतीही नहीं और खानेकी इच्छा होती नही. इच्छा यें जडकी संगतिसें होती हैं, वो जडकी संगति छूटगइ है और स्वात्मदशा है वैसी प्रकट हुइ है. स्वदशामें जडकी किसी प्रकारकी इच्छा हैही नहीं. विकल्पभी जहातक जडकी संगति होवे वहातक होते है. सिद्धमहाराजजीकों वो जड संबंध नहीं, उससें किसी प्रकारका विकल्प नहीं. जगतमें संसारी जीवकों संसारमें है वहातलक विकल्प है और सर्वथा संसार छूटजानेसें सिद्धमहाराजजी हुवे कि विकल्पका नामभी नही. वहा निर्विकल्पदशाका पूर्ण सुख है सो ऐसा है कि मुखसें कहाभी नहीं जाता. सारे जगतका सुख इकट्ठा करें उसकरतेंभी अनंतगुना सुख है वो सुखका वर्णन केवलज्ञानी मुखसें आयु पर्यंत न कहसके उतना है, वास्ते सिद्धके सुखका पार नहीं मगर जीव आत्मसुखका अंश सम्यग् पावेगा तब उसकों अनुभव मिलनेसें समझसकेगा कि सिद्धजीकों कितना सुख है वो प्रत्यक्ष मालूम होवेगा.

१६१ प्रश्नः—मनुष्य मरणके समय संथारा करे सो किसतरह करे? और उसमें क्या चिंतन करे? और उससें क्या लाभ होवे?

उत्तरः—वर्तमान समयमें आयुपकी चोकस खबर नहीं पडती है, उस्सें जावजीवका संथारा नहीं बनसके; क्यों कि भत्तपच्चख्खाण पयन्नेमें कहा है कि—केवलज्ञानी—मनपर्यव ज्ञानी—अवधिज्ञानी और पूर्वधर मुनीराजके कथनसें वा निमित्त शास्त्रसें, वा देववाक्यसें आयुपकी खबर पडे और प्रतीति होवे तो जावजीवका अनशन करे और ऐसे महापुरुषोंका इस कालमें विरह होनेसें आयुपका निर्णय नही हो सके तो सागारी अनशन करे. सागारी अनशन यानी एक दिन वा दो दिन, एक पहेर वा दो पहेर यावत् दो घडी—चार घडी वा अभिग्रह रख्खे कि मुट्ठी वालकर नौकार

गिनों वहातक सर्व आहारका त्याग और सब संसारी काम करनेका त्याग है, कुछभी पापारभ काम नहीं करु-इसतरह सथारा करनेका विधि सबने कहा है वो औसर न मिलै तो द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव देखकर उचराना उसके आलेवेकी विधि नीचे मुजब है'—

अहन्न भंते तुम्हाण समीवे, भव चरिम सागारिय पच्चरखामी, जइमे हुज्ज पमाओ, इमस्स देहस्स इमाइ रयणीए (किंवा) इमाइ वेलाए आहारमुवहिदेह सव्वतिविहेण वोशिरिय १ अरिहत सक्खिय, सिद्ध सरिखय, साहू सरिखय, देव सरिखय, अप्पसरिखय, उवसपज्जामि, अन्नथ्थणा भोगेण, सहसागारेण, महत्तरागारेण, सव्वसमाहिवत्तिया गारेण वोसिरामि २ नोकारपूर्वक ३ वार उचरावै. विशेष सागारिक-अहन्न भंते तुम्हाण समीवे, सागारिय अणसण, उवसपज्जामि, दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, दव्वओण इम सागारिय, अणसण. खित्तओण, इच्छवा, अनिच्छवा, कालओण, अहोरत्तवा, बीयादिन्नवा, तइय दिन्नवा, पासखमणवा, मासखमणवा, भावओण, जावगहण न गहिज्जामि, जावछलेण, नछलिज्जामि, जावसन्निवाएण, अन्नेणय केणइ रोगाय केण एसपरिणामो नपरिवडइ तावमेय इम सागारिय अणसण उवसपज्जामि, तिविहपि आहार असण खाइम साइम अनत्थ० सहसा० महत्त० सव्व० वोसिरामि० पाणहारगठ सहिय, पच्चरखामी, अन्न० सहसा० महत्त० सव्व० अरिहत सरिखय, सिद्धस० साहूस० देवस० अप्पस० उवसपज्जामि नित्थारपारगहोह ज ज मणेणबद्ध, ज ज वाएणभासिय पाव, ज ज काएणकय, मिच्छामिदुक्कड तस्स १ अरिहतो महदेवो, जावज्जीव सुसाहुणो गुरुणो, जिणपन्नत तत्त, इयसमत्त मए गहिय. २ ये सब आलावा नौकारपूर्वक तीन दफै उचराना १

इस आलावेमें प्रथम पाठ वो जावजीवका सथारा करनेका है और थोडे कालके वास्ते करनेका पाठ विशेष सागारिक कहा है वहासें है वर्त्तमान समयके जीवोंको उचरना अनुकूल होवै वैसे उचरै (मैंने अनशन विधिके पत्रमें जैसा था वैसा लिखा है) महानिशीथजी सूत्रमें कहा

है कि जो करना सो इरियावही पडिकमीके करना, वास्ते वक्त मिले ता इरियावही पडिकमी जघन्य मध्यम उत्कृष्ट ये तीनमेंसें जो बन सकै सो करना देववंदन करके गुरुवंदन कर ये पाठ उचारना तो विशेष श्रेष्ठ है, मगर जैसा औसरहो वैसा करना औसर मिले तो सब जीवके साथ खमतखामणे कर ले. मुनि होवै तो मुनीके और श्रावक होवै तो श्रावकके व्रत उचरै, और चउसरणपयन्ना और आउरपच्चख्खाण, भत्तपच्चख्खाण, संथारापयन्ना, आराधनाम्हर्णिक, आराधनापताकाका अध्ययन करै वा सुने उससें अध्यवसाय बहुतही सुंदर होवैगा चउसरण आउर पच्चख्खाण पयन्नादिक सुननेसें समाधि मरण होता है उसका मुझको अनुभव है. आयुष आ रहा होवै तो मरणसे तो नहीं बचता, मगर रोग शांत पडता है और धर्मश्रवण करनेसें चित्त पिरोया जाता है वो मैनें देखा है. वास्ते वो पयन्नका अभ्यास मरणके वक्त जरुर करना. वो पयन्नेमें ऐसा भावार्थ है कि धर्ममें जाव जरूर दृढ हो जाता है, और आत्मामें अच्छी भावना होती है. और वोभी इसतरहकी होती है कि- अहो! मैंने पैस्तर इस भवमें और पिछले भवमें पाप किये हैं वा जिससें पाप होवै वेसा मकान-दुकान-खेत्र वगैरः और कुदाले-पावडे-बरतन-शस्त्र-तलवार प्रमुख हरकोइ पापोपकरण [ जिन वस्तुसें पाप होवै वैसे पदार्थ ) बनाये है वो सब वोशिराता हु. कोइभी पुद्गलीक वस्तुके साथ मेरेंपणेका सबंध मान लिया है वो सब वोशिराता हुं कोइ वस्तुपर मेरा कुछभी राग रहे तो वो रागवाली वस्तुसें पाप होवै तो उसपापकी क्रिया मुझको आवै, वास्ते कुल जडपदार्थपरसें मेरे ममत्वभावको त्याग करता हु-कोइभी वस्तु मेरी है ही नही. मेरी वस्तु तो मेरा आत्मधर्म है और जो जो पुद्गलीक पदार्थ है उनको अज्ञानतासें मैंने मेरे मान लियेथे उससें अज्ञानपनेसें अनेक पाप उपार्जन किये अब पुन्योदय जाग्रत हुवा उससें मैं कुछ वीतरागजीका मार्ग जाना कि वो सब चीजों-जडपदार्थके साथका मेरा संबध तपासनेसें मालूम हुवा कि कोइभी तरहसें सबंध रखना लायक नहीं वास्ते मेरे अज्ञानपनेसें जो जो भावने मेरापना मानाथा

वो त्याग करता हु और उस पापकों निंदता हु मैंने अज्ञानतासें अनादिकाल तक ये शरीर धनकों मेरा मान लियाथा, उस्सें मैंने चारोंगतिमे भ्रमण किया और अनेक दु ख भुक्ते वास्ते अब मेरे आत्मा सिवा स्त्री—पुत्र-पुत्री जो जो मेरे मान लिये हैं उन सबकों अज्ञानता और अज्ञान भावकों वोशिराता हु और एक आत्माका अवलबन ग्रहण करकें मरणका डर छोडकर अदीनतासें मेरा आत्मा अविनाशी है उसकों आलवन लेता हु उसके सिवा मेरा कुछ पदार्थ नहीं. आत्मा आपके आचारमे रहकरकेंभी मरतों है और अज्ञानतासेंभी मरता है मरण किसीकों छोड देता नही, तो अज्ञानपनेसें मरनकरनेसें आत्मा कर्म करकें लिप्त हो जावे और भव भवके अदर उसकों अनेक प्रकारके दु.ख भुक्तने पडें, वास्ते मेरे आत्माका आचार जो जो शरीरकों हावे सो जानना, मगर वो दु ख सुख मुझकों होता है ऐसा मानलेना अयोग्य है. इसलिये मै मेरे आत्मस्वभावकों जाननेरूप रहकर मरन करु कि जिस्सें मेरा आत्मा निर्मल रहवे और मलीन न होवे

यहापर कोइ शका करेगा कि प्रत्यक्ष दु'ख होवे है और वो शरीरकों होता है ऐसा क्यों मानाजाय ? उसके समाधानमें यही है कि जहातक अपना आत्मस्वरूप नहीं जाना और उसका स्पर्शज्ञानभी न हुवा वहांतक तुमारे दिलमें मुझे दु ख होता है ऐसा लगेगा, मगर,तुमकों तुमारे आत्मस्वरूपका ज्ञान अनुभवगम्य होवेगा–जैसें प्रभुजीने फरमाया है वैसाही मेरा आत्मस्वरूप है, वो न्याययुक्तिसें करकें चित्तमें शुद्ध होगा कि तुमारे भाव ऐसे होवेंगे कि–अब मेरे आत्मधर्मसे दूसरीतरह में नहीं चलुगा ये शरीर प्रमुख सब जड पदार्थ हैं इसके साथ मेरा कुछभी सबध नहीं ऐसा होवेगा .पीछे शरीरकों कोइ काट देवेगा या रोगकी वेदना होवेगी, उसमें तुमारा चित्त नहीं जायगा. तुमारे दिलमे मुझकों , दु ख होता है ऐसा आयेगाभी नहीं जैसें कि कोइ मनुष्य नाटिक देखनेकों जावे और सारी रात जगे, मगर निंद नहि लीगइ उसका खेद दिलमें नहीं आवेगा, खडे खडे पॉव दुखे, मगर नित्राहके हर्षसें वो दु ख ध्यानमें

नहीं आता. आभूषण पहने उसका भार पहननेके सुख अगाडी मनमें नहि आता, व्यापारमें पैदाश होवै उसकी पीछे मिहनत करनी पडे उसका दुःख निघाहमें नहीं आता. उसी वजहसें तुम तुमारे आत्मसुखके रागी बनोगे–आत्मसुखमें मग्न रहोगे तो शरीरकों वेदना होवेगी वोभी मुझकों होती है ऐसा खियाल नहि आने पावेगा. जहातक शरीरके दुःखमें मग्न लग्न होता रहता है, वहातक तुमारा भाव तुमारे आत्मभावपर तुमारी दशा नहीं हुइ उससें मश्न होता है कि–जब तुमारी दशाके सन्मुख होवोगे तब तो तुमारे मनमें आवेगा कि मैंने अज्ञानपनेसें जो जो कर्म बाधे हैं वो कर्म शरारमें रहकर बाधे हैं, सो शरीरकों भुक्ते विगर छुटकारा नहीं और आत्मा निर्मल होनेका नहीं. पुनः वो दुःखकों दुःख मानुगा तो फिर नये कर्म बधेजायेगें और आत्मा मलीन होवेगा. शरीरके सुख दुःखकों मुझकों सुख दुःख होता है ऐसा मानलैना वो मेरे आत्माका धर्म नहीं. मे सच्चिदानदहुं, अनत सुखका धणीहु, अरागीहु, अद्वैपीहुं, अछेदीहु, अभेदीहु, अगमहु, अलखहुं, अगोचरहु, पूर्णानंदहु, सहजानंदीहु, अचलहु, अमरहुं, अमलहु, अतिंद्रियहु, अशरीरीहु, अविनाशिहु, ये मेरा स्वरूप है. तो मेरा आत्मा विनाशवत नहीं. मरनसें शरीरका नाश होवेगा उससें में किसलिये डर रखु ? शरीर तो सडने पडने विद्धसनेके धर्मवाला है वो विनाश होवें उसमें मुझे क्यों चिंता करनी चाहियें ? मेरा आत्मा अमर है, उससें मरनेका नहीं, वास्ते मुजकों मरनका भय नहीं. जितना जितना भय आवै गो तो अज्ञानदशा है सो मेरे अब अज्ञानदशाके विचार किसलिये करना ? मुझे आत्मधर्ममें रहना वही उत्तम है पूर्वभवोमें अज्ञानतासें मरन किये और जीव भवचक्रमें भटका, अनेक प्रकारसें नरकादिककी वेदना भुक्ती, उवे शिरसें गर्भावासकी वेदना भुक्ती, इस भवमें भाग्योदयमें वीतरागका धर्म मिला जिससें मैने मेरे आत्माका स्वरूप जाना अब रोगादिककी वेदनासें मैं नहीं डरता हु. रोगके औषध अनेक प्रकारके करुगा तोभी जो कर्मकी स्थिति पकी नहीं तो वहातक रोग मिटनेका नहीं रोगका सञ्चा औषध ता समभाव है.

जो समभावमें रहुंगा तो जो जो वेदना होती है वो सो पूर्वके कर्म भुक्ते-
जाते है उस्सें आत्मा निर्मल होता है, तो रोगकी वेदना मुझे होती है
एसा विकल्प किसलिये करु? ऐसा शोच में रोगका विकल्प बिलकुल
न करु तो वेदनी कर्मकी स्थिति और रस कमती होवेगा. निकाचित
मध्यम स्थानवृत्ति होगी वो शिथिल होजायगी. शिथिल कर्म होंगे वो
नाश होजायेंगे, वास्ते मेरे आत्मस्वभावमें रहना वही औषध है दूसरे
औषधका अभिलाष किसलिये करु? मेरे कुटुंबादिककी फिक्र करनी
वोभी व्यर्थ है क्यों कि सब जीव आप अपने पुन्यानुसारसें सुख भुक्तते
हैं किसीको कोइ सुख दु ख करनेकों समर्थ नहीं, तो मैं किस वास्ते
शिरफोड करु? अगर मैं क्या करसकताहु? फिर अनादि काल गया
वो भवोभवमें कुटुंब मिले तो मैं कितने कुटुंबकी चिंता करुगा? और पूर्वमें
अज्ञानतासें, कर्मके स्वरुप नहीं जाननेसें चिंता करताथा; मगर इस
भवमै कर्मके स्वरुप जानलिये उस्सें जानताहु कि कुछ सुख दु'ख कर्मा-
नुसारसें होते हैं, वास्ते मेरी मुझे चिंता करनी या पिरायेकी फिक्र करनी
फजूल है म मेरे आनदमेंही वर्तुंगा मेरी कुटुंब चाकरी करता है वोभी पूर्व
समयमें पुन्य उपार्जन किया है उसके फल हैं. मैने उन्होंकी चाकरी की
है, और वै जीव मेरी चाकरी नहीं करते है सो मेरे पापोदयके फल हैं.
उसमें उन्ह जीवोंपर द्वेष करना अयोग्य है मरन समय कीसी जीवपरभी
द्वेष करनेसें वो जीवके साथ वैरभाव होता है. वास्ते मेरे अब जो जो
सुख दु ख उत्पन्न होवे सो समभावसें भुक्तना पूर्वमें मुनीओंने, शिरपर
खदिरांगार भरदियेथे तोभी वो वेदनाकी तर्फ नजर न कीथी, मेतार्य
मुनीके शिरपर चमडेकी रस्सी लपेटकर बहुत दु'ख देनमें आया तोभी
समभावमें रहे, वास्ते इन मरणकी वेदनाभी उन्ह मुनिमहाराजोंकी तरह
समभावसें भुक्तनी. किंचित्भी परभावमें मेरे प्रवेश न करना और मेरा
चित्त परभावमें जायगा तो आत्मा गिर्फतार हो जायगा. फिर मैंनें शरीर
धन-कुटुंब सबकों वोशिराया है, उस्में मेरा चित्त किसीमें जायगा तो
मेरी आराधना निष्फल हो जायगी इसलिये ज्यौं राधावेध साधनेवाला

राधावेध साधनेमें तत्पर रहता है, त्यौं मेरेभी मेरे आत्मस्वभावमें रहना और उसका शोच करनाऔर उसीमेंही कायम रहना. इसतरह आराधनपनेसें मरन करनेसें अवश्य तीसरे भवमें या सातवे भवमें जीव सिद्धि वरता है ऐसें प्रभुजीने आगममें फुरमाया है. वास्ते प्रमाद छोडकर फेवल मेरे आत्मामें वर्त्तनाही योग्य है अहा! प्रभुजीने यही मार्ग कहा. है. यह मार्ग ग्रहण करनेसें आत्माकों आनद होता है कि अब मेरा भवभ्रमण बध पडेगा थोडासाभी पुद्गलपर राग धरुगा–धनकी ममता करुगा या कुटुंबपर राग रखुगा तो मेरी आत्मदशा बिगड जायगी, और भवभ्रमणा बढजायगी. और मैं मेरी आत्मदशामें रहुगा तो थोडे कालमें मेरी कार्यसिद्धि होजायगी. केसरी चोर जैसे बडे बुरे चोरी वगेरः अकार्य करनेवालेमेंभी समभाव अंगीकार किया तो फौरन केवलज्ञान प्राप्त हुवा तो अब मेंभी मेरे आत्माके उपयोगमें रहु. मेरे आत्मगुणपर्यायमें मैं विचार करु. ज्यौं ज्यौं मैं स्वगुणमें लीन होउंगा त्यौं त्यौं कर्म नाश होवैगे, और मेरा आत्मा निर्मल होवेंगा. फिर मेरे आत्माके अपूर्व भाव प्रकट होवेंगे मेरे आत्माके सहज सुखका अनुभव होवैगा. और वैसा होनेसें पुद्गल सुखकी वल्लभता नाश पावैगी परसुखकी इच्छा नाश होगा त्यौं त्यौं कर्म हठते जायेंगे, उससें विशेष विशुद्धि होगी. पीछे चाहेसो वेदना होवैगी–कोइ काटडालेगा–कोइ मारेगा तोभी कुछ विकल्प नहीं आवैगा जहांतक आत्माकी मलीनता है, वहांतक शरीरादिककी विकल्पना आवेगी; वास्ते अब तो मेरे अविनाशी सुखकों भारमें यह मरणावड साधनेकों तत्पर होउ. परभावपर उदासीन दशा मेरी प्रकट होवेकि जिस्सें कुटुवादिकपर चित्त नाहि जाने पावै. पूर्व समयमें मुनियोंने अपनी आत्मदशा चिंतन कर केवलज्ञान प्राप्त कियाथा, वैसी दशा अबतक मेरी नहीं हुइ है; तोभी थावकदशा मुजब विशुद्धि होवैगी तथापि सातवे भवमें मुक्तिसुदरी वरुगा वास्ते मेरे आत्मानद सिवा दूसरा कोइभी आनद जगतमें नहीं. जो जो बने सो जानना यही मेरा धर्म है. शरीरादिकमें जो जो उपाधि होती है उससें मेरे कर्म क्षुक्तमान होते हैं और मेरा आत्मा निर्लेप

होता है; इससे वोभी आनद होनेका कारण है, मै किसलिये दिलगीरा होउ ? या विकल्प करु ? भगवान् श्रीमत् महावीरस्वामीजीकों सगमे देवने अत्यत उपसर्ग किया, तोभी समभाव नहीं छोडा वोसीतरह मैंभी सम भावमें रहु कोइभी चीज मेरी नहीं है तो में किस बावतका विकल्प करु ? इसतरह निर्विकल्पतासें सर्वथा रहेगा तो केवलज्ञान पाकर सिद्धि वरेगा. और उस्सें उतरती विशुद्धिवालेभी गुणस्थानककी हदमें रहवेंगे तो सातवे भवमें सिद्धि वरेंगे वास्ते सथारा करना और समभावसें रह-नेका उद्यम करना सर्व मगल मागल्य, सर्व कल्याणकारण, प्रधान सर्व धर्माणा, जैन जयति शासन फिर भत्त पचरखाणमें सथारा करने-वालेकेलिये गाथा ४१ वीमें शीतल समाधिके वास्ते नागकेसर, दालची-नी, तमालपत्र, इलायची और मीसरी ये दूधमें डालकर गर्म करकें ठडा हुवे बाद अनशन करनेवालेकों वो दूध पीना, इस्सें उसकों शीतलता रहती है–इस मुजब कहा है श्रावक धनवान होवे तो सप्त क्षेत्रमें धन व्यय करकें–देवगुरुकों वंदन करकें अनशन करे. अनशनका लाभ उस पयन्नेमें बहुतसा कहा है. इस मुजब सामान्य अनशन विधि है.

१३२ प्रश्न—आत्मारामजीमहाराज–विजयानदसूरीजीकों प्रश्न लिखेथे उन्होंका क्या जवाव है ?

उत्तर.—आत्मारामजीमहाराजका पत्र नीचेके लिखान मुजब आयाथा—

शहर अवाला सवत् १९५१ के भादो कृष्ण ११ रविवार–पूज्य-पाद श्री श्री श्री १०८ श्रीमद्विजयानदसूरीश्वरजी–आत्मारामजी महारा-जजी आदि साधु १० के तर्फसें धर्मलाभ बचना

भरुच वदरे श्रावक पुण्यप्रभावक देवगुरु भक्तिकारक शेठ अनूपचद् मलुकचद वगैर अत्र सुखशाता है धर्मध्यान करनेमें उद्यम रखना तुमारी चोपडी तपासकर पीछी भेजदी है वो पहुचनेसें पहुच लिखना. तुमारे लिखेहुवे प्रश्नोंका जवाव नीचे मुजब है —

१ केवलज्ञानीमें पाच इद्रि प्राण वर्जकें बाकीके पाच प्राण जानना, क्यों कि केवलज्ञानी महाराज केवलज्ञानसें सव पदार्थ जानते हैं. जितनी इद्रियोंका काम नहीं उससें वो प्राण प्रवर्त्तते नहीं.

२ केवलज्ञानीमें उदारिक, तेजस और कार्मण यह तीनुं शरीर और मन वचन काया यह तीनु योग एक समयमे प्राप्त होवै, परतु मनयोगमें द्रव्य मन समझना.

३ चय उपचयकों प्राप्त होवे और औदारिकादि वर्गणाका बनाहुवा होवै वो शरीर और शरीरका व्यापार जो काययोग समझना.

४ तीनु योगकी स्थिति अतर्मुहूर्त और अवगाहना शरीर प्रमाण.

५ जहा शरीर होवै वहां काययोगकी भजना. शैलेशि अवस्थामें कायाका व्यापार न होवै उससें.

६ शरीर बंधकभी है और अबंधकभी है वो अबंधक शैलेसि अवस्थामें.

७ तेरहवे गुणस्थानमें नोसज्ञि नोअसज्ञि.

८ केवलज्ञानी महाराजकों आहारादिक चार संज्ञामेंसें कोइभी सज्ञा न होवै.

९ कायवल नाम शरीरका सामर्थ्य है. और स्पर्शेंद्रि शीत उष्णादिककी परीक्षा करनेवाली है.

१० ज्ञानीकी अवगाहना आत्म प्रमाण.

११ तीर्थकरजीके वचन, केवलज्ञानीकों कोइभी ज्ञानपनेसें न मणमें क्षायकभावका ज्ञान है उस्सें मणमना ये क्षयोपशमका धर्म है.

१२ देवताकों आहार करनेके वक्त कोइ देखसकै और कोइ न भी देखसकै.

१३ जीव आहार लेवै सो शरीर लेवै और इद्रियें तो फक्त रसादिकका ज्ञान करनेवाली हैं.

इसतरहका पत्र महाराजजी साहबका था. यह जवाब विजयानंदसूरीजीके सिवा दूसरेसें लिखने बडे कठिन थे. वाचकर हम बडे खुश हुवे. और इस किताबमें दाखिल करदिये गये.

१६३ प्रश्नः—मरणके वक्त समाधिमें चित रहै उस वास्ते कोइ जाप करनेका कहा है ?

उत्तर.—लोगस्सके कल्पमें ॐ ॐ अनराय किनिय बदिय महीया जेए लोगस्स उत्तमा सिद्धा, आरुग्ग बोहिलाभ, समाहिवर मुत्तम दिंतु. इस मंत्रके १५००० जप करना धूप दीप करके स्थिर आसन रखना. खुजाल आवे-मच्छर काटे तोभी उचा हाथ न करना ( चलितासन न रखना. ) मालापर नजर लगानी मगर फिरानी नहीं. जीभ होठ गिननेके वक्त न हिलाना एक ध्यानसें गिनलेनेमें मरनके वक्त समाधि रहवेंगी ऐसा लोगस्स कल्पमें कहा है. बीमारीके वक्तमें इस गाथाका अवश्य ध्यान रखना आउर पचख्खाण पयन्नेमें कहाहै कि-बारह अंगके जाननेवालेभी मरनेके वक्त विशेप ध्यान नहीं करसकते हैं उससें एक गाथाका ध्यानभी भवसमुद्रकों तिरानेवाला है, वास्ते वीतरागके धर्मकी हरकोइ गाथाका ध्यान धरना समाधीमें रहनेकी भावनाभी जीवकों तिरानेवाली है वास्ते ये जाप करलैना बहुत फायदेमद है

१६१ प्रश्न'—साधारण द्रव्यसें धर्मशाला बनवाइ गइ हो उसकों श्रावक वापरे या उसमें संघ वगैरःको जीमावे तो श्रावककों मुनासिब है ?

उत्तर'—धर्मशाला बनवाइगइ है वो श्रावकके उतरने-विश्रामके लियेही बनी है. उसमें मुकाम करनेका कुछ बाध नहीं; लेकिन अपनी अपनी शक्ति मुजब कुछ साधारणमें रकम-पदार्थ देना चाहियें. श्राद्धविधिके पत्र ११० में साफ साफ कहागया है कि-कमती किराया देवे तो मकट दोष है. क्यौं कि धर्मशाला बनवानेवालेकी दीर्घ कालतक एक जैसी स्थिति-हालत नहीं रहती है, तो उस धर्मशालेकी मरामत वगैरःका खर्च कहांसें निकालना ? वास्ते श्रावक दे जावें तो वो मकान अच्छी हालतमें रहने पावे. फिर स्वामी-भक्ति करनेका पैसा जमा करगये हैं उसका भोजन पदार्थ बनवाकर भोजन करना उसमें कुछ हरकत नहीं है; परतु स्वामीका माल तृष्णापनेसें इंद्रियोंके विषयके वास्ते अतिशय आकंठतक न खाना फक्त स्वामीभाइका दिल रखनेकेलिये जीमनेकों जाना है उससें जीमानेवालेका बहुत मान करते हुवे जो वस्तु हाजिर हो वो निर्वाह रीतिसें जीमलेवें, वो हर्जा नहीं. मगर उसके कार्यभारी हो उसमेंसें कोइ चीज घरपर ले

जावे या अपने स्नेही संबंधी वसीलेदारोंको देदेवे या हरकिसी प्रकारसें अपने ससारी काममे साधारणकी चीज वपरासमें लेनी या पैसा विगाडना उससें तो श्राद्धविधिमें नुकशान कहा है. वास्ते साधारण द्रव्यभी विगाडदेना महा पापका कारण है, साधारण द्रव्यके उपरकी कथा आगे आचुकी है वो यहांपर ध्यानमें लेनी.

यह कथाओं सुनकर तुच्छ श्रद्धावालोंको व्यामोह होवैगा कि इतना देवद्रव्य या साधारणद्रव्य, ज्ञानद्रव्य खाया उसके इतने सारे कर्म बांधे जावे? उसकों शोचना योग्य है कि-जैसें कोई लडकीके पैसे खाते हैं उन्होंकी कितनी निंदा होती है? उसका सवव यही है कि लडकीकों देना लायक है, मगर उसका लेना नालायक है. वैसें इस द्रव्यमें अपना द्रव्य देना-व्यय करना योग्य है, लेकिन उसकी एवजीमें उनका द्रव्य खा जावे तो पापही होवे, वास्ते ज्ञानीनें ज्ञानसें विशेष पाप देखा सो वतलाया है.

१६५ प्रश्नः—पुद्गल कितने प्रकारके कहे हैं?

उत्तरः—पुद्गल तीन प्रकारके कहे हैं जीवने जो ग्रहण किये हुवे हैं उसमें जीव है वहांतक प्रयोगशा कहा जावे. जीव नीकल गये बाद जो पुद्गल रहे वो मिश्रशा कहा जावे, और स्वाभाविक पुद्गलके स्कंध होते हैं-जैसें कि आकाशमें हरे पीले रंग होते मालूम होते हैं वो अगर अंधेरेके पुद्गल या बदलके पुद्गल जीवके ग्रहण न कियेसें होते हैं वो विश्रशा कहा जाता है. इस तरह तीन जातीके पुद्गलका अधिकार भगवतीजीमें पत्र ५२१ में है.

१६६ प्रश्न—परिहार विशुद्धि चारित्र कितने पूर्व पढे हुवे अंगीकार करे?

उत्तरः—नौ पूर्वकी तीसरी वस्तु तक पढे हुवे होवें वो परिहार विशुद्धि संयम आदर सके. नौ जने गच्छमेंसें निकलें, उसमें चार जने छ महिने तक तपश्चर्या करें और चार जने उनकी वैयावच करें और एक गुरु स्थापन करें. तपश्चर्या करनेवाले छ मास तक कर रहें तव वैयावच करनेवाले छ महिने तक तपश्चर्या करें. पीछे छ महीने तक गुरुतपश्चर्या करें. दूसरे आठमेंसें एककों गुरुस्थापन करके सात जने वैयावच करें. इस तरह अढारह

महीने तक तपश्चर्या करें उसका नाँव परिहारविशुद्धि चारित्र कहा है. ये अधिकार भगवतीजीके पत्र ५७१ में है

१६७ प्रश्न'—सिद्धमहाराजजीकों चारित्र कहा जाय या नहीं?

उत्तरः—सिद्धमहाराजजीकों व्यवहाररूप चारित्र नहीं जिससें भगवतीजीके पत्र ५७६ मै नोचारित्र नोअचारित्र कहा है

१६८ प्रश्न.—विभग ज्ञानवालेकों दर्शन होवै या नहीं?

उत्तर.—कर्मग्रथमें तो ना कही है. मगर भगवतीजीके पत्र ५८८ में विभगज्ञानवालेकों अवधिदर्शन कहा है. पन्नवणाजीमेंभी अवधिदर्शन कहा है अब ये दो मतातर हैं-तत्त्वकेवलीगम्य है.

१६९ प्रश्न'—मुनीकों अशुद्धमान आहार पानी देनेसें क्या फल होवे?

उत्तर.—मुनीकों मुख्यतास तो शुद्धमान आहारपानी देनेकाही भाव होवे, मगर कितनेक सबबोंकेलिये अशुद्धमानभी देदेवै फिर गुरुपर राग है. उससें कुछ कुछ चित्तमेंभी आजाय परतु मुनीकों प्रतिलाभनेका अतिशय भाव है उसलिये अल्प दोष और बहुत निर्जरा भगवतीजीके पत्र ६१० में कही है

१७० प्रश्न'—प्रायश्चित लेनेका भाव है ओर उस अरसेमें काल करजाय तो आराधक होवै या नहीं?

उत्तरः—भगवतीजीके पत्र ६१५ में मुनी गौचरी गये है और वहा कुछ दोष लगा है वा गुरुके पास जाकर आलोयणा लेनेका भाव है और अधवीच काल करै तो उसका आराधक कहे हैं

१७१ प्रश्न'—वर्षमें वडा दिन कोनसा या कितना होवे? और रात्री कितनी होवै?

उत्तरः—भगवतीजीके पत्र ९३८ में कममें कम दिन बारह मुहूर्त्तका यानी चोवीस घडीका और कममें कम रात्रीभी उतनीही होवै और ज्यादेमें ज्यादे दिन अठारह मुहूर्त्तका यानी छतीस घडीका ओर रात्रीभी ज्यादेमें ज्यादे उतनीही होवै

१७२ प्रश्न.—श्रावक पौषध लेकरकें धर्मकथा करे सो अधिकार किसतरह है?

उत्तरः—भगवतीजीमें पत्र ९७० के अदर ऋषिभद्र पुत्रका अधिकार है. वहां श्रावक आसन लेकर बैठे हैं और ऋषिभद्र धर्म प्ररुपता है. उसमसें श्रावकर्को शका हुइ है उससें भगवतजीकों पूछा कि ऋषिभद्र इसतरह प्ररुपता हैं भगवंतजीने फरमाया कि ऋषिभद्र प्ररुपता है सो सत्य है इस मुजब अधिकार है और उपदेशमालामें गाथा २३३ के अदर श्रावक दूसरे श्रावकोंकों धर्मोपदेश करैं ऐसा कहा है.

१७३ प्रश्नः—भव्य जीव हैं सो सभी सिद्धि वरैं तब सब अभविही बाकीमें रहे या नहीं ?

उत्तरः—जयती श्राविकाने भगवतीजीमें प्रश्न पूछे है उसमें ये प्रश्न है, उसका जबाब पत्र ९०१ में हैं कि—गत काल अनता गया उसका अत नहीं तोभी एक निगोदके अनतमें हिस्सेके सिद्धि वरे हैं युही आते कालकाभी अत नहीं, वास्ते दोनु तुल्य हैं उससें आते कालमेंभी दूसरे एक निगोदके अनतमें हिस्सेके सिद्धिपद प्राप्त करेंगे. उसके सबबसें भवि खाली नहीं होनेके.

१७४ प्रश्नः—समकित सहित कौनसी नरक तक जावे ?

उत्तरः—समकित सहित छट्ठी नरक तक जावे और सातवी नरकमें समकित वमन करके जावे–ये अधिकार भगवतजीके पत्र १०८७ में है

१७५ प्रश्नः—पुस्तक और प्रतिमाजी होवे वहा हास्यविनोद करनेसें आशातना लगै या नहीं ?

उत्तरः—जहा ज्ञान और प्रतिमाजी होवे वहा आहार निहार स्त्रीसयोग और हास्यादिक क्रीडा करनेसें आशातना होती है ये अधिकार भगवतीजीके पत्र ११७७ में है सौधर्मसभामें स्थभे हे उसमें पुस्तक और प्रभुजीकी दाढायोंके डिब्बे है, उससें इद्राणीके साथ हास्यविनोद सुरेंद्र वहा नहीं करते हैं, उसीतरह मनुष्यकोंभी न करना.

१७६ प्रश्नः—क्षयोपशमभावके समकित और उपशमभावके समकितमें क्या तफावत है?

उत्तरः—क्षयोपशमभावका समकित है उसकों समकित मोहनीविपाकका उदय है, और मिथ्यात्व मोहनीप्रदेश उदय है. और उपशम समकितवालेको मि-

ध्यात और समकित मोहनी विपाक उदय तथा प्रदेश उदयसें हटजाता है ये अधिकार भगवतीजीके पत्र ११८३ में है.

१७७ प्रश्नः—श्रावक खुले मुँहसें बोले तो उचित है ?

उत्तरः—श्रावककों अवश्य मुखपर कपडा या हाथ या मुहपत्ति रखकर बोलना. खुले मुहसें न बोलना चाहियें. इस संबधी भगवतीजीमें गौतमस्वामीजीने प्रश्न पूँछा है कि-इंद्र सावद्यभाषा बोलता है या निरवद्यभाषा बोलता है ? उसका उत्तर भगवतजीने दिया है कि इंद्र जिस वक्त मुँहपर कपडा या हाथ रखकर बोलता है उस वक्त निरवद्यभाषा बोलता है और खुले मुँहसे बोले उस वक्त सावद्यभाषा बोलता है. इस तरह पत्र १३०२ में अधिकार है

१७८ प्रश्नः—पूर्वका ज्ञान कहां तक रहा ?

उत्तर—पूर्वका ज्ञान भगवतजीके निर्वाण बाद एक हजार वर्ष तक रहा ये अधिकार भगवतीके पत्र १५०३ में हैं.

१७९ प्रश्न—प्रभुजीका शासन कहा तक रहेगा ?

उत्तर.—इक्कीस हजार वर्ष तक रहेगा यह अधिकार भगवतीजीके पत्र १५०४में है.

१८० प्रश्न —विद्याचारण जंघाचरण मुँनी नंदिश्वरद्वीपमें जिनप्रतिमाजीका वदन करनेकों जावे ये अधिकार किस ग्रथमें है ?

उत्तर—भगवतीजीके पत्र १५०१ में है

१८१ प्रश्न.—श्रावक, श्रावककों ओर श्राविकाकों व्रत उच्चराय सके या नहीं ?

उत्तर.—श्रावक, श्रावक-श्राविकाकों व्रत उचराते हैं ज्ञातार्जीमें पत्र १०१६ (छपी हुइ प्रत) में है. जितशत्रु राजाने सुबुद्धि मंत्रीके पास धर्म सुनकर प्रतिबोध पाकर श्रावकके बारह व्रत (सुबुद्धि प्रधानके पास) लिये हैं. फिर पच्चख्खाणके करानेवाले जाननेवाले और अनजान उसके चार भांगे कहे हे-वो इसतरह हैं –पचख्खाण कराने और करनेवाला दोनु जाननेवाले होवें वो शुद्ध पचख्खाण है करानेवाला जाननेवाला हो और करनेवाला अनजान हो, मगर करानेवाला जाननेवाला होनेसें व्रतकी रीति बतलावे वास्ते यहभी शुद्ध है करानेवाला अनजान और करनेवाले

जानकार होवे वोभी शुद्ध कहे है, मगर वहां दर्शाया है कि तथाविध गुरुके अभावसें पिता-दादा-मामु-भाइ-या कोइभी मवाहदार रखकर करना. क्यों कि वे अनजान हैं. मगर आप जानता है उससें शुद्ध हैं. चौथा भागा करानेवाला और करनेवाला-दोनु अनजान होवे-वो अशुद्ध पचख्खाण कहा है. इसतरह प्रवचनसारोद्धारजीकी टीकाके पत्र ३९ में कहा हैं. उसपरसें तीसरे भागेसें सिद्ध होता है कि पिता वगैरः अनजान हैं, उनके समक्ष पच्चख्खाण लेना, तो जानकार श्रावकके पाससें लेना वो तो ज्यादे योग्य है. ऐसी चौभंगी योगशास्त्रमें और पचाशकजीमें भी है, वास्ते मुनीमहाराजके अभावसें श्रावकके पास पचख्खाण लेना योग्य है.

८२ प्रश्नः—श्रावकको फासुक पानी पीनेसें क्या फायदा है? क्यों कि आरंभ तो करना करवाना रहा है, तो सचित्तका अचित्त करके पीवे उससे क्या फल है?

उत्तरः—श्रावकको सचित्त वस्तुकी मूर्छा उतर गइ ये वडा लाभ है. कर्म बंधन है सो इच्छासें करके है वो सचित्त वस्तुकी इच्छा बंध हुइ वो वडा लाभ है फिर सचित्त जल जगतभरमें है वो उन सब जलके ऊपर चित्त छुट्टा रहता है, वो फासुक जल पीनेवालेको बंध होजाता है. फासुक पानी जहां जावे वहां नहीं मिलता है, तो वो परिसहभी शायद सहन करना पडता है. फिर सचित्त जलमें समय समय जीव पैदा होते हैं और नाश पाते हैं उनकाभी आरंभ दूर होजाता है, उससेंकरकें श्रावकको सचित्तका त्याग होता है. उसके अतिचारभी कहे हैं. फिर महत श्रावक आनंदजी आदिने सचित्तका त्याग किया है और आरंभ छुट्टा है यह सचित्त त्याग ७ वी पडिमामें किया है और आरंभका त्याग ८ वी पडिमामें किया है. यह अधिकार उपासकदशांगजीकी छपीहुइ प्रतके पत्र ६६ में है पुनः आठवी पडिमामें आपको आरंभ करनेका त्याग है, मगर आरंभ करवानेका त्याग नहीं. आरंभ करवानेका नौवी पडिमामे त्याग है. वास्ते आरंभ छुट्टा है, तोभी आनंदिक श्रावकोंने सचित्तका त्याग किया है. इसीतरह

वर्धमान समयके श्रावकोंकोंभी त्याग करना मुँनासिब है

१८३ प्रश्न'—श्रावक जिनमदिरमें जावै वहा अच्छी आगी रचीगइ हो तो, या प्रभु गुणगान होता होवै तो वहा उनकों क्यैा चितन करना ?

उत्तर —जिन जिन पुरुषोंने आगीमें पैसे खर्च किये हैं उन उन पुरुषोंकी अनुमोदना करनी, कि धन्य है ! ससारके कार्यमें पैसा खर्चना मोकूफ करके प्रभुभक्तिमें पैसा व्यय किया हैं या करते हैं ! मेरा चित्त ऐसा कब होयगा कि मेंभी ऐसी प्रभुभक्ति करुगा फिर आगीके बनानेवाले पुरुषकी अनुमोदना करे कि अपना घर काम छोडकर आगी रचनामें कालव्यतीत किया है-करते हैं ऐसा मेरा भाव कब होवैगा ? पुनः गायन होता हो तो जो जो प्रभुजीके गुण गाते है उसमें लीन होना-नहीं कि गायनके विषयमें लीन होना फिर नजरभी प्रभुजीके सन्मुख स्थापनी, लेकिन गानेवालेके स्हामने न देखना, क्यौं कि प्रभुके सिवाकी तीन दिशामें देखना दशात्रिकमें वर्जीत करनेका कहा है, वास्ते प्रभु सन्मुख दृष्टि रखनी फिर राग-हलक अच्छाहो तो उसकेलिये ऐसा चितन करना चाहियें कि मुझकों ऐसा गाते आता होता तो मेंभी प्रभु गुणगान करता ऐसा शोचना, नहि कि रागमें लीन होना बालजीवोंकों तो प्रभुकी जो जो प्रशसना है वो परपरासें गुनदायक है, मगर विवेकीका तो प्रभुजीके गुणगान करना वही गुनकारी है यशविजयजी महाराजने सवासो गाथेके स्तवनमें कहा है कि " जिनपूजामा शुभ भावथी, विषय आरभतणो भय नथी " वास्ते जिनमदिरमें जाकर विषयकी दृष्टि न रखनी वही गुणकारी है वहा परभावना छोडनेकों जाना हे ओर विषयकी दृष्टि होवै तो फिर विषय कहांपर छूटा होजाने पावै ? वास्ते पुद्गलीक पदार्थमें दृष्टि न रखते प्रभुके गुण यादकर प्रभुकी आज्ञा समालकर शुभ भावकी वृद्धि करनी और पुद्गल राग घटाना यही धर्म है

१८४ प्रश्न—पिछले भवमें आयुष बाधाहोवे उसी मुजब पूरा होवै या किसीतरहसें टूटै ?

उत्तर'—शास्त्रने आयुष दो प्रकारके कहे हैं-एक उपक्रमी और दूसरा निरुपक्रमी

उपक्रमी आयु है उसकों उपक्रम यानी विष शस्त्र मुख्य लगजानेसे आयु कम होता है–उसें अकाल मृत्यु कहाजाता है. वो उपक्रमी आयुवालेने जो आयु बांधलिया है वो शिथिल है उससें उसको उपक्रम लगता है. यह अधिकार तत्त्वार्थमें दूसरा अध्याय पूर्ण होनेके वक्त पत्र १०८ समें शुरु होकर अध्याय दूसरा पूर्ण होने तक है. पुनः विशेषावश्यकमेंभी अधिकार है. और आचारांगजीकी शिलांगाचार्यकृत छपीहुइ टीकाके पत्र १११ में है बाकीभी बहुतसी जगहपर है वास्ते उपक्रमकी अच्छीतरह संभाल रखनी, सबब कि बहुतकरकें इस कालमें बहुतसें मनुष्यके उपक्रमी आयु होते है वास्ते उपक्रम लगा हो तो उसकों दूर करनेका उद्यम करना. उसलिये मुनीमहाराजभी औषधादिक करते है, लेकिन सारा जन्मभर व्रत पालन करके छेल्ले वक्तमें दूषण लगे या व्रतभांगे ऐसी दवा वापरनी वो अच्छा नहीं ज्यों बनसके त्यों व्रत रखना और रोगका विकल्प न करना. रोगका विकल्प न करनेसें रोग जल्दी दूर होजाता है; वास्ते अपना आत्मधर्म न बिगडे ऐसा उद्यम करना.

यहांपर कोइ शंका करेगा कि हरएक व्रतमें चार आगार हैं. उसमें सव्व समाहिवत्तियागारेण यह आगार है वास्ते कदापि अयोग्य वस्तु त्यागकी हुइ उपयोगमें लेवे तो क्या उससें व्रत भंग होवें? उस विषयमें समझना कि आगार रक्खे है, मगर उसके बारेमें शास्त्रमें कहा है कि दृढ प्रतिज्ञवान आगार सेवन नहीं करते हैं जिसका मन चलित या बेढंगा हे उससें रागादि सहन हो सकते नहीं परिणाम बिगड जाते हैं. ऐसा लगै तो व्रतपर परिणाम रखनेके लिये प्रायश्चित लेनेकी भावना सह उपयोगमें लेना. वो आगारवाली वस्तु सेवन कियेकाभी प्रायश्चित कहा है तो वो अपवादमार्ग है, परंतु जो आगार नहीं सेवन करते हैं और शुद्ध स्वरूपपर नजर रखते हैं उनकी अपेक्षासें तो ये उतरते दर्जेका है. पुनः कितनेक जीव पैसेके लोभसें यानी निर्दोष दवाका खर्च ज्यादा लगता है उस कृपणतासें दूषित दवाइयें वापरते हैं वो तो बहुतही दोष है ऐसे मनुष्य पैसकी कसरसें अभक्ष दवाअें वापरते हैं और पीछे शुभ

खाते द्रव्य वापरे, उस करतें शुभ खातेमें कमी खर्च करके मस्त दवामें वापरे तो विशेष उत्तम नीति है वास्ते व्रत अखंडित रहे वैसें करना वही कल्याणकारी है और जिसके परिणाम बिगडते होवे उसकों आगार सेवन करनेकी मना करनी वोभी अयोग्य है

१८५ प्रश्न —साधुजी गाँवमें प्रवेश करें तो उन्होंकों वाद्य गीतके साथ स्हामैया करके ल्यानेका शास्त्रमें कहा है ?

उत्तर.—श्राद्धविधिमें पत्र २६८ में ऐसा अधिकार है कि श्री धर्मघोषसूरीके नगर प्रवेशके उत्सवमें बहोत्तर हजार टके श्रावकने खर्च कियेथे पुन' व्यवहार सूत्रके भाष्यमें पत्र १८२ के अदर प्रमाण दिया है कि प्रतिमाधर मुनी प्रतिमा पूर्ण होवे तब नगर बहार रहीकें गुरुकों खबर कि मे आया हु. बाद गुरु, राजा वगैर जो श्रावक होवे उसकों जाहिर करें, और पीछे उसें श्रावक बडे आडंबरके साथ प्रवेश करावें उससें शासनकी प्रभावना होवे और बहुतसे जीव धर्मानुरागी होवें इत्यादि बहुतसा दर्शात्र श्राद्धविधिमें है, वास्ते बडे ठाठसें गुरुमहाराजजीकों नगरमें प्रवेश कराना.

१८६ प्रश्नः—वर्षाकालमें चीनी वगैर का त्याग करनेका कौनसे शास्त्रमें है ?

उत्तरः—श्राद्धविधिमें पत्र २५४ के अदर वर्षाके चौमासेमें चीनी, खजूर, द्राक्ष, मेवे, सुरवनीके शाख-भाजी वगैरः अभक्ष्य कहे हैं. वहा देखोगे तो साफ मालूम हो जायगा, क्यों कि चातुर्मासमें उन चीजोंमें त्रस जीवकी उत्पत्ति होती है वास्ते त्याग करनीही चाहियें

१८७ प्रश्न'—गुरुद्रव्य किसकों कहेना ?

उत्तर.—श्राद्धविधिके पत्र १०० में वन्देवाली प्रतके अंदर वस्त्र पात्र प्रमुख उपगरणकों गुरुद्रव्य कहा है

१८८ प्रश्न —जिनबिंबकी प्रतिष्ठामें और दीक्षामें मुहूर्त्त किस तरह देखना चाहियें ?

उत्तर.—मैंने लग्नशुद्धि वगैर जैनके मुहूर्त सबधी ग्रन्थ देखे हैं उनमेंसें सामान्य रीतिसें निम्न लिखित मुहूर्त देखना दुरस्त है विशेष विचार और शास्त्रोंसें जान लेना

पहेले महिने देखने–सो मिगशर, अग्रहन, फागुन, वैशाख, ज्येष्ठ और अषाढ इन्ह महीनोंमें प्रतिष्ठा करनी लग्नशुद्धिमें कही है और ज्योतिर्विदाभरण ग्रथमें जिनप्रतिष्ठाकी सक्रातियें कही हैं यानी वृश्चिक, मकर, कुभ, मेष, वृषभ, मिथुन यह छ. सक्राति कही हैं. ( यो कालीदासकृत ग्रथकी टीका जैनाचार्यने की है. ) पुनः प्रतिष्ठाविधिके पंचागमें सावन महीनाभी लिखा है, और सावन महीनेमें प्रतिष्ठा भइहुइ-भी मदिरोंमें देखनेसें मालूम होती है. तत्व केवलीगम्य अपने सिद्धांतोंमें पूर्णमासीके दिन पूरा महीना होनेकी मर्यादा है, उससें मुहूर्त्तभी उसी मुवाफिक लेना.

तिथियें सामान्य रीतिसें शुक्लपक्षकी १० मीसें लगाकर कृष्णपक्ष-की पचमी तक उत्तम कही हैं. और १–२–५–१०–१३–१५ ये शुक्ल-पक्षकी और १–२–५ यें कृष्णपक्षकी सुदर कही हैं.

वार—सोम, बुध, गुरु और शुक्र ये सुदर कहे हैं तथापि दूसरी तीथि और वार सिद्धियोगसें युक्त होवै तो लग्नशुद्धिमें सुखदाय-क कहे हैं.

फिर आरंभसिद्धिकी बडी टीकामें एक मंगलवारको छोडकर सब वार प्रतिष्ठामें लिये हैं; वास्ते बलवान् योग होवै तो तिथि वारका नि-यम नहीं है.

प्रतिष्ठामें–मघा, मृगशिर्ष, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरा भाद्रपद, अनुराधा, रेवती, श्रवण, मूल, पुष्य, पुनर्वसु, रोहिणी, स्वाती, और धनिष्ठा ये नक्षत्र लैना.

कुभस्थापनमें रवि नक्षत्रसें प्रथमके पाच नक्षत्र छोडकर पीछेके, आठ नक्षत्र और उस पीछेके आठ छोडकर उस पीछेके छ नक्षत्र यह चौदह नक्षत्र कुभचक्रके हैं. उसमें कुभस्थापनका मुहूर्त्त करना. पहेले पाच और आठ पीछेके आठ वर्जित करने योग्य हैं.

ऊपर प्रतिष्ठा नक्षत्र कहे हैं, उस अदरका प्रतिष्ठा करानेवालेके ज-न्मनक्षत्रसें १०–१६–१७–१८–२३–२५ होवै तो काममें न लैना

आडल योग सो रवि नक्षत्रसें २-७-९-१६-२१-२३-२८ यह नक्षत्र होवें तो आडलयोग होता है वो परदेश जानेके वक्त वर्जित है. और दूसरे कार्मोंमेंभी वर्जित किया जाय तो अच्छा है

वार तिथि नक्षत्रोंके सयोगसें जो जो कुयोग होते हैं वोभी वर्जित है वो योग नीचेके कोष्टकसें ध्यानमें लिजीय.—

| | रवि | साम | मगल | बुध | गुरु | शुक्र. | शनि | कुयोगा |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| तिथि. | ७ | ६ | ५ | ४ | ३ | २ | १ | कुलिकयोग |
| ,, | ५ | ४ | ३ | २ | १ | ७ | ६ | उपकुलिकयोग |
| ,, | ३ | २ | १ | ७ | ६ | ५ | ४ | कटकयोग |
| ,, | ४ | ७ | २ | ९ | ८ | ३ | ६ | अर्धमहर. |
| ,, | ८ | ३ | ६ | १ | ४ | ७ | २ | कालसमय |
| ,, | १२ | ११ | १० | ९ | ८ | ७ | ६ | कर्कयोग |
| नक्षत्र | मघा | विशा. | आर्द्रा | मूल. | कृति | रोहि | हस्त | यमघट. |
| ,, | विशा | पू पा | धनि | रेव | रोहि. | पुष्य | उ फा | उत्पातयोग |
| ,, | अनु | उ पा | शत | अश्वि | मृग | अश्ले | हस्त | मृत्युयोग |
| ,, | ज्येष्ठा | अभि | पू भा | भर | आर्द्रा | मघा | चित्रा | काणयोग |
| तिथि | ७ | ७ | ० | १-३ | ६ | ३ | ७ | सद्दत योग. |
| नक्ष | मघा | चि. | उ पा | धनि | उ. फा | पुष्य | रेव | वार, नक्षत्र निषेध |
| ,, | ज्ये मघा | पू पा | शत | पू भा | रो मृ | रो मृ | उ पा | |
| ,, | वि अ | विशा उ पा | आर्द्रा धनि | मू आ भरणी | आर्द्रा शत. | अश्ले पू पा | ह चि पू पा उ | |
| तिथि | ५ ह | ६ मृ. | ७ अश्वि | ८ अनु | ९ पुष्या | १० रेव | ११ रो | महा मृत्यु योग. |

उपरके कोष्टकमें बुरे योगोंका संयोग बतलाया है. जिसमें कुलिकयोग होता है सो चारः घडी होता है सो प्रतिपदाके रोज पहेले चोघडीयेमें, बीजके रोज दूसरे चोघडियेमें, ऐसे सातमके रोज सातवे चोघडियेमें होता है. और उपकुलिक, कंटक, अर्धप्रहर, कालसमय, ऐसे ऐसे कोष्टकमें तिथिके सयोगसें कुयोग होते है वो जिस तिथिके संयोगसें हो उस तिथिकी सख्यावाले चोघडियेमें वो योग रहता है. उस वक्तके सिवाका वक्त अच्छा गिना जाता है दूसरेभी कुयोग निचे मुजब है:—

| रवि | सोम | मगळ | बुध. | गुरु | शुक्र | शनि | ( कुयाग ) |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| भर. | आर्द्रा | मघा | चित्रा. | ज्येष्ठा | अभि | पू भा | कालदंडयोग |
| आर्द्रा. | मघा | चित्रा. | ज्येष्ठा. | अभि | पु भा | भर | ध्वांक्षयोग |
| अश्ले | हस्त | अनु. | उ पा | शत | अश्वि | मृग | वज्रयोग |
| मघा. | चि | ज्ये | अभि. | पु भा | भर | आर्द्रा | मुद्गरयोग |
| चित्रा. | ज्ये | अभि | पु भा | भर. | आर्द्रा | मघा | कपयोग |
| स्वा. | मूल | श्रव. | उ भा | कृति | पुनर्व | पु फा | लुपकयोग |
| वि | पु पा | धनि | रेव | रोहि | पुष्य | उ फा | प्रवासयोग |
| अनु | उ पा | शत. | अश्वि. | मृग | अश्ले | हस्त | मरणयोग |
| ज्ये | अभि | पु भा | भर | आर्द्रा | मघा | चि | व्याधयोग |
| पू पा | धनि | रेव | रोहि | पुष्य | उ फा | विशा | शूलयोग |
| अभि | पु भा | भर | आर्द्रा | मघा | चि | ज्ये | मूशलयोग |
| शत. | अश्वि | मृग | अश्ले | हस्त | अनु | उ पा | क्षययोग |
| पु भा | भर | आर्द्रा | मघा | चि | ज्ये | अभि | निफयोग |

यमल्योग वर्जित है, सो गुरु, मगल और शनि इनमेंसे कोइ वार और तिथि २–७–१२ होय, और मृग, विशाखा, धनिष्ठा इनमेंसे कोइ नक्षत्र होवै जब होता है सो तीनूके योगसे वर्जित है.

त्रिपुष्कर योग–सो २–७–१२ तिथि, गुरु, मगल, शनिवार, और कृतिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तरापाढा और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र होवै इन तीनू योगसें होता है सो त्यागने योग्य है

गुरु शुक्रके अस्तमें प्रतिष्ठा, उद्यापन करनेका निषेध है. और दीक्षा शुक्रके अस्तमें देनी सभवित है , क्यों कि लग्नशुद्धिमें शुक्र निर्बल लेना ऐसा कहा है. ( तो अनिर्बल है ) और प्रतिष्ठादिमें गुरु, शुक्र बाळ या वृद्ध हो वो दिनभी त्यागने योग्य है

गुरु, शुक्रका पूर्वदिशामें उदय होवै तो तीन दिन तक बाल समझना और पश्चिम दिशामें उदय होवे तो दस दिनतक बाल समझना.

गुरु, शुक्रकी पूर्व दिशामें अस्त होवै तो उस पहेलेके पद्रह दिन वृद्ध समझ लेना और पश्चिम दिशामें अस्त होवै तो उस पहेलेके पांच दिनकों वृद्ध जान लैना उन दिनोंमें मुहूर्त्त नहीं दैना

आरभसिद्धि ग्रथमें गुर आ-ी बाल और वृद्ध दोनुके पद्रह दिन त्याग करनेका कहा है और अन्यदर्शनमें गुरु और शुक्रके दिन समान कहे हैं. १०–७–३ दिन इस तरह मुहूर्त्तसिद्धिमेंभी कहा है

गुरु मादिरमें प्रवेश करतें जिन दिशामें उदय होवे सो सन्मुख भावसे और दक्षिण–दाहिना हो तो अवश्य त्याग देना,मगर कभी अथ शुक्र होवै तो हरकत नहीं ऐसा आरभसिद्धिकी छोटी टीकामें कहा है दूसरे दो प्रकारके शुक्र त्याग किये जाय तो त्याग देने चाहियें यानी सक्रांतिमें वर्त्तता हो–[ जिस सक्रातिमें हो सो देखो ] और सन्मुख आवै तो त्यागने योग्य है और नक्षत्रमें वर्त्तता हो सो कृतिका, रोहिणी, मृगशिर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा–इन नक्षत्रोंके दिन पूर्वदिशामें शुक्र होवै, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा–इन नक्षत्रोंमें दक्षिण दिशामें होवै, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्त-

राषाढा, अभिजित्, श्रवण–इन नक्षत्रोंमें पश्चिम दिशामें. और धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी–इन नक्षत्रोंमें याने इन नक्षत्रोंके दिनमें उत्तर दिशामें शुक्र होवे. मुहूर्त नक्षत्र जो हावे वो देखनेमें सन्मुख शुक्र आवे तो त्यागदेना.

रविनक्षत्र चलता होवे उससे सातवा नक्षत्र होवे सो भस्मयोग कहा जाता है; वास्ते वो नक्षत्र नहीं लेना धूलसें आकाश ढक गया हो याने सूर्य धूलसें आच्छादित हुवा हो वो दिनभी मुहूर्तमें निषेध है. संक्रांति लगै उसका पहेला और पीछेका एक दिन और संक्रांति लगै वो दिन छोड देना चाहियें

बद्दल उमंड आकर गर्जारव होता हो, बिजुली चमती हो या कडाके होते हो, या इंद्रधनुष मालूम होता हो, सूर्य चंद्रके पीछे [ चोगिर्द ] जलकुंडा–गोल चक्र मालूम देता हो और आकाश रक्तवर्णका बन रहा हो तो वो दिन या अकालवृष्टि हुइ हो वो दिन त्याग देनाही योग्य है.

ग्रहणके सात दिन याने ग्रहण हुवे पहेलेके तीन दिन, एक ग्रहण हुवा हो वो दिन और ग्रहण हुवे बादके तीन दिन युं मिलकर सात दिन ग्रहण दग्ध तिथिके कहे जाते है उन दिनोंमेंभी मुहूर्त नहीं देना मगर खग्रास याने चंद्र सूर्य पूरा ढक गया हो तो या आधा ढक गया हो तो तीन दिन गोचरशुद्धि देखनी–उसकी हकीकत नीचे मुजब है.—

जिस राशिमें गुरु होवे सो राशि प्रतिष्ठा करानेवालीकी जन्मराशिसें २–५–७–९–११ वें ठौर हो तो श्रेष्ठ हैं.

जिस राशिका चंद्र हो सो जन्मराशिसें १–३–६–७–१०–११–२–५–९ वे ठौर हो तो वोभी अच्छा है. [ प्रभुजीकी राशिसें प्रभुजीकाभी देखना. ]

जिस राशिका रवि हो सो जन्मरासिसें ३–६–१०–११ वें ठौर हो तो अच्छा समझना.

इस तरह प्रतिष्ठा करानेवालेकों गुरु, चंद्र और रवि ये तीनूं देखने चाहियें. प्रतिमाजी महाराजकों चंद्र बल देखना, मगर जो कृष्णपक्ष हो

तो तारा बल देखना सो नीचे मुजब है'—

जन्म नक्षत्रसें गिनना–सो जन्म नक्षत्र अश्विनी है तो दसवा नक्षत्र मघा आया ऐसें गिनना.

| तारा. | नक्षत्र. | नक्षत्र | नक्षत्र. | अच्छी, निर्बल तारा |
|---|---|---|---|---|
| १ | १ | १० | १९ | शुभ तारा, नक्षत्रमें मुहूर्त्त देना |
| २ | २ | ११ | २० | शुभ |
| ३ | ३ | १२ | २१ | अशुभ |
| ४ | ४ | १३ | २२ | शुभ |
| ५ | ५ | १४ | २३ | अशुभ |
| ६ | ६ | १५ | २४ | शुभ |
| ७ | ७ | १६ | २५ | अशुभ |
| ८ | ८ | १७ | २६ | शुभ |
| ९ | ९ | १८ | २७ | शुभ तारा कही उस नक्षत्रमें मुहूर्त्त करना |

समझ यह है कि जन्मनक्षत्रसें १–१०–१९ वा नक्षत्र हो तो १ तारा–इसी तरह दो तीनें वगैर' समझ लेना

अब जिसका जन्म नक्षत्र हो तो उसका जो नाम हो उस परसें अक्षर–अवकहोडा चक्रसें देखकर नक्षत्र निकालना सो निचे मुजब.—

चू, चे, चो, ला, अश्विनी. ली, लु, ले, लो, ली, लै, भरणी. अ, ई, ऊ, ए, ऐ, कृतिका ओ, वा, वी, वु, रोहिणी वे, वो, का, की मृगशिरा कु, घँ, ड, छ, आर्द्रा के, को, ह, ही, पुनर्वसु. हु, हे, हो, डा, पुष्य डी, डु, डे, डो, अश्लेषा. म, मी, मु, मे, मघा. मा, टी, टु, टे,

पूर्वाफाल्गुनी. टे, टो, प, पी, उत्तराफाल्गुनी. पु, ष, ण, ठ, हस्त पे, पो, र, री, चित्रा. रु, रे, रो, ता, स्वाति. ती,तु, ते, तो, विशाखा. न, नी, नु, ने, अनुराधा नो, य, यी, यु, ज्येष्ठा. ये, यो, भ, भी, मूल. भू, ध, फ, ढ, पूर्वाषाढा. भे, भो, ज, जी, उत्तराषाढा. जु, जे, जो, खा, अभिजित्. खी, खु, खे खो, श्रवण. ग, गी, गु, गे, धनीष्ठा. गो, स, सी, सु, शतभिषा. से, सो, द, दी, पूर्वाभाद्रपद दु, थ, झ, थ, उत्तराभाद्रपद. दे, दो, च, ची, रेवती. इस मुजब नामके अक्षर है याने एक नक्षत्रके चार पाये होते है और उन चारों पायेमेंसे जिस पायेमें जन्म हुवा हो उसी पायेके अक्षर मुजब नाम रक्खा जाता है जैसें अश्विनीके पहेले चरणमें जन्म है तो चूनीलाल नाम आयगा. सदूरेमें जन्म होगा तो चेतराम आयगा तीसरेमें होगा तो चोथमल्ल आयगा और चौथे चरणमें जन्म होगा तो लाभचद्र नाम आयगा. इस मुजब नक्षत्र पाद देखकर नामका नक्षत्र निकाल लेना.

मुहूर्त्तके दिन विष्टि होवे तो दो संक्रातिमें देखना उसमें स्वर्गमें भद्रा हो तो जो कार्य करे सो सिद्ध होवे. पातालमें भद्रा हो तो कार्यकी सिद्धि होवे, मगर मनुष्यलोकमें भद्रा हो तो कार्य न करना–करनेसें हानी होती है.

योगिनी देखनी सो सन्मुख हो तो अवश्य छोड देनी. दाहिने हो तोभी त्याग देनी और पृष्ठ भाग वाम भागकी हो तो लेनी योग्य है.

काल और पास सन्मुख हो तो त्याग देना (वो तिथियोंमें वतलाया है सो वहासें देख लेना) यह वास्तु शास्त्रमें देखनेका कहा है. विशेष जैनमें देखना नहीं कहा है–ऐसा प्रतिष्ठा टीपणीमें लेख है.

घातचद्र, घातनक्षत्र, घाततिथि और घातमहीना त्यागदेनेका हुकम है.

राहु सूर्योदयसें चार घडी पहेलें पूर्वदिशामें रहै, वाद चार घडी वायुकोनेमें, वाद चार घडी दक्षिणमें, वाद चार घडी इशान कोनेमें, वाद चार घडी पश्चिममें, वाद चार घडी अग्नि कोनेमें, वाद चार घडी उत्तरमें, और पीछे चार घडी नैऋत कोनेमें–इस तरह दिन और रातमें अष्ट दिशामें फिरता हुवा रहता है.

सक्रांतिमें क्या देखना ? सो नीचे मुजब है —

राहु सन्मुख वर्जित है तथा वच्छ सन्मुख और मंदिरमें प्रवेश करं
पीछे हो सो त्याग देना.

मेष सक्रांतिमें–राहु दक्षिनमें, वच्छ पश्चिममें, शुक्र पश्चिममें औ
विष्टि स्वर्गमें, तथा छट्ठ रविदग्ध.

वृष सक्रांतिमें–राहु दक्षिनमें, वच्छ पश्चिममें, शुक्र उत्तरमें, वि
स्वर्गमें और चौथ रविदग्ध

मिथुन सक्रांतिमें–राहु पश्चिममें, वच्छ उत्तरमें, विष्टि पातालमें, शु
उत्तरमें और अष्टमी रविदग्ध

कर्क सक्रांतिमें–राहु पश्चिममें, वच्छ उत्तरमें, शुक्र उत्तरमें, वि
पातालमें और छठी रविदग्ध

सिंह सक्रांतिमें–राहु पश्चिममें, वच्छ उत्तरमें, शुक्र पूर्वमें, विष्टि मनु
ष्यलोकमें और दशमी रविदग्ध

कन्या सक्रांतिमें–राहु उत्तरमें, वच्छ पूर्वमें, शुक्र पूर्वमें, विष्टि पाता
लमें और अष्टमी रविदग्ध

तुला सक्रांतिमें–राहु उत्तरमें, वच्छ पूर्वमें, शुक्र पूर्वमें, विष्टि पाताल
और द्वादशी रविदग्ध

वृश्चिक सक्रांतिम–राहु उत्तरमें, वच्छ पूर्वमें, शुक्र दक्षिनमें वि
मनुष्यलोकमें और दशमी रविदग्ध.

धन सक्रांतिमें–राहु पूर्वमें, वच्छ दक्षिणमें, शुक्र दक्षिणमें विष्टि पा
तालमें और बीज रविदग्ध

मकर सक्रांतिमें–राहु पूर्वमें, वच्छ दक्षिणमें, शुक्र दक्षिणमें, वि
स्वर्गमें और द्वादशी रविदग्ध

कुंभ सक्रांतिमें–राहु पूर्वमें, वच्छ दक्षिणमें, शुक्र पश्चिममें, वि
मनुष्यलोकमें और चौथ रविदग्ध

मीन सक्रांतिमें–राहु दक्षिणमें, वच्छ पश्चिममें, शुक्र पश्चिममें, वि
मृत्युलोकमें और बीज रविदग्ध

तिथियोंके साथ कुयोग होवे सो त्याग देनेका खुलासा नीचे मुजब है:—

प्रतिपदाके रोज मूल नक्षत्रके योगमें ज्वालामुखी योग होता है सो वर्जित है. योगिनी पूर्वमें, पाश शुदिमें पूर्वमें वदिमें वायुकोनेमें, काल शुदिमें पश्चिममें और वदिमें अग्निकोनेमें रहता है.

बीजके रोज अनुराधा नक्षत्रके सयोगसे वज्रपात योग होता है सो त्याग देना धन और मीनके चद्रमें चद्रदग्ध बीज, योगिनी उत्तरमें, पाश शुदिमें अग्निकोनमें वदिमें उत्तरमें, काल शुदिमें उत्तर और वदिमें वायु कोनमें होता है.

त्रीजके रोज उत्तरा (उत्तराषाढा, उत्तराफाल्गुनी और उत्तराभाद्रपद ये तीनु) के योगसे वज्रपात योग होता है सो वर्जनीय है योगिनी इशानमें, पाश वदिमें इशान और शुदिमें दक्षिणमें, काल शुदिमें उत्तर और वदिमें नैऋतमें होता है. तीज और अनुराधा नक्षत्रके योगसें कालमुखी योग होता है सोभी वर्जनीय है.

चतुर्थीके रोज तीनु उत्तराके सयोगसें कालमुखी योग होता है सो त्याग देना वृषभ, कुभके चद्रसें चद्रदग्ध तिथि, योगिनी नैऋतमें, पाश शुदिमें नैऋतमें, वदिमें अधोलोकमें, काल वदिमें उर्द्ध और शुदिमें इशानमें होता है.

पचमीके रोज भरणी नक्षत्रके सयोगसें ज्वालामुखी और मघाके संयोगसें कालमुखी योग होता है सो त्याग देना. योगिनी दक्षिणमें, पाश शुदिमें पश्चिम और वदिमें अधोलोकमें, काल शुदिमें पूर्व और वदिमें उर्द्धलोकमें होता है.

छठके रोज रोहिणीके सयोगसें वज्रपात योग होता है सो वर्जनीय है कर्क और मेषके चद्र साथसें चद्रदग्ध तिथि होती है. योगिनी पश्चिममें, पाश शुदिमें वायुकोन और वदिमें पूर्वमें, काल शुदिमें अग्निकोन और वदिमें होता है.

सप्तमीके रोज हस्त और मूल नक्षत्रके योगसें वज्रपात योग होता है सो त्याग देना. योगिनी वायव्य कोनेमें पाश शुदिमें दक्षिण और वदिमें अग्नि कोनेमें, काल शुदिमें दक्षिण और वदिमें वायुकोनेमें होता है.

अष्टमीके रोज कृत्तिका नक्षत्रसें ज्वालामुखी और रोहिणीके योगसें कालमुखी योग होता है सो त्याग देना मिथुन कन्याके चंद्र सगसें चद्रदग्ध तिथि हाती है, योगिनी इशानमें, पाश शूदिमें इशानम और वदिमें दक्षिणमें, काल शुत्मि नैरुत और वदिमें उत्तरमें होता है

नौमीके रोज रोहिणीके योगसें ज्वालामुखी और कृत्तिकाके योगसें कालमुखी योग होता सो वर्जनीय है योगिनी पूर्वमें, पाश शूदिमें उर्द्धलोक और वादिमें नैरुतमें, काल शुदिमें अधोलोक और वदिमें इशानमें होता है

दसमीके रोज अश्लेषाके योगमें ज्वालामुखी याग होता है सो त्याग देना वृश्चिक, सिंहचद्र सगसें चद्रदग्ध तिथि होती है योगिनी पूर्वमें, पाश शूदिमें अधोलोक वदिमें पश्चिममें, काल शूदिमें उर्द्धलोक और वदिमें इशानमें होता है.

एकादशीके रोज योगिनी अग्निकोनेमें, पाश शूदिमें पूर्व, वदिमें वायुकोनेमें होता है काल शुत्मिं पश्चिम और वदिमें अग्निकोनेमें होता है

द्वादशीके रोज तुला, मकरके चद्रसें चद्रदग्ध तिथि होती है योगिनी नैरुतमें, पाश शूदिमें अग्निकोन और वादमें उत्तरमें होता है काल शूदिमें वायुकोन और वदिमें दक्षिण दिशामें होता है

तृयोदशीके रोज चित्रा नक्षत्रके योगसें यमकृति योग होता है सो त्याग देना योगिनी दक्षिणमें, पाश शूदिमें दक्षिणमें और वदिमें इशानमें होता है काल शूदिमें उत्तरमें और वदिमें नैरुतमें होता है

चतुर्दशीके रोज योगिनी पश्चिममें, पाश शुक्लपक्षमें नैरुतमें और कृष्णपक्षमें उर्द्धलोकमें होता है काल शुक्लपक्षमें इशानमें और वदिमें उर्द्धलोकमें होता है

पूर्णमासीके रोज योगिनी वायव्य कोनेमें, पाश शुक्लपक्षमें पश्चिममें वदिमें अधोलोकमें होता है, और काल शूदिमें पूर्वदिशामें और वदिमें उर्द्धलोकमें होता है

चद्रदग्ध तिथि लग्नशुद्धि प्रकरण मुजब लिखी गइ है दूसरे ग्रंथोंमें दूसरी तरहसेंभी चद्रदग्ध तिथिका लेख है

चंद्रमा देखना सो मंदिरमें प्रवेश करनेके समय दाहिनी बाजु या सन्मुख लैना सो मेष, सिंह, धनका चंद्र पूर्वदिशमें वृषभ, कन्या, मकरका दक्षिणमें मिथुन, तुला, कुंभका पश्चिममें और कर्क, मीन, वृश्चिकका चंद्र उत्तर दिशामें रहता है

सत्ताइस योगमेंसे अशुभ योगोंकी घडी त्यागनी सो विष्कुंभकी, शूळकी और गंड योगकी पहेली पांच घडी, अतिगंडकी छ घडी, व्याघात, वज्रयोगकी नव घडी, परिघकी ३० घडी और वैधृत, व्यतिपातकी सभी घडी त्याग देनी चाहिये

आरंभसिद्धिके अनुसारसें सिद्धियोग और अमृतसिद्धियोग नीचे मुजब होता है —

| तिथि | वार | नक्षत्र. | नक्षत्र. |
|---|---|---|---|
| १–८–९ | रवि | हस्त | पुन रे. रो मृ ३ उत्तरा. पुष्य मू अश्वि. ध. |
| २–९ | सोम. | मृग. | रो अनु उफा. हस्त. श्र विशा पुष्य. शत |
| ३–८–१३–६ | मंग | अश्वि | रो. उभा मू उफा कृ. मृ. पुष्य अनु अश्ले. |
| २–७–१२–६ | बुध | अनु | श्र ज्ये. पुष्य ह. उफा कृ मृ रो पुफा. उभा. |
| ५–१०–१५–११ | गुरु | पुष्य. | अश्वि. पुन. पूर्वा ३ अश्ले ध रे स्वा. वि. अनु |
| १–६–११–२ | शुक्र | रेव | अश्वि पुषा. उषा अनु श्र ध पुफा. हस्त. |
| ४–८–१४–९ | शनि | रोहि | श्र ध अश्वि स्वा पुष्य अनु मघा शत. |
| १ | २ | ३ | ४ |
| ये तिथि और वारकेसयोगसें सिद्धियोग होता है | ये वार और नक्षत्रके संयोगसें अमृतसिद्धियोग होता है | | ये वार और इन नक्षत्रोंके संयोगसें सिद्धियोग होता है<br>औरभी सिद्धियोग लग्नशुद्धिके मुजब आगे लिख दिया गया है आरंभसिद्धि और लग्नशुद्धिमें सिद्धियोगका मिलाप नहीं मिलता है-सो तत्त्व केवलीगम्य है |

लग्नशुद्धि ग्रथ मुजब सिद्धियोग.

| तिथि | वार | नक्षत्र. | तिथि | वार |
|---|---|---|---|---|
| ८ | रवि. | हस्त ३ उत्तरा मू | १–६–११ | शुक्र. |
| ९ | सोम. | रो मृ पुष्य अनु श्र | २–७–१२ | बुध |
| १–६–८–१३ | मग. | उभा अश्वि. रेव. | ३–८–१३ | मगल |
| ७–२–१२ | बुध. | कृत्ति रोहि मृ पुष्य अनु | ४–९–१४ | शनि. |
| १०–१–१५ | गुरु | अश्वि पुष्य पुन अनु रे | ५–१०–१५ | गुरु |
| ७–६–११–१३–१ | शुक्र | रेव अनु श्रवण | नार चद्रके मतसे इन " तिथि वारोंके सयोगसें " सिध्धियोग होता है | |
| १–९–१४ | शनि | रो श्रव स्वाति | | |
| ये तिथि वारके सयोगसें और ये वार नक्षत्रके योगसें सिद्धियोग होता है | | | | |

## आनंदादि शुभ योगका कोष्टक

| रवि. | सोम. | मंग | बुध | गुरु | शुक्र | शनि | शुभ योगके नाम. |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| अश्वि. | मृग | अश्ले | हस्त | अनु | उषा | शत | आनंदयोग |
| कृत्ति. | पुन | पुफा | स्वा | मूल | श्रव | उभा. | प्रजापतियोग |
| रो. | पुष्य | उफा | विशा | पुष्य | धनी | रेव | शुभयोग |
| मृग. | अश्ले | हस्त | अनु | उषा | शत | अश्वि | सौम्ययोग. |
| पुन. | पुफा | स्वा | मूल | श्रव | उभा | कृत्ति | ध्वजयोग |
| पुष्य | उफा | विशा. | पुषा | धनी | रेव | रोहि | श्रीवत्सयोग |
| पुफा. | स्वा | मूल | श्रव | उभा | कृत्ति | पुन | छत्रयोग. |
| उफा | विशा | पुषा | धनी. | रेव | रो | पुष्य | मित्रयोग |
| हस्त. | अनु | उषा | शत. | अश्वि | मृग. | अश्ले | मनोज्ञयोग |
| मूल. | श्रव | उभा | कृत्ति | पुन | पुफा | स्वा | सिद्धियोग |
| उषा. | शत | अश्वि | मृग | अश्ले | हस्त | अनु | अमृतसिद्धियोग |
| श्रव | उभा | कृत्ति | पुन | पुफा | स्वा | मूल | गजयोग |
| उभा | कृत्ति | पुन | पुफा | स्वा | मूल | श्रव | स्थिरयोग |
| रेव | रो | पुष्य | उफा | विशा, | पुषा | धनी | वर्द्धमानयोग |
| धनी | रेव | रो | पुष्य | उफा. | विशा | पूषा | मातंगयोग |

रवियोगकी, कुमारयोगकी और राजयोगकी महत्त्वता अपने ज्योतिषके ग्रन्थोंमें बहुतसी की है ये योगोंमें काम करनेसे अतिशय उत्तम फल कहा है ये योग होवे ओर दूसरे कुयोग होवे तो वो कुयोग हरकत नहीं कर सकता है

रवियाग सो-चलते सूर्यनक्षत्रसें ४-६-९-१०-१३-२० इस अंकका कोइ नक्षत्र हो तो रवियोग होता है

कुमारयोग सो-मंगलवार बुध सोम, शुक्र तिथि १-६-१०-११-५, नक्षत्र अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, हस्त, विशाखा मूल, श्रवण, पूर्वाभाद्रपद, इन वारोंमेंसे कोइ वार, इन तिथियोंसें कोइभी तिथि और इन नक्षत्रमेसे कोइभी नक्षत्र आवे तो कुमारयोग होता है

राजयोग सो-रविवार, मंगल, बुध, शुक्र, २-७-१२-३-१५ ये तिथिये तिन भरणी, मृगशिर्ष, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, चित्रा, अनुराधा, पुर्वापाढा, धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपद-इन नक्षत्रोंमेंसें कोइ नक्षत्र और उपर बतायेगये वारका संयोग हो जानेसें राजयोग होता है, सो बहुतही उत्तम माना जाता है

स्थिविरयोग सो-अनशन करनेमें, रोगनिवारण निमित्त औषध करनेमें उत्तम कहा है वो गुरु, शनीवार तथा १३-८-८-९-१४ तिथि, और कृत्तिका, आर्द्रा, अश्लेषा, उत्तराफाल्गुनी, स्वाति, ज्येष्ठा, उत्तराषाढा, शतभिषा, रेवती ये नक्षत्रके याने उपर कहे हुवे वार-तिथि-नक्षत्रके संयोगसें स्थिविर योग होता है

मुहूर्तके ग्रन्थोंमें दूषित नक्षत्र ल्मग्नशुद्धि प्रकरणमें कहे है सो निचे मुजब —

१ सजागत याने जो नक्षत्र सूर्यास्तके समय उदय होवे उसको सजागत नक्षत्र कहा जाता है सो वर्जनीय है

२ आदित्यगत याने जिस नक्षत्रका सूर्य हो उस नक्षत्रमें मुहूर्त करे तो निवृत्ति न पावे, वास्ते वर्जनीय है

३ बडे बडे सो अभिजित् नक्षत्रमें सात नक्षत्र पूर्व दिशाके, उस पीछेके सात दक्षिण दिशाके, उस पीछेके सात पश्चिम दिशाके और उस बाद सात उत्तर दिशाके-इस तरह स्थापन करके देखे और प्रभुजी

विराजे उन्होंके सन्मुख नक्षत्र आवे उस नक्षत्रमे मुहूर्त करना सो सुंदर है सन्मुख सिवाके वो वडे वडे नक्षत्रोंमें कार्य करे तो शत्रुका जय ओर आपकी हानी होवै

४ सग्रह सो–क्रूर ग्रह सहित जो नक्षत्र हो सो वर्जनीय है उस नक्षत्रमें कार्य करै तो विघ्न होवै.

५ विलंबीण–सो सूर्यनक्षत्रके पीछेके नक्षत्रमें कार्य करै तो विवाद होवे.

६ राहुहत–सो जिस नक्षत्रपर ग्रहन हो वो नक्षत्रमें कार्य करै तो मरण होवै

७ ग्रहभिन्न सो–नक्षत्रके बीचमें होकें ग्रह आवै उस नक्षत्रमें मुहूर्त करै तो लोही–रुधिर वर्षे.

रोहिणीवेध यंत्र.

उपरके यत्रमें जो शूलयोगपर मृगशिर्ष नक्षत्र रक्खा गया है, उसी तरह परिघयोगपर मघा, वैधृतपर चित्रा, व्याघातपर पुनर्वसु, वज्रपर पुष्य, विष्कुभपर अश्विनी, अतिगडपर अनुराधा, गडपर मूल, और व्यतिपातपर अश्लेषा-इस मुजबसें जितनी सख्यावाला योग हो उतनी सख्यावाला नक्षत्र रखना.

उपर मुजबके दोष छोडकर प्रतिष्ठा, दीक्षाके मुहूर्त्तके नक्षत्र लेवे दीक्षाके नक्षत्र लग्नशुद्धि मुजब लेना

उत्तरफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, हस्त, अनुराधा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, पुष्य, पुनर्वसु, रेवती, मूल, अश्विनी, श्रवण, स्वाति, इन नक्षत्रोंमें दीक्षा देवी गुरुको चद्रबल देखना और शिष्यको चद्रबल, गुरुबल, रविबल जो प्रतिष्ठा करानेवालेके देखनेका जैसें बतलाया है वैसें देखना दूसरा सब प्रतिष्ठा मुजबही करना

यात्रा करने जानेके प्रयाणमें उत्तम और मध्यम नक्षत्र नारचद्रके टीप्पणमें नीचे मुजब है —अश्विनी, पुष्य, रेवती, मृगशिर्ष, पुनर्वसु, हस्त, ज्येष्ठा, अनुराधा और मूल ये उत्तम कहे है, और चित्रा, रोहिणी, स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, तीनु पूर्वा, ये मध्यम कहे है दीक्षाके वार रवि, गुरु, शनि ये उत्तम है इन सिवाके वारके दिन यदि सिद्धियोग वगैर शुभ योग होवै तो लग्नशुद्धिमें वो वारभी उत्तम कहे है

इसतरहकी दिनसशुद्धि देख करके लग्नशुद्धि देखनी उसमें छः वर्ग तक देखनी और ग्रहका उदय, अस्त, बलभी देखना चाहियें छ वर्ग नीचे मुजब है.—

ग्रह, होरा, दशस्थान, नवमाश, द्वादशाश, त्रीशाश इन छउ जगेपर सौम्य ग्रह आवें तो उत्तम है. कदाचित् पाच वर्ग शुभ होवें तोभी मुहूर्त्त लेना अब लग्नका प्रमाण निम्न लेख मुजब है –

मीन और मेष लग्नकाल २१९ पल,

कुभ, वृषभका २-१ पल,

मकर मिथुनका ३०३ पल,

वृश्चिक, सिंह लग्नका ३४७ पल, कन्या, तोलाका ३२७ पल, और धन, कर्क लग्नका ३४३ पलका काल है अब लग्न निकालना होवे तो छपे हुवे पचांगमें रवि कितने अंशसें है? वो देखकर पीछे पचांगमें लग्नपत्रके कोष्टकमें रवि कितने अंशसें है? वो देखना, और पीछे लग्नपत्रके कोष्टकमें जितने अंशसें रवि जिस संक्रातिका हो, उसके कोठेमें जो अंक हो सो वो लग्न प्रातःकाल—सूर्योदय समय होनेका समझ लैना. पीछेका जो अच्छा लग्न होय वो कोठेमें जो अंक हो सो देखना, उसमें जितनी घडीकी विशेषता आवे उतनी घडी दिन चढनेसें वो अंक आवेगा ऐसा समझ लेना पीछे कुंडली निकालकर जिस जिस राशिके ग्रह हो वो लिखना और वे ग्रह अच्छे या बुरे है कि कैसे? वो देखनेके लिये लग्नशुद्धि मुजब कुंडली की हैं उस मुजब देखना.

प्रतिष्ठा ग्रह नीचे मुजब'—

उत्तम— मध्यम.
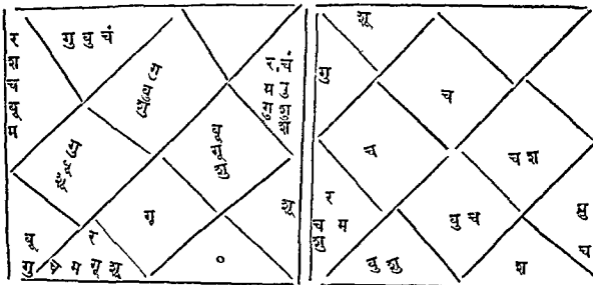
उपर मुजब ग्रह होवे तो प्रतिष्ठा करनेमें श्रेष्ठ है. इस सिवाके स्थान पर ग्रह होवे तो कार्यकी हानीकर्त्ता कहे है. यह कुंडली आचार्यस्थापना, राज्याभिषेक, विवाह और अन्यभी शुभ कार्योंमें सुख देनेवाली है.

दीक्षाकी उत्तम कुंडली
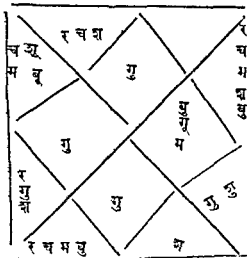
इस उत्तम कुंडलीमें ग्रह रक्खे हें उस मुजबके ग्रहोंमें दीक्षा देनी सो बहुतही श्रेष्ठ है मगर उस मुजबके ग्रह न हो तो दीक्षाकुंडलीमें शनी मध्यम बली हो गुरु बलवान हो और शुक्र निर्बल हो उसमें दीक्षा देनी उसका स्वरुप नीचे मुजब है —

शनि-२-५-६-८-११ इन स्थानोपर मध्यम बली,

गुरु-१-४-७-१० इन स्थानोंपर बलवान,

शुक्र-६-१-२ इन स्थानोंपर निर्बल वो दीक्षामें अच्छा

बुध-२-३-५-६-११ सुखदायक है

मगल-३-६-१०-११ इन स्थानोमें हो तो दीक्षा लेनेवाला बहुत अच्छे ज्ञान तपयुक्त हो सकेगा ऐसा समझना

शुक्र, मगल, शनि इन तीनमेंसे कोइसेंभी सप्तम भवनमें चद्र हो तो अयोग्य है दीक्षा लेनेवाला बेशक कुशीलीआ निकले और तप ज्ञानसें रहित होवै

नारचंद्रमें दीक्षाकुंडलीअें कही हैं उस मुजब कहता हु, एक उत्तम कुंडली तो जैसे लग्नशुद्धिमें कही है उसी मुजब है और दूसरी ग्रथांतर मुजब की है —

दीक्षाकी उत्तम कुंडली.
दीक्षाकी मध्यम कुंडली
जघन्य.
मध्यमः
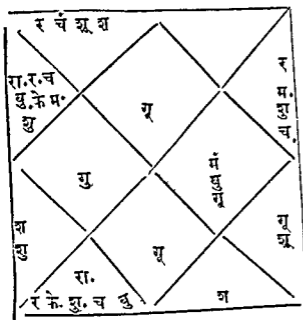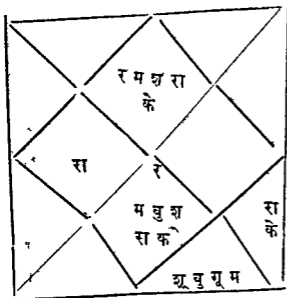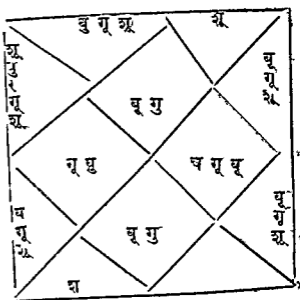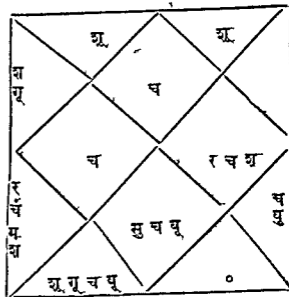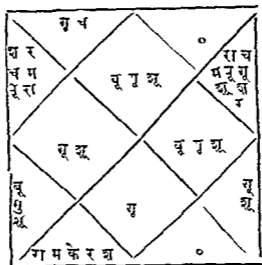
उत्तम

इस लगकुंडलीमें उत्तम ग्रह आवे सो ग्रहशुद्धि

होरा सो लग्न लिया गया हो उसके दो भाग करना. उसमे-१-३-५-७-९-११ इन सख्यावाला लग्न होवें तो पहेली होरा रविकी और दूसरी होरा चद्रकी और २-४-६-८-१०-१२ इन सख्यावाला लग्न हो तो पहेली होरा चद्रकी और दूसरी होरा सूर्यकी प्रतिष्ठा, दीक्षादिक चद्रकी होरामें करना

देशकाण सो-लग्नके तीन हिस्से करना, उसमें जो मेप लग्न लिया हो तो पहेला देशकाण मेपका, और इसीही तरह जो लग्न लिया हो उसीकाही पहेला देश्काण समझना दूसरा देशकाण सिंहका, तीसरा धनका, वृप लग्नमें पहेला वृपका, दूसरा कन्याका, तीसरा मकरका, इस मुजब जो लग्न लिया हो उससें देख लेना पीछे जो देशकाण आवे उसका स्वामी जन्मकुडलीमें देखना और स्वामी अच्छे स्थानमें हो तो देशकाणमें मुहूर्त करना

नवमांश देखना सो-जो लग्न होवे उनके पहेलेका जो होय उसके नौ भाग करना उसमें पहेले हिस्सेका नवमांश जो मेप लग्न हो तो प-

हेले मेषका. १-२-३-४-५-६-७-८-९ जो वृष लग्न हो तो पहेला १०-११-१२-१-२-३-४-५-६. जो मिथुनका हो तो पहेला ७-८-९-१०-११-१२-१-२-३ जो कर्क लग्न हो तो पहेला ४-५-६-७-८-९-१०-११-१२ जो सिंह लग्न हो तो पहेला-१-२-३-४-५-६-७-८-९ कन्या लग्न हो तो पहेला-१०-११-१२-१-२-३-४-५-६ जो तुला लग्न हो तो पहेला-७-८-९-१०-११-१२-१-२-३ जो वृश्चिक लग्न हो तो पहेला-४-५-६-७-८-९-१०-११-१२ जो धन लग्न हो तो पहेला-१-२-३-४-५-६-७-८-९ मकर लग्न हो पहेला १०-११-१२-१-२-३-४-५-६ जो कुंभ लग्न हो तो पहेला ७-८-९-१०-११-१२-१-२-३ जो मीन लग्नका हो तो पहेला ४-५-६-७-८-९-१०-११-१२ इस मुजब नौ नवमांश जो नवमांशका स्वामी बलवान हो सो लेना और सौम्य ग्रहका लेना सोम्य ग्रह सो-चद्र-बुध-गुरु-शुक्र.

द्वादशांश सो-लग्नके बारह भाग करना और जो लग्न हो उस पहेले भागका स्वामी, और उससें क्रमवार बारह भागके स्वामी देखना उसमें जो भागमें मुहूर्त्त होवे उस भागका स्वामी लग्नमें वो शुभ ग्रह हो तो श्रेष्ठ समझना

त्रीशांश सो लग्नके तीस हिस्से करना उसमें मेष लग्न हो तो पहेले पांच भागका स्वामी मगल, उस पीछेके पांच भागका स्वामी शनि, उस पीछेके आठ भागका स्वामी गुरु, उस पीछेके सात भागका स्वामी बुध, उस पीछेके पांच भागका स्वामी शुक्र-इस तरह मिथुन, सिंह, तुला, धन, कुंभके भागोंके स्वामी येही समझ लिजीयें और समराशि जो वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन ये छउ सम लग्नमें पहेले पाच भागका स्वामी शुक्र, उस पीछेके पाच भागका स्वामी बुध, उस पीछेके आठ भागका स्वामी गुरु, उम पीछेके सात भागका स्वामी शनि और उस पीछेके पाच भागका स्वामी मगल. इस मुजबसें अंशके स्वामी देख लेने चाहियें उसमें सौम्य ग्रहके अंशमें मुहूर्त्त करना श्रेष्ठ है फिर दूसरी तरहसें त्रीश अंशमेंसें अंश कहे हैं वो नीचे मुजब त्रीश अंश अदरके अंश हैः—

वृप और मकर लग्नका बीसवा अंश

| | |
|---|---|
| मीन, कर्क, कन्याका १५ तथा | ८ अंश |
| वृश्चिकका | १२ अंश |
| कुंभका | २६ अंश |
| तोलाका | ४ अंश |
| मेषका | ७७ अंश |
| सिंहका | १८ अंश. |
| धन और मिथुनका | १७ अंश |

इस तरह जो लग्न हो उसके ऊपर कहे हुवे अंशोंमें मुहूर्त करना वोभी उत्तम कहा है बारह लग्नके स्वामी देखना सो मेषका स्वामी मंगल, वृषका शुक्र, मिथुनका बुध, कर्कका चद्रमा, सिंहका रवि, कन्याका बुध, तुलाका शुक्र, वृश्चिकका मगल, धनका गुरु, मकर कुभका शनि और मीनका गुरु है इस मुजब लग्नके स्वामी है वो स्वामी बलवान् होवे सो देखना, या उच्च स्वगृही होवे तो बहुत अच्छा, मगर नीचका या शत्रुके गृहमें बैठा हुवा वा हस्तका वक्रीका हो सो वर्जनीय है इस तरह ६. वर्गशुद्धि देखनी चाहियें

एक आचार्य महाराजने और लग्नशुद्धिमें कहा है कि नवमांश शुद्ध देखकर प्रतिष्ठा करनी चद्रमा क्रूर ग्रहसें युक्त हो तो वो क्षीणचद्र कहा है, सो निर्बल है

उदय शुद्धि सो–नवमांशका स्वामी लग्नकुडलीमें लग्नके स्वामीकों देखता होवे तो उसकों उदयशुद्धि कहा जाता है वो प्रतिष्ठा दीक्षामें देखनी चाहियें

अस्तशुद्धि सो–नवमांशका स्वामी लग्नके सातवे स्थानकों देखता हो तो उसें अस्तशुद्धि कहते है

लग्नशुद्धिमें ऐसाभी कहा है कि अस्तशुद्धि और उदयशुद्धि देखनेकी दीक्षा, प्रतिष्ठामें जरूरत नहीं है यु कितनेक आचार्यभी कह गये हैं बारह राशियोंमे चर,स्थिर और द्विस्वभावकी पहेचान नीचे मुजब है —

मेष, कर्क, तुला और मकर चर राशी है

वृष, सिंह, वृश्चिक ओर कुंभ स्थिर राशी हैं

मिथुन, कन्या, धन और मीन द्विस्वभाव हैं

इनमेंसें प्रतिष्ठाके काममें स्थिर लग्न लेना वो नही तो द्विस्वभाव लेना. आरंभसिद्धिमें वने वहाँ तक द्विस्वभाव लेना और वो न आवे तो स्थिर लेना अगर ग्रह बहुतही उत्तम आते होवे तो क्वचित् चरभी लेनेका कहा है

नारचंद्रमें लग्नकुंडलीके भीतर ग्रह पडे हो उसके योगायोग और फल कहे है सो नीचे मुजब है:—

चंद्रके साथ रवि मंगल होवे तो अग्नि भय होवे.

चंद्रके साथ शनि हो तो मरण भय करे

चंद्रके साथ बुध हो तो समृद्धि करे

चंद्रके साथ गुरु हो तो महीमा प्रभाव बढावे.

चंद्रके साथ शुक्र हो तो समस्त सौख्य देवे

प्रतिष्ठा-कुंडलीमें रवि अबल [ निर्बल ] हो तो गृहके मालिककी हानी होवे. चंद्र निर्बल हो तो स्त्रीका मरण होवे, शुक्र निर्बल-विबल हो तो धननाश, गुरु विबल हो तो सुखनाश होता है. प्रतिष्ठा कुंडलीमें नीचग्रह क्रूरग्रहसें युक्त हो, या अस्तका, या शत्रुक्षेत्रका ग्रह, या वक्री हो तो विबल समझना. शनि रवि वक्री होवे तो प्रासादका नाश करे.

मंगल, शनि, राहु, रवि, केतु, शुक्रभी इस ग्रहसें सहित इन ग्रहोंमेंसे सातवा हो तो सूत्रधार, आचार्य, श्रावक इन सबका मृत्यु करे मंगल, शनि, सूर्य १–१०–४–७–८–९ इतने स्थानपर होवे तो प्रासादका भंग करे. मंगल बारहवे स्थान हो तो सुखभंजक

शुक्रवार शुक्रका नवमांश, शुक्रलग्नाधिपति, शुक्रके उदयमें शुक्र सातवेंसे लग्नको देखता होवे तो उसमें दीक्षा न देनी.

सोमवारके रोज लग्नका स्वामी चंद्र, नवमांशका स्वामी चंद्र, चंद्रके उदयमें वो शुक्लपक्षमें ये एकत्र योगमें दीक्षा न देनी

## कुंडलीमें शुभयोग कुयोग होते है वो आरंभसिद्धिके अनुसार

| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | अच्छे योग |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | | श | | | शुभ ग्रह | | र. म | | श्री वत्सयोग श्रेष्ठ. |
| | | च | | | म | | | | | र | | अर्धयोग श्रेष्ठ. |
| शुभ | | | शुभ | | | | | शुभ | शुभ | | | शंखयोग श्रेष्ठ. |
| | | | | | | | | | | | | द्रुजयोग श्रेष्ठ |
| बु. | | | | | | | पाप ग्रह | गु | | | | गजयोग श्रेष्ठ |
| | | च. | | शुभ | अ | ने | क | न्या | लग्न | होवै | तो | हर्षयोग अच्छा. |
| बु | | | | | | | | | | | | आनंद्योग श्रेष्ठ |
| गु | | | | | | | | | | | | जीवयोग श्रेष्ठ. |
| शुक्र | | | | | | | | | | | | मदनयोग श्रेष्ठ |
| गु शुक्र | | | | | | | | | | | | स्थिरयोग श्रेष्ठ. |
| बु. | | | | | | | | | | | | जीमीतयोग श्रेष्ठ |
| गु बु गु | | | | | | | | | | | | जावयोग श्रेष्ठ |
| बु गु शुक्र | | | | | | | | | | | | अमृतयोग श्रेष्ठ |
| | | | | | शुभ | | शुभ | न | | | पाप | धनुर्योग नेष्ठ. |
| | | | | | | | | | | | न | कुठारयोग नेष्ठ |

कुंडलीके ग्रह

| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | म | | | | च. | | | | शु. | मूशलयोग नेष्ठ. |
| | स | | | मं | | | च. | | | | र. | कूर्मयोग नेष्ठ. |
| पाप | | | पाप | | | पाप | | | पाप | | | वापीयोग नेष्ठ. |
| पाप | | | पाप | | | | | | पाप | | | शल्ययोग नेष्ठ |
| पाप | | | | | | | | | | | | पाणीयोग नेष्ठ. |
| पाप | | | | | | | | | | | | मर्मयोग नेष्ठ. |
| | | | | शु. | | | | | | | | वक्रयोग नेष्ठ. |
| | | | | पाप | | | | | पाप | | | सकटयोग नेष्ठ. |

उपरके यत्रोंमें जहा पाप और क्रूर शब्द लिखा है सो रवि, मंगल, शनि राहु-इस अंदरका ग्रह समझना और जहां शुभ ग्रह लिखा है वहा चंद्र, गुरु, शुक्र, बुध समझ लेंना. और नेष्ठ योग छोडकर श्रेष्ठ योगमें मुहूर्त्त देना

मुहूर्त्त करनेकी ताकीदी हो अगर शुभ मुहूर्त्त या लग्नशुद्धि अच्छी हाथ न लगती हो तो लग्नशुद्धि प्रकरणमें और नारचंद्र टीप्पणमें छाया लग्नका विधि कहा है उससें मुहूर्त्त करनेमें श्लोक कहा है सो नीचे मुजबः—

न तिथिं र्नं च नक्षत्र, न वारो न च चद्रमाः
न ग्रहोपग्रहाश्चैव, छाया लग्न प्रशस्यते

इस तरह कहा है, वास्ते छायालग्नसें कार्य करना-याने सूर्यको पीठ देकर पुरुष खडा रहै और पीछे अपनी छाया जहा तक लंबी मालूम होती हो वहा तकका निशान कायम कर पीछे आपहीके कदमसें पगले भरं, वो पगले वार अनुसार लैना. अगर सात अंगुलका शंकु रखकर उसकी छाया आंगुलसें नाप लेवें.

रविवारके दिन ११, सोमवारके रोज ८॥, मंगळवारके रोज ९, बुधवारके रोज ८ गुरुके रोज ७, शुक्रके रोज ८॥ और शनीवारके रोज ८ अंगुल नापना. इस मुजब आंगुल नापें सो शंकु बारह अंगुलका पा-

टियेपर समान जगहपर रखना पीछे जिस वारके रोज मुहूर्त करना हो उस रोजके अगुल कहे मुजब छाउ आ जाय कि मुहूर्त कर लै, वो कल्याणकारक हैं. यह छाया लग्नसें यात्रा करनेको प्रयाण करना हो या हरकोइ कार्यका आरभ करना हो वो कल्याणकारक है

यात्रा वा परदेशको प्रयाण करना हो तो चद्र सन्मुख या दाहिना लैना. योगिनी पृष्टभागमें रखनी सन्मुख काल न लेना नक्षत्र प्रयाणके पत्र १२६ में कहा है वहा देख लैना शुभ लग्न या छाया लग्नमें प्रयाण करना नारचद्रमें चद्रवासा देखनेकी रीति कही है याने मेष, सिंह, धनका चद्र पूर्वदिशामें, वृष, कन्या, मकरका चद्र दक्षिणमें, मिथुन, तुल, कुभका पश्चिममें और कर्क, मीन, वृश्चिकका चद्र उत्तरमें रहता है.

१-३-५ इन सख्यावाले चद्रका निवास मस्तकपर होता है उन चद्रमें विदेश-परगाम जाय तो धनकी प्राप्ति करै ६-९ इन चद्रोंका वासा पीठमें होता है वो अच्छा नहीं ८-१२ इन चद्रोंका वासा पॉवपर होता है वो निराशादायी हैं १०-११-७ इन चद्रोंका निवास छातिपें होता है उसमें प्रयाण करै तो धनादिका वहुत सुख मिलै, और २-४ इन चद्रोंका निवास हाथमें होता है उसमें प्रयाण करनेसें सब आशा पूर्ण होती है.

सातों वारके फल नारचद्रके मुजब-गुरु पाणीग्रहणमें, शुक्र परदेश जानेम, बुध पढनेमें, शनि दानदक्षिणा देनेमें, मगल लडाइमें, और रवि मिलापमें, और सोमवार सब कार्यमें अच्छा कहा है बहुतकरके मगल रवि इनको बने वहा तक काममें न लैना. शुभ योग लेकर काम करै तो जय होवै कुयोग या तिथिके कोष्टक-यत्रमें देखकर जो वर्जनीय हो उसको छोड दैना हर किसी काममें कुयोग निगरकी शुभ योगवाली तिथि लेकर कार्य फतेह करना.

जो वार होवै उसी रोज ग्रह वलवान हो याने कृष्ण पक्षमें रवि, राहु, शनि, मगल बलवान होते है, और शुक्लपक्षमें सोम, बुध, गुरु, शुक्र बलवान होते हैं

नौ ग्रहोंकी दृष्टि और शत्रु-मित्रता-उच्च-नीच-स्वगृही बलवान देखनेका यंत्र.

| रवि | सोम. | मंगल. | बुध. | गुरु | शुक्र. | शनि | राहु | केतु | ग्रहोंके नाम. |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ७ | ७ | ४-८-७ | ७ | ५-९-७ | ७ | ३ १० ७ | ७ | ७ | संपूर्ण दृष्टि |
| ४-८ | ४-८ | ५-९ | ४-८ | ३-१० | ४-८ | ७ | ० | ० | त्रिपाद दृष्टि |
| ५-९ | ५-९ | ५-९ | ५-९ | ० | ५-९ | ५-९ | ५-९ | ५-९ | द्विपाद दृष्टि. |
| ३-१० | ३-१० | ३७१० | ३-१० | ४-१० | ३-१० | ५-९ | ३-१० | ३-१० | एकपाद दृष्टि |
| चं म. गु. | र बु | र गु च | र. रा शु | र च म | बु रा श | बु रा शु | बु श शु. | बुश | मित्र ग्रह. |
| बु. | मं. शु. गु श. | शु श गु | म. श गु | श. रा | म गु. | गुरु | गुरु | ० | सम ग्रह. |
| श. रा. शु | बु. | बु. रा. | चं. | बु शु | र चं | र च. म | र च मं. | ० | शत्रु ग्रह. |
| मेष. १० | वृष ३ | मकर. २८ | कन्या १५ | कर्क. ५ | मीन २७ | तुला. २० | मिथुन | ० ० | उच्च ग्रह-परमोच्च अंश. |
| तोला. १० | वृश्चि ३ | कर्क २८ | मीन. १५ | मकर ५ | कन्या २७ | मेष २० | धन. ० | ० | नीच ग्रह-नीचांश |
| सिंह | कर्क. | मे वृ | क. मि | ध मी | वृ. तु | म कु. | कन्या. | ० | स्वगृही |
| दिन. | रात्रि. | रात्रि | दि रात | दिन | दिन | रात्रि | ० | ० | बलवान्. |

कुंडलीमें ग्रह जिस स्थानपर बैठा हो उससें २-३-४-१०-१२ इन संख्यावाले स्थानपर दूसरा ग्रह होवे तो उसके साथ तात्कालिक मित्रता कहेनी. और ५-६-७-८-९ इन स्थानपर बैठा हुवा ग्रह तात्कालिक शत्रुता कहेनी. कुंडलीमें मित्र हो और अहर्निश मित्रता हो तो अधिमित्रता, और शत्रुभी सब जगह हो तो अधिशत्रुतावत समझना.

प्रतिष्ठा, दीक्षा कुंडलीमें तीन शुभ ग्रह बलवान् होवे ओर दूसरे हीन बली हो तोभी मुहूर्त्त करना ऐसा आरंभसिद्धिमें कहा है.

लग्नकुंडलीमें बुध रविस रहित १-४-७-१० यह चार स्थानपर हो तो लग्नके १०० दोषोंका नाश करै शुक्रकेंद्र स्थान-१-४-७-१० में होवे और क्रुर ग्रहोंसें रहित हो तो १००० दोषका नाश करै और गुरुभी उसी केंद्रस्थानमें बलवान् हो तो लग्नके लक्ष दोषका निवारण करै-इस तरह आरंभसिद्धिकी छोटी टीकामें कहा है और बडे प्रतिष्ठा कल्पमें ५-९ गुरु, शुक्रका वैसाही फल कहा है पुन' प्रतिष्ठाकल्पमें मेष, वृषका चंद्र, सूर्य हो और शनि बलवान् हो, मंगल, बुध हीनबली हो तोभी प्रतिष्ठा करनेका कहा है-वार, तिथि, नक्षत्र, चंद्रबल देखना न-हीं-लग्न बलवान् देखना -३-११ शूर्य हो, १-४-९-१०-५ गुरु या शुक्र हो तो दूसरे सब दोषोंको दूर करै, और शुभ फल देवें. उन ग्रंथमें लग्नकुंडलीमें राहु या केतु १-४ हो तो उत्तम कहा है, मगर दूसरे किसी ग्रंथमें उत्तम नहीं कहा मालूम होता है.

तमाम ग्रह शत्रुके घरमें होवे तो प्रतिष्ठा नेष्ट समझनी. लग्न या सा-तवे स्थान चंद्र, राहु या केतु युक्त हो तो वो अधम फल देवे लग्नमें या चंद्रयुक्त गुरू हो तो निर्विघ्नतासें प्रतिष्ठा होवें चंद्र शुक्र युक्त या शु क्रको चंद्रपर दृष्टि हो तो अच्छा फल देवे

चोवीस तीर्थंकरजीकी राशि, नक्षत्र लाउन नीचे मुजब'-

ऋषभदेवजीकी धनराशि, उत्तराषाढा नक्षत्र, और वृषभ लांछन है इसीतरह तमामके लिये समझना —

| | | | |
|---|---|---|---|
| अजीतनाथजी- | वृषभ, | रोहणी, | हाथीका |
| संभवनाथजी- | मिथुन, | मृगशिर्ष, | घोडेका |
| अभिनंदनजी- | मिथुन, | पुनर्वसु, | बंदरका |
| सुमतिनाथजी- | सिंह, | मघा, | कौंचपक्षिका |
| पद्मप्रभुजी- | कन्या, | चित्रा, | कमलका. |

| | | | |
|---|---|---|---|
| सुपार्श्वनाथजी- | तुला, | विशाखा, | स्वास्तिकका. |
| चंद्रप्रभुजी- | वृश्चिक, | अनुराधा, | चंद्रका. |
| सुविधिनाथजी- | धन, | मूल, | मगरका लाछन |
| शीतलनाथजी- | धन, | पुर्वापाढा,. | श्रीवत्सका. |
| श्रेयांशनाथजी- | मकर, | श्रवण, | गेंडेका |
| वासुपूज्यजी- | कुंभ, | शतभिषा, | पाडेका-भैंसेका. |
| विमलनाथजी- | मीन, | उत्तराभाद्रपद, | सूअरका |
| अनंतनाथजी- | मीन, | रेवती, | बाजपक्षीका |
| धर्मनाथजी- | कर्क, | पुष्य, | वज्रका |
| शांतिनाथजी- | मेष, | अश्विनी, | हरिणका. |
| कुंथुनाथजी- | वृष, | कृत्तिका, | बकरेका |
| अरनाथजी- | मीन, | रेवती, | नंदावर्त्तका. |
| मल्लिनाथजी- | मेष, | अश्विनी, | कलशका. |
| मुनिसुव्रतस्वामीजी- | मकर, | श्रवण, | कछुवेका. |
| नमिनाथजी- | मेष, | अश्विनी, | कमलका. |
| नेमिनाथजी- | मेष, | विशाखा, | शंखका. |
| पार्श्वनाथजी- | तुला, | विशाखा, | सर्पका |
| महावीर स्वामीजी- | कन्या, | उत्तराफाल्गुनी, | सिंहका. |

चोवीसों भगवतजीकी राशी मिलतीका पत्र १ विज्यानंद सूरिजीके पास देखाथा उसमें नीचे लिखी हुइ राशिवालोंकों फलाने फलाने भगवतजीके शासनदेव अनुकूलता देवें ऐसा कहाथाः-

मेषराशिकों १-३-४-५-७-९-१०--११--१२--१६-१९-२०-२१-२३

वृषराशिवालेकों २-९-६-७-८-११-१२-१३-१४-१७-१८-२०-२२-२४

मिथुनराशिवालेकों १-३-४-५-६-७-९-१०-१२-१३-१४-१६-१८-१९-२०-२१-२२-२३-२४

- कर्कराशिवालेकों १-२-६-७-८-९-१०-११-१२-१३-१४-१५ १६-१७-१८-१९-२०-२१-२२-२३-२४.

सिंहराशिवालेकों १-२-३-४-५-७-८-९-१०-११-१२-१३-१४-१६-१७-१८-१९-२१-२३

कन्याराशिवालेकों १-२-३-४-६-८-९-१०-११-१२-१३-१४ १५-१७-१८-२०-२२-२४

तोलाराशिवालेकों १-२-३-४-६-७-९-१०-११-१२ १५-१६-१७-१९ २० २१-२३

वृश्चिकराशिवालेकों २-५ ६ ८-११-१२-१३-१४-१५-१६-१७-१८-१९-२०-२१-२२-२४

धनराशिवालेकों-१-३-४-५-६-७-८ ९-१०-१२-१३-१४-१५-१६ १८-१९-२१ २२ २३-२४

मकरराशिवालेकों-२-३-४-५-६-८-११-१३-१४-१५-१६-१७-१८ १९ -२०-२१-२२-२३ २४

कुंभराशिवालेकों-१-२ ३-४ ५-६-७-८-९-१०-१२-१५-१६-१७-१९ -२३ २४

मीनराशिवालेकों-१-२-३-४-५-६-७-८-९-१०-११-१३-१४-१७-१८ २०-२१ २२-२३ २४

इस मुजब उन पत्रमें था सो लिख दाखिल किया है दूसरी तरह-सेंभी है मगर वो अवर शास्त्रोंसें निर्णय करना.

इस मुजब प्रतिष्ठा दीक्षामें मुहूर्त देखकर काम करनेसें कल्याण होता है. मेरे देखनेमें आया वैसा लिखा है विशेप देखना हो तो जैनके योतिप ग्रंथ बहुतसे हैं उसमें देख लेना

१८८ प्रश्न.—श्रावक रात्रिमें सोनेके वक्त क्या करणी करै ?

उत्तरः—श्रावक रात्रिमें सोनेके वक्त धर्मसंग्रहके लेख मुताबिक विधिसें करणी करै याने-प्रथम देवस्मरण करना सो इस तरह.—

नमो वीयराण, सव्वन्नुण,

तिलुक्कपूइयाण, लहाठिय वत्थुवाइण.

अर्थः—सब वस्तुके ज्ञाता, तीनु लोकको पूजनीक, और यथास्थित वस्तुके प्ररुपक ऐसे वीतराग प्रभुजीको मैं नमस्कार करता हु.

गुरुका स्मरण इस मुजब हैः—

धन्यास्ते ग्राम नगर जनपदादयो येषु मदीय धर्माचार्यविहरतीत्यादि चैत्यवदनादिना वा नमस्करण स्मृतिः

अर्थः—उन ग्राम–नगर–देश वगैर'को धन्य है कि जहां मेरे धर्माचार्य विचरेते है इत्यादि कहकर चैत्यवदन करै या नमस्कारसें [ नौकारसें ] स्मरण करै

चार शरण करना सो इस मुजब हैः—

क्षीणरागादिदोषौघा. सर्वज्ञा विश्वपूजिता
यथार्थवादिनोर्हत, शरण्या शरण मम १

अर्थः—रागादि दोष समूहको जिन्होंने क्षीण किये हैं, समस्त वस्तुके ज्ञाता, विश्वसें पूजित, यथार्थवादी और शरण करनेके योग्य ऐसे अरिहत भगवानजीका मुझे शरण हो

ध्यानाग्निदग्धकर्माणि सर्वज्ञा सर्वदर्शिनः
अनत सुख वीर्येधाः सिद्धाश्च शरण मम. २

अर्थः—ध्यानरूपी अग्निसें करकें कर्मोको जिन्होंने जला दिये हैं, जो सब वस्तुके ज्ञाता हैं, सब वस्तुको देखनेवाले हैं, और अनत सुख, अनंत वीर्य–पराक्रम युक्त ऐसे सिद्ध भगवानजीका मुझको शरण हो.

ज्ञानदर्शन चारित्र–युता स्वपर तारकाः
जगत्पूज्याः साधवश्च, भवतु शरण ममः ३

अर्थः—ज्ञान, दर्शन, चारित्रसें युक्त आपको और दूसरोंको तिरानेवाले, और तीनु जगत्को पूजनीय ऐसे साधुमहाराजका मुझे शरण हो.

ससार–दुखसहर्त्ता, कर्त्ता मोक्षसुखस्य च,
जिनप्रणीतधर्मश्च, सदैव शरण मम. ४

पच्चक्खाण कर, सर्व व्रत संक्षेपरूप बारह व्रत अंगीकार करके देशावगाशिकका पच्चक्खाण करे-तोभी गंठसीतककी मर्यादा रक्खे.

और शेष पापस्थान वर्जनेके लिये इस मुजब कहे:—

तहा काहच माणच, माया लोह तहेवय,

पिज्ज दोप च वज्जेमि, अब्भक्खाण तहेवय. ९

अरईरइ पेसूनं, परपरिवाय तहेवय;

मायामोस च मिच्छत्त, पावठाणाणि वज्जिमोति १०

अर्थः—वैसेंही क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पशून्य, रतिअरति, परपरिवाद, मायामृषावाद और मिथ्यात्वशल्य इन पापस्थानोंको मैं दूर करता हु

पापस्थानोंको इस तरह दूर कर पीछे वोशिरानेके लिये इस मुजब गाथा कहेवे.—

जइमेहुज्जपमाओ, इमस्स देहस्स इमाइ रयणीऐ,

आहार मुवहिदेह, सव्व तिविहेण वोसरिय. ११

अर्थः—जो इस रात्रिके अंदर मेरा मरण हो जाय तो चार प्रकारके आहार, धन, धान्य, घर, राच रचीला और कुटुंब तथा शरीर इन सबको मन वचन कायासें करके वोशिराता हु

इस मुजब कहकर नमस्कारपूर्वक तीन गाथा कहनेका कहा है, मगर कौनसी गाथा? उसका नाम नहीं, तोभी अनुमानसें नीचेकी गाथायें होगी ऐसा संभव है:—

एगोह नत्थि मे कोइ, नाहमन्नस्स कस्सइ,

एवं अदीण मणसो, अप्पाण मणुसासइ १२

एगोमे सासओ अप्पा, नाणदसण सजुओ,

सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे सयोग लक्खणा १३

सजोग मूला जीवेण, पत्ता दुक्खपरपरा,

तम्हा सजोग सबंध, सव्वे तिविहेण वोसरिय १४

अर्थः—मै अकेलाही हु, मेरा कोई नहीं और मैंभी किसीका नहीं

इस मुजब अदीन मनसें आत्माका शिखावन देवें ज्ञान दर्शनसें युक्त मेरा आत्मा शाश्वत है, बाकीके तन धन कुटुंबादि सब बाह्यभाव संयोग-रूप लक्षणवाले है. संयोगरूप मूलसें जीव दु खकी परंपराकों पाया है; इसी कारणके लिये सर्व संयोग संबंधकों मन वचन कायाके योगसें वोशिराता हु

इस मुजब चिंतन करकें स्त्री किंवा पुरुषने जो शीलपालन किये हैं उन्होंके चरित्र चिंतन कर कामकों शांत कर, पीछे नौकार मंत्र स्मरण करता हुवा सो जावे, वोभी स्त्रीके पास नहीं–अलग सो जावे

यह नियम गंठसी किंवा मुठसी करते है किसी तरह एक नौकार गिनकर पारना वहांतक अभिग्रह हैं यह विधि बहुत अच्छी लगती है मरण होवे तो आराधक हो जाय, वास्ते हरहम्मेशा करने योग्य है और मंदगीके वक्त तो अवश्य करकें करने योग्य है

( दोहा )

परमदेव परमातमा, बुद्धि आतमगुरराय,<br>
एह परमपद सेवता, अनुपानंद थवाय

अस्तु !
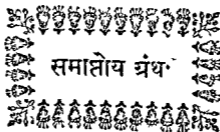
महीमावत श्री मुनिसुव्रतस्वामिने नमः

# अठारदूषणनिवारक.

१ प्रश्नः—अपना यह शरीर मालूम होता है उसमें जीव है ऐसा कितनेक सज्जन कहते हैं और कितनेक कहते हैं कि जीव नहींहै, तो उसमें सत्य क्या है?

उत्तरः—जितने धर्म आस्तिकमति हैं वे चेतन शरीरमें जीव और जड जो शरीररूप अजीव ऐसें दो मानते है. जो नास्तिक मति हैं वे अकेला शरीरही मानते है, शरीर विनाश हो गया कि पीछे कुछ नही और पाप पुन्यका फलभी भुगतनेका नहीं ऐसा मानते है.

२ प्रश्न —उन दोनु पक्षमेंसें तुम कौनसा पक्ष स्वीकार करते हो?

उत्तर—हम पूर्ण प्रतीतिसें जीव और अजीव इन दोनुकों मानते हैं दोनु वस्तुएं हैं उसका अच्छी तरह अनुभव हो सकता है.

३ प्रश्नः—जीव है ऐसी किस प्रकारसें प्रतीति होती है?

उत्तर —इस शरीरमें जीव हो वहा तक हिलना, चलना, बोलना, सोचना, हिताहित समझना, और सुख दुःख जानना इत्यादि बनता है और जब जीवरहित शरीर होता है, तब यह समस्त क्रिया बंध हो जाती है, इससे पूर्ण प्रतीत होती है कि जानने-समझनेकी शक्तिवाला तो जीवही है, और शरीर अजीव है उसीमें जीव बिगर अकेले शरीरसें कुछ नहीं बन सकता है, वास्ते जीव पदार्थ है इसमें कुछ संदेह नहीं है

४ प्रश्न —नास्तिकमति यों कहते है कि पंचभूतके संयोगसे समझने आदिकी शक्ति उत्पन्न होती है, तो उसका क्या समझना?

उत्तरः—पंचभूतोंमें पृथक् पृथक् ऐसी शक्ति है ही नहीं, तो पीछे इकठे होनेसें

किसतरह वैसी शक्ति हावे ? कदाचित् उत्पन्न होनेका स्वभाव मान लेवे तो सब जीवोंकी समान शक्ति होनी चाहियें, वो मालूम होती नहीं ज्ञानशक्ति तमाम जीवोंमें भिन्न भिन्न मालूम होती है वो न होनी चाहियें. सुख दुःखभी भिन्न भिन्न देखनेमें आते हैं वोभी न होने चाहियें और जब अलग अलग मालूम होता है तब उसका कुछभी कारण होनाही चाहियें !

५ प्रश्न.—जो ज्ञानशक्ति कम जियादा देखनेमें आती है वो तो उद्यमकी न्यूनतासें मालूम होती है जो ज्ञानका उद्यम करता है उसको ज्ञान होवे और न करे उसको न होवे वो क्या ?

उत्तर—दो मनुष्य साथ साथ बैठकर समान वक्त तक उद्यम करते हैं, परतु समान नहीं पढ सकते हैं कितनेक पढते हैं तो अर्थ नहीं समझ सकते हैं और कितनेक समझकर उसी मुजब चलते है उसी मुजब दूसरा मनुष्य नहीं चल सकता है; वास्ते अकेले उद्यमसें ज्ञान नहीं आता है

६ प्रश्नः—उद्यम बिगर ज्ञान दूसरे किस उपायसें आ सकता है ?

उत्तरः—ज्ञानशक्ति जीवकी है वो आच्छादित हो गइ है, उसमें जिनके जिनके जितने जितने आवरण खुल जाते हैं उस मुजब उन मनुष्यको ज्ञान होता है

७ प्रश्न.—तब क्या उद्यमकी जरूरत नहीं है ? अकेली आत्मशक्तिसेंही ज्ञान होता है और हिताहित जान सकता है ?

उत्तर.—जहातक आत्माकी जितनी शक्ति है उतनी प्रकट नहीं हुइ वहातक आत्मा और शरीर इन दोनुके मिलापसें ज्ञान होता हैं आत्माका ज्ञान और आत्माकी शक्ति कर्मके योगसें आच्छादित गइ है और वो ढकी हुइ है वहां तक इद्रियोंके सयोगसें ज्ञान होता है; जैसें कि अपन आंखोंसें देखते हैं वही आख खुली हो और जीव चला गया तो वो आंखोंसें कुछभी मालूम नहीं हो सकता है जीव शरीरमें है, मगर आखें मुद देवें तो कोइ पदार्थ नहीं देख सकते हैं आंखें खुली है तोभी आप खुद दूसरे उपयोगमें लुब्ध हुवा है तो और पदार्थ नहीं देख सकता हैं उससें खुला-साफ मालूम हो सकता है कि उपयोग करनेवाला कोइ अदर है सही ! वो कौन होगा ? वो जीव है ! इसी तरह कानसें सुनेके बारेमेंभी यदि उन बातमें होवें तो वो सुनकर समझ सकते हैं, लेकिन जो दूसरे काममें ध्यान लग रहा हो तो कोइ दिल चाहे सो बोले तो वो सुनेमें नहीं आता हैं इसी तरह कानोंमें कोइ रुइका ढकना दे देवें या रोग

हुवा हो तो अंदर जीव है तथापि नहीं सुन सकते है देखियें नाकके विषयभी कोइ कहेगा कि यह गंध काहेकी आती है? तब वहा बैठा हुवा मनुष्य उपयोग देकर गंधकों तपास करेगा तो कह सकेगा कि घींकी गंध आती है अब शोचो कि नासिका तो खुल्ली है, परतु उपयोग न था इससें गंधकी खबर न पडी तो सबूत होता है कि इस शरीरके अंदर गंध लेनेवाला कोइ अलग है रसेन्द्री जो जीभ है सो मनुष्यका ध्यान भोजन करनेकों बैठा है तोंभी अन्य जगे लगा हुवा है तो उसकों स्वादका ज्ञान नहीं होता है स्वादका जाननेवाला कोइ अन्य नहीं किंतु शरीरके अंदर रहा सो जीवही है. स्पर्शेद्रि जो शरीर उसकों स्पर्शज्ञान स्पर्श होनेसें होता है, परतु शरीरकों वस्तुका स्पर्श होवे उस वखत वो कोइ दूसरे ध्यानमें होवे तो उसकी खबर नहीं पडती. फिर शर्दिकें वखतमें शरीरमें बधीरता हो गइ होवै तो अंदर जीव है तोभी स्पर्शज्ञान नहीं होता है. इन सबका तपास करनेसें शरीर और जीव ये दोनु मिलकर सब काम करते हैं. उसमेंभी एक दूसरेमें विषय ग्रहण करनेका तफावत है. सब समान विषय ग्रहण नहीं कर सकते हैं उसका कारण–किसीकों कर्मावरण विशेष है तो हरएक विषय थोडासा कर सकता है. जिनकों ये पाचों इद्रियोंके आवरण खुल गये हैं वे विशेष इंद्रियोंसें जान सकते हैं वास्ते जो जो ज्ञान होता है वो कर्मके क्षयोपशमसें होता है, अकेले उद्यमसें नहीं होता है थोडा उद्यमकरे और ज्ञान ज्यादे होवें और विशेष उद्यम करे और ज्ञान कमती होवे, वास्ते जीव और अजीव इन दोनुकों कबूल रखनेसें सब बात समझ लेनेमें सुगमता पडेगी.

८ प्रश्नः—हम जीव मान लेवें, मगर फिर तुम जीवकों कर्मसयोग कहते हो वो क्या है? कौनसी वस्तु है?

उत्तरः—कर्म है वो जडरूप पदार्थ है उसका इन जीवके साथ अनादिका संबध है, यह अतिशय ज्ञानी पुरुषके वचनसें साबित होता है अनुभवसें शोचनेसेंभी यदि पहिले निरावरण हो तो कर्म क्यों लगे? कदाचित् लगे हुवे मान लेवै तो वो दिवसकी आदि हुइ तब उसकी पेस्तरकी स्थितिमें निर्मल था तो वो कबसें? या वोभी अनादि करना पडेगा कितनेक आदि कहते हैं सो उसके पूर्वकालमें ससार–जगत् थाही नहीं यह कैसें सभवित हो सके इस जगत्की स्थिति फेरफार होवै किंतु कुछ चीज नहीं हो सके वो कहासें आ सके, वास्ते जैनदर्शनवाले अनादिका जीव कर्म-

युक्त है ऐसा मानते हैं वो बात निर्विवादसें सिद्ध होती है वे कर्म न होवें तो जीव सुखदु ख काहेसें पावे? सुखदु ख कितना भुक्तनाः? कितने कालतक जीना? और कितना कुटुंब मिलना? ये सब कर्मप्रयोगसेंही जाता है

९ प्रश्न.—ये तमाम उद्यमसें बनता है उसमें कर्म क्या करता है?

उत्तर—अरे इच्छाकारी! सुखदु ख यदि उद्यमसेंही होता होवे तो मजदूर सारा दिनभर मजदूरी करता है तब बिचारेको चार आने मिलते हैं, और एक मनुष्यका पॉव जमीनमें घुस जाय और वहासें निधान प्राप्त होकर धनवान बन जाता है, जैसें कि श्रयाजीराव गायकवाड सरकार केसी स्थितिमें थे और एकदम राज्यगादी पर बिराजित हुवे ये क्या उद्यम करनेकों पधारे थे? पूर्वजन्ममें पुन्य उपार्जन किया था तो राज्य मिला एकही दवा दो मनुष्य खाते-पीते हैं, एकको तन्दुरस्ती मिले और एककों नादुरस्तीही रहवें और दवा देनेवाला डॉक्टर-वैद्यभी एकही होवें, तथापि न मिट सकै वो कर्मका तफावत है उसीसें वैसा बनता है एक बुद्धिमान् अच्छा विद्वान् अनआलसु उद्यम करनेमें तत्पर रहता है, परंतु व्यौपारमें बापदादेके कमाये हुवे पैसे गुमा बैठता है, तो यदि उद्यमहीसें बनता होता तो गुमाताही क्यों! पूर्वभवोंमें किये हुवे पाप उदय आये उससें उसको दु ख भुक्तनाही चाहियें-उसी सबबसें उसके पैसे चले जाते है ये कर्मकाही फल है कोइ पुरुष एक दो औरतोंसें सादी कर लेवें और उसकों एकभी सतान नहीं होता है भोगादिकका उद्यम करता है, मगर सतान नहीं प्राप्त होता यों करनेसें कभी सतान होभी जाय तो वो जीता नहीं तो ये क्या है? पूर्वकर्मके सयोग हैं! एक मनुष्य बडा बलवान् है ओर अच्छा खानपान करता है-शरीरकी सभालभी अच्छी तरहसें रखता है, ऐसा मनुष्य महामारी आदिके उपद्रव बिगर फक्त ख्वासी आनेसेंही मर जाता है,, फिर महामारीकी बिमारीवाली हवा सारे शहरमें चल रही है, तौभी वो हवा सबके बदनमें दाखिल नहीं हो सकती दो मनुष्य एकही घरमें साथ साथ रहनेवाले, फिरनेवाले, खानेवाले और अच्छी हिफाजत रखनेवाले है, तथापि एकके शरीरमें महामारी घुस जाती है और उसस मर जाता है, ओर दूसरा जीता रहता है तो य पूर्वके कर्मका प्रभाव है यदि केवल उद्यमसेंही बन सके ऐसा होता तो वे दो मनुष्य समान उद्यमी वो मरने न चाहियें, वास्ते पूर्वमें पाप कर्म बाधे हुवे थे उसका फल है इस परसें समझ

लिजीयें कि–केवल उद्यम व्यर्थ है, तब कुछ हेतु होना चाहियें–वो हेतु पूर्वके किये हुवे कर्म जब पूर्वमें कर्म रह गये तब पूर्वजन्मभी रह गया पिछला भव रह गया तो जीवभी रहा जीव शब्द अजीव शब्दका प्रतिपक्षी है, तो दुनियाके भीतर अजीव शब्द जीव होनेसेंही पडा है, वास्ते अच्छी तरहसें सिद्ध होता है कि जीव है. इस जगत्में नास्तिक, जीव नहीं माननेवाले थोडी संख्यावाले है, बहुतसे और धर्मवाले ऐसा कथन करते है कि–'जैसा करेंगे वैसा पावेंगे" तब करनेवाला जीवही होना चाहियें, इस्सेंभी सिद्ध होता है कि जीव है. जीव शब्दका अर्थभी एही है वो जीव प्राणधारणे धातुसें सिद्ध होता है, वास्ते जीवे सो जीव शरीर फेरफार हुवे करते हैं; मगर जीव तो वोका वोही है जैसे कर्मबन्धन किये हो वैसा पुनः शरीर धारण करता है वही जीव है. और जो जो सुखदुःख उत्पन होते हैं वो जैसे जैसे पूर्वभवमें पाप पुन्य किये है वैसे जीव भुक्तता है. और तुमारे मत मुजब जीव न हो और शरीरही अकेला हो, तब ये ऊपर तफावत बतलाया गया है वो होनाही न चाहियें, और वैसा होवे तो तुमारा नास्तिकका समझना भूलसेंभरा हुवाही है ये नास्तिक मतका निकालनेवाला पापी होना चाहियें; क्यौं कि इस समय इग्लेंडमें कितनेक इंग्रेज ऐसा माननेवाले मेदानमें आये है कि पाप पुन्य हैही नहीं शरीरकी मावजत रखनेसें दुरस्त रहता है और हिफाजतके सिवा बिगडता है ऐसा शोच करकें गुन्हा कियेकी शिक्षाकोंही नही मानते है, और नहीं माननेसें ऐसेही मनुष्य खून बहुत करते है तो जमे अभी नास्तिक पाप नहीं मानेंगे तो बुरे काम करनेकी धास्तीभी न रहेगी और बुरे काम किये करेंगे उसपरसें मालूम हो सकता है कि नास्तिकमत स्थापक पापीही होना चाहियें वैसेकी संगतिमें रहे वोभी किसी जातिके पापकर्मसें न डरेगा इस समय जितने राज्य चल रहे है उतने कुल राज्योंमें गुन्हाकी शिक्षा है, तो जैसी शिक्षा सब आलम कबूल करती है, उसी तरहसें हरएक पाप करै उनकी शिक्षा होनीही चाहियें इस दुनियामें तमाम लोग मानते है कि किसी जीवकों दुःख न हो वो काम करना और जब नास्तिक होवे तब तो किसीकों दुःखें देनेकी फिकरभी नहीं रहती उससें दुनियाके विचारसें और न्यायसें करकेंभी ये अयोग्य होता है ये तमाम हरकतें तपासनेसें जीव मान लेना सुखदुःख कर्मके संयोगसें बनते है ऐसा माननेसें सब दूषण दूर हो जाते है ये कर्मका स्वरूप मेरी की हुइ साथ सामिल है उसी प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिमें बहुत विस्तारसें है सो वहा देख लेना.

दूर हो गइ-जिसी तरह सरस्वती चूर्ण करता है. सघयणका वलभी जसें कानमें रोग हुवा हो तो आत्मा है तथापि सुना नहीं जाता, क्यौं कि कानका भाग बिगडा हुवा है वो सुधर जाय तो सुना जावें, वैसें सघयण वलवान हो तो आत्माकों अपना काम करनमें हरकत करनेवालेकी हरकत नहीं रहतीहै, उससे अपनी ज्ञानशक्ति चल सकती है जैसें निर्वल मनुष्यकों लकडीका आधार हो तो चलनेमें हरकत नही होती, जिसी तरह आत्मा कर्मके आवरण सहित है वहातक निर्वल है, उससें आधाररूप संघयणका वल चाहियें सर्वथा कर्मसें रहित होवे तव देहरहित होता है और तभी अपनी शक्ति जितनी है उतनी चल सकती है, उसमें कुछ पुद्गलके आधारकी जरूरत नहीं. जैसें निरोगी आखवालेकों चस्मेकी जरूरत नही, मगर आखका तेज घट गया हो उसकों वेशक चस्में चाहियें, तैसें कर्म आवरणरूप रोग है वहा तक जो जो ज्ञान होता है वो इद्रियोंके वलसें होता है और वहा तक अच्छे पुद्गलकी जरूरत पडती है. जैसें कि केवलज्ञान प्रकट होता है तव कोइभी इद्रिकी जरूरत नहीं पडती है, अपनी आत्मशक्तिसेंही ज्ञान होता है; वास्ते आत्मशक्तिमें कुछभी जडकी जरूरत नहीं पडती ज्यौं ज्यौं जडसगति दूर होती जाय त्यौं त्यौं आत्मज्ञान प्रकट होता है, और ससारमें भटकनेका मिट जाताहै आत्माके उलटे विचार होते हैं वो जडकी संगतिके फल हैं, वो जडकी सगति छूट जायगी और आत्माकी सन्मुख होगा तवही जो जो सत्य विचार हैं वो मालूम होवेंगे वहातक मालूम न होवेंगे, वास्ते जडकी सगति कमती करो कि सवकुछ अच्छा होवें

१३ प्रश्नः—जडकी सगति कमती करनेमें क्या करना ?

उत्तरः—सद्गुरुका समागम, और निष्पही, निर्विषयी स्वात्माभावी पुरुषोंकी सोवत करनेसें मार्ग हाथ लगेगा.

१४ प्रश्नः—तुमारे कहने मुजव सव कर्मसें वनता है तो ज्यौं वननेका होगा त्यौं वनेगाही सही, तो फिर उद्यम करनेकी क्या आवश्यकता है ? उद्यमकों तो तुमने पेस्तर निकमा गिन लिया है

उत्तरः—हमारे जैनशासनमें तो हरकोइ कार्य होता है वो पांच कारण मिलनेसें होता है, और पाचों कारणोंमें उद्यमभी सामिल रक्खा गया है. तुमने तो अकेले उद्यमसेंही कार्य पार होना मान लिया है सो हम नही मानते है, क्यौं कि प्रत्यक्ष देखते

हैं कि उद्यम बहुतही करते हैं, मगर पुन्यकी न्यूनता हो तो कुछ फल मिलता नहीं. पुन: अकेले उद्यमसें होवे तब उसकों अच्छी करणी करनेकी बुद्धि नाश होती है, क्यौं कि उसके दिलमें पूर्वपुन्यकी श्रद्धा नहीं कि पुन्य होवेगा, उससें पुन्य करनेका उद्यम नष्ट हो जाता है और कितनेक भावीपर रहते है कि ज्यौं बननेका होगा त्यौं बनेगा, वोभी निरुद्यमी होते हैं, सोभी कामका नहीं पांचों कारणोंके योग मिलनेसें ही कार्यकी सिद्धि होती है

१९ प्रश्न.—( अ ) पाच कारण किस तरह मानते हो ?

उत्तर.—पाच कारण सो-काल, स्वभाव, नियत, उद्यम और पूर्वकृत यह पाच कारण इक्ट्ठे होते हैं तब हरएक कार्य होता है काल सो इस वखत पचमकाल है तो पचमकालमें कोइ जीव मुक्तिमें नहीं जा सकते तीसरे चौथे आरेमें जीव मोक्ष पाते हैं जेसें उष्ण ऋतुमेंही आमके पेडपें फल लगें, स्त्रीकी उम्मर चाहियें उतनी न होवे तवतक गर्भ धारण न करे, वैसें हरएक कार्यमें कालकी सामग्री मिलनी चाहियें काळकी सामग्री चौथे आरेके जीवोंकों मिले, मगर उन जीवोंमें भव्य स्वभाव नहीं वहांतक वैभी मुक्ति नहीं पा सकते, क्यौं कि भव्य स्वभाव चाहियें और तीसरे चौथे आरेमें बहुतसें भव्य जीव थे उससें स्वभाव कारण मिला, मगर उस जीवने समकित प्राप्त नहि किया जिससें नियत कारण नहि मिला तब कोइ कहेगा कि-'श्रेणिक महाराज और कृष्ण महाराज क्षायक समकित पाये थे उन्होंकों नियत कारण मिला था तोभी मोक्षमें क्यों नहीं गये ?' उसका जवाब यही है कि ये तीन कारण मिले; परतु मोक्षसाधनका उद्यम किया नहीं जैसें आमके पेडपर आम लगनकी मोसम है [ आमकों वधत्वपना नहीं ] वो स्वभाव और मजरी वगैर' आइ है ये तीन कारण मिले, तथापि उस आमका रक्षण न करे याने पानी वगैर जो कुछ आमको चाहियें वो सींचन न करे तो आम हाथ न आवेंगे, वैसें, समकित पाया, मगर ज्ञान दर्शन चारित्र प्रकट करनेका उद्यम न करे तो मुक्ति न मिले किसी तरहसें श्रेणिकमहाराजाने सयमाराधन किया नहीं उससें तद्भव केवलज्ञानकी प्राप्ति न हुइ अब जो उद्यमसेंही केवलज्ञान होवे तो स्थूलीभद्रजी प्रमुख मुनिमहाराजने तप सयमका बहुतसा उद्यम किया था, तदपि केवलज्ञान न पाये उसका कारण क्या ? पाचवा भवितव्यताका योग मिलना चाहियें स्थूलीभद्रजीकों अभी कर्म भुक्तने बाकीमें थे उससें

मोक्षमें न आ सके कर्मकी स्थितियें जिन जिन मुनिकी परिपक्व होती है उन उन मुनिको उद्यम करनेसें केवलज्ञान हो सिद्धिसुख प्राप्त होता है. और फिरभी होवेगा. वास्ते पाचों कारण मिलनेसें मोक्षरूप कार्य होवेगा यह अधिकार प्रकरण रत्नाकर भाग पहिलेके पत्र १७६ में है वहांसे देख लेना पुन विनयविजयजीने स्याद्वादका स्तवन बनाया है उसमेंभी विस्तारसें कथन किया है, वोभी वहांसें देख लेना इन पाचों कारणोंमेंसें एक एक कारणकी मुख्यता लेकर भिन्न भिन्न मत प्रकट हुवे हैं, उसमेंसें आत्मार्थियोंको देख लेना कि इन पाचोंके मिलापसें जैसा कार्य होता है वैसा एक एक कारणसें नहीं हो सकता है कितनेक उद्यमकी महत्ता गिनकर उद्यम किया करते हैं; परतु इच्छित कार्य जब नहीं होता है तब चित्तमें विषाद होता है, मगर कर्मकी जो प्रतीति होवे तो उससें ऐसा विचार करे कि-' व्यौपार तो किया; किंतु पूर्वकृत पुण्यकी न्यूनता है उसीसें लाभ नहीं पाया अब विकल्प करके क्या करेगा ? " ऐसा शोच करकें समताभाव लावे फिर कितनेक यु कहते हैं कि भाविमें बननेवाला होगा वैसा बन रहेगा ' ऐसा विचार करकें उद्यम नहीं करते हैं, तो वैसे जीवभी प्रभुमार्गका लाभ न ले सकते हैं कारण कि प्रभुजीने कर्म दो प्रकारके कहे हैं याने उपक्रमी और निरुपक्रमी उनमेंसें जो निरुपक्रमी कर्म है उनमें तो उपक्रम लगनेकाही नहीं, परतु उपक्रमी कर्ममें उद्यमसें उपक्रम लगता है और उससे कर्म नाश होते है; कारण कि क्षायकसमकित जिस वक्त पाते है उस वक्त एक कोडाकोडी सागरोपमें पल्योपमका असख्यातवा भाग कमी उतनी स्थिति सातों कर्मकी रहती है. अब जो दूसरे भवका आयुष न बाधा होगा तो उसी भवमें मोक्ष पावेगा, तब आयुष्तो कोडपूर्वसें विशेष कोइभी मोक्षगामीका नहीं, तो ये कर्म कहा भुक्तेंगे अर्थात् न भुक्तेंगे ? ज्ञान, दर्शन चारित्रके आराधनरूप उद्यमने ये कर्मकी स्थिति कमती कर थोडे वक्तमें भुक्त लेवेंगे, वास्ते वो सब उद्यमसें बनता है-इस लिये भाविक ऊपर भरोसा रख बैठ रहना सो अयोग्य है जो जो कार्य करना हो उसमें उद्यम तो करना, उसमें उद्यम करनेपरभी कार्य सिद्ध न हुवा तब शोचना कि-' इस कार्यमें अंतराय कर्म जोर करता है, वो कारणकी न्यूनता हुइ उससें मेरा कार्यसिद्धिको न भेट सका. ' ऐसा शोच करकें समभावमें रहना, उससें चित्त प्रसन्न रहेगा. नये कर्म न बधे जाय वास्ते जो जो कार्य करना हो उसमें पाचो कारणमेंसें जिस जिसकी [कारणकी]

न्यूनता-कसर होवै वहांतक कार्य न हो सकेगा ऐसा विचारके न हुवा उस मनभी सताप न करना कोइ वक्त उद्यम किया, मगर स्वामीसें भराहुवा किया तो उससेंभी कार्य न होवैगा तो पुन. उद्यम करना इस सबबमें ऐसा समझना कि जिस जिस वक्त जो जो करने योग्य हो उस उस वक्त वो कार्य करना इस मुजबके पाच कारणके योगसें कार्य होवै ऐसा जैनागमका फरमान है और वही हमारा मनोरथ पूर्ण करनेहारा है!

१५ प्रश्न —( न ) जैनागमकी मर्यादा मुझकोंभी अच्छी लगती है इन पाच कारणोंके सयोगसें कार्य हो सकै उसमें कुछ सदेह न रहेता है, मगर तुमने जीवका स्वरूप बतलाया वो देखनेसें अनत ज्ञानादि शक्ति कायम है तो वो किसतरह प्रकट करनी?

उत्तर —अठारह दूषण जबतक जीवमें मौजूद है वहांतक जीवकी जो जो आत्मशक्ति है वो प्रकट नहीं हो सकती वे अठारह दूषण ये है. दानातराय, लाभातराय, भोगातराय, उपभोगातराय, वीर्यातराय, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, दुगछा काम, अज्ञान, मिथ्यात्व, निद्रा, अव्रत, राग और द्वेष-ये १८ औगुन दूर कर देवै तब आत्माकों गुन प्रकट हो सके और जन्ममरनका परिभ्रमणभी मिट जाय.

१६ प्रश्न.—दानातराय सो क्या?

उत्तर.—दान याने देना सो-ससारमें पाच प्रकारका है याने अभयदान, सुपात्रदान, अनुकपादान, कीर्तिदान और उचितदान-ये पाच दानके भेद हैं. उसका अतराय होवे वहातक जीव दान न दे सकता है

सुपात्रदान सो-तीर्थकरमहाराजजी, सामान्य केवलज्ञानीजी, आचार्यजी, उपाध्यायजी, साधुजी, उत्तम श्रावक, सम्यग्दृष्टि और मार्गानुसारी-ये तमाम सुपात्र है ऐसे पुरुषोंका योग मिले, आपके पास यागवाइ होवे, आर ऐसे पुरुषोंको देनेमें लाभभी जानता होवे, तोभी दानके अतरायसें करकें न दे सके और दानातराय कर्मका क्षयोपशम हुवा होवे तो दे सकै अभयदान सो-कोइ किसी जीवकों मार डाल्ता होवे तो उस जीवकों म्होतसें बचाना, और उस जीवका बचानेमें कुछ कष्टभी पडै तो उठा लेकरभी उसको बचा लेवै फिर जिन पुरुषोंको विशेष दानांतरायका क्षयोपशम हुवा होवै तो वे आपके खाने पीनेके वास्तेभी किसी जीवकी हिंसा न होने देते है-आप खुद कष्ट सहन करै अचित्त-जीवरहित वस्तु मिले वहा लेवै, न मिले तोभी

जीवकी हिंसा होवै वैसी वस्तु न लेवै आपका मरन होवै तो कबूल कर ले, मगर किसी जीवकों दुःख होवै ऐसा न करै वैसे पुरुष तो कोइभी कारणसें कोइभी जीवकों दुःख होवें वैसा करैहि नहीं, समज कि जिस तरह मुझकों पीडा होनेमें है दुःख होता है, उसी तरह दूसरे जीवकोंभी दुःख होवै, वास्ते किसीकोभी दुःख होवै वो काम मेरे न करना. इस तरहसें चले वो अभयदान कहा जाय

अनुकंपा दान सो-कोइ जीव दुःखी हो और आपके पास वस्तु हो तो वो देकरकें उसकों सुखी करना. पीछे थोडी योगवाइ हो तो थोडा देवे, और विशेष योगवाइ हो तो विशेष देवै. शरीरकी महेनतसें दुःख दूर हो जाता हो तो महेनत करकें उसका दुःख निवर्त्तन करै इसमें पात्रापात्रका विचार नहीं करना फकत दुःखी जीवका दुःख दूर करनेकी बुद्धि है पुनः जिनेमें ज्ञानशक्ति है उनकों मुनासिब है कि अधर्मि जीवोंकों ज्ञानका बोध करना-वोभी अनुकंपादान है. औषधादिक देकरकेंभी दूसरेकों सुखी करना-जिस प्रकारसें अन्यजीव सुख पावें वैसी बुद्धिसें करना वो अनुकंपादान कहा जावे. इसका अंतराय होवै तो ये दान सच्ची योगवाइके वख्त न कर सके, और इस अंतरायका क्षयोपशम हुवा होवै तो ये दान दे सके ये तीन दान आत्माकों हितकर्त्ता है.

चौथा कीर्तिदान सो-आपकी कीर्ति-शोभा होवै उस वास्ते देना, दूसरा शासनकी कीर्तिके वास्ते देना, याने जैनीलोग क्या दानेश्वरी है! क्या उदारशील है! धन्य है जैनधर्मकों! ऐसें धर्मकी प्रशंसाके वास्ते देना सो एक सम्यक्त्वका प्रभाविक गुन है-वोभी अंतराय कर्मके आवरण दूर हट गये होवे तो बनता है

पांचवा उचितदान सो-संसारी कुटुंबादिककों ब्याजबी हो विसी तरहसें देना वोभी अंतराय होवै तो उचितता न संभाल सके इस प्रकार पांच दान हैं, उनमेंसें पिछले दो दानसें इस लोकमें यश कीर्ति होती है, नीति संभाली जाती है, माता-पितादि उपकारियोंके उपकारका बदला दिया जाता है और लक्ष्मीकाभी उपयोग होता है. जो जन उचितमें नहीं समझता है वो पापका भागी होता है पहिले तीन दान हैं सो आत्माके हितकारी हैं, वो जब दानांतराय हट गया होवै तबही गुणवंत जानकर देनेका विचार होवै, तब जितना जितना दानांतराय तूट गया हो उतना आत्मा विशुद्ध होवै.

, यहापर कोइ शका करेगा कि–'मुनिमहाराज आदि क्या दान देते हैं?' उसको उत्तर यही है कि-ज्ञानदान समान दूसरा कोइ सर्वोपरी दान हैही नहीं वास्ते मुनिमहाराज भव्यजीवोंको ज्ञान पढाते है, ज्ञानोपदेश देते है उससें वै जीव न करने योग्य कार्य–अकार्यसें मुक्त हो जाते हैं और पापके काम नहीं करते हैं इससें दुर्गतिके दु ख भुक्तने पडते नही और सद्गति-देवलोक वगैरःके सुखकी माप्ति होती है. तो वो सुखके देनेहारे वो गुरुमहाराज हैं तो किसीसें न दिया जाय वैसा ज्ञानदान दिया कितनेक तीर्थंकरजीका उपदेश सुनकर सपूर्ण तीर्थंकरजीकी आज्ञा शिरपर चढाकर सर्वथा रागद्वेषसें मुक्त होते है केवल अपने आत्मधर्ममेंही प्रवर्त्तते है उससें केवलज्ञान पाकर मुक्तिमें जा वहा सदैव स्थिरतासें रहते हैं पुनः ससारमें आनेका नहीं, जन्म मरनका दु ख मिट जाता है, सब प्रकारके विकल्प दूर हो जाते है, पूर्ण आत्माके गुण प्रकट होते है आर किसी प्रकारकी हरकत नहीं ऐसा–अव्याबाध सुख प्राप्त होता है तो वो देनेवाले तीर्थंकरजीमहाराज हैं वही दानातराय क्षय होनेसें आत्मामें अनत दानशक्ति प्रगट हुइ है उससें ज्ञानदान देकर जगतको भव दु खसें छुडाते हैं जो और कोइ न कर शके वैसा अद्भुत ज्ञानदान है. पुन गृहस्थावासमें थे तब हमेशा एक वर्षभर तक एक क्रोड आठ लाख सुवर्ण म्होरोंका दान दिया वैसे दानेश्वरी जगतमें कोइ नहीं वो दानांतरायके क्षयोपशमका फल है. फिर जब केवलज्ञान होता हैं तब सर्वथा दानातराय क्षय होता है उसके प्रभावसें ज्ञानदान है वो व्यवहार, निश्चयमें अपने आत्माके गुण ढका गयेथे और बहिरात्मदशा हुइ थी उतने अपने गुण अपने आत्मामें आये वो रूप दानगुण प्रकट हुवा है और सदा काल अवस्थित हैं और वे गुण सिद्ध भगवान होवे तब कायम रहते है वे जीव अपनी आत्मसत्ताको शोचनेपर वो वर्त्तना करनसें दानातराय क्षय होवे

१७ प्रश्न —दानांतराय क्या करनेसें बधा जाता है?

उत्तर—पाच प्रकारमेंसें हरकोइ दान कोइभी करता होवे उसको कहवे कि ये दान देना उस करतें पेटमें खाना वो अच्छा है वो छोडकर लोगोंको देनेमें क्या फायदा है या गुणवत होवें उनको निर्गुणी ठहराकर न देवे फिर देता हो उसको मना करे निंदा करे–उसको कहवे कि यह तो उडाउ है–कुछ पैसा खर्चनेका विचार नहीं करता है, या आप शक्तिवान होवे और दान देनेवालेका महीमा होवे वो देखकर

उसकेपरं गुस्सा ल्यावे, आपसें कुछ बन सके तो उसका नुकसान करे-हीलना करे अगर दान देवे तो अहंकार ल्यावे कि मेरे समान जगतभरमें कोइ दान देनेवाला हैही नहीं मैंनें धर्मके कार्य कोइ न करे वैसे किये हैं. इत्यादि अनेक प्रकारके कारणोंसें जीव दानांतराय कर्म बांधता है जो आत्मार्थी हैं वो तो शोचते हैं कि भगवान्‌जीने संवत्सरी दान दिया था और मैंनें क्या दिया ? मेरे आत्माका तो दानगुण ढका गया है वो प्रकट करना चाहियें फकत पुन्योदयमें धन मिला है, वोभी जितना मेरे भोग्यके लिये व्यय करता हु उतना दानमें व्यय नहीं करता हु तो मैं क्या अहंकार ल्याउ ? पेस्तरके महान् पुरुष मूलदेव जैसे कि जिन्हने तीन दिनसें अन्न नहीं पायाथा और चौथे रोज जब उरद खानेकों मिले तोभी दिलमें आया कि कोइ सुपात्र मुनि मिल जावे तो में उन्होंकों देकर पीछे खाउ ऐसा शोचता है दरम्यान भाग्यशालीकों मासखमणके पारणेवाले मुनि मिल गये कि तुरत वे उरद दे दिये वो दानगुणके महिमासें आकाशमें देववाणी हुइ कि-'सातवे रोज तुझकों राज्य मिलेगा.' ऐसा कहे बाद दानकी प्रशंसा की. देववाणी मुजब उनकों राज्यभी मिला. तो हे चेतन ! तूंने तो वस्तु मौजूद होनेपरभी वैसा दान न दिया तो क्या गर्व करता है पेस्तरके वैसे गुणवंत पुरुष अपना तन धन दोनु गुरुजीकों अर्पन करतेथें, वोभी तूने नहीं किया तो तु क्या अहंकार करता है देवभक्तिमें न्यूनता न आवे उस वास्ते रावणने अपने हाथकी नस निकालकर वीनकों दुरुस्त करके गानतान जारीही रख्खा था, तो वैसी तूने भगवंतजीकी भक्ति की नहीं और न धनभी व्यय किया है या शरीरभी काममें न लिया है तो तु किस प्रकारका अहंकार ल्याता है ? पूर्वकालमें केइ पुरुषोंने अभयदानके लिये कोइ जीव मरता होवे तो बचानेके वास्ते अपनी दौलत लूटादि है सो तो तूने लूटादी नहीं तो काहेका अहंकार करता है ? शांतिनाथजीनें तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया उस जीव-मेघरथराजानें एक कबूतरकों बचानेके लिये अपने शरीरका मांस काट काट कर देना शुरु किया, देखिये दानेश्वरीपना ! तूनें वैसा तो अभयदान दिया नहीं कि अहंकार करता है ? सब जीवोंकों अभयदान होवे उस वास्ते चक्रवर्तीकी रुद्धि छोडकरकें संयम ग्रहण किया, तो चेतन ! तूने क्या किया है कि अहंकारसें घमंडी बन जाता है ? सगराम सोनीने सुवेके अक्षरोंसें ज्ञान लिखवाया उस अंदरका मैंनें क्या किया कि अहंकार करु. पुनः कुमारपालराजानें

ज्ञान लिखवानेके वास्ते ताडपत्र न थे उससें कागजपर पुस्तक लिखते हुवे देखकर हेमचद्राचार्यजीकों कहा कि–' कागजपर किस सबबसें लिखवाना शुरु रक्खा है?' आचार्यजीने फरमाया कि– अभी ताडपत्रकी न्यूनता है उस सबबसें ' कुमारपालने उसी दम अभिग्रह लिया कि–' जबतक ताडपत्र चाहियें उतने ल्याकर हाजिर न करु वहातक अनजल न ग्रहण करुगा ' उस वक्त प्रधानने अर्ज की कि–' ताडपत्र दूर देशसें आते हैं और आपश्रीने कठिन अभिग्रह लिया तो वो क्योंकर पूर्ण होवैगा?' तोभी राजाने कहा कि–' जो नियम लिया गया सो अब न फिर सकैगा चाहे वैसं हो, परतु ताडपत्र पूरे कीये बिगर तो अन्नजल न ल्युगा!' बाद इस उग्र अभिग्रहके प्रभावसें आपके बगीचेमें खडताड थे वो असली ताड बन गये और उससें अभिग्रह पूरा हुवा तो चेतन! तूने कितने ज्ञान लिखवाये? कितने अभिग्रह लिये हैं कि ज्ञा- नमें अल्प खर्च करकें अहकार करता है? तूने साधर्मियोंकी क्या वात्सल्यता की? कुमारपालराजाने स्वधर्मीयोंकों राज्यके अदर रोजगारमें लगा दिये, वैसे तूने कौनसें उपकार किये हैं कि गर्व करता है सप्रतिराजाने सवाक्रोड जिनबिंब भरवाये उनमेंसें तूने क्या किया? कि अहकार करता है धनाजीने जगह जगह धन उपार्जन किया और वो अपने भाइकों देकर विदेशगमन किया तूने वैसा क्या कुटुबका रक्षण किया है कि अहकार करता है भोजराजाने एक एक श्लोकके लाखों रुपै दानमें दिये हैं उन्मेंसें तूने क्या दिया? सिद्धसेनदिवाकरजीने चार श्लोक कहे उसमें विक्रमराजाने चारों दिशाओंका राज्य उन्होंको सुपरद कर दियाथा अब शोच कर कि तूने क्या दान दिया? कि अहकार करता है ऐसी सुदर भावना ल्याकर दान देकर अहकार न ल्यातें दूसरोंका दान देने, दिलवानेकी प्रेरणा करता है, कोइ दान करै उसकी प्रशसा करै, दानके अतिशय व्यसनी होते हैं वै तो अपने पहननेका वस्त्र तकभी देकर आप दु ख उठा लेते है ऐसे दानके उत्कृष्टभाव ज्यौं ज्यौं होते जाय त्यौं त्यौं दानातराय तूटता जाय दातारकी सोबत करनी, दानके फल श्रवण करना, विषयकी लालसा छोड दैनी विषयवाला तो शोचता है कि में दान दउगा तो में पीछे क्या खाउगा? ऐसे पुद्गल सुखमें मग्न होनेसें दान न दे सकता है और दानातराय बाधता है ओर जिसकों दानातर तूटनेका है वो तो चिंतवन करता है कि–हे आत्मा! तेरास्वभाव ज्ञान दर्शन चारित्र गुणमें रहनेका है यह शरीर सो तू नहीं शरीर कर्म-

सयोगसे मिला है, तो इनकों पुष्ट करनेसें नये कर्म बंधेंगे जो जो विषय भुगतेंगे उससें कर्म बधे जावेंगे और यह धनादिक पुन्योदयसे प्राप्त हुवा है तोभी इस द्रव्यकी ममता करुगा तो कर्म बधे जायेंगे और मेरा आत्मा कर्मसे आच्छादित हो जायगा, वास्त इस द्रव्यका दान करुगा तो जिन द्रव्यसे जो कर्मविषय भुक्तकर कर्म बधे वो न बधे जायेंगे इस लिये यह द्रव्य ज्यों बन सकै त्यों सुपात्रमें देना, ऐसी भावना भावता है पुन. चिंतन करता है कि-तेरे आत्माके गुण प्रकट करकें आत्माकों देना सो दानगुण है, और ये धनादिककी ममता है उसका त्याग होवै तो जितनी जितनी ममता तेरी त्याग हुइ उतना आत्मा निर्मल हुवा और तूने तेरे आत्माके गुण आत्माकों प्रकट कर दिये वही स्वाभाविक दानगुण प्रकट हुवा ऐसे विशुद्धभावसें दानातराय अनुक्रमसें सर्वथा तूट जायगा

१८ प्रश्न.—लाभातराय वो क्या ? उसका बयान किजीयें

उत्तर'—जो जो लाभ होनेके हो वो लाभातराय तूटनेसेंही होनेके है और वो लाभ दो प्रकारके हैं-याने एक ससारी लाभ और दूसरा आत्मिक लाभ ये दोनूंमें अतरायकर्म पीडता है प्रथम ससारी लाभ है सो शरीर निरोगी मिलना, स्त्री-पुत्र-परिवार-धन-अनुकूल मनुष्य-नोकर चाकर और जिस वस्त जो इच्छा हो वो वस्तुका मिलना अगर विद्या कला शीख लेनी यह सब लाभातराय कर्मका क्षयोपशम हुवा होवै तो मिले. उसमें फिर थोडा क्षयोपशम हुवा हो तो थोडा लाभ और विशेष हुवा हो तो विशेष लाभ मिले और जो जो वस्तुका अतराय हो वो लाभ न मिल सकै उत्तम पुरुषोंने इस कर्मका स्वरूप जान लिया है, उससें ये वस्तु न मिलै तो उसका शोचसताप नहीं करते. जिनके मनमें क्लेश आता है वोभी शोचते हैं कि पूर्वजन्ममें लाभातराय कर्म बांधा है उसीके लिये नहीं मिलता है गतजन्ममें कर्म बाधनेके समय शोच नहीं किया और अब सताप करता है वो क्या काम आवै ? ऐसे विचारसें सतोष भजते हैं आर उसीसें लाभातराय कर्मकी निर्जरा करते है. विशेष उत्तम पुरुषकों तो शोचनाही नहीं पडता-सहजही समभावमें रहते हैं जो होवै सो जाननेका आत्माका धर्म हे उसमें रह करकें जान लेते हैं,, मगर विकल्प नही करते हैं अज्ञानी जीव है सो जब लाभ मिलता नहीं तब दूसरेका दोष निकालते है कितनेक दैवकों दोष देते हैं-'अहा ! दैव ' तूनें ये क्या किया ? मैंने तेरा क्या बिगाडा था ? ' फिर

स्हामनेवाले मनुष्यके साथ लडै-भीडै-गुस्सा वतलावे. वैद्यकी साथ काम पडै और अच्छा होनेका लाभ न मिले तो उसकेपर द्वेष करै, और लाभ मिलनेसें बडाइकी वातें करता फिरै-अहङ्कार करै कि मै कैसा धनपात्र हु मै कैसा हुशियार-कावेल हु कि जो व्यापार करता हु उसीमें पैदाही करता हु, खोट जावैही नहीं-नफाही मिले राजा होवे तो राज्यका लाभ मिलनेका या राज्यमें व्याजवी आमदनी होवै या गैरव्याजवी रीतिसें जुल्म गुजारकर रैयतके पाससें पैसा लेकर लाभ मिलाके अहङ्कार करै फिर कार्यभारी होवे तो लोगोंके पाससें रीस्वत लेकर लाभ मिलाके अहङ्कार करै या लोगोंके ऊपर जुल्म गुजारै, राजा खुशी हो मान्य देवै-इनाम देवै-रावबहादुर-दिवानवहादुर वगेरः इलकाव देवै वो लाभ मिलाकरकें अहङ्कार करै जो अनीति चलाइ हो उसकी प्रशंसा करै या उसके साथ आपकीभी तारीफ जाहिर करै, लुचाइ करकें दिलमें शोचै कि-क्या कैसी तदबीर की ! किसीके जाननेमेंभी न आइ और मनें मेरा लाभ मिला लिया ऐसें अनेक प्रकारका गर्व करै फिर किसीका सचा लहेना हो तो खोटी रसीदें वनवा करकें कचरीहमें पेशकर पसार करवा कर उसका लहेना खोटा करकें मनमें फायदा हुवेकी खुशहाली वतलावै ऐसी खोटी वर्त्तना करनेसें जीव लाभांतराय कर्म बांधता है, उससें दूसरी दफे लाभ मिलना मुश्किल हो पडता है.

आत्मिक लाभ तो सपूर्णतासें तब प्राप्त हो सकै कि जब सब कर्म क्षय करकें आत्माका अनंत ज्ञान-अनंत दर्शन-अनंत चारित्र-अनंत वीर्य-अव्याबाध सुख-अक्षयपद-अजरामर-अज-अगम-अगोचर-अगुरुलघु आदि अनंत गुण प्रकट करै, तब आत्माकों लाभ प्राप्त हुवा वो सर्वथा प्रकारसें बारहवे गुणस्थानकपर सत्ता बंध उदयसें यह कर्म क्षय हो जाय तब होता है तब अंश अंशसें तो चौथे सम्यक्त्व गुणस्थानकसें प्रकट होता है जितना आत्माका गुण प्राप्त हुवा उतना लाभ हुवा, ऐसे गुणस्थानकमें गुण प्राप्त करनेके कारणरूप प्रवृत्ति होनेसेंभी लाभ होता है वो लाभभी लाभांतराय टूटनेसें होता है-याने दान-शील-तप और भाव इन चारों वस्तुओंकी प्राप्तिरूप लाभ लाभांतरायके तूटनेसें होता है

१९ प्रश्न—दान क्या चीज है ?

उत्तर —दानांतरायके स्वरूपमें कहा है उस मुजब दान कर सकै तो दानगुण

प्रकट हुवा वही आत्माकों लाभ हुवा, उसमें जो जो अशसें गुण कर शके उतना लाभ प्राप्त हुवा समझना

२० प्रश्न'—शील वो क्या है ?

उत्तरः—शील याने आचार. वो आचार पांच प्रकारका है उसमें प्रथम ज्ञानाचार, वो ज्ञानाचार सपूर्ण तो अनतज्ञान प्रकटे तब वो रूप लाभ मिलेगा. और उसके कारणरूप मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन'पर्यवज्ञान-ये चार ज्ञान प्रकट होवे तब चारका लाभ हुवा उतना लाभातराय न तूट गया हो तो मति-श्रुत-अवधि प्राप्त होता है किंवा मति-श्रुत मनःपर्यवज्ञान होता है. उतनाभी लाभातराय कर्म क्षय न हुवा हो तो याने थोडा क्षयोपशम हुवा हो तो मति-श्रुत ये दोनुही प्रकट होते हैं उतना लाभ हुवा, और उसके साथ समकितकाभी लाभ होवे, कारण कि समकित विगर मति, श्रुत अज्ञान कहे हैं उससेंभी कम क्षयोपशम हुवा हो तो समकित रहित ज्ञानरूप लाभ होवें. उससें बुद्धिकौशल्यता प्राप्त हो सके सासारिक कार्यमे हुशियार होवें मगर आत्मिकज्ञान न होवें. आत्माके कल्याणरूप ज्ञान तो सम्यक्त्वज्ञान है वो काम लगे सम्यक्त्वज्ञानरूप लाभ होवे, वो ज्ञान किसीकों द्वादशागरूप ज्ञान होता है उतना लाभातराय तूट जावे तो मुक्तिके बहुतही समीप होवे किसीकों चौदह पूर्वका ज्ञान होवें उन चौदह पूर्वके नाम'—उत्पादपूर्व-जिसमें द्रव्यके पर्यायके उत्पादका स्वरूप है. दूसरा अग्रायणी पूर्व-जिसमें सर्व द्रव्य सर्व पर्यायका परिमाण दर्शाया है तीसरा वीर्यप्रवादपूर्व-जिसमें कर्मसहित जीवके और अजीवकी शक्तिका विस्तारपूर्वक स्वरूप है चौथा अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व-जिसमें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल ये छ' द्रव्य स्वस्वरूपसें अस्ति, पर स्वरूपसें नास्ति आदि वर्णन है पाचवा ज्ञानप्रवादपूर्व-जिसमें पाचों ज्ञानका विस्तारपूर्वक वर्णन है. छट्टा सत्यप्रवादपूर्व-जिसमें सत्य, संयम, वचन, इन तीनोंका विशेष स्वरूप दर्शाया है सातवा आत्मप्रवादपूर्व-जिसमें आत्मजीवके अनेक नयमतभेदसें करके वर्णन किया है. आठवा कर्मप्रवादपूर्व-जिसमें आठ कर्म याने ज्ञानावरणी १, दर्शनावरणी २, वेदनी ३, मोहनी ४, आयु ५, नाम ६, गोत्र ७, ओर अतराय ८ इन आठों कर्मोंकी प्रकृतिबंध-स्थितिबंध-रसबंध-प्रदेशबंध इन चारोंके बधका स्वरूप अतिशयतां पूर्वक दर्शाया है. नवम प्रत्याख्यान प्रवादपूर्व-

जिसमें त्याग योग्य वस्तुका और त्यागका स्वरूप कथन किया है दशवा विद्याप्रवादपूर्व-जिसमें अनेक आश्चर्यकारी विद्याका स्वरूप है ग्यारहवा पूर्वकल्याणपूर्व अगर अवध्यपूर्व है-जिसमे फल वध्य नहीं, ज्ञान-तप-सयमादिकका शुभ फल, प्रमादादिकका अशुभ फल ऐसे शुभाशुभफल वतलाये है वारहवा प्राणायुपूर्व जिसमें दश प्राण याने पाच इंद्रि, तीन वल, श्वासोश्वास और आयु इन्होंका वर्णन है. तेरहवा क्रियाविशालपूर्व-जिसमें कायकि आदि क्रियाओंका स्वरूप सयमक्रिया, छदक्रिया वगेर का वर्णन है चोदहवा लोकविंदुसारपूर्व-जिसम लोगमें अक्षरोंपर विंदु सारभूत है, तथा सर्वोत्तम सर्व अक्षरोंका मिलाप और लब्धिका हेतु इन्होंका वर्णन है इन एक एक पूर्वके पदकी सख्याका मान और एक एक पूर्वका ज्ञान लिखनेके लिये शाहीमें कज्जल कितनी चाहियें ये कुल हकीकत नदीसूत्रजीकी छपी हुइ टीकावाली प्रतके पत्र ४८२ में है वहासें देख समझ लेना तथापि पहेला पूर्व लिखवानेमें एक हस्तीके समान काजलका ढेर चाहियें पीछीके पूर्वमें दूना-दुगुणा लैना ऐसें चोदह पूर्वमें ८१९२ हस्तिके समान काजलका ढेर चाहियें उसमें पानी डालकर शाही वनाकर लिखें तो वे पूर्व लिखे जावे-इतना चौदह पूर्वका ज्ञान है फिर उसके अर्थका तो क्या पार? एक दूसरे चौदह पूर्वधर ज्ञानीके वीचमें अनतगुणी हानि वृद्धि होती है जिस पुरुषको जितने लाभातरायका क्षयोपशम हुवा हो उतने अर्थ ज्ञानका लाभ होवे कोइ मुनिको इतना लाभातराय न तूटा होवे तो कमती पूर्वका ज्ञान होवे किसीको एक पूर्वका, किसीको दो पूर्वका, किसीको तीन पूर्वका-इस तरह यावत् चौदह पूर्वका ज्ञान होवे वर्त्तमान समयमें पूर्वका ज्ञान किसीको नहीं होता है वहुत-अतिशय ज्ञानी होवे तो सूत्र याने पिस्तालिस आगमका ज्ञान हो सके उसमेंसें अभी ग्यारह अग है, वारहवा विच्छेद हो गया है

आचारागजी १, सुयगडागजी २, ठाणागजी ३, समवायागजी ४, भगवतीजी ५, ज्ञाताजी ६, उपासकदशागजी ७, अतगडदशागजी ८, अनुत्तरोववाइजी ९, प्रश्नव्याकरणजी १० विपाकसूत्रजी ११ यह ग्यारह अग गणधरमहाराजजीके रचे हुवेहैं याने जिस तरह श्रीमत् महावीरस्वामीजीने प्ररूपे उसी तरह गणधरमहाराजजीने सुनकर गाथारूप गुथन कर लिये, मगर उस वाद वारह दुकाली वहुत वक्त पडी उसमें हरएक ग्रंथमें आगमेंमें वहुतसा भाग विच्छेद हो गया और जो थोडा भाग रहा

यो देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने लिखवाया उससें नंदीजी, समवायांगजीमें जितनी पद संख्या बतलाइ है उतनी नहीं पाइ जाती है. एक पदमें ५१०८८६६४० श्लोक होवै- ये एक श्लोकके अट्ठाइस अक्षर कहे हैं. यह अधिकार सेनप्रश्नमें पत्र ३९ के अंदर है, वहां अनुयोगद्वारजीकी टीकाकी साख-गवाह दी है वहांसे देख लेना

उपांग बारह है.—उवाइजी १, रायपसेणीजी २, जीवाभिगमजी ३, पन्नवणाजी ४, सूरपन्नत्तिजी ५, जंबुद्विपपन्नत्तिजी ६, चंदपन्नत्तिजी ७, निरीयावलीजी ८, कप्पियाजी ९ कप्पवडसीयाजी १० पुप्फियाजी ११ और वन्हीदशागजी १२ यह १२ उपांग है

दश पयन्नाजीके नामः—चउसरणपयन्नाजी १, आउरपच्चक्खाणपयन्नाजी २, महापच्चक्खाणपयन्नाजी ३, भत्तपच्चक्खाणपयन्नाजी ४, तंदुल्वीयालीपयन्नाजी ५, गणीवीज्जपयन्नाजी ६, चंदाविजयपयन्नाजी ७, देविंद्रस्तवपयन्नाजी ८, मरणसमाधिपयन्नाजी ९, संस्थारकपयन्नाजी १०

छः छेद और चार मूलसूत्र वगैरः याने दशाश्रुतस्कंधजी १, बृहत्कल्पजी २, व्यवहारसूत्रजी ३, जीतकल्पजी ४, निशीथजी ५ और महानिशीथजी यह छः छेद ग्रंथ हैं. तथा आवश्यकजी १, दशवैकालिकजी २, उत्तराध्ययनजी ३, और पिंडनिर्युक्तिजी ४ ये चार मूलसूत्रजी है. और नंदीसूत्रजी, अनुयोगद्वारजी ये दो—ये सब मिलकर पिस्तालीस आगमजी कहे जाते है

उक्त आगमजी सिवाभी दूसरे पयन्नाजी वगैरः है और उन्हके नामभी नंदीजीमें तथा समवायांगजीमें है पक्खीसूत्रमेंभी है, परतु पिस्तालीसकी मुख्यता होनेका कारण यही हुवा कि वल्लभीपुरमें पुस्तक ४५ ही लिखे गये उसी लिये उतनीही संख्या कही गइ परतु दूसरे मुल्कोंमें दूसरे लिखे गये है वेभी वर्त्तमान समयमें मोजूद है ऐसा दीपकवीने एक चोपडीमें लिखा है (उनमेंसे मैंनेभी कितनेक देखे हैं.) उसके नाम नीचे मुजब हैः—

ऋषिभाषितसूत्र, पारसीमंडळ, वीतरागस्तव, सलेखनासूत्र, अंगविद्या, ज्योतिषकरंडक, गच्छाचार, तीर्थोदगारड, उपदेशमाला, सिद्धपाहुड, श्रावकस्तवदितु, शत्रुंजयलघुकल्प, शत्रुंजयवृहत्कल्प, शत्रुंजयकल्प, भद्रबाहुस्वामीकृत गाथा २५, शत्रुंजयकल्प वयरस्वामीकृत, शरावलीपयन्ना, वसुदेवहींड, श्रावकपन्नत्ति, अंगचूलिया, वगचूलिया और

आराधनापताका इतने सूत्र वर्तमान समयम मालूम होते हैं तोभी बहुतसे देशोंमें प्रसिद्ध नहीं हैं परंतु दूसरे देश बहुत हैं वहां कुछ सबने निगाह नहीं की है तो इनसे कदापि विशेषभी सूत्र होंगे, क्यों कि नंदीसूत्रजीमें देवर्द्धिगणीक्षमाश्रमण महाराजने जो नाम दर्शाये हैं वो नामवाले सूत्र उस वक्त हाजिर होनेही चाहियें ये आगमोंमेंसे दश सूत्रजीकी निर्युक्ति भद्रबाहुस्वामी महाराजने की है, जो चोदह पूर्वधर थे, इसमें निर्युक्तिभी पूर्वधरजीकी बनाई हुई हैं वास्ते सूत्रजीकी तरह मानी जाय, जिसमें सूत्रजीका अर्थ युक्तिसें करकें सिद्ध किया है और भाष्यपूर्वधर जैसे जिनभद्रगणीक्षमाश्रमण महाराजजीने रची हैं, उसमें निर्युक्तिसेंभी विशेष विस्तारपूर्वक अर्थ किया है इस सिवा बहुतसे ग्रंथ और टीकाएं पूर्वधरजी वगेरे बहुश्रुत पुरुषोंने रचे हुवे हैं, वैभी आगमजी जैसे हैं ऐसे जैनके कुल शास्त्रके और जो जो शास्त्र दूसरे दर्शनोंमें रचे हुवे हैं वो, और व्याकरण, न्यायशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, नीतिशास्त्र, अष्टांगनिमित्तशास्त्र अष्टांगयोगशास्त्र-ये सब शास्त्रोंका बोध मिलाकर सत्य असत्यकी परीक्षा करे के-सत्यकों अंगीकार करे तो उतना ज्ञानका लाभ हुवा कहा जाता है ऐसे लाभवाले पुरुषकों ज्ञानके आचारका आठ प्रकारसें लाभ मिलता है. जो जो सूत्र जिस जिस समय पढने बांचनेका कहा है उसी काल पढे चार सध्याकाल वर्जित करे-याने प्रातःकालमें सूर्योदयके पेस्तरकी और पीछेकी एक एक घडी और मध्यान्ह तथा सध्या, मध्यरात्री इन चारों वक्तकी दो दो घडी छोड देनी उस वक्त कोइभी सूत्र न पढे उस वक्त दुष्टदेव फिरनेकों निकल्ते हैं वे जैनमार्गके द्वेषी होवें तो पढनेवालेको छल करे उससें वो वक्तका निषेध किया है विनय सो ज्ञानवंत पुरुषका मुँह देखें कि नमस्कार करे, बैठा हो तो खडा हो जाय, ज्ञानवंतको सन्मान सह आसन देवे, जब तक ज्ञानवंत खडा हो वहांतक आपभी खडा रहै ज्ञानवंतकों योग्यासन दियेबाद उचित रीतिसे वंदना वगेरे करकें आप उचितासनपर बैठे याने गुरुसें उंचे आसनपर न बैठे और आगेभी न बैठे जब फिर वे खडे होवें तब खडा हो विनयपूर्वक स्थित रहै और जब वे चलने लगे तो आगे आगे न चले-इस तरह जो नीतिका फरमान हो उसकों अमलमें लेवें और ज्ञानवानकी महत्ता ज्यों बढे त्यों करे उन्होंका वचन न उल्लंघन करे ज्ञानवंतकी जिस जिस तरह आपसें बन सके उस तरह तन मन धनसें करकें भक्ति करे दूसरेके पाससें भक्ति करावे. ज्ञानवंतकी तरह ज्ञानके पुस्-

कोंकाभी विनय करै, पुस्तकें पास हो तो पेशाव दस्त न करै अगर जहांपर पुस्तक होवें वहांभी वैसे काम न करे. और स्त्री आदिकके भोगादिभी न करे या पुस्तकके पास बैठकर भोजन करना, पानी पीना येभी न करै. अतमें करनेकी जरूरतही हो तो नवका-पटांतर रखकर करै पुस्तकका शिरानाभी न करै. फिर पुस्तक लिखवाकर ज्ञानकी वृद्धि करै, पुस्तक हो तो उन्होंकी संभाल रक्खे, ज्ञान पढनेका उद्यम करै, आप पढेला हो तो दूसरोंकों पढावे-इस तरह विनय करै ज्ञानवंतका बहुत मान करै वोभी सिर्फ ऊपरसें नहीं, मगर अंतरंगके प्रेमसें करै और शोचै कि-अहा! इस पुरुषके ज्ञानके आवरण वहुतसें खप गये है उसमें इन्होंका आत्मा निर्मल हुवा है ये पुरुष मुझेभी ज्ञान वक्षते हैं ये ज्ञानके प्रभावसें मेरा आत्माभी निर्मल होगा-मुझको चारों गतिमें भटकनेका बंध हो जायगा जन्ममरणके दुःखभी इन्होंके प्रभावसें मिटेंगे, वास्ते ऐसे ज्ञानवंत पुरुषके जितने वहुतमान न करु उतने कमती है जगत्के जीव जो उपकार करै वो पैसे देवै तो अल्पकाल सुख होता है और ज्ञानी पुरुष तो ज्ञान देते हैं उसका सुख तो अनंतकाल तक पहुंचेगा-तो ऐसे पुरुषके कितने वहुमान करुं ऐसे भावसें वहुमान करै उपधान सो ज्ञान पढनेके लिये नवकारादिकके उपधान जो तप करनेका महा निशीथजीमें कहा है, और सूत्र पढनेके लिये-योग वहनेका कहा है उसी मुजव तपस्या करनी योगकी जो जो क्रियाए हैं वो करनी अब यहांपर कोइ शंका करेगा कि ज्ञान पढनेमें तपस्या और क्रिया किस लिये करनी चाहियें? तो उसका समाधान यही है कि पुद्गलभावपरसें मोह उतर जाय तब तपस्या हो सकै. फिर मोह उतर जाय तब आत्माकी विशुद्धि होवै और आत्माकी विशुद्धि होवै तब ज्ञानावरणी कर्म नाश हो जावै उससें सुखपूर्वक ज्ञान आ सकै फिर क्रिया है सो तंत्रके समान है उससें सूत्रजीके अधिष्ठाता सहाय्य करै-जैसें कि मल्लवादी महाराजजीकों देवीने एक ऐसी गाथा दी कि उस गाथासें द्वादशसारनयचक्रकी रचना की और वौधलोगोंके साथ जय मिलाया, और सोरठ वगैर.में जहां जहा शिलादित्यका राज्य था वहांसें वौधलोगोंकों हदपार करवाये फिर मुनीराजजी साहेब श्री आत्मारामजीकों विशेषावश्यकजी न बैठता था उससें पिस्ताने लगे, तो उसी रात्रिमें स्वप्नके भीतर हेमचंद्राचार्यजी उन्होंके मिले और जो जो न मालूम होताथा वो मनका खुलासा वतलानेसें समझमें आ गया. इसी तरहसें कमलगच्छके आचार्यमहाराज

वद्धनानें विगा पढा गये इस मुजब शासनदेवकी सहायतासें ज्ञानका लाभ होता है उसी वास्ते योगवहनकी क्रिया वतला गये हैं सो वहुतही हितकारी है विशेष हेतु और शास्त्रमें जेस कहा हो उसे समझ लैना यहां तो मात्र संक्षेपरूप है अनीन्हवणे से। गुरुको न छुपा रखना याने किस गुरुजीद्वारा शास्त्राभ्यास किया हो उन्ह गुरु-जीका नाम छुपाकर किसी दूसरेका नाम न देना सो पाचवा आचार. व्यजन याने अक्षर जैसा शास्त्रमें लिखा हो वैसाही शुद्धोच्चार करना-अशुद्ध न वोलना अर्थ याने जैसा गुरुमहाराजने दिया-वतलाया हो वेसाही रखना-फेरफार नहीं करना व्यजन और अर्थ दोनु जिस तरह शास्त्रमें कहा हो विसी तरह वोलना. इस तरह ज्ञानका आचार व्यवहारसें तन मन वचनमें पालन करे इससें विपरीत वर्ते तो ज्ञानाचारमें दूषण लगे, और ज्ञानावरणी कर्म वधा जावे, उसके भयसें सावध रहना. फिर वहुत पढे हुवे सवधका अहकार आ जाय तो मनमें भावे कि-हे चेतन! तू अनतज्ञानका मालिक है, जगतमें छ द्रव्य है-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, और काल ये पाच द्रव्य अरूपी याने वर्ण, गध, रस, स्पर्श रहित हैं और छट्ठा पुद्गलास्तिकाय वो रूपी, वर्ण-गध-रस-स्पर्श सहित हैं यह छउ द्रव्यमें एक एक द्रव्यके अनत गुणपर्याय हैं, सो समय समय एक एक द्रव्यमें षट्गुण हानि वृद्धि हो रही है याने अनत भाग हानि, असख्यात भाग हानि, सख्यात भाग हानि, सख्यात गुण हानि, असख्यात गुण हानि अनत गुण हानि-ऐसे छ प्रकारसें हानि वृद्धि हो रही है विसी तरह छउ द्रव्यकी वार्त्ता गतागत और वर्त्तमान समयकी वो सभी केवलज्ञानीमहाराज एक समयमें जान रहे हैं, विसीही तरह आत्मा! तेरीभी शक्ति है, मगर वो ज्ञानशक्ति ज्ञानावरणी कर्मसें आच्छादित हो गइ है और उससें तुझको ज्ञान नहीं होता है तो तेरा ज्ञान जाता रहा सो लघुताका स्थान है, तोभी महत्वता करता है ये तेरी हे चेतन! कितनी और कैसी मूर्खता है? पुन पूर्वकालमें चार ज्ञानवाले थे और तीन ज्ञानवालेभी थे वैसे ज्ञान तो तुझको प्रकटभी नहीं हुवे हैं तो येभी तेरी लघुताका स्थान और लज्जाका कारण है तथापि तू क्या अहकार करता है? फिर दो ज्ञानवालेभी चौदह पूर्वधर वारह अगके ज्ञाता थे वैसा ज्ञानभी तेरेमें नहीं तदपि किस वावतका तू उत्कर्ष करता है? पुन' कमती ज्ञानवाले एक पूर्वधर थे उसजाभी तुझको ज्ञान नहीं है तो तू किस लिये और कौनसी वावतमें

र मगरुर होता है ? वर्त्तमान समयमेंभी आगम-निर्युक्ति-भाष्य-चूर्णि-टीका-
और' मौजूद हैं, और अन्यदर्शनियोंके शास्त्रभी है, उन्हकाभी तुझको ज्ञान नहीं
हे चेतन ! किस बातका तू गर्व करता है ? उन्हमेंसे तू कुछ शास्त्र पढा ह, वोभी
याद नहीं, फिर गुरुमुखद्वारा सुनेहुवे शास्त्रवचनभी तुझको याद नहीं, तो किस
नडाइ करता है ? पुन. देशदेशकी भाषा, भिन्न भिन्न लिपि उनकाभी ज्ञान
तथा सम्मतितत्त्वार्थ आदि न्यायके शास्त्र हैं जो कोइ ज्ञानी समझावें तोभी
की तेरेमें शक्ति नहीं और मगरुर बनता है वो कैसी अज्ञानता ! फिर जो जो
क्रिया करता है उन सबके हेतुकाभी यथार्थ ज्ञान नहीं, तदपि तू फोकट मद
करता है ? अनेक प्रकारके नीतिके ग्रंथ हैं, अनेक प्रकारके गणित-हिसाबी
रीति हैं उसकाभी तुझको ज्ञान नहीं तोभी जीव ! तू अहकार करता है वो
र करना लायक है कि कर्मकी निंदा करनी लायक है उसका तू आत्मासें शोच
र्व समयमें मुनिसुंदरसूरिजी जैसे स्मरणशक्तिवाले पुरुष एक हजार और आठ
न करते थे वो शक्तिभी तेरेमें नहीं इस समयमेंभी १०८ अवधानके करनेहारे
ी शक्ति तुझमें नहीं तो किस प्रकारका मिजाज करता है ? स्वर्गस्थ आत्मारा-
महाराजभी ३०० श्लोक रोजके रोज नये कठाग्र कर सक्ते थे, और तुझको
च गाथाएभी मुखपाठ करनेकी ताकत नहीं तो चेतन ! तू बहुत विचार कर
झूठा गर्व न कर. पूर्वपुरुष शास्त्रमेंसें उद्धार करकें अनेक नये ग्रंथ तैयार कर गये
र इस वक्तभी विद्वान् पुरुष नये बनातेही जाते है, तो क्या तेरेमें ऐसी शक्ति
तूनें नये ग्रंथ कितने तैयार किये या मुफ्तही भूलसें आनंद मानता है ! फिर
रुपोंनें सुवर्णाक्षरोंसें ज्ञान लिखवाये है तो तूने शाहीके अक्षरोंसेंभी सब शास्त्र
वाये है कि अहकार करता है ? तूने पढकर क्या आत्मविचारणा की ? और
जीवोंको पूर्वके शास्त्र कितने पढाये कि मदोन्मत्त हो फिरता है? तेरेसें अभी बहुत
आत्मसाधन करते हुवे बन हैं कि खाली मिजाजही बतलाते है ? तेरी लघुता
वैसी तू करणी करता है वास्ते नाहक ज्ञानावरणी कर्म बांधता है इस लिये
कर कि एक अंशमात्र ज्ञानका क्षयोपशम हुवा उससें मनमें ज्ञानी बन बैठना
ऐसी भावना भाव कर आत्मज्ञानमें मग्न होते हैं अपने आत्माका ज्ञानगुण है
प्रकट करनेका उद्यममें तत्पर रहने वो ज्ञानाचार जानना ऐसा ज्ञानाचार पालन
सें परंपरासें तमाम ज्ञान प्रकट करते है

दर्शनाचार–दर्शनशब्दसें देखना सो–याने जो जो पदार्थ जिस तरहका हो
तरहसें देख लैना–मान लैना शुद्ध देवकोंही शुद्धदेव मान लैना, शुद्ध गुरु-
ही शुद्धगुरुजी और शुद्ध धर्मकोंही शुद्धधर्म मान लैना शुद्ध धर्म सो आत्माका
व वही धर्म भगवतीजीमें फुरमाया है कि–' वत्थु सहावो धम्मो ' याने वस्तुका
व सोही धर्म कहा जावे तव आत्मस्वभावमे रहना वही धर्म और उसकी श्रद्धा
ो आत्मा शरीरमें रहा है वहातक जडप्रवृत्ति करता है वो आपका धर्म न सम-
त्माका स्वभाव ढका गया है उसकों प्रकट करनेके कारणोंकों कारण धर्म मान
धर्मके निमित्त कारणरूप देवगुरुकों निश्चित कारण मान लै व्यवहारनयसें ध-
कारणकों धर्म कहा है उस अपेक्षासें धर्म मानै जो जो देवगुरु उपकारी पुरुष
न पुरुषोंकी सेवा भक्ति शास्त्रमें कथन की है उसी मुजब अमलमें लेवै उसका
तार प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिमें कहा है उस मुजब करै सो दर्शनाचार कहा जाता
ौर वो आठ प्रकारका है–याने निसकीय अर्थात् अव्वलमें जो अठारह दूषण
ाये गये हैं उन दूषणोंसें रहित देवके वचनोंमें शका न करै, क्यों कि जिन देवकों
ा और रक दोनु समान हैं, किसीका पक्षपात नहीं, जिनको धनकी, स्त्रीकी मम-
ी नहीं, मान अपमान दोनु जिनकों समान हैं वैसे पुरुषकों असत्य बोलनेकी
रत नहीं रहती है और वैसे लक्षण है या नहीं उसकी प्रतीति चरित्र देखनेसें हो
ती है वो खात्री–प्रतीति करकेंही देवकों देव मानने चाहियें पीछे उन्होंके कथ-
शका न करनी, कारणके अरूपी पदार्थ है सो चक्षुसें निर्णय नहीं हो सकता है
इ कहेगा कि बुद्धिसें निर्णय कर लेवें, मगर सपूर्ण प्रकारसें बुद्धि प्रकट हुइ हो
शास्त्र देखनेकी जरूरतभी नहीं पडती बुद्धिकी कसूर है उससें शास्त्र देखकर गुरुका
ागम कर बुद्धि प्राप्त करनेका उद्यम करते है, वास्ते बुद्धिकी न्यूनता सिद्ध होती
कितनीक वातें नहीं समझी जाती हैं वोभी बुद्धिकी तगास है वो तगास निकल
ायगी तव यथार्थ समझा जायगा ससारी काममें बुद्धि प्रकट होनी सहल है, परतु
ात्मतत्त्व पहिचाननेकी बुद्धि पैदा होनी बहुत कठीन है, वास्ते वीतरागजीके वच-
में शका न करनी

निंकखा सो कुमतिकी वांछना–याने कुमति–कुबुद्धि कि जो आत्मामें अना-
देकी है उसके प्रभावसें विषयादिकके अभिलाष हुवा करते है जो जो दु खके का-

रण है वो सुखके कारण भासते हैं. आत्माकी स्वऋद्धि सन्मुख दृष्टिही नहीं पुनः कुबुद्धिवाले देवगुरुकी वांछना होती है वो कखा दूषण कहा जाता है. वो दूषण जिससें हट गया होवे उसका किंचित्‌भी कुमतिकी वांछना नहीं होती है

निर्विचिकित्सा अर्थात् धर्मके फलका संशय करे उससें जो दूर रहना सो याने संशय रहित होना सो निर्विचिकित्सा आचार समझना ये आचार लाभांतराय तूटनेसें होता है. सत्य प्रकारसें आत्मिकवस्तुकी और आत्मिकवस्तु प्रकट होनेके कारणोंकी चोकस प्रतीति होती है, उससें फलका संदेह नहीं रहता है

अमूढदृष्टि सो मूढपना दूर हुवा है याने मूढतासें वस्तुको अवस्तु मान लेवे— जैसें कि दुनियामें वेदिये पशु कहे जाते हैं वे आत्माकी बातें करें, मगर विषय कषायमें मग्न रहते हैं कोइभी प्रकारसे संसारसें उदासीन न होवे देवगुरुकी भक्ति और व्रत नियमक अंदर न प्रवर्ते—ऐसी दशा उसकों मूढदृष्टिपना कहा जाता है—वो न होवे जिस जिस तरहसें प्रभुजीने जिस जिस अपेक्षासें धर्म बतलाया है उस मुजबसें श्रद्धा करें विषयकषाय अव्रत जितने जितने कमती होवें उतने कमती करे जो दूर न हो सके उसको दूर करनेकी हरदम वांछना बन रही है—ऐसा जो आचार वो अमूढदृष्टि कहीजाती है

उववूह गुण सो साधु—साध्वी—श्रावक—श्राविका प्रमुख उत्तम पुरुषके गुणोंकी प्रशंसा करनी.

थिरीकरण सो वे साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप चतुर्विध संघ उत्तम पुरुष धर्मसें चलायमान होते होवें उन्हका धर्म समझा करकें स्थिर करे. तन मन धनसें जिस जिस प्रकारकी वैसे पुरुषोंको तकलीफ होवे उस उस तकलीफकों दूर करकें स्थिर करें उसें स्थिरीकरण कहाजावे

वत्सलता याने समानधर्मी—आपसें अधिक या कम गुणवाले हो उनकी शक्त्यानुसार आहार—पानी—वस्त्राभूषणादिकमें करकें सेवा बजावे ज्ञान—दर्शन—चारित्रकी जिस प्रकार वृद्धि होवे उसी प्रकारसें भक्ति करनी यही वत्सलतागुण कहाजाय.

प्रभावना गुण सो जिनशासनकी बहुमानता दूसरे धर्मवाले लोग करें और वो कृत्य देखकर दूसरे जीव धर्म पावें—जैसें कि प्रभुजीके मंदिरमें उत्सवादिक करनेसें,

या धनवान पुरुप संघ निकालकर तीर्थयात्राकों जावे और मार्गमें सबका सरक्षण करै कि जिसर्से सबके लोग निर्विघ्नतासें अपना आत्मिकधर्म साध सकें ऐसी धर्मकी सहाय करें जैनधर्म ज्यौं जाहोजलाली पावे त्यौं कार्य किये करै फिर महन पुरुप अष्ट प्रकारसें प्रभुजीके शासनका शोभावत करैं याने पहिला प्रवचनी सो-प्रवचन-आगम-प्रभुप्ररूपित अग-उपाग-छेद-निर्युक्ति-भाष्य-चूर्णि-टीका इत्यादि तमाम शास्त्र वर्त्तमान कालमें प्रवर्त्तमान हावै वो सभी स्वसमय कहाजावे और परसमय सो पट्दर्शनके शास्त्रोंके पारगामी होवे उनके प्रभावस जो शास्त्रका रहस्य जिनकों समझना हो तो तमाम समझा सकै जिन जिन शास्त्रोंके अर्थ पूछे जाय उन उनके अर्थ बतला सकै उससें जैनशासनकी बहुत प्रशसा होवें दूसरा प्रभावक धर्म कथन करनेहारा सो धर्मोपदेश देनेमें अतिशय कुशल होय-जिसके मुखमेंसें ऐसे वचन निकलें कि सुननेवालोंका उनके वचनमें शका पडे नहीं सुननेवालेका मन ससारसें उदास होवै जाय और अपना आत्मतत्त्व प्रकट करनेकों तत्पर रहै मोहनीकी आधीनता अनादिकालकी छूट जाय, मिथ्या हठवाद न रहे, सासारिक सुख तो दुःख जैसे लगें, आत्मिकसुख वोही सुख मानें, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, गुण आत्माका है वो प्रकट करनेके कार्म हावैं, विषयादिकके अभिलाष शात हो जाय कामभोगकी वाछनाओंका नाश हावै, कुबुद्धि कुशास्त्रकी बुद्धि दूर हो जाय ऐसे उपदेशक पुरुष उपदेश करकें शासनकों शोभावत करें तीसरा वादी, प्रभाविक सो- जो जो खोटे मतवादी वाद करनेकों आवै, अनेक कुतर्क करैं, उसके जवाब ऐसे देवै कि कुतर्कोंका नाश हो जाय-जैसेंके मल्लवादीजी महाराजने बौद्धके साथ वाद किया उसमें बौद्धवालोंसें जवाब न दिया गया उसकी फिकरमें वो विचारा मर गया-ऐसे वाद करनेकी कुशलतासें जिनशासन शोभा पावे चौथा नैमित्तिकी सो-निमित्तशास्त्र-ज्योतिषशास्त्रका पारगामी होय उससें जो जो निमित्त कहवै सो सत्य हावै-जैसें भद्रबाहुस्वामीने राजासें कहा कि-सातवे रोज तुमारा पुत्र मरण पावैगा-उसी मुजब हुवा और वराहमिहिरने सो वर्षका आयु कहाथा सो झूँठा हुवा ऐसे भद्रबाहुस्वामी जेसे निमित्तशास्त्रके ज्ञाता जो ऐसी शासनकी प्रभावनाके वास्ते निमित्त प्ररूपकर शासनकी प्रभावना करैं पांचवा तपस्वी सो अहकार प्रकार रहित शात स्वभावि कठीन तपस्या करै अपने आत्माका अणहारी गुण प्रकट करनेकों बडी बडी तपस्याए करै उसकों देख

कर दूसरे पुरुषकों तपस्या करनेकी बुद्धि जाग्रत होवे, तपस्याका अजीर्ण क्रोध ज-गतमे कहाजाता है वो जिसमें नहीं है शातरसका समुद्रही है, उसकों देखकर बहु-तसें लोग प्रशसा करै, वो तपस्वी नामक प्रभाविक कहाजाय. छट्ठा विद्या प्रभाविक सो जैसें वज्रस्वामीमहाराज विद्याके प्रभावसें श्रीदेवीके भुवन वगैरःसें पुष्प लाये जिस्सें बौद्धधर्मका राजा चमत्कार पाया और जैनधर्म अगीकार किया इस तरहसें शासनकी शोभा बढावे सो विद्याप्रभाविक कहाजाता है. सातवा अजनसिद्धिप्रभा-विक–जैसे कालिकाचार्यमहाराजने अजन योगसें सारा इटोंका गज चूर्ण डालकर सुवर्णका बना दियाथा, और गर्धभील राजाकों जीतकर अपनी बहेन सरस्वतीकों छुडा दी ऐसे शासनके काम करकें शासनकों शोभावत करैं आठवा नये काव्य वगैरः रचनेमे कुशल सो कवि नामक प्रभाविक–जैसें सिद्धसेनदिवाकर महाराजने वि-क्रमराजाके अगाडी नये काव्य रची कें चार दिशामें चार काव्य कहे वो एक एक काव्य कहनेसें एक एक दिशाका राज्य दिया; मगर वो तो निष्पृही थे जिस्से राज्य न लिया. ऐसी कुशलतासें शासनकी प्रभावना होवै, बहुतसे जीव धर्म पावें और अपना आत्मतत्त्व साध लेवै उससें उपकार होवै इस प्रकार आठ तरहसें शासनकी प्रभावना निष्पृहतासें करै, किसी प्रकारसें कुछभी वाछना रखकर न करै वो प्रभा-विकगुण कहाजावे यह आठ प्रकारसें दर्शनका आचार पावै, सो लाभातराय तूट-नेसें होता है और जिसकों दर्शनका लाभातराय हो उसकी ये आचारसें विपरीत वर्त्तना होवै. देवगुरु धर्मकी निंदा करै, धर्ममें कुतर्क करकें शका करै, खोटे मत अच्छे लगै, लोगोंकी खोटे धर्ममयी बुद्धि करै, और जिनराजजीकी भक्ति करके अहकार करै कि मै विधियुक्त भक्ति करता हु मैं जिनभक्तिमे धन व्यय करता हु वैसा ज-गतमें कोइ नहीं व्यय करता हैं में उत्साह सहित करता हु वेसा कोइ नहीं करता है ऐसें अनेक प्रकारका अहकार करै सो अनाचार जानना वैसे अनाचार सेवनसें दर्शनका लाभातराय कर्म उपार्जन करै

चारित्राचार आठ प्रकारसें है–याने इर्यासमिति सो चलना, बेठना, उठना, सोना, करवट फिराना ये तमाम काम यतना पूर्वक करने चाहियें पहिली रजोहरण या मुहपत्तीसे करकें प्रमार्जनकर-दृष्टिसें देखना, और पीछे चलने वगैरःकी वर्त्तना करनी ऐसें करनेसें कोइभी जीवकों दुःख न होवे, क्यो कि परजीवकों दुःख न दे-

नेस स्वदया याने अपने आत्माकी दया होवें, मतलब कि–दूसरे जीवकों दु ख देनेसें कर्मबंध होवे उससें आपका आत्मा मलीन होवे ऐसी भावना हरदम बन रही है उससें किसी जीवकों दु ख होवे वैसी वर्त्तना नहीं करते हैं, उसीसें सहजही परजीवकी दया होती है भाषा समिति याने अव्वलमें मुँहपर हाथ, वस्त्र या मुँहपत्ति रखकर बोलते हैं जिससें मुखके श्वाससें जीव मरे नहीं, सबब–खुले मुँहसें बोलनेसें कितनीक वक्त मछर मख्खी वगेर. जीव मुँहमें आ जाते हैं और गलेमें उतर जानेसें वमन होता है और कष्ट भुक्तना पडता है और वो जीवका विनाश हो जाता है उस वास्ते भगवतीजीमें गौतमस्वामी महाराजके प्रश्नका उत्तर भगवानजीने फरमाया है कि हाथ रखकर बोलता है तो वो निरवद्य भाषा है, और खुले मुँहसें बोलता है वो सावद्य भाषा है ऐसा भगवतीजीकी छपी हुइ मतके पत्र १३०२ में है; वास्ते खुले मुहसें बोलना न चाहियें उसमें मुनीकों तो खुले मुँहसें बोलनाही मुनासिब नहीं, और गृहस्थकोंभी मुनासिब नहीं मुँह ढककर बोलना वोभी सत्य बोलना किसीका छिद्र न खोलना किसीकी निंदा होवे वैसा वचनभी न बोलना जो वचन बोलनेसें स्हामनेवाला जीव पापवृत्ति करे, जो वचनमें मकार चकारकी भाषा बोलनेसें किसी जीवकों दु ख होवे–उसका मन दु ख पावे वैसाभी न बोलना याने साधु जीके या श्रावकके धर्ममें बोलनेकी भगवतजीने मना की हो वैसा वचन नहीं बोलना जो वचन बोलनेसें स्हामने जीवकों या कोइभी जीवकों और आत्माकों लाभ न होवे वो वचनभी न बोलना सो भाषासमिति कहीजाय पुन पुद्गलीक जो जो पदार्थ हैं उस वास्ते आत्मामें उपयोग करे कि यह देह प्रमुख जो जो पुद्गलीक पदार्थ हैं वो मेरे नहीं, परतु मात्र व्यवहारसें कथन मात्र कहता हु ऐसे उपयोग सहित बोलना सो भाषासमिति सदाकाल स्वदशामेंही उपयोग है जो बोलनेसें आत्मा मलीन होवे वो वचन न बोले एषणासमिति सो निर्दोष याने बैतालीस दोष रहित आहार-पानी-वस्त्र-पात्र वगैर जो कुछ चाहियें वो ऐसे लेवे कि जो लेनेसें कोइभी देनेवालेकों या उसके कुटुंबादिककों–किसीकों दुःख न होवे पुन किसीकों दु ख होवे, हिंसा होवे ऐसा आहार न लेवे कोइभी जीवकी हिंसा नहीं करनी उससें आप करके खावे नहीं, किसीके पास करवावे नहीं, किसीने मुनीके लियेही आहार बनाया–बनवाया हो ऐसा जाननेमें आवे तो वोभी न लेवे. उसके बैतालीस दोष दशवैका-

लिक सिद्धांतमें बहुतसी जगह कहे है उन दोषोंकी मतलब ऐसी है कि आहार दे-
नेवालेकों और आहारके जीवकों उन्होंके निमित्त कुछभी दुःख होवें ऐसे आहारकों
दोषित आहार कहा है. और स्वाद करकें न खाना. और पकाइ हुइ वस्तु अच्छी
हो तो राजी न होना, अगर अच्छी न हो तोभी दिलगीरभी न होना. रसोइ बना-
नेवालेने अच्छी रसोइ बनाइ हो तो उसकी प्रशंसा न करनी और अच्छी न बना
सका हो तो उसकी तर्फ तिरस्कारकी नजरसेंभी न देखना. दान देनेवाले और
न देनेवालेपर राग द्वेष न करना. सबपर समवृत्ति रखनी-इस तरह दोषों-
का विस्तार बतलाया है-उन्होंकों दूर करकें आहार-पानी-वस्त्र पात्र लेने चा-
हियें-सो एसणासमिति कहीजावे. आदानभंडनिक्षेपना समिति सो-पात्र, पाट, प-
टले, चोकी वगैर' जो कुछ चीज लेवै सो पहिली नजरसें देख पीछे प्रमार्जना करकें
लेवै फिर जमीनपर रक्खे तोभी निर्जीव जगह देखकर पूंजी-प्रमार्जकर वहां रक्खे
पारिठावणिया समिति सो-मल, ठल्ला, मात्रा, नाकका मल, थुक, शरीरका मैल जिस
जगहपर डाले उस जगह कोइभी जीव न हो, ओर पीछेभी उसमें जीव उत्पन्न हो
तोभी किसीसे विनाश न होवें वैसी जगहपर परठवै. गदी जगहपर या गदकी हो
आवै वैसी जगहपर न परठवै, और किसीभी मनुष्यकों दुःख होवै, दुगच्छा हो आवे
वैसी जगहपर न परठवै. फिर जहा मनुष्य देखते हो वैसी जगहपर वडीनीति करनेको
न बैठ जाय. इसतरह पारिठावणिया समिति पालन करै ये पाच समिति कहीजाती
हैं. अब तीन गुप्ति याने मनगुप्ति वचनगुप्ति, और कायगुप्ति ये तीन हैं उसमें मनो-
गुप्तिमें अपना मन कोइभी पापके कार्यमें न प्रवर्त्तावे. विशेष शुद्ध पुरुष तो अपने
आत्मतत्त्वमें मन प्रवर्त्तावे. वैसी शक्ति न जान ली हो तो जिस्सें करकें अपना आ-
त्मतत्त्व प्रकट होवे और उसीमेंही रमणता होवै वैसे पुस्तक वाचता रहेवै, दूसरोंके
पास वचावें, सुने, सुनावे और उसीमें मन पिरो रक्खे, मगर ससारी बाबतोंमें मन
न लगावे. ध्यानशक्तिवाले ध्यान करैं वो ध्यानका स्वरूप प्रश्नोत्तररत्नचिंतामनि-
मेंसें देख लैना और ध्यानका लक्ष वढाना उसीसें मनोगुप्ति होती है आर्त्त रौद्र
ध्यानमें मन न प्रवर्त्ताना चाहियें मनगुप्तिवाले मुनीमहाराजकों कुछभी शरीर धन
वगैरःकी इच्छा नहीं, कुटुम्बकीभी इच्छा नहीं, और कोइ वस्तु मिली या न मिली तोभी
उस सबधी रागद्वेष न करै उसमें मनमें सहजहीसें आर्त्त रौद्र ध्यान होताही नहीं.

अपने आत्माके सहज स्वरूपमेंही सदा मग्न रहते हैं कोइभी तरहकी परपरिणतीमें मनकों नहीं जाने देते है, सत्चिदानंद स्वरूपमें मनकों प्रवृत्ति करने देते है. आत्माका स्वरूप अरूपी, अक्रोधी, अमानी, अमायी, अलोभी, अशरीरी, अखंड, अगोचर, अलख, अविनाशी, अकल, अगम, अतिंद्रिय, अजर, अरागी, अद्वेषी, अपर, अमदी, अणाहारी, और अनूपम-ऐसें स्वरूपमें मग्न हो रहा है. उसमें शरीरके अंदर रोग हो आवे, कोइ उपद्रव करे, कोइ कटुवचन कह दे, कोइ मारे, कूटे, तोभी उसमें मनकों नहीं प्रवर्त्तोते है-जो मनोगुप्ति कहीजावे वचनगुप्ति सो-विशेष विशुद्धि करनेको ध्यानादिक करते हैं इससें कुछभी नहीं बोलना पडता है. श्रीमत् वीरस्वामीजीने अभिग्रह धारण कियाथा कि 'केवलज्ञान प्राप्त हो जाने तक किसीके साथ वचन बोलनाही नहीं' किसी तरहसें न बोले वैसी शक्ति न हो तो कोइभी जीवकों दुःख लगे या दुःख होवे वैसे वचन बोलनेकी गुप्ति करै-याने वैसे वचन न बोले. और बोले सोभी ऐसा बोले कि सुननेवालेकों वचनगुप्ति होवे, आपकों वचनगुप्ति होवे वैसे वचन शास्त्रके आधारसें बोले, क्यों कि मौनपना धारण करे वो मुनी कहा जाय वास्ते परभावमे मौनपना होवे वैसा उद्यम करे लाभ बिना नाहक बकवाद, वादविवादमें वचन न प्रवर्त्तावे केवल वचन रहितपना अयोगी गुणस्थानकमें और सिद्धपनेमें है ससारमें रहे हुवे जीवकों ऐसे औसरमें प्रभुजीका मार्ग मिला, उससें ज्यं बन सकै त्यौं वचनयोगगुप्ति होवे वैसा करे सो वचनगुप्ति कही जावै कायगुप्ति से कायाकी प्रवृत्तिकों रोक लेनी विलकुल कायगुप्ति तो चौदहवें गुणस्थानकमें हो सकती है वो गुणस्थान न पाया हो वहांतक पापके काममें कायाकों न प्रवर्त्तावें, कायगुप्ति हो सके वैसे काममें-कारणोंमें कायाकों प्रवर्त्तावे जितनी जितनी कायाकी प्रवृत्ति काबूमें रखती जाय उतनी रोक लेवे वो कायगुप्ति कही जाती है ज्यों व सकें त्यों आत्मभावमें वर्त्ते और कायाकी चपलता छोड देवे स्वस्वभाव सन्मुख हो उसमें जितना चेतनस्वभाव प्रकट होवै उतनी गुप्ति होवे इस तरह पांच समिति औ तीन गुप्ति मिलकर आठ चारित्रके आचार व्यवहारसें मन-वचन-कायाकी प्रवृत्ति प्रभुजीकी आज्ञासें करनी, जिससें आत्माके स्वभावका आचार शुद्ध होवै. निश्च चारित्राचार क्या है? आत्मा आत्मस्वभावमें स्थिर होवे-देहके स्वभावमें न वर्ते कर्मका नाश होवे, आत्मा जितना जितना शुद्ध होवे उतना उतना चारित्राचार प्रा

होवे यह चारित्राचार सब प्रकारसें प्रकट होवे तब सब कषाय-क्रोध, मान, माया, लोभ-ये नाश होते है और यथाख्यात चारित्र प्रकट होवे ये लाभ चारित्राचारका अतराय तूटे तब प्राप्त होता है जो पुरुष-जीव चारित्रव्रतकी निंदा करता है और बोलताहैकि-'खाने पीनेकों न मिला, व्यापार करना न आ सका तब साधु हो बैठे' ऐसा बोलनेसें, किंवा कोइ दीक्षा लेनेवाला अपना सगा है उसके मोहसें साधु (दीक्षा देनेवाले)की निंदा करे, और दीक्षा न लेने देवे, ओर कहवे कि-'साधुपनेमें क्या फायदा है?' ऐसा बोलकर दुष्ट चिंतवन करे कितनेक नाम हीके-ज्ञानी बनकर बोलते हैं कि-'ये करनेसें कुछभी लाभ नहीं, ज्ञानसें लाभ है' यु कहते हुवेभी आप विषय-कषायकी प्रवृत्ति छोडते नहीं छोडनेवालेकी लघुता करते है. ऐसा करनेसें जीव चारित्रके लाभका अतराय कर्म बाधता है, वास्ते चारित्राचार जिनसें प्रकट हो सके वैसें कारण सेवन करे. या कोइ दीक्षा लेता हो तो उसमें बन सके उतनी मदद करे. उसके कुटुबके मनुष्यकों आजीविकाका दु ख होवे तो अपनी शक्ति मुजब दु'ख उठा लेवे कि जिस्में दीक्षा लेनेवालेकों दीक्षा अगीकार करनेमें हरकत न होवे, कोइभी तरहसें सयमकी मदद होवे वैसा करे-करवावे सयम लेनेकी भावना भावे कोइ सयमव्रतकी निंदा करता हो तो वो निंदा बध पडे वेसा उद्यम करे-जैसें कि राजगृही नगरीमें भिखारीने दीक्षा ली उसके वास्ते लोग निंदा करने लगे पीछे अभयकुमार सवा क्रोड सुवर्ण म्होरोंका ढेर किया और सारे शहर भरमें ढूडी पिटवाइ कि-'जो मनुष्य पृथिवीकाय सो मिट्टी वगैर', अपकाय सो जल, तेउकाय सो अग्नि, वायुकाय सो पवन, वनस्पतिकाय सो कुछ वनस्पति, और त्रसकाय सो हिरते-फिरते प्राणी-इन छह कायकी हिंसाका त्याग करे उसकों ये सवाक्रोड म्होरें दे दु' पीछे किसीने म्होरें न ली सब जन विचार करने लगे कि 'ससारी सुख हिंसा किये बिगर नहीं बनता है, तो पैसेका क्या करना?' ऐसा शोचकर कोइभी सुवर्ण म्होरे लेनेकों न आया पीछे अभयकुमार मत्रीश्वरनें बाजारमें आकर लोगोंकों इकट्ठे कर पूछा कि-'यह म्होरे क्यों कोइ नही लेते हो?' सब लोगोंने कहा-'सोनैये लेकें क्या करे? ससारमें खाना-पीना-पहनना-ओढना-गाडी घोडे दोडाना ये सब काम हिंसाके बिगर नहीं हो सकते हैं और हमारी ससारसुखके तर्फसें इच्छा हट गइ नहीं इससे सोनैयेकों क्यों करे?' पीछे अभयकुमारने कहा कि-तुम लोग सवा

क्रोड सोनैये लेकरभी हिमाका त्याग नहीं करते हो, तो उन भिक्षुकने तो तिगर दा मसेंही हिंसाका त्याग किया हे उसकी चर्चा निंदा कर रहे हो ?' ऐसा सुनकर वे सब लोग सयम लेनेवाले भिखारीका वहुत वहुत सन्मान करने लगे इसी तरह जो सयम लेवै उसके बहुतमान होवे वैसा करना पुन जिस वक्त थावच्चाकुमारने दीक्षा ली, उस वक्त कृष्ण वासुदेवजीने सारी द्वारिकामें उद्घोषणा करवाइ ( ढंढी पीटवाइ ) कि जो कोइ थावच्चाकुमारके साथ दीक्षा लेगा उसके मावाप लडके वगैर. जो कोइ होगा उनकी मै प्रतिमा पालन करगा ' और पाछेसें वैसाही किया ऐसा करनेसें सहज सयम लेनेवालेके सयम लेनेम विघ्न होते हे वो दूर होते है, वास्ते इस तरह सयमके बहुतमान करनेस सयमका लाभातराय टूट जावे वैसा उद्यम करना यह सब अधिकार सर्व सयमका कहा वैसेंही देशचारित्र श्रावकके बारह व्रतरूपकाभी किसी तरहसें देशस आचार समझ लेना, क्यौं कि जब देशसें है तो आचारभी देशसें समझना वोभी अतराय कर्म होवै वहातक देशविरती न ले सक्ता है सामायिक पौषधमें तो मुनि जैसेही आठ आचार पालते है वो न पालन कर सके और जब अतराय टूटे तब पालन कर सके-जैसें कि सुव्रत शेठने पौषध लिया था और मकानके चोगिर्द आग लग गइ तोभी वो पौषधसें चलायमान न हुवे-और मकानमें रात्रिभर रहे तो धर्मदृढता देखकर देवने सहायता की, और आप जिस मकानमें थे उसकी आस पासके मकान भस्मीभूत हो गये (और जिस मकानमें थे) उसकों कुछ इजा न हुइ वास्ते पौषध सामायिकमें मुख्यतासें चारित्राचार पालन करना ओर पालन करनेकी भावना रखनी ज्यां ज्यों चारित्राचार पालन करनेकी उत्कठा होती है त्यौं त्यौं चारित्राचारके लाभका अतराय टूटता है हरहमेशा यही चिंतन करना कि कब यह ससाररूप केदखानेमसें छूट जाउ इस ससारम अज्ञानतासें सुख मान लिया है, परतु विचार करनेसें कुछभी सुख नहीं अग्निमें लोहका गोला जैस तप्त हो रहा है वैसा यह ससारमें विकल्परूप ताप रात और दिनभर लग रहा है धनके, व्यापारके, कुटुबके, खाने पीनेके, पहनने ओढनेके, और सानेके-ऐसें अनेक विकल्परूप तापसें तप्त हो रहा हु सो उस विकल्पासें कवे अलग हो जाउगा ?' ऐसा चितवन करके बने वहातक तो ससारकों छोड देते है और न बन सके 'तो ससार छोड देनेकी हरदम भावना कायम रखनी ऐसी भावना भावनेसें जीव हलका होता

है. फिर कदापि चारित्र अंगीकार कर मनमें अहकार धारण करे कि–' मेरे जैसा चारित्रका पालनेहारा कौन है ? ' तब चिंतन करना कि–' अय जीव ! श्रीमन्त् महावीरस्वामीजीनें कैसे उपसर्ग सहन किये हैं ? दो पाँवके बीच अग्नि सुलगाकर खीर पकाइ, संगम देवने हजारों मनका चक्र शिरपर रक्खा, जिससे गोठन तक जमीनमें घुस गये, तोभी समभाव न छोडाथा तूने ऐसे कौनसे उपसर्ग सहन किये ? कि तू अहकार करता है. रे चेतन ! तूने सूर्यकी आतापना ली ? या चार महीने तक कूपके अग्रभागपर पूर्वके मुनी काउस्सग्ग ध्यानमें रहते थे उस तरह तूने किया ? ढढणमुनीकों छः महीने तक आहार न मिला तोभी अपना अभिग्रह न छोडा, वैसा क्या तूने बडा संयम पाला है ? कि अहकार करता है ' ऐसे मुनियोंके उत्कृष्ट कृत्य सोचकर आपके अहकारका नाश करता है, ओर आत्माको आत्मस्वभावमें स्थिर करता है परभावमें अनादिकी स्थिरता हो रही है उससे हठा करके स्वपरणतिमें स्थिर होते है वो लाभ लाभांतरायके क्षय होनेसे होता है

तपाचार सो–आत्माका अणहारी गुण है. आहार करना सो आत्माका धर्म नहीं, तथापि आहारमें अनादिकालका पुद्गलके संगसे आहारकी आकांक्षा हुवा करती है, सो दशा छोडनेके लिये तप करता है आत्माके षट् लक्षण कहे हैं, उसमें आत्माका तपभी लक्षण है, वो तपका अंतराय कर्म बाँधा है वहांतक तपगुण प्रकट नही होता तपका अंतराय जीव हमेशा बाध रहा है तपस्वी पुरुषोंकी निंदा करना है–तपमें कुछ गुण नही है, खानेपीनेकों न मिले कि तप करें ' इसतरह बकवाद करे कुदरके मनुष्य तपऱ्या करते होवे और उन्हके शरीरमें कुछ तफावत हो जाय तो तपको दूषण देवे, परंतु ऐसा न सोचे कि–' पूर्वकालमें अशातावेदनीय कर्म बांधा है उससे रोग हुवा कोइभी रोग पूर्वके कर्मोदय विगर नही हो सकता है, तो पूर्वजन्ममें अज्ञानतासे तप या करनेके भाव न हुवे और तपस्या की नही, विषयकषायमें मग्न रहा उससे यह अशातावेदनी कर्म बाधा सो उदय आया है. तपकाभी अंतराय किया उससे अंतरायकर्मका उदय हुवा कि तपस्या नही हो सक्ती–' ऐसी विचारणा करे फिर तप करके अहंकार करे कि–' मेरे समान तपस्वी कोन है ? ' दूसरेसे तपस्या न होती होवे तो उसकी निंदा करे, आपने तपस्या की है उसकी बडाई करनेकों लोगोंके आगे आपश्रसा करानेके लिये तप किया जाहिर करें, मगर ऐसा न सोचे

कि-' मैंने क्या तप किया है ? पूर्व समयमें मुनिवर्ग तप करताथा सो इंद्रियोंके विषय मद पाडनेके वास्ते करताथा शरीरके अस्थि-हड्डीयें आवाज देतीथी उसका दृष्टांत भगवतीजीमें दिया है कि-पातरोंसें भरी हुइ गाडी चलती हो उस वक्त उन पातरोंका जैसा अवाज होता है वैसा अवाज मुनीमहाराज तपस्या करकें शरीर सुष्क किया हो तो होता है वैसी तपस्या करकें शरीरशोषनकी मरजी नहीं, सबब कि शरीर नरम पडता है तों उसको पुष्ट करनेके लिये सदा उद्यम कर रहा है. पूर्वके पुरुष देहकों विदेह मानतेथे याने देहकों अपना नहीं मानतेथे, तो वैसा भाव नहीं हुवा है वहातक तेरा तप कथन मात्र है फिर तपस्या करकें खानेकी इच्छा किसी प्रकारकी नहीं करतेथे, और तू तो इच्छा करता है तेरी इच्छाए रुकी नहीं तो तू तपका किस बाबतसें अहंकार करता है ?' ऐसी भावना न करतें अहंकारमें मस्त रहे उससें जीव तपका अंतरायकर्म बांधता है और उसी सबबसें तप करनेका भाव नहीं होता है अब जिनकों तपके लाभका अंतराय टूट गया है उन पुरुषकों तपस्या करनेका भाव होता है और वो अच्छी रीतिसें तपका आचार पालन करता है बारह प्रकारसें तप करनेमें अग्लानभाव करै ग्लानभाव उसें कहा जाता है कि यह तप कैसें हो सके-मेरेस न हो सकेगा-शक्ति होनेपरभी उत्साह न करे फिर तप करै तो बीमारके जैसा भाव धारण करै ऐसी ग्लानता धारण न करै जो जो तपस्याए करै सो उत्साहसें करै मनभी प्रसन्न रहवै कि-' आज मेरा धन्य दिन है कि आत्माका तप लक्षण प्रकट करनेका मेरा भाव हुवा फिर यह उद्यम प्रवर्त्तनेका वक्त मिला अब जिसतरह मेरे आत्माका तपगुण प्रकट होवै वैसा मैं चलु ' इसतरह करै पुन अनाजीवी सो तपस्यासें करकें आजीविकाकी इच्छा नहीं याने-' मैं तपस्या करुगा तो मुझकों तमाम लोग मान देवेंगे, या धन देवेंगे, या पुद्गलीक सुख इस लोक और परलोकमें मिलेंगे ' ऐसी आजीविकाकी इच्छा नहीं है केवल आत्माकों कर्मसें मुक्त करनेके लियेही उद्यम करै पुन कुशल दीठी याने-' श्री तीर्थंकरमहाराजजीने तप करनेका कहा है और आप सुदन कर बतलाया है और कर्म क्षय करकें मोक्षमें पधारे हैं, विसी प्रकार मेंभी तप करकें कर्म क्षय करु ' ऐसी भावनासें वो तप करै सो तपका आचार है इस मुजब तपाचार कहा ' जो शरीरका दुःख सुख होवै उसकों ध्यानमें न लेवै उससें शरीरकी संभाल न रहवै तब शरीर पड जाय तो धर्म

साधन किस प्रकारसें कर सके ? ' ऐसी शका होवे तो इसका समाधान यही है कि-पूर्व समयमें जिन्होंने तपका अतरायकर्म बाधा है उन्होंका शरीर नरम पडे, और धर्मसाधन न हो सके, तो वे शक्ति मुजब तपका उद्यम करेगा. फिर शरीर नरम होगा तो सर्वथा आहार छोड देवेगा नही, कुछ विषय छोड देनेमें शरीरके बलकी जरूरत नही है, उससें शरीरकों जितना आधार रह सके उतना आहार लेवेगा; परतु बत्तीसों रसोइके स्वाद लेनेका भाव न रक्खे फकत जो वस्तु निरवद्य-पापरहित मिलगइ वोही चीजसें निर्वाह कर लेवें एक चीजसें शरीर निभ सकता है तो विशेष चीज किस लिये लेवें? ऐसे विचारसें आहार करता है तोभी उसकों आहारकी इच्छा नहीं. तपस्वी है और तप करे और तपके रोज या दूसरे रोज खानेकी भावनाए करे तो उसकों ज्ञानीजीने तप नही गिना है, कारण कि इच्छाके रोधकों ज्ञानीमहाराज तप कहेते हैं, वास्ते हरएक प्रकारसें इच्छा रुक जाय वैसा करना. या रोज तप करु, तपका अभ्यास करु तो वो अभ्याससें मेरी इच्छा रुक जायगी, ऐसे विचारसें तप करे तो उस अभ्याससें किसी रोज इच्छा रुक जावेगी इस लिये इच्छा रुक जानेका उद्यम करना सो अच्छा है जिस जिस प्रकारसें आत्माका गुण प्रकट होवे वैसा उद्यम करना. ज्यों बन सके त्यों इद्रियोंके विषयकी वाछा कम करनी चाहियें, तभी सच्चा ज्ञान कहा जाय, क्यों कि जो आत्माका स्वरूप जानता है कि जानना, देखना ये आत्माका धर्म है तो जो जो खानेकों मिला वो फक्त जान लेना है, उसमें विषयबुद्धि नहीं करनी ये आत्माका काम है वैसे विचारसें वो आहार करता है, तोभी तपस्वीही है, क्यों कि आत्मस्वभाव कायम रहा. तप कुछ आहारके त्यागमें नही, लेकिन इच्छारोधमें है इच्छारोधके साधनोंकोंभी तप कहा है, उससें बारह भेद कहे है, वास्ते जिस प्रकारका तप करनेसें अपनी स्वदशा प्रकट होवे वो तप करना बारह प्रकारका तप उपयोग सहित करे तो ज्ञानीमहाराजने निर्जराका कारण कहा है-यानें कर्म क्षय करनेका कारण कहा है सबब कि जीवकों गाढ कर्मके दलिये बधाये हैं वास्ते सबसें वेदनीकर्मकों पुद्गल विशेष भाग देता है, क्यों कि वेदनीयका प्रकटपना है अब जो जो तप करे उसमें अशातावेदनी हुवे मिगर नहीं रहती वो अशाता तपगुणका अतराय टूट गया होवे उतनी समभावसें भुक्तता है. समभाव रहनेका बीज कौन है? वीर्य है ! वीर्यअतराय टूटनेसें स्फुरायमान होता है. वो वीर्य जिस

जिस आचारमें जीव प्रवर्ते उस उस आचारमें स्फुरायमान होता है और जो जो वीर्यके स्फुरायमानसें तप होता है, वो प्रसन्नतासें होता है अहर्निश उसीमें हर्ष होता है और जब किसीके आग्रहसें या शरमसें होता है, तब प्रसन्नता न होवे-वहां वीर्य स्फुरायमान नहीं होता तब अशाताके वक्तमें समभावभी जीवकों न रह सकता है जिनपुरुषोंका स्वरूपका ज्ञान हुवा है उन्होंका भाव तो अपनी आत्मदशामें रहनेका बन गया है, परंतु आत्म भावमें प्रवृत्ति नहीं कर सकता, क्योंकि तप गुणके लाभका अंतराय नहीं टूट गया है वो जितना जितना टूटता जावे उतना उतना कमती होता जावे और उतनी वर्त्तना करता है वर्त्तना करनेमें अशाता होती है तब बालजीव शोचता है कि' मैंने तप किया उससें मुझको वेदना-आशातावेदनी हुइ मगर ज्ञानीजन तो शोचते है कि-'कर्म नाश करनेके लिये तप किया है और वेदनीकर्मके उदयसें वेदनी हुइ है. वेदनी कुछ तप करनेसें नहीं होती तप करनेसें श्री वीरप्रभुजी प्रमुखने वेदनीकर्म वगैर क्षय किये है त्यों क्षय होते हैं और निकाचितकर्म तपस्याके समय उदय आये है तो वो तपस्या समभावसें शुरु की है, वास्ते समभावसें या कर्म भुक्तेगा, उससें कर्मनिजरा विशेष होवेगी' ऐसा शोचकर अशाता वेदनीसे नहीं डरते है अशातावेदनीकी उदीरणाही की है तो उदय आवे उसमें न डरे ऐसे भाव ज्यों ज्यों भाववृद्धि पाता है त्यों त्यों वीर्यांतराय टूटता जाता है, और वीर्य स्फुरायमान हुवे जाता है फिर विशेष विशुद्धि वतकों तो ऐसें विचार करनेही नहीं पडते है तो अपनी आत्मदशा जानने देखनेकी है उस रूप वेदनीकों जान लिया करते है उसमें राग द्वेष नहीं करते है ऐसी समभाव दशा अप्रमादी मुनिकी बनती होती है वे तो अप्रमादी दशामें रहकर आनंदमें वर्त्तते है और प्रमाद गुणस्थानकवत वगैर तो आपकी स्वभाव दशा कितनी हुइ है और कितनी न हुइ है उसकों बढानेके लिये बारह प्रकारसें तप करते है तो अनशन याने अन् अर्थात् रहित और अशन अर्थात् अनाज प्रमुख खाना-वो अनशन तप कहा जाता है आहार करना सो आत्माका धर्म नहीं है, परंतु पुद्गलके साथ संबंध होनेसें आहार जाने आत्माही करता है, ऐसी दशा अनादिसें बन रही है, मगर ज्ञान होनेसें जाना गया कि आहारसें पुद्गल शरीरमें विस्तरते है आत्मा अरूपी है उसमें कुछ परिणमते नहीं तोभी मेरे आहार करना मानता हु वो अज्ञानदशा है, परंतु मेरी और प्रकारसें चाहियें उतनी विशुद्धि नहीं होती उससें आहारकी इच्छा होती है,

तथापि जितनी जितनी रुकी जाय उतनी उतनी रोक लु कि अभ्याससें सर्वथा रुक जावै. ऐसा शोच कर नवकारसी याने दो घडी दिन चडने तक, पोरसी याने पहर दिन चडने तक, साढ पोरशीयाने डेढ पहर दिन चडने तक, पुरिमड्ढ याने दो पहर दिन चडने तक. अवड्ढ याने तीन पहर दिन चडने तक, या दो वेर खाना, या एक वेर खाना [बेयासना, एकासना] या आयंबिल याने छउ विगयके त्याग सहित एक वख्त खाना और उपवास सो सर्वथा-बिल्कुल न खाना वो जितने उपवास वने उतने दिन आहारका त्याग करना उसमें कोइ चारों आहारका और कोइ तीन आहारका त्याग कर याने पानी-फासुक जल पीनेकी छुटी रखे इस तरह तप करना. या मरण के समय बिलकुल अहारका त्याग करके समस्त वस्तुका और शरीरका त्याग करना वो अनशन तप जानना.

अब उणोदरी तप याने कम खाना-मतलब कि बिल्कुल नहीं खाना ऐसा आत्माका धर्म है, परतु अनादी जडकी सगतिसें करकें जीव जडक्रियाकों अपनी मान रहा है उसी तरह देहकोंभी अपना मानता है वो जोर अज्ञानताका है, उस अज्ञानताके जोरसें मुझकों भूख लगी है, मेरे खाना मेरे पीना है ऐसा कहता है. फिर शरीरमें रहा है वो जड देह जड पदार्थ है सो जड पदार्थका धर्म सडना पडना विध्वसना याने विनाश होना वोही है आहारके पुद्गल मिले तभी कायम रहै. अब आहारकेपुद्गल दो प्रकारके हे याने रोम आहार याने रोमरोमसें आहारके पुद्गलका शरीरमें समय समय आहार कर रहा है सो, और एक कवलआहार सो कवलकरके मुंहसें रखे सो. अब रोम आहार सो तो अपने उपयोग सहित और उपयोग रहितभी लिया जाता है, वो तो जीवकों जब तक शरीर है वहातक लेनेका बध नहीं हो सकता है, तदपि वो आहार किस किस प्रकारसें लिया जाता है ? जो पवन आता है वो ठडा आता है तो ठडक लगती है और गरम आता हो तो गर्मी लगती है. वारिसकी मोसम होवै तो शर्दी लगती हे-ये सब गर्मी वगैरे, काहेसें मालूम होता है ? शरीरमें भणगते हैं-स्पर्शकर फैल्ते हे उससे ' तो वही आहार है परतु वो कुछ स्ववशपना नहीं, उसी लिये उसका ग्रहण त्यागमें उपयोग रहता हे और नहीं भी रहता. उससें विरती नहीं होती तोभी ज्ञानीजन है सो उसमें राग द्वेप नहीं करते है फकत आत्माका जाननेका धर्म है उमसे जानलेना है कि यह गर्मीके पुद्गल, यह शीतके पुद्-

गल लेनेका कर्मोदय है उसे लिये जाते हैं ऐसा सदाकाल उपयोग रहता है उन पु
रुषकों इच्छाका रोध हुवा सोही तप है, परतु उतना गुण प्राप्त नहीं होता उससें ठडी
गर्मीमें जाननेरुप रह सकता नहीं, तथापि कुछ ज्ञान हुवा है, और कुछ स्पर्शज्ञान हुव
है उसके प्रभावसें कुछ समभाव रखता है तो जितना रागद्वेष कमती हुवा वो भी उ
णोदरी तपका लक्षण है वास्ते जिस प्रकार रागद्वेषका परिणती कम होवे उस मुजब
उत्तम पुरुषकों करना अब दूसरा कवल आहार है सो-सर्वथा जिसकी इच्छा उठती
है उसका त्याग करता है वो अनशन तप गिनाजाता है अब बिलकुल
आहारके त्यागसें तो शरीर कायम नहीं रह सकता, तब आहार देना चाहिये, परतु
आहार लेनेका धर्म नहीं उससें इच्छा नहीं होती, मगर शरीरकों आधार रहनेके वा
स्ते आहार देना वो कुछ कम खावे तो भी शरीर कायम रहवै, रागादिककी उत्पत्ति
न होवै उसस आहार कम लेवै और इच्छा नहा या इच्छा है तो वो कमती
हुइ उतना निर्मल हुवा और इच्छाके रोधरुप सहजसें उणोदरी तप हुवा
फिर जिसकी इतनी विशुद्धि न हूइ वो भी हमेशाके खुराक करत पाच कवल या
उससें विशेष कम खानेका अभ्यास करे उसके लिये पीछे सहजसें इच्छारोध हो
जाय फिर दूसरी तरहसें खानेकी चीजें है उनमेंसे जितनी चीजें कम लेवै उतना उ
णोदरी तप होवै फिर ओछी वस्तु कब ग्रहण हो सके कि कुछ खानेके विषय क
हुवे होवै तो या विषय घटनेका अभ्यास होवै तो, क्योंकि आहार लनेका आत्माका
धर्म नहीं, तो ज्यों बन सकै त्यों आपका आत्मधर्म प्रकट करनेका जीवकों अभ्यास
करना चाहियें जैसें जो जो हुन्नर शिखना हो वो वो हुन्नर अभ्यास करनेसे शीख
जाता है, वैसें अभ्याससें सब हो सकै आत्मधर्मकी वर्त्तना अनादीकालसें नहीं
जानता है और न वर्त्तना करता है वो अभ्यास करनेसें वर्त्तना होवै तो वो अभ्या
समें ज्यों बनै त्यों अयोगका त्याग करना आहार बहुत प्रकारके हैं-उनमेंसे जो
आहार लेनेसें बहुतसे जीवोंकी हिंसा होवै वो आहार शाकादिक और अभक्षादिकका
न करे [वो बाइस अभक्षके नाम प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणीमें मौजूद हैं और योग
शास्त्रादि ग्रथोंमेंभी है उनमेंसें देख करके त्याग करना ] वोभी उणोदरी तप है और
जो आहार-रसवती भक्ष्य है उस रसवतीके अदरसें थोडी चीजोसें निर्वाह होता है
तोभी जीव निर्वाहमें ज्यादे चीजा विषयके वास्ते उपयोगमें लेता है उमसें आत्

विशेष लिप्त होता है ऐसा जिसने जान लिया है तो खानेके वक्त निर्वाह जितनी वस्तु ग्रहण कर दूसरी वस्तुपरसें इच्छा उतार डाले वोभी उणोदरी तप है, वास्ते ज्यां वने त्यों निर्वाहके उपर लक्ष देना. कितनेक विषय कम नहीं हुवे है उससें विशेष वपराशमें आवे, तो उसके अदरभी जीव निंदा गर्हा सहित जो उपयोग करे तो विषयके कर्म कठिन न वधे जाय. तो वे कर्मके रस जितने कमती पडे वो भी उणोदरी तपका ही फल पावे वृत्ति सक्षेप तप सो-जो वृत्तियें वर्त्तन कर रही हैं उसका स-क्षेप करना-याने मर्यादामें आना जैसें कि श्रावककों चौदह नियम धारण करना मु-नीकों द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इन चारों प्रकारमेंसें हरकोइ प्रकारकी आहारादिक वस्तु सवधी धारणा करनी, रोटी कीवा हरकोइ पदार्थ धार लेवे कि वो चीज मिलै तो लेनी, या फलाना मनुष्य देवे तो लेना या इतने घटेमें मिले तो लेना या हावभावसें देवे तो लेना, इस तरहके अभिग्रह धारण करे असी धारणा करनेकी मतलव क्या है कि इसतरहका योग न वनशके ओर तप वनसके तो अच्छा पूर्ण चि त्त तप करनका नहीं होता. तव असे अभिग्रह धारण करके आहारादिककी इच्छाकों शात करे. पुद्गल भावमें वृत्ति कम हो रही है वो असें अभ्यास करके वृतियोंकों रो क लेवे सो वृत्तिसक्षेप तप कहा जावे.

रसत्याग तप याने चार महा विगय सो सरत, मस्का, मास, मदिरा इन चारों का श्रावक और मुनिमहाराजकों सदा त्याग होवे, क्योंकि ये वस्तुअें खानेमें त्रसका य जीवका विनाश होता है उस वातका योगशास्त्रमें हेमचद्राचार्यजीने विस्तारपूर्वक निषध (मना) किया है, उतनाही नहीं मगर हरिभद्रसूरिजीने पचाशक वगैरः ग्रथोंमें मासादिकका निपेध किया है. मासाहारी जीवकों निर्दयपना तो अवश्य होवे यदि दयाके परिणाम होवे तो जिसमें वहुतसे जीवोंकी हिंसा होवे ऐसी वस्तु उपयोगमें लेनेका भाव होवेही नहीं. पन्नवणाजीमें जघन्य श्रावक कहे है वो इन चार महा वि-गयके त्यागीही कहे हैं पुनः उपाशकदशागमें आणदजीनें मासादिकका त्याग किया है फिर मासाहारसें स्वभाव मिजाजी और गुस्सेदार होवे, ऐसा अभीके डॉकटरभी कहते हैं. मदिरासें करके आत्माकी ज्ञानशक्ति आच्छादित हो जाती है. अकलमद हो वो दीवाना हो जावे, दीवाना होकर धन धान्यादिकके व्यापारमेंभी नुकशान उठावे, जगतमेंभी निंदाका पात्र होवे, और परलोकमेंभी नरकादि गति पाता है उ-

ससें उत्तम पुरुष, साधु और सद्गृहस्थ उनका त्याग करता है पुन अभीके वक्तमें उग्रेज और पारसीयेंभी कितनेक मासका त्याग करते हैं और कितनेक वो टेव--आदत कमती हो जाय वैसा करते है ऐसे अनार्य लोगभी जब मासाहारका त्याग करते हैं, तो आर्यलोगोंकों त्याग होवें उसमें क्या नवाइकी वात है ? ! वास्ते महा विगयका त्याग कहा है दूसरी छ विगय सो--दूध, दही, तेल, गुड, पकवान्न और घी इन छउमेंसें जितनी विगय त्याग होवें उतनी करै, कारण कि विगय खानेसें विकारकी वृद्धि होती है--उससें कामदेव दीप्त होता है, वास्ते मुनीमहाराज विगयका त्याग करते हैं. परतु इस समयमें विगयका उपयोग किये विगर शरीर नही टिक सके उससें शरीरके निभाव जितनी विगयका उपयोग कर वाकीकी विगयका त्याग करे. श्रावक हैं वोभी हरहमेशा एक एक विगयका त्याग करै, कारण कि मुनीमहाराज तो सब कामके त्यागी हैं उससे वन सके तो सर्वथा त्याग कर डालें, मगर गृहस्थसें वैसा बनना मुश्किल है गृहस्थकों तो जितनी मूर्छा कामके ऊपरसें उतरती जावे उस मुजब विगयका त्याग करना योग्य है भावसें जितने पुद्गल कमती ग्रहण करनेमें आवेंगे उतना कर्मबंध नही होगा ऐसा चिंतवन कर मुनि और गृहस्थ विगयका त्याग करै. आपका अणहारी गुण प्रकट करनेरूप वीर्य स्फुरायमान होवे वही आत्माका तप गुण प्रगट होवें सो रसत्याग तप कहा जाय

कायक्लेश तप याने जितना जितना समभावसें कायाका कष्ट भुक्तनेमें आते हैं सो कायक्लेश तप है मुनिमहाराज लोचादिक कष्ट सहन करते हैं, विहारमें चलनेका कष्ट सहन करते हैं, सूर्यकी आतापना लेवे हैं वो मुनीमहाराज क्या चिंतवन करके कष्ट सहन करते है कि अपनी आत्माका स्वरूप जान लिया है, जडका स्वरूप जान लिया है उससें जड जो शरीर उसकों अपना नहीं जानते हैं आपके वैसे भाव रहते है कि नहीं ऐसा शोचना जिस वक्त लोच करै उस वक्त कष्ट पडता है वो कष्ट पडनेसें जिनका मन नहीं विगडता है और समभावमें रहते हैं, तो ऐसे कष्ट स्वाभाविक रोगादिकके आवे उस वक्तभी समभावमें वैसे पुरुष रह सकते हैं और समभावमें रहनेसें वो कर्म भुक्ता जाता है, उसी वक्तपर आत्माकी अशुद्ध परिणति हट जाती है, वो निर्जरामें गिनि जाती है, और आत्मा शुद्ध होता है. अब जो मनुष्य जानबुझकर ऐसे कष्ट सहन नहीं करते हैं उसकों रोग भुक्तके या दूसरे कुटुंबके

व्यापारके काम करके कष्ट भुक्तने पडेंगे अनादिकालका जीव ससारमें रुलता है उसमें मोहके वश अशातावेदनीकर्म, अतरायकर्म नधे हुवे है वो भुक्ते विगर छूटका नहीं होता; वास्ते उत्तम पुरुष जिस मुजब समभावमें रह सकते हैं उस मुजब कष्ट भुक्तकर आपके कर्म क्षय करते है वो कायक्लेश तप कहा जाता है. समभाव सिवाके कष्ट भुक्तते हैं वो निर्जरामें ज्ञानीमहाराज नहीं गिनते हैं; कारण कि एक कर्म भुक्त-कर पीछे हजारा नये कर्म उपार्जन करता है, उस लिये वो दुःख भुक्ते हुवे काममें नहीं आते हैं, उनसें उसको सकाम निर्जरा नहीं गिनते हैं. हरएक धर्ममें समझकर काम करनेसें लाभ वतलाया है, और जो जो कष्ट भुक्तना वो समझकर भुक्तना उससें आत्माकों लाभही होवेगा कष्ट भुक्तनेसें आत्माका वीर्य जाग्रत होता है और तभी समभाव रह सकता है–नहीं तो समभाव न रह सकता है. वो आत्मवीर्यके अ-तराय टूटे विगर वीर्य स्फुरायमान नहीं हो सकता है, वास्ते समभावमें रहकर जो जो वन सके उस प्रकारसें कायाकों कष्ट भुक्ताकर कर्म क्षय करना सो कायक्लेश तप समझना

सलीनता सो–मुनि महाराज कर सकते हैं–जैसें मुर्घी शरीर सकोचके सोती है वैसे मुनि महाराज सोते हैं. इस तरह सोनेसें अगोपाग सवकों जाग्रति होती है, निद्रामें लीन नहीं हुवा जाता है, और आत्मज्ञान आच्छादित नहीं हो जाता है जैसें सक्त निंद्रा आवे वसें उपयोग लुप्त हो जाता है, उससें ज्यौं कलीन निंद्रा न आवे त्यौं मुनि-महाराज साधे फिर योग सलीनताभी तपमें कहा है; परन्तु वो अभ्यतर तपगिना जावे, उसी तरह वचन काया के योग ज्यौं वन सके त्यौं आत्मस्वभावसें वहार प्रवर्त्तते रोक करके निजस्वभावमें स्थिर करना, वो योगसलीनता तप है. वो वहुतही श्रेष्ठ तप है इस तरहसें संलीनता तप कहा है.

यह छः प्रकारसें वाह्य तप कहा, उसका कारण कि ये तप करनेवालेकों देख करके यह तपस्वी है यु पहिचान सके. वाकी वस्तुपनेसें तो कर्मक्षय करनेके भावसें यह वाह्य तप करे, वो भी आत्मा निर्मल करे और अभ्यतर तपसेंभी आत्मा निर्मल होवे. अब अभ्यतर तप काहसें कहा जाता है ? वो कहते हैं,–वहारसें देखकर तपस्वी कोइ न कह सके, परन्तु आत्मा निर्मल करे उससें अभ्यतर तप कहा–वो भी छ प्रकारका है.

१ पहिला विनयतप सो देव-गुरु-धर्मका विनय करना देव सो अरिहत जि जिन्होंने ज्ञानावर्णी कर्म क्षय करके केवलज्ञान उपार्जन किया है जिस ज्ञानसें करके लोकालोकके भाव याने स्वर्ग, मृत्यु, पाताल ये तीनुके अदर जीव अजीव पदार्थ रहे हैं उन्ह पदार्थकी वर्णना हो रही है समय समय अनते परजायका उत्पात, व्यय और ध्रुव हो रहा हैं, और गतकालमें वर्तना हुइ, आते कालमें होवैगी और वर्तमानमें होती है, वो तमाम भाव एक समयमें जान रहे हैं उसका नाम केवलज्ञान-ऐसा ज्ञान जिनकों प्रकट हो रहा है दर्शनावरणी कर्म क्षय करके अनत दर्शन गुण प्रकट हुवा है, उससें ( सामान्य बोधरूप ) केवलदर्शन प्रकट हुवा हैं मोहनीय कर्म क्षय करके चारित्रगुण प्रकट हुवा है वो आत्मस्वभावमें स्थिर होवै सो चारित्रगुण समझना अतरायकर्म क्षय होनेस अनतवीर्यादिगुण प्रकट हुवा है ऐसे अरिहत भगवानजीका विनय करना, क्यों कि आत्माका स्वरूप अरूपी ह जो केवलज्ञान प्रकट हुवे विगर प्रकट नहीं हो सकता वो केवलज्ञानस तमाम जीवके आत्माका स्वरूप प्रत्यक्ष मालुम होता है उससें प्रभुजीने वो स्वरूप वर्णन किया फिर आत्मा मलीन काहेसें होता है वो स्वरूप वतलाया पुन आत्मा निर्मल काहेसें होता है वोभी वतलाया पुन्यपाप बाधनेके कारण वतलाये तो उस द्वारा अपन अपने आत्माका स्वरूप जान सकते हैं, वास्ते प्रभुजी वडे उपकारी है, इस लिये उन्होंका विनय ज्यों वन सके त्यों करना नहीं कि शक्ति छुपाकर मिजाजमें रहना?

सिद्धमहाराजजीका आठों कर्म क्षय हो जानेसें आत्माके सपूर्ण गुण निष्पन्न हुवे हैं शरीर रहित है, मोक्षस्थानमें है, पुन ससारमें आनेका हैही नहा, केवल आत्माके गुणमेंही लीन है, न राग, न द्वेष, न क्रोध, न मान, न माया, न लोभ, न विषय, अक्षय, अमर, अजर, अकल, अगोचर, अरूपी आदिक अनत गुणवत हैं, वै सिद्धमहाराजजीका रूप देख अपनी सिद्ध दशा प्रकट करनेकी बुद्धि जाग्रत होनेका हेतु है पुन गुणवतके गुण गानेस अपना आत्माभी गुणी होता है और अनादिकी भूलस परवस्तु अपनी मानकर प्रवर्त्तता है वो भाव पलटानेका साधन है वास्ते सिद्धमहाराजजीका विनयभी जितना वन सके उतना करना अरिहतजी और सिद्धजी इन दोनुका विनय करना सो देवका विनय समझना अव इस क्षेत्रमें अरिहतजी और सिद्धजी कहींभी नहीं विचरते हैं, तो उन्होंकी मूर्तिओंकाभी विनय करना, स-

यत्र कि गुणवत पुरुषोंकी मूर्तिमेंभी जिन जिन भगवानकी मूर्ति है उन उन भगवान-जीके गुणोंका आरोप करना है और वै गुणोंका विनय करनेका हैं, इससें भगवान-काही विनय किये समान है अब उसमें पहिला कौनसा विनय है कि उन्ह पुरुषोंनें जो जो हुकम फरमाये ह वै कुछ हुकम अगीकार करकें अपना आत्मा शुद्ध करनेके उद्यमी होना, और अैसा उद्यम करनेमें आत्मा शुद्ध होवैगा जिस जिस अशमें प्रभु-जीके हुकम मुजब समभावमें रहेंगे-रहवेंगे यह मुख्य विनय है. पीछे उसकें कारण रुप पाच प्रकारका विनय है 'भक्ति बाहाज प्रणीपतीथी'' याने पचाग प्रणाम करना अर्थात् खमासणा दे कर पाचो अग इकठे ( दो गोठन, दो हाथ, और शिर-ये पाच अग एकत्र मिला ) करकें भगवतजीकों या भगवतजीकी मूर्त्तिकों नमस्कार करना. पुनः अष्ट द्रव्यसें-सत्तरह द्रव्यसें-इक्कीस द्रव्यसें या १०८ द्रव्यसें भगवानजीकी पूजा करनी, वो भी प्रभूजीका विनय है " हृदय प्रेम बहुमान " याने हृदयके अदर भ-गवतजीके गुण और भगवतके उपकार अत्यत विचार करकें हर्षके मारे रागटे विकश्वर हो जावें-आनंदका पार न रहवै अैसा अतरमें हर्ष हो आवै और प्रभु पर अत्यत प्रीति जाग्रत होवै, तथा प्रभु प्ररुपित धर्म जो आगमोंमे कहा है वै आगम सुनकर-'अहा! प्रभुजीने क्या सर्वोत्तम मार्ग दर्शाया है!' वो शोच कि हर्ष होवै फिर प्रभु जीके चरित्र सुनकर प्रभुजीका वर्त्तन देखकर-'अहा! अत्यताश्चर्यकारी भगवतजीका वर्त्तन है, वो देखकर हर्षित होवै और प्रभुजीके उपकार याद ला करकें अतरगमें प्यार उत्पन्न होवै वोभी प्रभुजीका विनय है

" गुणकी स्तुति " याने प्रभुजीके गुणोकी स्तुति करनी सो स्तोत्र श्लोक-दोहरे-छद इत्यादि प्रभुजीके आगे खडे रहकरकें उच्चारन करना, या चैत्यवदन, नमु-त्थुण, स्तवन, स्तुति वगैरः कहना, या प्रभुजीके चरित्र सुने हुवे है वो चरित्रोंमे जो गुण वर्णन किये हे वो याद करकें आप स्तवन कर या दूसरेके आगे कहकर उन लोगोंकों प्रभुजीके रागी बनाना वोभी भगवतजीकी स्तुति है औगुणकों ढक देना याने प्रभुजीमे तो किसी प्रकारका औगुण हैही नहीं, परतु कोइ कल्पित औगुण कहेता होवै तो उनकों समझाकर औगुण बोलना बध करवा देवै. प्रभुजीकी प्रतिमाजी है उन्हों-की पूजा न करते होवे तो उन्होंकों समझा करके प्रभुजीकी पूजा करते बनाने चाहियें. प्रतिमाजीके अवर्णवाद बोलता हो उसकों समझाकर वो अवर्णवाद न बोलै अैसा करना

चाहियें, क्यों कि प्रभुजी और प्रभुजी स्थापना दोनु समान है प्रु भगवतजीनें फुरमाया है श्री अनुयोगद्वार सूत्रजीमें आर आवश्यक सूत्रजीमेंभी स्थापना निक्षेपा कहा हे इस समयमभी सामान्य गृहस्थकीभी यादी कायम रखनेके लिये फोटोग्राफ (छबी–तसवीर) बहुतसें लोग करवाते है फिर बडे होद्देदारोंकी या राजाओंकी या शाहुकारोंकी मूर्ति (पुतले–बावले) भी मरनेवालेके मान्यकी खातिर बैठानेमें आती है तो जब असे मनुष्योंका बहुमान करते हैं और देवकी मूर्तिके बहुमान करने करवानेका खियाल न रक्खै तब आपहीके देवपर आपका राग नहीं है ऐसा साफ मालूम हो जाता है न्याय़की बुद्धि सहजहीसें जिसकी हुइ होगी तो उसको सहजहीसें समझनेमें आयगा कि भगवतजीकी मूर्ति देखकर भगवतजी याद आते है और भगवतजी याद आये कि उन्होंका चरित्र याद आवै, और उन्होंके अद्भुत चरित्र याद आवै तो प्रभुजी कैसें गुणवंत है वो गुण याद आवै, गुण याद करनेसें प्रभुजीने मोक्षमार्ग बतलाया है उस मार्गपर जीवकों किस तदबीरसें चलना वो याद आवै, वो याद आनेसें अपन भगवतजीके हुकमसे विरुद्ध चलते है वो याद आवै, और वो याद आतेही अपनी भूल सुधारनेकी बुद्धि हो आवै, भगवतजीके उपकार याद आवै तो भक्ति करनेके भाव होवै–सबब कि उपकारीकी जितनी भक्ति न करें उतनी कम है, वास्ते भगवानजीकी यथाशक्ति भक्ति करनेके भाव जागत होवें वो प्रभुजीका विनय है जो जो अवर्णवाद बोलते होवें वा बंध होवै वो लाभ समझानेवालेकों होता है, और वोही प्रभुजीका सच्चा विनय है

"आशातनकी हाणी" याने भगवतजी विचरते होवै उस वख्त छद्मस्थ अवस्थासें याने जब तक केवलज्ञान न पाया हो तब तककी अवस्थामें कितनी मशसा होती हो तो वो अज्ञानी मतवरी जीव सहन कर शकते नहीं, वैसें जीव अवर्णवाद बोलते होवै या पीडा करते होवें तो अपनी शक्ति स्फुरायमान करकें वो पीडा दूर करनी मुहसें बोलता हो तो उसको समझाकरकें वैसी वातें बोलता बंध कर देना, या प्रभुजीकी परिक्षा लेनेके लीयेभी कितनेक देव पीडा–उपसर्ग करते है, तो उस देवकोंभी अपनी गुप्तशक्तिसें–मानसिक शक्तिसें दूर हठा देना, या मिथ्यात्वी जीव प्रभु प्ररुपित ज्ञान संबंधी बिगर दूषणकों दूषण कहकर निंदा करता होवें तो वोभी प्रभुजीकी आ-

शातना है उसकाभी समझ समझाकरकें आशातनासें न्न करके धर्ममें स्थिर करना फिर अपनेमें शक्ति न हो तो दूसरे कोइ शक्तिवत हो उसकों बीनती करके उन्हकी शक्ति स्फुरायमान करवा के उन्हकी शक्तिसें आशातना दूर करनी उसी तरह जिन बिंब याने मूर्तिकी आशातना करता होवें वो दूर करना, अब जिनभुवनमें चोराशी आशातना दूर करनी उसके नाम नीचे मुजबः—

१ बलगम या थूक डाल्ना, २ झूला बांधकरकें झूलना, ३ क्लेश–लडाइ–टंटा फिसाद करना, ४ धनुर्विद्या शीखनेका अभ्यास करना याने बाण साधनेमें निशानकी जगह बान लगे वो शीखना, ५ पानी पी करकें कुल्ले करना, ६ तांबूलादिक–पान सुपारी खाना या खाकर जाना, ७ तांबूल खाया हो वो वहां थूकना, ८ दूसरेको गालि देना, ९ जेसा तैसा-गाली गलुच-ठठाबाजी-दिल्लगी-निभरस बोलना या शाप देना, १० स्नान करना, ११ शिरके बाल या कोइभी बाल डालना, १२ नाखुन डालना, १३ खून डालना, १४ मिठाइ वगैरः खाना, १५ शरीरकी चमडी डालना, १६ पित्त वमन करना, १७ सामान्य वमन करना, १८ दांत गिरगया हो सो डाले या दांतोंकों साफ करे, १९ थक लग गया हो तो विश्राम लेवें, २० गउ वगैर. चोपायेकों बांधना, २१ दांतका मैल डालना, २२ आंखोंका मेल डालना, २३ नाखुन उतारे या उतरावें, २४ गंड-स्थल–गालका मैल उतारे या डाले, २५ नाकका मैल डाले, २६ शिरमें कंगाइ फि-रावे या सुधारे, २७ कानका मैल डाले, २८ शरीरकों सजावे, २९ मित्रकों भेंटे, ३० घर-संसारी कामका नामा लिखें–या कागज लिखें, ३१ कुछ वेचान करे, ३२ थापन रक्खे, ३३ दुष्टासनसें बैठे, ३४ छाने थेपे, ३५ कपडे सुखावें, ३६ पापड सुखावे, ३७ वडीयें करे या सुखावे, ३८ राजाके डरसें भाग कर मंदिरमें छुप जाय, ३९ अनाज सुखावें, ४० मंदिरमें अपने सगोंकों याद करके रोवे [ भगवानके गुणानुवा-दका बहुमान करनेके वक्त हर्षके आंसु आवे वो आशातना नहीं गिनी जाती है ], ४१ विकथा याने राजकथा, देशकथा, भोजनकथा, स्त्रीकथाकी बाते करनी, ४२ शस्त्र बनावे, ४३ चोपाये बांधे, ४४ आग सुलगाके तापे, ४५ रसोइ बनावे, ४६ रुपै म्होंरकी परीक्षा करे, ४७ निसिही कहकर संसारके कार्य निषेध किये परभी करे [ और निसिहीका भंग करे सो व्रतभंगके दोष जैसा दोष है. ] ४८ अपने शिरपर मंदिरमें छत्र धरावे, ४९ जूते-बूट मंदिरमें रक्खे, ५० चॅवर धरावे–ढुलावे, ५१

मनकी एकाग्रता न करे, ५२ शरीरकों तेलका मालिश करावे, ५३ सचित्तभोग न तजे, ५४ अयोग्य अचित्त पदार्थ न तजे, ५५ शास्त्र रख्खे, ५६ प्रभुका मुख देखने परभी हाथ न जोडे, ५७ एक साडी उत्तरीय वस्त्र डाले सिवा मंदिरमें दाखिल होवे, ५८ मुकुट पघडी पर पहनकर मंदिरमे जावे, ५९ पघडीका अविवेक करे, ६० फूल तुरें वगेर शिरमे रखकर मंदिरमें जावे, ६१ शर्त करे, ६२ दंडे-गोलकी रमत करे, ६३ गेडीकी रमत-बेटबॉल खेले, ६४ मंदिरमें जुहार-सलाम करे, ६५ किसीकों टुकारा करे, ६६ लंघन करनेकों बैठे, ६७ वध भीडकर लडे, ६८ भांड चेष्टा करे, ६९ शिरवेणी सुधारे, ७० काम-याने खडे घोंटे रखकर कपडा बांधकर बैठे, ७१ खडाउ पहनकर मंदिरमें जावे, ७२ लंबे पॉव पसारकर बैठे, ७३ पीपुडी-सीटी बजावे, ७४ मंदिरमें कीचड करे, ७५ शरीरकी धूल उडावे, ७६ मैथुन सेवे या उस संबंधी चेष्टा करे, ७७ जुगार खेले, ७८ पानी पीवें-भोजन करे, ७९ कुस्ती खेले, ८० नवज देखे-दवा दवे, ८१ मंदिरमें किसी जातका सौदा-सट्टा करे, ८२ बिछौना बिछावे, ८३ खानेकी चीज [ मन्दिरमें ] रख्खे, ८४ और मंदिरमें स्नान करे इसतरहकी ८४ आशातनाए हैं जो कोइ वक्त किसीसेंभी करनी नहीं चाहियें अगर कोइ करता हो तो उनकों रोक देना चाहिये. इनके सिवा मंदिरका पैसा खा जाना, या मंदिरके पैसेसें नफा हासिल करना, या मंदिरका पैसा घरकाममें खर्चना, मंदिरकी चीज लाकर काममें लेनी ये तमाम आशातनाए गिनी जाती हैं और देवद्रव्य खानेका दूषण लगे, वास्ते मंदिरकी कोइभी चीज अपने घरकाममें न लेनी इस मुजब देवका पांच प्रकारसे विनय करना कहा है और देवभाषित धर्म जो आगममें लिखा है; वास्ते आगमका विनय करना याने उसके विनयके साथ उसका ज्ञानभी करना आगम याने शास्त्र उसकों लिखवाना, लिखवानेके काममें पैसे खर्चना, जो आगम ग्रहण करना हो उनकों नमस्कार, खमासण देकर लेना छोडना जबभी उसी मुजब करना आगमके पुस्तक धरे हो वहा दस्त पेशाव न करना पॉवके या शिरके नीचे आगमकों न रखना, उनके आगे आहार पानीभी न करना, मैथुन या मैथुनचेष्टाभी न करनी, हास्यविनोदभी न करना. इसतरह प्रभुजीके ज्ञानका विनय करना सो प्रभुजीकाही विनय है. मुख्य विनय तो यह है कि प्रभुजीका हुक्म है कि आपके आत्मभावमें रहना जो जो सुख दु ख होते हैं उनके कर्म पूर्वसमयमें या वर्त्तमान

समयमें बंधे हैं उस मुजब सुख दुःख होते हैं, और आत्माका स्वभाव जाननेका है सो जान लेना; परंतु मुझको सुख या दुःख हुवा ऐसा मान कर हर्ष या अफशोष य न होना चाहिये ऐसे विचारमें रहनेसें नये कर्म नही बधे जाते है ऐसा प्रभुजीने फरमाया है-ऐसा शोचना वही प्रभुजीका विनय है, और आत्माका हित होनेका कारण है इत्यादि विनयका स्वरूप प्रभुजीने शास्त्रमें बहुत तरहमें बतलाया है. उत्त-राध्ययनजीमें विनय अध्ययन हैं वो सुनकर तदनुसार विनय करना.

गुरुमहाराजजीका विनय करना सो कैसे गुरुमहाराजका करना ? जिन महा-शयने बिलकुल हिंसाका त्याग किया है-किसी जीवकोंभी मारना या दुःख देना बधही कर दिया है. जूंठ बोलना छोड दिया है, कोइभी जातकी चोरी करनीभी त्याग दी है, कोइभी स्त्रीके साथ मैथुनक्रिया करनी त्याग दी है, स्त्रीको छूनाभी बंध कर दिया है, धनधान्यादि नौ प्रकारका परिग्रहभी सर्वथा छोड दिया है-कौडीभी पास न रखना मंजूर रक्खा है, ऐसे पाच महाव्रतसें करकें युक्त जो मुनीमहाराज प्रभुजीकी आज्ञा शिरपर चडा करकें विचरते हैं-प्रभुजीकी आज्ञा बहार नहीं वर्तते हैं-अपने आत्मगुणमें आनंदित दिलवाले हैं-विषयकषाय नहीं सेवन करना है इससें विषयकषायसें मुक्त हुवे हैं- और कुछ अंशसें रहा है उससें मुक्त होनेके कामी हैं-शांतरसकेही उद्यमी हैं-शत्रु मित्र तुल्य हैं-वैसे आचार्य, उपाध्याय और साधुजी-महाराज, पर जीवपर उपकार करनेकोंही पृथिवी पर विचरते हैं और धर्मोपदेश दे-कर जगतके जीवोंको अधर्मसें छुडाते हैं-कितनेक नहीं छुडाते है, परतु छुडानेकेवास्ते सन्मुख हो रहते हैं-ऐसे उपकारके करनेहारे पुरुष हैं वोही गुरु याने बडे हैं, वास्ते उन्ही महाशयजीका विनय करना जब गुरुजीके पास जाना तब सचित्त पदार्थ न ले जाना, गुरुजीकों देखकर हाथ जोडकें नमस्कार करना, फिर पचाग प्रणाम करकें [इच्छकार सुहराइ सुहदेवसी सुख तप शरीर निराबाध सुख सयम यात्रा निर्वहो छोजी स्वामी शाता छेजी, भातपाणीनो लाभ देशोजी] ऐसा कहकर पीछे (इच्छा-कारेण सदीसह भगवन अब्भुट्ठिओह अब्भिंतर देवसिय खामेउ) ऐसा कहकर गु-रुजीकी आज्ञा मागकर, आज्ञा मिले कि [खामेह] पीछे पचाग प्रणामपूर्वक अब्भु-ट्ठिओह अब्भितर खामना इच्छकार कहकर शाता पूछकर अब्भुट्ठिओ खामनेसें कुछभी गुरुजीकी आशातना हुइ हो तो उसकी माफी मागनी है और जितने शब्द

अब्भुट्टिओमें आते हैं उतने बोल करनेसें गुरुकी आशातना होती है, वास्ते उतने शब्द त्याग करनेसें गुरुजीका विनय होता है, उस लिये अब्भुट्ठिओ खमानेका उपयोग रखना कि शायद कुछ भूल न हो जाय फिर द्वादशावर्त्त वदन गुरुजीकों करना वोभी गुरुजीका विनय है. [ वो वदन प्रतिक्रमणकी अर्थ सहित छपी हुइ कितावमें अर्थसह है वहासें देखकर समझ लेकें उस मुजब करना ] फिर अरिहंत-जीका पांच प्रकारसें विनय बतलाया है उसी तरह गुरुजीकाभी विनय करना-और वदनभी करना बाद गुरुजी धर्मकथा करते होवे तो सभा मौजूद होती है तो सभा अंदरके श्रावक श्राविकाओंकों प्रणाम करना (अगर सभामें बैठे हुवे श्रोताओंसें आनेवाला पुरुष विशेष गुणवंत हों तो धर्मवंत-धर्मज्ञ-धनवन हो तो वे बैठे हुवे श्रो-ताए उन्हकों अव्वलसेंही प्रणाम करै, और सामान्य हो तो आनेवाला प्रणाम करै ऐसी मर्यादा है उसकी मतलब यही है कि चतुर्विध संघका विनय करनेका है, सो प्रथम विशेषका सामान्यवाला विनय करै और विशेष होवे वो पीछेसें करै ) फिर गुरुजीके पाससें जानेका दिल करै तबभी गुरुजीकों वदना करके जाना अगर गुरुजी घरपर पावन कदम रख्खे तो उन्होंके सन्मुख जाना, गुरुजीकों स्वच्छ-योग्य आसन देना, गुरुजीकों देखतेही नम्रतायुक्त नमस्कार करना, गुरुजीकों जिस ची-जकी दरकार हो वो चीज हाजिर करना, कीमती चीज हो या अल्प-थोडी कीमत-वाली हो सो वोभी अर्पण करना मार्गमें गुरुजी मिल जाय तोभी नमन करना गुरुजीकी तेत्तीस आशातनाए दूर करनी सो नीचे मुजब —

१ गुरुमहाराजके आगे बैठना, २ गुरुकी आगे खडा रहना, ३ गुरुके आगे चलना, ४ गुरुजीके पीछे नजदीकमें बैठना-५ या खडा रहना-६ अगर चलना, ७ गुरुजीके दोनु तर्फ नजदीकमें बैठना, ८ गुरुजीकी बराबरीसें चलना, ९ या बरा बर चलना, ( ये नौ आशातनाकी मतलब ऐसी है कि बैठते खडे रहते अपनी उंक उवासी अधोवायुका सरना या श्वासका स्पर्श होवे वास्ते जिस तरह बैठने खडे रहे-नेसें थूक श्वासादिकका स्पर्श न हो सकै उस तरहसें बैठना-खडा रहना दुरुस्त है अगाडी या बरोबर बैठनेमें गुरुजीकी बडाइ किस प्रकारसें समाली जावै ? वास्ते बराबरीसें या आगे बैठनेसेंभी आशातना होती है ) १० आपसें विशेष पुरुषोंकी साथ थंडिल जावे, और उन्होंसें पेस्तर आवे [ तोभी आशातना है ] ११ गुरुके

साथ बहारसें आये हुवे शिष्य गुरुजीसें पहिले मार्गके दोप आलोवे (तो आशातना लगै), १२ रात्रिमे गुरुजी बुलावे कि कौन सोता है-कौन जागता है और आप जागता हो तदपि 'मैं जागता हु ऐसा न कहे [तो आशातना लगै], १३ उपाश्रयमें श्रावक आवे उसकों गुरुजी या आपसें अधिक पुरुषने बुलाये पेस्तर आप बुलावे (तो गुरु हो तो गुरुकी और अधिक हो तो अधिककी आशातना लगै.), १४ आहार ल्याकर आपसें अधिक याने बडे हो उन साधुजीकों आहार बतलाये बिगर दूसरे साधुओंको बतलावे, १५ आहारादिककी निमंत्रणा गुरुजीकों न करते दूसरोंकों पेस्तरसें करै, १६ गुरुजीकों पूछे बिगर दूसरे साधुवोंकों आहारकी निमंत्रणा करे, १७ गुरुजीकों पूछे विदून दूसरोंकों आहार देवे, १८ सरस और स्वादिष्ट आहार आप वापरे ओर गुरुजीकों न देवे, १९ गुरुजीके वचन सुन लिये परभी गुरुजीकों जवाब न देवे, २० गुरुजीके जैसे वडिलने बुलाये परभी कठोर वचनसें जवाब देवे, या कुछभी अवज्ञा होवे वैसा जवाब देवे, २१ गुरुजीने बुलाया तोभी अपने आसनपर बैठ रहकेही जवाब देवे; परतु तुरत पास न आवे, २२ गुरुजीनें बुलाया तोभी आसनपर बैठेही क्या आज्ञा है ऐसा कहे, २३ गुरुजीकों या वडीलकों टूकारेसें बुलावे, २४ गुरुजी कहवे उसी मुजब अविनय बोलकर जवाब देवे, २५ गुरुजी, साधु साध्वी ग्लान-रोगी उनकी सार सभाल लेनेका फुरमावे तब गुरुजीकों कहवे कि आपही सार सभाल कर लो (ऐसा बोलकर अवज्ञा करै.), २६ गुरुजी धर्मकथा कहवे वो शून्य चित्तसें सुने, कदाचित् सुने तो सुनकर गुरुजीका बहुमान न करै (अहा! गुरुजी! आप शास्त्रके परमार्थ क्या बतलाते हो!! धन्य है!!! ऐसा कहना चाहियें सो न कहे), २७ गुरुजी या रत्नाधिक धर्म उपदेश कहवे तब बोले कि ये अर्थ आप बराबर नहीं करते हो आपकों यथार्थ अर्थ करते नहीं आता है ऐसा कहे, २८ गुरुजी कथा फरमाते हो उस कथाका भंग करके आप दूसरोंका (सुननेवालोंके आगे) कथा कहवे और समझावे, २९ गुरुजी कथा करते होवे, गुरुजीकों ओर सभाकों कथासें आनद हो रहा हो और चित्त लीन बन गया हो ऐसा जान लिये परभी शिष्य कहवे कि-महाराजजी! गोचरीका औसर हो गया है वास्ते कथा मोकूफ करो, पीछे गोचरी न मिलैगी. [इसतरह बोलनेसें चढती धारा हो वो टूट जाय, और व्याख्याका भग होवे, इससे आशातना लगती है] ३०

गुरुजीने जो जो अर्थ कर बतलाया हो वही अर्थ व्याख्यान मोकूफ कर लिये बाद शिष्य सभामें विस्तारपूर्वक अपनी हुशियारी दिखलानेके लिये व्याख्यान करै, ३१ गुरुजीके सथारेकों, या गुरजीके पाँवकों पॉवका स्पर्श हो जाय तो तुरत क्षमा न मागे याने न खमावै, ३२ गुरुजीके सथारे या आसन पर खडा रहवे, या बैठे या सो रहवे, ३३ गुरुजीसें उचे आसनपर बैठे या बराबर-समान आसनस बैठे-इसतरह गुरुजीकी ३३ आशातनाए है सा न करनी और कोइ करता हो तो उसकों दूर करवानेका उद्यम करना ये आशातनायें आपमें जबतक अहकारदशा होयगी तब तकही होवैगी, और अहकार दूर हो गया होगा तो सहजहीसें आशातना दूर हो जायगी; वास्ते मुख्यपनेसें मैं गुरुजीसें बहुत ज्ञानी हु, ऐसा अहमेव हो तो दूर करना; कारण कि यदि गुरुजीसें आपमें विशेप ज्ञान होवै तोभी वो गुरुजीकी कृपासेंही हुवा है, तो जिन्होंकी कृपासें हुवा उन्होंकी बडाइ रखनेका खियाल दिलमें न आवै तो तबतक ज्ञान पढा हो तोभी फरशज्ञान नहीं हुवा. जब फरशज्ञान हुवा होवै तो उपकारीका उपकार न भूले, वास्ते कदापि उपकार भूल गया हो तो याद कर आत्माकी भूल सुधार लेनी, और गुरुजीकी बडाइ चित्तमें ल्याकर विनय करके आशातना दूर करनी, यही आत्माकों हितकारी है फिर गुरुका द्वादशावर्त्त वदन करनेमें बत्तीस दोप लगते है-छपे हुए प्रवचनसारोद्धारजीके पत्र २९ में लिखा है कि-निम्न लिखित दोप दूर करके वदन करना'—

१ अणाढादोप उसें कहते हैं कि-आदरके सिवा गुरुवंदन करना याने आपकों वदन करनेका हर्ष नहीं है, मगर कुल मर्यादसें करनेकी रीति है उस लिये करै, नहीं कि वदन करनेसें महा निर्जरा होवेगी, मुझकों ऐसे महान् पुरुपकों वदन करनेका मोका हाथ लगा है ऐसा भाव ला करके वदन करता है और जबतक ऐसा भाव न आवै तबतक गुरुजीका आदर न हुवा, वास्ते महान् हर्ष और आदर सहित वदन करना कि अणाढादोप दूर हो जावै

२ स्तब्धदोप उसें कहते है कि-द्रव्यस्तब्ध याने गुरुजीकों वदन करनेका भाव है; परतु शूलादिक रोगकी पीडासें चित्त अस्वस्थ हो जानेके लिये चित्त प्रफुल्लित न होवै भावस्तब्ध याने द्रव्यस क्रिया करै; मगर अतरगका उपयोग वदनमें बिलकुल न होवै, वास्ते ये दोनु द्रव्य और भाव स्तब्धताकों दूर करके गुरुवदन करना

३ प्रवीधदोप उसे कहते है कि:-जैसें किराया देकर कोइभी मनुष्यको कामपर लगाये परभी फक्त मजदूरीके पैसे तर्फही निगाह रखकर काम करे और ज्यों त्यों काम करके चला जाय, वैसें वंदन करते व्यवस्था रहित वंदन पूर्ण किये बिगर चला जावे

४ सपिंडदोप उसें कहते है कि:-आचार्यजी, उपाध्यायजी और समस्त साधुजीओंको इकठ्ठा वंदन करें.

५ टोलकदोप उसें कहते हैं कि:-जैसें टीडी जानवर इधरसें उधर घूमते फिरे मगर एक जगह कायम न हो रहवे, वैसें वंदनके वक्त आघा पीछा फिरे करें

६ अंकुशदोप उसें कहते है कि-जैसें महावत हस्तीकों अंकुशसें करकें अपनी मरजी मुजब फिराता है, वैसें गुरुजीकों फिरावे याने आचार्यजी खडे रहे हो या बैठे हो या कोइ कार्यमें हो; तोभी गुरुजीका कपडा पकडकर आसनपर बैठाकि वंदन करे.

७ कच्छपदोप उसें कहते है कि-वंदन करनेके समय कछुवेकी तरह आगे पीछे नजर फिराता हुवा वंदन करे याने गुरुमहाराजजी तर्फ दृष्टि न रखते चारों ओर नजर फिरावे

८ मच्छदोप उसे कहते है कि-मच्छ जैसें स्थिर न रहै वैसें शरीरकी अस्थिरतासें-विचित्रप्रकारकी चेष्टासहित वंदना करे.

९ मनप्रदुष्टदोप उसें कहते है कि-आपके या दूसरेके वास्ते गुरुजी मारफत कार्य सिद्ध न होनेसें मनमें द्वेष होनेपरभी वंदना करें

१० वेदिकाबद्धदोप उसें कहते है कि-दोनु हाथ गोठनके उपर रखकर या दोनु हाथोंके बीच दो या एक गोठन रखकर वंदन करे-गोदमें हाथ रखकर-दोनु हाथ गोदमें रखकर वंदन करे-इसतरह पाच प्रकार वेदिका दोप है

११ भयदोप उसे कहते है कि-वांदणे देनेके वक्त भय रखें कि नहीं वांदुगा तो गुरुजीको द्वेप होयगा और मुझकों निकाल देवेंगे-ऐसे भय-डरके मारे वंदना करे

१२ भजंतदोप उसे कहते हैं कि-दूसरे साधु आचार्यजीकों भजते है और मै न आउंगा तो अच्छा न लगेगा ऐसे विचारसें भजे

१३ मित्रदोष उसें कहते हैं कि-गुरुकों वदना करुगा तो गुरुके साथ मित्रता होयगी ऐसे शोचकि वदना करे

१४ गारवदोष उसें कहते हैं कि-मुझको समाचारी जानकर या जाननेसें लोग पंडित कहवेंगे और विनीत जानेंगे ऐसे हतुसें वंदे

१५ कारणदोष उसें कहते हैं कि-गुरमहाराजकों वदन करुगा तो गुरुजीके पाससें कवली वस्त्र वगैर. इच्छित वस्तु मिलेंगी

१६ स्तैन्यदोष उसें कहते हैं कि-गुरुजीकों चुपकीदीसें वदना करै-जाहिरमें न वदना करै, सवब कि सवके दखते वदना करुगा तो मैं उन्होंसें छोटा कहा जाउगा और गुरुकी वडाइ होगी ऐसा शोचके चोरकी मुवाफिक वांदे

१७ प्रत्यनीक दोष उसें कहते हैं कि-गुरुजी आहारपानी करते होवै उस वक्त वदन करै

१८ दृष्टदोष उसें कहते हैं कि-कषायस पूर्ण हुवा गुरुकों वदना करै, और गुरुकों कषाय पैदा करावें

१९ तर्जितदोष उसें कहते हैं कि-गुरुजी तो कोप या प्रसादभी नहीं करते हैं. काष्टकी पूतली जैसे हैं या अगूलीसें करके शिरपर या अगुली-शिरसे तर्जना करनी.

२० शठदोष उसें कहते हैं कि-गुरुजीकों वदना करुगा तो गुरुजी अगर श्रावक मेरा विश्वास करेंगें, तो मेरा इच्छित कार्य सिद्ध होगा

२१ हीलनादोष उसें कहते हैं कि -गुरुजीकों कहवै कि-हे आर्य ! हे येष्ट ! हे वाचक ! मैं तुझकों प्रणाम करता हु इसतरह हीलना करता हुवा वदना करै

२२ कुचितदोष उसें कहते हैं कि -वदना करतें करतें बीचमें विकथा करै

२३ अतरितदोष उसें कहते हैं कि -साधु प्रमुखकों अतरेसें रहकर या अंधेरेमें रहकरकें वदना करै कि जिस्में कोइ देखें नहीं

२४ व्यग दोष उसें कहते हैं कि-गुरुका सन्मुखपना छोडकर वाम दक्षिण बाजुपर वदना करै

२५ कर दोष उसें कहते हैं कि-जैसे राजाका कर देनेका हो वैसें मनमें विचार करै कि भगवानजीने कहा है उससें वदने पडग. वो वेठ है सो उतार दैनी अैसा धारण करकें वदै

२६ मोचन दोष उसें कहते है कि– ससारके करसें मुक्त हुवै, मगर अरिहंत-जीके करसें मुक्त नहीं हुवै उससें वंदन करना पडेगा ऐसा शोच कर वदै

२७ अश्लिष्ट अनाश्लिष्ट दोष उसें कहतें हैं कि–वंदना करते रजो हरणकों हाथसें स्पर्शै, परतु हाथ माथेकों न स्पर्शै, मस्तककों स्पर्शै, परतु रजोहरणकों न स्पर्शै रजोहरणकों हाथ न लगावै और मस्तककोंभी न लगावै

२८ न्यूनदोष उसें करते हैं कि–वदनाके कमती अक्षर बोले या बहुत झडपसें वंदन कर लेवै, उससें अवनमनादिक कम करे या न करे, प्रमादसें करकें ज्यो त्यों करे उसमें न्यून होवे वो न्यून दोष है.

२९ चूलिका दोष उसें कहते हैं कि–वदन किये बाद बडे शब्दसें करकें 'मत्थएण वदामि" कहवै

३० मूकदोष उसें कहते हैं कि–मूगेकी तरह मुँहसें शब्द बोले बिगरही वंदन करै.

३१ ढड्ढर दोष उसें कहते हैं कि–बडे स्वरसें वदनका सूत्र उचार करै

३२ चूडलिका दोष उसें कहते हैं कि–रजोहरण पकडकर आडाऔंना–इधर-उधर फिराता हुवा वदै

इसतरह बत्तीस दोष वंदनाके दूर करकें गुरुजीकों वंदन करना–सो विनय है गुरुजीकी आशातना करकें विनय करना सो योग्य नहीं, वास्ते ज्यों बन सकै त्यों गुरुजीकी आशातना न करनी. गुरूजीकी निंदा–हीलना करनेसें, गुरूजीका नाम छुपानेसें, गुरूजीकों पीडा–दिल दुभावै वैसा करनेसें ज्ञानावरणी कर्म बांधता है, ऐसा पहिले कर्म ग्रथमें कहा है उस लिये ज्यों गुरूजीकी आशातना न होवै त्यों करना, और जितनी मन वचन कायासें करकें भक्ति हो सकै उतनी करनी कि-जिससें ज्ञानावरणी कर्मकी निर्जरा होवै

धर्मका विनय सो–ज्ञान–दर्शन–और चारित्ररूप धर्म अगीकार करना उसमें जितना जितना धर्म अगीकार करनेमें आवै उतना उतना विनय होवै ज्ञान अगीकार करना सो आत्माका ज्ञानगुण है वो गुण प्रकट करना, या प्रकट करनेके कारण सेवन करना. ज्ञान याने जानना, वास्ते जो जो वर्त्तना होवै वो जान लेनी, परंतु उसमें रागद्वेष न करना–ऐसी ज्ञानदशा बनानेमें सपूर्ण केवलज्ञान प्रकट होता है.

ऐसी दशा न हुइ वहांतक ऐसी दशा प्रगट होवै वैसे गुरुजीके पास ज्ञान पढना, सुनना, निर्णय करना. शक्ति हो तो आपही पढे, आपकों जितना ज्ञान हुवा होवै उतना दूसरोंकों पढाना येभी ज्ञानका विनय है फिर पुस्तक लिखवाना, ज्ञानवानोंका और पुस्तकका विनय करना वदन नमनादिक करना, पुस्तककी सभाल रखनी, ज्ञानवृद्धि होनेके काममें द्रव्यकी शक्तिके अनुसार खर्च करना; शरीरकी शक्तिसें ज्ञानवृद्धि होवै वैसी मिहनत करनी, दूसरोंकों ज्ञानके विनयमें सामिल कर देना, ये तमाम ज्ञानका विनय है इसी तरह दर्शनका विनय करना सो सम्यक्त्व अगीकार करना, शुद्ध श्रद्धा रखनी, वीतरागके वचनमें शंका न करनी, ऐसे श्रद्धावत पुरुषका याने साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकाओंका विनय उचित विनय करना कि जिससें उत्तम पुरुषकी कृपा होवै और कृपा होनेसें अपनी श्रद्धामें कसर हो सो मिट जाय और शुद्ध होवै-इसका विस्तार गुरुविनयमें लिखा है उस मुजब करना

चारित्रका विनय सो-मुख्यतासें आत्माका चारित्रगुण है, जो आत्माकों आत्मस्वभावमें स्थिर होना, जो विभावमें अनादिकालका आत्मा स्थिर हुवा होवै वहांसें पलटा करके अपने गुणमें स्थिर होना जितना जितना परभावका प्रवर्त्तन रूकेगा उतना उतना चारित्रगुण प्रकट होवेगा-यही चारित्रका विनय है अब एसे गुण प्रकट नहीं हुवे वो प्रकट करनेके लिये पचमहाव्रतरूप चारित्र अगीकार करना और वो न बन सके तो श्रावककों बारह व्रतरूप देशविरति चारित्र अगीकार करना. ये अगीकार करनेसें अतरग चारित्र प्रकटैगा फिर उतनी दशा लानेके वास्ते ऐसे सर्व चारित्रवत या देशचारित्रवतका विनय करना उसकी सगति करनी कि उत्तम पुरुषके सगसें उत्तमता आवे, वास्ते चारित्रवत पुरुषका विनय शास्त्रमें विस्तारसें कहा है उस मुजब करना-वो चारित्रका विनय है इसी तरह तप धर्मकाभी विनय करना-याने तप अगीकार करना और तपस्वीका विनय करना सो विनयनामक अभ्यतर तप कहा जाता है

वैयावच्च तप सो-जो अरिहतजी-सिद्धजी-आचार्यजी-उपाध्यायजी-तपस्वीजी-साधुजी-कुल-गण-सघ-नवदीक्षित और रोगीसाधु इत्यादि गुणवतपुरुषोंका वैयावच्च करना आहार-पानी-वस्त्र-पात्र-मकान-सथारा वगैर पाट पटले आदि धर्मोपकरण वस्तु उत्तमपुरुषकों हितकारी जो जो वस्तु चाहियें वो देनी चाहियें,

पो दूसरेके पाससें दिलवानी चाहियें, अगर आप खुदकों ऐसे उत्तमजनौकी पाँवचंपी वगैरः चाकरी करनी चाहियें या ऐसे पुरुषोंकी स्थापना–मूर्ति हो उनकी भक्ति–नमन–विलेपनादिकसें करनी योग्य है और जो वैयावच्च है उपर कहेहुवे पुरुष उपकारी हैं वे उपकारीओंने आत्माकों कर्मसें मुक्त होनेका उपाय बतलाया है फिर उन्होंकी ज्यौं ज्यौं सेवाभक्ति करेंगे त्यौं त्यौं अपनेमें योग्यता आवेगी, और त्यौं त्यौं गुरुजी विशेष उपाय बतावेंगे उससें विशेष बोध होवेगा और गुन मकट होनेमें सहायकारी होवेंगे ये उपकार करनेहारे पुरुषोंकी जितनी वैयावच्च करे उतना आत्मा सफल होता है, क्यौं कि उपकारीका उपकार भूलना सोही मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व गये विगर आत्माका कार्य होनेकाही नही, वास्ते जितनी जितनी वैयावच्च करेंगे उतना उतना मिथ्यात्व दूर हठेगा और समकित शुद्ध होवेगा. सम्यक्त्व शुद्ध हुवा कि आत्मगुण मकट हो चुका. इसी लिये वेयावच्चरूप लाभ होनेका अतराय न टूटा है वहांतक वैयावच्च करनेका दिल न होवेगा, और मन हो आयगा तोभी अतरायके योगसें ऐसे पुरुषोंका योग न बन सकेगा योग बनेगा तो आलस वगैरः बीचम विघ्न आवेंगे और वैयावच्च न बन सकेगा परतु उद्यम करते करतेंही अतराय तूटेगा, वास्ते शक्ति समय मुजब वैयावच्च करनेमें वीर्य स्फुरायमान करना–वही कल्याणकारी है

सज्झायतप सो–सज्झाय ध्यान करना, वो पाच मकारसें है. वाचना याने गुरुजीशास्त्र वाचना देवै उससें गुरुजीकों वाचना देनेरूप वाचनातप होवै और शिष्यकों वाचना लेनेसें वाचनातप होवै पृच्छना याने आप पढे होवै उसमें शका पडे तो गुरुजीकों पूँछकर उसका यथार्थ निर्णय करना [ किसी मनुष्यकों खष्ट करनेके लिये न पूँछना–और पूँछे तो वो पृच्छनातप नही कहा जाता है ] परावर्त्तना याने पढाहुवा हो उनकों पुन' पुनः याद करना कि जिस्सें भूल जानेका डर न रहवै–और भूलभी न पडे, वास्ते जो पढ लिया हो वो हमेशां याद करना हररोज याद करनेका वखत न मिलै तो एक दिनांतरमें याद करना नया पढना जारी रहवै और पुराना विस्मृत होनाभी जारी रहवै तो जानबूझकर ज्ञानके आवरण लगनेका वख्त हाथ लगै, वास्ते ज्यौं पढाहुवा विस्मृत न होवै त्यौं करना चाहियें अनुपेक्षा याने पढी या सुनी हुइ वस्तुके तत्त्वबोधका विचार करना, और वस्तुके परमार्थका अनुभवगम्य

निर्णय करना इसमें विशेष अनुमानशक्ति होवै तो हो सके जिसने भगवतजीके वचनोंका अनुभवगम्य निर्णय किया है उसको फिर शंका नहीं रहती और दुर्बुद्धिवाले उसका मन नहीं फिरा सकते सज्झाय-ध्यान याने जिसको सम्यक्त्व प्राप्त हुआ हो वही पुरुष सज्झायध्यान कर सकै और वही करनेको जरुरत है अनुपेक्षा ज्ञानवालेको आत्मा अरूपी है तोभी वो साक्षात आत्मा देखता हो वैसा निर्धार हो जाता है हरएक पुस्तक वाचकर विचार करना वही अनुपेक्षा है और यों किये विदून वांचे हुवे और पढे हुवेका बराबर फल नहीं मिल सकता है, परंतु जब ज्ञानावरणी कर्मका क्षयोपशम होवै तब बन सके बहुतभी पढे हुवे, क्रिया करते हुवे नजर आते है, मगर यह क्या कहा ? मेरे किस लिये करना ? वो नहीं जानते हैं, और यह क्रिया किस वास्ते की वोभी नहीं जानते हैं उसका सबब कि निर्णय करनेकी बुद्धि जाग्रत न हुइ, लेकिन वो बुद्धि जाग्रत करनेकी आवश्यकता है दुनियामें कहनावत चलती है कि-"पढे, मगर गुने नहीं " वास्ते वैसा न होना चाहियें हरएक बाबतका निर्णय करनेकी बुद्धि रखनी एसी बुद्धि जाग्रत हुइ हो तो उससें हरएक वस्तु अनुभवगम्य होती है. [ उसें अनुपेक्षा कही जाती है ] ऐसे अनुभववाले पुरुष धर्मोपदेश करते हैं वो धर्मकथा कही जावै धर्मकथा करनेंसे परजीव संसारकी उपाधिसें मुक्त होवै, विषयकषाय शान्त होवै, तत्त्वज्ञान होवै, अपना आत्मतत्त्व प्रकट करनेका कामी होवै, या प्रकट करै वैसा उपदेश दैना, या वार्त्ता कहनी अगर सुननी उसीका नाम धर्मकथा है जो कथावार्त्ता कहनेसें विषयकी वृद्धि होवै, तथा तृष्णाकी, मोहकी, हिंसा-झुँठ-चौरी वगैर की वृद्धि होवै उसका नाम धर्मकथा नहीं, मगर पापकर्मकथा है

"यह पांचों प्रकारके सज्झायध्यानका नाम तो ज्ञान है और इसका नाम तप क्यौं कहा ?" ऐसी शंका हो आवै तो उसके परमार्थका तो प्रथम अभ्यंतरतपका वर्णन किया है, वहा दर्शाव किया है उसम लक्ष देनेसें समझमें आयगा. तोभी सहजसें इस जगहभी दर्शाता हु कि-तप इसका नाम है कि-कर्मको क्षय करै तो वाचना प्रमुख करनेसें महा अज्ञानरूप जो कर्म उनका नाश हो जाता है-नाश करनेकी सन्मुखता होती है फिर अज्ञानपनेसे कर्म नहीं क्षय होते है जब ज्ञानदशा हो तभी कर्मक्षय होते हैं बाह्यतपके साथभी ज्ञान होवै तो कर्मक्षय होता है, तो ज्ञानमेंही वर्त्तन करनेसे तो उत्तम कर्मक्षय होवे इसमें नवाइ जैसा नहीं है ' वास्ते क्यौं न सके

रयों सज्झायध्यानमेंही समय निकालना–इससेंही तमाम वस्तुकी प्राप्ति होवेगी

अब ध्यान नामक तप–सो ध्यान किसको कहा जावे? जिसमें मन, वचन, कायाकी एकाग्रता होवें उसें ध्यान कहा जाता है. उसमें धन, कुटुंब, व्यापारादि पुद्गलीक पदार्थमें एकाग्रता होवे उसे अशुभध्यान कहा जाता है और त्याग करने योग्य है, लेकिन वो तो सदाकाल जीवकों हो रहा है वो ध्यान छोडकर आत्मतत्त्वके अंदर एकाग्रता करके उसमें लीनतासें वर्त्तना वो ध्यान तपमें गवेषन किया है. वो ध्यान बहुतसे प्रकारका है. उसमें मुख्य धर्मध्यान और शुक्लध्यान कहे हैं और जो जो ध्यान ध्याना वो अभ्यंतर तप है इसका स्वरूप प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिमें विस्तारसें है सो वहासें देख लेना. यहा पर तो सामान्यतासें कहा गया है

प्रथम धर्मध्यानके चार पाद हैं याने आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय उसमें आज्ञाविचय सो–परमात्माकी आज्ञाका विचारना, जैसी जैसी आज्ञा है वैसा वर्त्तनेकी भावना करनी. अपायविचय याने आत्माका जो स्वरूप है सो स्वरूप नहीं वर्तता, उसका सबब कि मिथ्यात्वादिकके त्याग करनेमें एकाग्रता करनी विपाकविचय सो कर्मका स्वरूप विचारना–कर्मसें मुक्त होनेका शोचना. संस्थानविचय सो चादराजलोकका स्वरूप शोचना

शुक्लध्यानकेभी चार पाद हैं याने पृथक्त्ववितर्क सप्रविचार, एकत्ववितर्क अप्रविचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती, और उच्छिन्नक्रियानिवृत्ति ये ४. शुक्लध्यानके पादमेंसें पहिलेके दो पाद केवलज्ञान प्राप्त होनेके पेस्तर प्रकट होते हैं और दूसरे पिछले दो पाद केवलज्ञान पाये पीछे सिद्धि जानेके करीब वक्तमें प्राप्त होते हैं. पहिले पादमें भेदज्ञान होता है, दूसरेमें अभेदज्ञान होता है, तीसरेमें बादरयोग रूका जाता है और चौथेमें सूक्ष्मयोग रूद्ध होता है. इसतरह वर्त्तना होती है.

वर्तमान समयमें शुक्लध्यान तो हो सके ऐसा नहीं है, कारण कि पूर्वका ज्ञान हो उसें होता है. परतु इस समयमें धर्मध्यान बन सकता है. फिर समाधि प्रमुख है उससें बाह्यके बहुतसें कारण रूके जाते है, और विषयसें विमुख हुवे बिगर समाधि नहीं बनती है. इस कामका अभ्यास करनेके समयसेंही खट्टे, खारे, तीखे, विषयरूप स्वाद बंध करने चाहियें स्त्रियोंके विषयकाभी त्याग करना चाहियें तथा बाह्यके गप्पे आदि निकम्मी बातें करनेकाभी त्याग करना चाहियें ये तमाम कारण

षध करके और श्वासोश्वास रोक करके एक परमात्मापन्में लीन होनेसें उसीमेंही उपयोग रहता है वास्ते ये समाधि उत्तम है. फिर सहज समाधि होवे वो तो बहुतही उत्तम है; क्यौं कि सहजसें दूसरे जडभावमें उपयोग नहीं रहता है और आत्मभाव स्थिर हो जाता है ये समाधी तो धर्मध्यानके पेटेमेंही है पुन: कितनेक अक्षराका ध्यान करनेकी रीति है वोभी योगशास्त्रमें हेमचंद्राचार्यजीने बतलाइ है, उस परसें प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिमें दाखिल की है इससें यहांपर फेलाव नहीं किया, दरकार हो उसमेंसें देख लेवें परंतु मुक्तिका समीप साधन है वास्ते आत्मार्थिजनोंकों ध्यानका लक्ष रखना बहुतही उत्तम है जिस तरह पथडीके अंतमें किसकी पछा अच्छा लगता है किसी तरहसें धर्मसाधनमें ध्यान (उसी मुजब) अच्छा मालुम होता है, इसी वास्ते ध्यानका साधन करनेके लिये अभ्यास करनेकी अत्यावश्यकता है परंतु ध्यानकों अटकायत करनेहारे उपाधिके कारण हैं, वे कारण जब तक है तब तक सहजसें समाधी न हो सकेगी, क्यौं कि एकांतमें विचार करनेमें वे कारण याद आवेंगे कि जिस ध्यानमें स्थिर होना होवेगा उसीमें न हुआ जायगा, वास्ते ध्यान करनेकी इच्छावालोंकों ज्यौं बन सके त्यौं बाधक कारणोंका त्याग करना चाहिये, और बहुत जनका परिचयभी त्याग कर एकांतमें मुख्यपरवतासें रहना चाहिये, तब ये ध्यान होना सुगम पडता है, और विशुद्धता हुवे पीछे तो एकांतकीभी दरकार नहीं रहती है जिन पुरुषका चित्त जडभावसें दूर हो जाता है और अपने स्वभावमें स्थिर हो जाता है, वैसे पुरुष तो सदाकाल जगतका तमाशा देखते है आत्माका ज्ञानगुण है सो जाननेका है परंतु जबतक मिथ्यात्वभाव नहीं गया है वहांतक राग-द्वेष सहित देखते हैं, और जो जो देखते हैं उसमें राग या द्वेष हुए विगर नहीं रहता, मगर मिथ्यात्वकी वासना हठ गइ है, जड, चेतन पदार्थका यथार्थ ज्ञान हुवा है और वस्तुधर्मका ज्ञान हुवा है उसके प्रभावसें जिस पदार्थका जो स्वभाव है वो जानते है कि पीछे रागद्वेष नहीं होता ये दशा पाइ है उन्होंकों तो एकांत और वस्ति सब समान है–उन्होंकों ध्यानके लिये एकांत स्थलकी कुछ दरकार नहीं–ये ध्यान तपका स्वरुप कहा है

काउस्सग्ग नामक तप सो–कायाकों वोसिराके एक स्थानमें रहना और जितनी देरकी स्थिरता हो उतनी देर तक प्रभुजीका स्मरण करना

इस प्रकारकें छ' अभ्यंतर तप है दोनु [ बाह्य अभ्यंतर ] तप मिलकर बारह प्रकारसें तप कहा है वो तपका लाभान्तराय मिटनेसें तपा चारकी प्राप्ति होती है, उस तपका अंतराय काहेसें होता है ? जब तप करनेमें कुछ शरीर बीमार होवे तब मनुष्यके मनमें आवे कि तप किया जिससें मुझकों पीडा हुइ, अब में तप नहीं करुंगा अैसा भाव आनेसें जीव तपका अंतराय कर्म बाधता है, तो फिर तप करनेका भाव नहीं होता है लेकिन सच्चा कारण तो अशाता वेदनीकर्म जो पूर्वकालमें बाधा है वो उदय आता है तब शरीरकों बीमारी होती है जिसने अशातावेदनीकर्म नही बाधा है वो तो अच्छी तरहसें तप करता है, परंतु उनकों रोग या पीडा नही होती वास्ते तप किया और कभी बीमारी हुइ तो ज्ञानीपुरुष शोचे कि मैंने कोइ जीवकों तप करनेमें अंतराय किया होगा कि उससें मुझकों तपस्यामें वेदनी कर्मका उदय आया, जिससें तपस्याकी वृद्धि न हो सकेगी अब तो वेदनीकर्म क्षय करनेकों तैयार हुवा हु, वास्ते वेदनीकर्म समभावसें भुक्तना कि फिर नया कर्म न बधा जाय अैसें समभावमें रहकरकें तपस्यामेंसें चित्तकों नहीं हठाते हैं वैसें पुरुषकों तपका अंतराय टूटता है और तपाचारका लाभ होता है और जो अैसा शौचता है कि तप करनेसें बीमारी हुइ तो वो कठीन कर्म बाधता है. साबितीके लिये छपी हुइ अर्थदीपिकाके पत्र ७२ में रुज्जा साध्वीकी कथा है किः—

भद्राचार्यके गच्छमें पाचसो साधुजी और बारहसो साध्वीजीए हैं उनके गच्छमें-कांजीका पानी, चावलका ओसामन और तीन उबालेका पानी ये तीन प्रकारके पानी सिवा और कोइ प्रकारका पानी नहीं वापरते हैं. कर्मयोगसें रुज्जासाध्वीके शरीरमें गलित कुष्ट हुवा उस वक्त दूसरी साध्वीजीयोंने कहा कि–' दुकर! दुकर!" अैसा सुनकरकें रुज्जासाध्वीने कहा–" ये क्या मुझकों कहते हो ? इस प्रासुक जलसेंही मेरा बदन बिगडा है." अैसा बचन सुनकर दूसरी साध्वीओंके मनमें आया कि–"सायद हमकोंभी प्रासुक जलसें गलित कुष्ट न हो आवे !" अैसा भाव मालूम हुवा परंतु एक साध्वीके मनमें आया कि–" कभी मेरा शरीर अभी या पीछे सडकर टुकडे हो जाय तोभी में उष्ण जलही पीउगी उष्णजल पीनेसें शरीरका नाश नहीं होता. परंतु पूर्वकृत अशुभ कर्मोदयसेंही शरीरका नाश होता है–या रोग होता है " अैसा शोच करकें खेद करते लगे कि–" मुझको धिक्कार हो ! इस पापिणीने न बोलने योग्य बचन कहा जिससे

ृगत करनी उसमें वीर्योल्लास ल्याना चाहियें वो पहिले तो घुणाक्षर न्यायसें होगा याने किसी जगह किसी वख्त लक्कडेमें जानवरके जरियेसें अक्षर पड जाते हैं वो स्वाभाविकतासे पड जाते है–घुणा नामक लकडेमें एक जातका कीडा होता है उसके योगसें अक्षर जैसा आकार पडता है, जैसें स्वाभाविकतासें वैसे पुन्यका भवितव्यताके योगसें सयोग-मिलाप होता हैं और कुछभी सबबसें जानाआना होनेसें प्रीतिभाव [बाह्यसें] होता है, फिर उनकी अमृत जैसी वानी सुनतेही जो मिथ्यात्वमार्ग दे दवे तो विशेप प्रीतिभाव पैदा होता है, और ऐसी प्रीतिसें शिथिल अतराय हो तो दूर हो जाता हैं और ससारमें वीर्य स्फुराता हो तो वहासें परावर्त्तमान हो जाकर धर्ममें वीर्य स्फुराया जाता है ज्यों ज्यों अभ्याससें कर्म छूट–टूट जाता हैं इस प्रकार वीर्याचारकी वृद्धि होती है–उस मुजब स्वरूप कहा ये पांच आचारमें जिस जिस आचारका लाभातराय टूटा होवे उस आचारके लाभकी प्राप्ति होती है सपूर्ण आचारकी प्राप्ति तो जब क्षायकभावयुक्त सब प्रकारसें अतराय टूट जाय तब होती है और केवलज्ञान होता है उसके पहिले क्षयोपशम भावसें क्रमसें करकें बारह गुणस्थानककी प्राप्ति होती है, और उसमें क्रमसें करकें आचारकी वृद्धि होती है

दान और शील इन दोनुका स्वरुप कहा तपका स्वरूपभी तपाचार में बहुत विवेचनके साथ बतलाया, अब भावका स्वरूप कहता हु भाव पाच प्रकारके हैं–याने उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायकभाव, परिणामिकभाव और उदायकभाव–ये पाच प्रकारके हैं उसके ५३ भेद हैं–वो प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिमें पत्र १३३ में कहे हैं वहासें देख लिजीयें अगर तो भावप्रकरण नामक ग्रथ हैं उसमें गुणस्थानकके अदर विवेचन किया हे वहासें पढ लीजीय यहां तो नाममात्र कर्मग्रथके आधारसें और अनुयोगद्वारजीमेंभी इसका विस्तार है उन सभीपर लक्ष रखकर लिखता हु.—

पहिले उपशम भावसें मिथ्यात्व और अनतानुबधी कषायके दल उदय आये हुवे क्षय करें, उदय न आये हो तो उन कर्मके दल उदीरणा करके उदय ल्याकर क्षय करें, उदीरणासभी उदय न आवे वैसें कर्मका अध्यवसायकी विशुद्धिसें उदय न आ सके वैसे कर रक्खे अब पेस्तरके तीन भावमें कर्मके दल उदय आये क्षय करना, उदीरणा कर उदय ल्याकर क्षय करना, विशुद्धिसें उदय न आ सके वैसे कर डालना, और उपशमाना; ये सब भावका होना कृत्रिम नहीं, परतु स्वाभाविक आत्मा-

की विशुद्धतासें हो जाता है परमात्माजीके बनाये हुवे तो तत्त्वकी श्रद्धा हुइ और जडभावपरसें मोह ज्यों ज्यों उतरता है त्यों त्यों आत्म स्वरूपका ज्ञान होता है, और वो ज्ञानके प्रभावसें आत्माके सुखका आस्वादन होता है और वो सुखका आस्वादन होनेसें धन-कुटुंब-स्त्री-शरीरपरसें मेरेपनेका ममत्वभाव हठ जाता है. शत्रु मित्रपर समदृष्टि हो जाता है, विषयसें उदास रूचि है. ऐसी विशुद्धि होनेसें मिथ्यात्व अनुतानुबंधीका उपशम होता है उससें अतरग शुद्ध होता है आत्म विचारके सिवा दूसरी चीजपर राग नहीं होता आत्मामें रमण करने सिवा दूसरा सुख मनकों नहीं रुचता है, मन बहुत निर्मल हो जाता है. वो उपशमभावके समकितका काल अतर मुहूर्तका है. उपशमभावकाभी चारित्र होता है-वो आठवेसें ग्यारहवे गुणस्थानकमें होता है, उसकाभी काल अंतर्मुहूर्तका है फिर उपशम चारित्र रहेता नहीं, उतनी वेर वीतरागदशा पाता है-राग द्वेष महित होता है ऐसे जो स्वभाविक विशुद्धभाव सो उपशमभाव, वोभी शुद्धभाव भावचक्रमें पाच वेर होता है. ऐसे भावकी प्राप्ति लाभान्तरायकर्मके क्षयोपशमसें होती है.

दूसरा क्षयोपशमभाव-वोभी जो जो कर्म उदय आये हैं वो क्षयकरता है और उदय न आये हो तोभी उदय आने जैसे हो उसकों उदीरणा करके उदय लाकर क्षय करता है जो उदीरणासेंभी उदय न आ सके वैसे है तो उसकों उपशमाता है-उसका नाम क्षयोपशमभाव है. ये क्षयोपशमभाव चार कर्म (ज्ञानवरणी, दर्शनावरणी, मोहनी और अतराय ये चार) का क्षयोपशम होनेसें आत्माकी विशुद्धि होती है जैसें बादलसें सूर्य छा गया-आच्छादित हो गया हो वो ज्यों ज्यों बादल दूर हठते हैं त्यों त्यों प्रकाश प्रकाशमें आये जाता है, वैसें ज्ञानावरणीकर्मके आवरण ज्यों ज्यों हठते जाते हैं त्यों त्यों ज्ञानका प्रकाश विशेप उपयोगरूप होता जाता है और दर्शनावरणी कर्मके आवरण हठनेसें सामान्य उपयोगरूप दर्शनका उपयोग निर्मल होता है मोहनीकर्मकी दो प्रकृति हैं याने दर्शनमोहनी और चारित्रमोहनी. उसमें जब दर्शनमोहनीका क्षयोपशम होवे तब समकित-शुद्ध यथार्थ श्रद्धा होती है, और इसका आवरण लगनेसें विपरीत श्रद्धा होती है, वो आवरण ज्यों ज्यों हठ जाते है त्यों त्यों शुद्ध श्रद्धा होती है वस्तुका निर्णयभी यथार्थ होता है फिर चारित्रमोहनीका क्षयोपशम होनेसें इच्छायें रूकनी जाती है, कषायकी परिणति शात होती है

प्रवृत्तके भाव जाग्रत होते हैं, जो जो वस्तु त्यागता है उस परसें इच्छा हट जाती है, अंश अशसें आत्मभावमें स्थिरता होती है और अंतमें पांचवे गुणस्थानसें लगाकर दशमे गुणस्थान तक क्षयोपशमभावका चारित्र है इसतरह मोहनीकर्मका क्षयोपशम होता है, तब अंश अंशसें वीर्यादिशक्ति (आत्माकी) जाग्रत होती है, उसके प्रभावसें आत्माका वीर्य आत्मधर्म प्रकट करनेके काममें स्फुरायमान होता है. मलीन क्षयोपशमसें संसारी काममें शक्ति स्फुरायमान होती है इसतरह जब कर्मका क्षयोपशमका भाव होता है वो क्षयोपशम शुद्ध होनेसेंही आत्माकी परिणती जाग्रत होती है और वो जाग्रत होनेसें जो जो धर्मकरणी होती है वो भाव सहित होती है पीछे भावके भेद बहुत हैं संयमके असख्यात स्थानक है उनमेंसें जितना जितना क्षयोपशमभाव होवे उतने संयमस्थानक प्रकट होते हैं इसतरह अल्पमात्र क्षयोपशमभावका स्वरूप लिखा है

क्षायकभाव यो तो कर्मका बंध, कर्मका उदय, और कर्मकी सत्ता ये तीन प्रकारसें कर्मका नाश करता है ये क्षायकभावका प्रथम समकित जब प्राप्त होवे तब अनतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, समकितमोहनी, मिश्रमोहनी, मिथ्यात्वमोहनी यह सातों प्रकृतियें सत्ता, उदय और बंधमेंसें नाश पाती हैं, तब क्षायकभावका समकित प्रकट होता है और वो प्रकट हुवे बाद नहीं जाता है परतु ऐसी विशुद्धि तो उपशमभाव, और क्षयोपशमभाव ये दोनुसें विशुद्धि होती है उसबाद जब केवलज्ञान पानेके हो तब वो पुरुष क्षपकश्रेणी याने कर्म खपानेकी–क्षपक करनेकी पंक्ति, एक पीछे दूसरी प्रकृति क्षय करनी, अनुक्रमसें चारों कर्मका नाश करना वो श्रेणी कोइ चौथे-पांचवे-छठे-सातवे-आठवे गुणस्थानकसें करै सो बारहवे गुणस्थानक तक क्षायकभावसें कर्म क्षय करते हुवे चले जाते हैं क्षयोपशमभाव तो चलायमान होता है और पुन कर्म बंधे जाते हैं क्षायकभाव याने जो कर्म क्षय किये वो पीछे पुनः नहीं बंधे जाते हैं, वैसी क्षायकभावकी विशुद्धि है; वास्ते हरएक प्रकारसें क्षायिकभाव होवे तो कल्याण होवे क्षायकभाव चार कर्मका नाश करता है, तब केवलज्ञान प्रकट होता है. अष्टकर्म नाश होवे, तब कर्मरहित होके सिद्धपद पाता है–पुनः संसारमें आनाजाना होताही नही, ऐसे विशुद्धपदकी प्राप्ति होती है इन तीन प्रकारके भावमेंसें जो कोइ भाव प्रकट होवे सो जब ये भाव पानेका लाभांतराय टूट गया हो तब प्रकट

होवे. और जिसकों ये गुण प्रकट होनेका लाभातराय है वहातक उसकों ये भावमेंसें कोइ भाव प्रकट नहीं होवेगा इनमेंसे कोइ भावकी प्राप्ति हुवे बिगर जो जो धर्मकरणी करेगा वो द्रव्यक्रिया है और द्रव्यक्रियाके प्रभावसें पुन्य बधेगा–ससारीसुख पावेगा, मगर मुक्तिमेहेलमें रमण करनेका उससें न हो सकेगा जब क्षायकभाव आवेगा तबी मुक्तिरूप स्त्रीकी मुलाकात करेगा क्षयोपशम क्षायकभावके कारणरूप है, उससेंभी कर्म नाश होवेंगे और उपशमभावसेंभी कर्म क्षय होवेंगे. इन दोनुमेंसें एकभी भावका समकित आनेसें निश्चेयसें मुक्ति तो होवेंगी. और ये भाववालेकों अतमें क्षायकभावभी आनेका तो सही, वास्ते ये भावभी होवे तो कल्याण होवे इन तीनों भावमें समकित पाये बिगर पूर्वकालमें मेरुपर्वत जितने ओघे, मुँहपत्ती धारण की; मगर जीवकों मुक्ति न मिली ये भाव बिगर शुभ भावसेंभी जीव नौ ग्रैवेयक तक जाता है, और पुद्गलीक सुख भुक्तता है वास्ते पुद्गलीक सुख भुक्तनेका भाव आवे, परंतु मुक्तिसुख भुक्तनेका भाव आना दुष्कर है. मुक्तिसुख भुक्तनेरूप भाव आया कि न आया उसकी पक्की परिक्षा तो न हो सके, मगर आत्मिकभाव आनेवालेके लक्षण शास्त्रमें बतलाये हैं वो देखनेसें अनुमान हो सकेगा

ये तीन भाव हैं सो आत्माको निर्मल करनेहारे हैं. चोथा उदयीक भाव है सो कर्मके उदयसें प्राप्त होता है और उसके, एकीस भेद हैं ये भावसें अशुभकर्म बंधे जाते हैं. और आत्मा मलीन हो मिथ्यात्व, अज्ञान, कषाय, लेश्या, अव्रत ये सब होते हैं यो भावका यहा प्रयोजन नहीं है. परिणामिक भाव है वो तो स्वाभाविक है वो सुख या दुःख कुछभी करता नहीं भावकी सपूर्ण प्राप्ति तेरहवे गुणस्थानसें आत्माकों सपूर्ण लाभातरायका क्षय होनेसें होती है ये प्राप्ति न होनेके सबब कि जीव अपने अहकारमें गुलतान हो आत्मिकगुण प्रकट करनेकी इच्छा नहीं करता है, और जो जीव आत्माके गुण प्राप्त करनेमें सन्मुख हैं या हुवे हैं उनकों रोक देता है, उनकी निंदा हीलना करते हैं–ऐसे जीव लाभातरायकर्म बाधते हैं फिर ससारमें धन वगैरः कोइ दातार हो किसीकों दे देता नहीं तो उसकों न देने दे, लेनेवालेके दूषण हो न हो तोभी वो तो दूषणही बतला करके उसकों देनेमें अतराय करे उससें लाभातराय कर्म उपार्जन करे जैसें भिखारी मुट्ठीभर जुवारीके लिये दरबदर फिरता है; मगर लाभातरायसें मिल नहीं सकता. वीसी तरह जो मनुष्य ऐसे मनुष्यकों देनेमें अंतराय करवाते हैं उनकों भीख मागनेसेंभी लाभ न मिलेगा वास्ते हरएक प्रकारसें

कोइभी जीव दुःखी हो तो उसकों सुखी करनेकी इच्छा रखनी, और अपनी जितनी ताकत हो उस मुजब उसकों दे करकें संतोष देना पुन दूसरे अपने मिलापीकों कहनेसें उसका दुःख दूर होता होवे तो उसकों कह करकें कुछ दिलवा करकें उसका दुःख दूर करना फिर सुपात्र पुरुषके अंदर उत्साह दान देनेके लिये रखना और वैसेकों अवश्य दान देना, जिस्सें लाभ मिलना बहुत सुलभ होता है. एककों राजा और एककों रंक देखते हैं, उस तफावतका सबब यही है कि उसने पूर्वभवमें सुपात्रकों देखकें दान दिये हैं उससे राज्यपद मिला है और जिसने पिछले भवमें कुछ सुपात्रमें न दिया हो और लाभांतरायकर्म बांधा हो उससें उन्कों कुछभी न मिलता है. कितनीक दफे देनेवालेका देनेका भाव हुवा है, तोभी लेनेवालेनें लाभांतरायकर्म बांधा है उसके प्रभावसें लेनेमें विघ्न आते हैं, और लाभ नहीं मिल सकता है ये लाभांतरायकर्मका फल है वास्ते ज्यौं बन सके त्यौं लाभांतराय टूट जावे वैसा करना, मगर नया न बंधा जाय उसका खूब खियाल रखना

अब तीसरे भोगांतरायका स्वरूप लिखता हु'—भोगांतरायकर्म जीव अनादिसें बांधता हुवाही आया है, उसके प्रभावसें आत्माके स्वभाव रहना वो रूप भोग नहीं भुक्त सकता है वो भोगांतरायकर्म बारहवे गुणस्थानके अंतमेंही क्षय होता है, तब सदाकाल आत्माकेही भोगकों भुक्तता है, उसका सर्वथा प्रभावसें भोगांतरायका त्याग हो जाता है क्यौं कि विभाव वासना नहीं रहती यहापर किसीसें शंका हो आवेगी कि—"केवलज्ञानी महाराज समोवसरणमें विराजमान होते हैं, देवकृत वगैरः अतिशय प्राप्त होते हैं, आहार करते हैं, सुंदर हवा आदि आती है इत्यादि भोग है या क्या है ?" उसके संबंधमें ऐसा समझना कि—तीर्थंकरमहाराजजीने तीर्थंकरनामकर्म उपार्जन किया है, उस पुन्यके प्रभावसें वस्तुसी वस्तुयेंकी प्राप्ति हुइ है या होती है; परंतु उसमें भगवंतजीकों न राग न द्वेष है ज्ञानसें जानते है कि शुभाशुभ कर्मका उदय है वो उदयके प्रभावसें होता है, वो मात्र कर्म भुक्त लेने रूप है उन वस्तुओंमें लेशमात्रभी राग नहीं. फकत चार कर्म रहे हैं वो भुक्तकर निर्जराते है; वास्ते तीर्थंकरमहाराजजीका या केवलीजीका जो भोग है वो भोग नहीं जैसा है और छद्मस्थ जीवकों जो जो पुद्गलके भोग करनेके हैं वो राग द्वेष सहित है उसमें उन्होंको

कर्मबंधका कारण रहा है, उससें आत्मिक भोग भुक्त नहीं सकते आत्मिक भाग भुक्तनेके अतरायकर्मका उदयभी दूर नहीं हुवा वहांतक आत्मिक भोग नहीं भुक्त सकते हैं. संसारी जीवकों रात और दिन भोगकी इच्छायें इतनी सारी बढ गइ हैं कि–जो जो पदार्थ जगतमें हैं ते रूपी देखते हैं या सुनते हैं उसकी इच्छा होती है; परतु उसकी प्राप्तिका अतरायकर्म बांधा है उससें नहीं मिल सकते हैं और जिनके अतरायकर्मका क्षयोपशम हुवा है उनकों वो सब मिलते हैं और उसका उपभोगभी लेते हैं मगर जो वे उसपर बहुत राग रक्खे तो या बहुत रागसें भुक्तें तो उससें पुनः नया भोगातराय कर्म बाधते हैं, उसीके लिये फिर मिलनेमें हरकत आवेगी किस तरह आवेगी ? भोगकी वस्तु हाजिर है, मगर कृपणता आनेसें वो वस्तुका भोग नही कर सकता, या तो शोक आ पडेगा, या रोग होगा और वही चीजका उपयोग न करनेका वैद्य फुरमायगा जिससें उपयोग न कर सकेगा या हरकोइ प्रकारका कारण आ जायगा, जिससें इच्छा है, वस्तु है, मगर भोगांतरायकर्मके उदयसें भुक्त न कर सकेगा. सम्यक् ज्ञानीपुरुष हैं वे तो ऐसे अंतराय आनेसें शोचते हैं कि पूर्वभवमें भोगातरायकर्म बाधा है वो उदय आया है, जो समभावसें भुक्तुंगा तो कर्म न बधेगा. ऐसी भावना प्रकट हुइ है उसके प्रभावसें वे तो अतरायकर्मकी निर्जरा करते हैं. नये नहीं बाधते और जिनकी ऐसी दशा जाग्रत न हुइ है वे जीव विचारे दूसरोंको भोगका उपभोग करते देखकर अनेक प्रकारके कर्म बाधते हैं ये अज्ञानताके फल हैं इस भवमें भोग मिलते नहीं और फिर भोग भुक्तनेके विकल्प करकें नये कर्म बाधते है उसकों आते भवमेंभी भोग न मिलेंगे ऐसे जीवका मनुष्यभव व्यर्थ जाता है. वर्त्तमान और आगत ये दोनु भव बिगडते है विकल्प करनेसें, किसीकी अदेखाइ करनेसें कुछ भोग तो नहीं मिलते हैं, और नाहक मात्र कर्म बाधकर दुर्गतिमें जानेका मोका हाथ लगता है देखियें–रामचद्रजी बल्देव और लक्ष्मणजी वासुदेव जैसेकोंभी भोगातरायसें करकें वनवासमें रहना पडा, पांडवोंकोंभी वनवास भुक्तना पडा और ब्रह्मदत्त चक्रवर्तिकोंभी जहांतक भोगांतराय था वहातक भागते हुवे फिरना पडा, वास्ते कर्म किसीकों छोडता नहीं जो जो कर्म उदय आया वो जीवकों भुक्ते बिगर छुटकाही नहीं होता समभावसेंभी भुक्तना और विकल्प करकेंभी भुक्तना, तो समभावसें भुक्ता जायगा तो नये कर्म न बधे जाय फिर

समभावके जोरसें शिथिल अंतरायकर्म होवेंगा तो सहजहीसें नष्ट हो जायगा तो इस भवमेंभी भोग प्राप्त होवेंगे और आते भवमेंभी सहजहीसें भोग मिल सकेंगे और ज्यों ज्यों विशुद्धि होवेगी त्यों त्यों बाहर जडके भोगकी इच्छा हट जायगी और अपने आत्मस्वभाविक भोगकी इच्छा हावेगी और उसके साधनभी करेगा-ससार छोडकर सयम लेवेगा उसमेंभी तप सयम अच्छी तरहसें पालन करकें आत्मज्ञान मिला, आत्मध्यानमें प्रवर्त्तकर शुकल धर्म ध्यान पावेगा उसकों पा करकें सर्वथा अंतरायकर्म नाशकर्म केवलज्ञान पावेगा-वो निजगुण भोगी होवेगा तभी आत्म कल्याण होवेगा

उपभोगांतराय सो-जो जो वस्तु वार वार भुक्तनेमें आवे वो उपभोग कहा जाता है याने मकान, दुकान, चोपाइ, पटले, चोकी, कोंच, कुरसी, गद्दी, तकिये, तलाइ, पहनने ओढनेके वस्त्र, सुने चांदीके जेवर, हीरे, मानक, मोती, स्त्री वगैरः सब वस्तुकी मालिमें अंतरायकर्म बांधा होवे तो वो उदय आवे तब ये तमाम उपभोगके पदार्थ न मिल सकें. ये जीव अनादिके उपभोगांतरायकर्म बांधता है और भुक्तता है. जब जीव शुभ काम करता है, शुद्ध अध्यवसाय होते हैं, तब कुछ अंतरायकर्मका क्षयोपशम होता है जब उतनी वस्तु मिलती है धर्मकी वर्त्तना हुवे सिवा कर्म नहीं टूटता है अंतरायकर्म काहेसें पुन. बधा जाता है? उसके खुलासेमें यही है कि अधर्मप्रवर्त्तिसें उस अधर्ममेंभी मुख्य कोइ जीव उपभोगकी वस्तु किसीकों देता हो वो न देवे वैसी वातें करे या उसकों समझावे कि 'तू मत दे' या देनेवालेकी हंसि-मश्करी-दिल्लगी करे, या निंदा करे, या उपभोग करता हो तो उसकों कोइ दूसरा काम सुपर्द करकें वो काममें भंग करे-ऐसे कारणोंसे करनेसें या हिंसादिक काम करनेसें जिस जिस जीवके प्राण गत हुवे उसकों इस भव संबंधी उपभोगांतराय हुवा इस तरहके काम करनेसें जीव उपभोगांतरायकर्म बांधता है वास्ते प्रथम उपभोगांतराय न बधा जाय वैसी जीवकों प्रवर्त्तना करनी. और पीछे पूर्वके बंधे हुवे कर्मका क्षय होवे वैसा उद्यम करना अब वो उद्यम क्या करना सो बतलाता हु. पूर्वकालमें श्री वीतरागजीनें जो जो उद्यम किया है और जो आगमोंमें बतलाया है सोही करना यदि बन सके तो सयम लेना, वो न बन सके तो श्रावकधर्म अंगीकार करना, वो न बन सके तो सम्यक्त्व अंगीकार करना. और वोभी न बन

सके तो मार्गानुसारीपना शुरु करना. जितना धर्म अंगीकार किया जावेगा उतनाही कर्म टूटेगा.

उपभोग दो प्रकारका है याने पुद्गलीक और आत्मिक-इन दोनुका अंतराय है, उनमें पुद्गलीक मिलने तो सहल हैं; मगर आत्मिक मिलने बडे दुष्कर हैं; और उसके साधनभी मिलने बडे मुश्किल हैं. जबतक ससारके उपभोगकी लालसा है वहांतक आत्मिक भोग नहीं मिलनेके है,' वास्ते आत्मिक धर्म क्या है वो समझकरकें जब सांसारिक उपभोगकी इच्छा साफ दूर हो जायगी तब आत्मिक भोगकी इच्छा हो आवेगी, और प्रकट करनेकाभी दिल होवेगा. उसका उद्यम-तप सयम आदिका ऐसा है कि-इच्छा तो आत्मभोगकी है; मगर ससारमें रहे है वहांतक पुद्गलीक और आत्मिक ये दोनु उपभोग मिलेंगे और पुद्गलीक भोगकी इच्छासें ये दोनु न मिल सकेंगे-सिर्फ पुद्गलीकही मिल सकेंगे, और आत्मिक उपभोगका अतराय होवेगा. अपना आत्मिकसुख छोडकर जडसुखकी इच्छा करे यही विपरीत है. फिर सासारिक उपभोग बाधकरकें ज्यों ज्यों आनंदित होवे त्यों त्यों आत्मिक और पुद्गलीक ये दोनु उपभोगका अतराय होवे, वास्ते ससारी उपभोगमें आत्मार्थी जीव आनदित नहीं होते हैं, और वो भोगकी इच्छाभी नहीं करते हैं पुद्गलीक सुखकों तो जबसें जीव समकित पाता है तबसें सुखरूप नहीं मानता है पूर्वकी पुण्य प्रकृतिसें मिला है वो समभावसें भुक्त लेता है; मगर उसमें राग नहीं धारण करसें-इसतरहसें श्री तीर्थंकरजी वगैरः चलकरकें आत्मार्थिकों चलनेकी आज्ञा फुरमा गये हैं, उस मुजब चलना कि जिससें प्रथम उपभोगांतरायका क्षयोपशम होवे और पीछे विशेष विशुद्धिसें क्षय होवे और केवलज्ञानादिक अपनी आत्मिक ऋद्धि प्रकट होवे उसकेही उपभोग हरहमेशां अवस्थित होवे उपभोगांतरायकर्म सत्ता, बध, उदयसें क्षय होवे तब सहज स्वभाविक उपभोग होवे जिस्का वर्णन करनेमें कोइ शक्तिमान् नहीं हो सके.

वीर्यांतरायकर्म यही है कि जिसके प्रभावसें जीवकी अनंती वीर्यशक्ति है-वो आच्छादित हो गइ है उससें, जीव आत्मवीर्य स्फुरा नहीं सकता. वीर्यांतरायकर्मके क्षयोपशमसें बालवीर्य और बालपडितवीर्य ये दोनु वीर्य प्रकटते हैं. उसमें बालवीर्य प्रकटता है उसके प्रभावसें संसारमें प्रवर्त्तनेकी शक्ति आती है-संसारी काम कर सकता है ये वीर्यका क्षयोपशमभी विचित्र प्रकारसें है-जैसें कि कोइ लडनेमें वीर्य

करीके केवलज्ञान, केवलदर्शन प्रकट करता है, उनको वीर्यातराय कर्म सत्ता, बध, उदयसेंभी न रह सकता है निजस्वभावमेंही अनत वीर्य गुण है सो प्रकट होता है भगवतश्रीने इसतरह सर्वथा वीर्यांतराय कर्मका क्षय करकें आत्मिकगुण प्रकट किये और मेरा आत्मा तो वीर्यातराय सहितही रह गया, वास्ते हे चेतन ! जिस तरह भगवंतजीने वीर्यातराय क्षय किया वीसी तरह क्षय करनेका उन्होंने बतलाया है इस लिये उस मुजब मेंभी चलु ऐसी भावना ल्याकरकें आत्मगुण प्रकट करनेके कारण [ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप] उत्साह सह मिलाना उत्साहसें धर्मकरणी सफल होती है और वीर्यके आवरण क्षय होते हैं-वीर्य स्फुरायमान होतो है. जैसें मुनिमहाराज उत्साहसें तप सयमादिक पालन करते है, तो उसके प्रभावसें अठाइस लब्धियें उत्पन्न होती हैं, वो वीर्यातरायके क्षयोपशमसें होती हैं. ऐसा योगशास्त्रमें हेमचद्राचार्यजीने कहा है और वैसेही प्रवचन सारोद्धारके बालावबोधमें पत्र ५३९ के अदर अट्ठाइस लब्धियें वीर्यके क्षयोपशमसें होती हैं वो बतलाइ है. उसी तरह यहापरभी बतलाता हु.—

प्रथम-आमर्षौषधि लब्धिः-लब्धि शब्दसें शक्ति समझनी. ये लब्धि जिस मुनिको प्रकट होती है, उसके प्रभावसें वो मुनी रोगीको हस्त स्पर्श करै कि फौरन रोग नाश हो जावै-सर्व रोगोंकी शांति होवै

दूसरी-विप्रौषधि लब्धि-उसके प्रभावसे मुनिमहाराजजीके मलमूत्रसेंभी रोगीके रोगोंकी शांति होती है-ये तपके प्रभावकी शक्ति है

तीसरी-खेलौषधि लब्धि-उसके प्रभावमें मुनीके श्लेष्मसेंभी रोगीके रोग जाते है

चौथी-जल्लौषधि लब्धि-वो जिन मुनीको उत्पन्न हुइ है उसके प्रभावसें दातोंका, कानोंका, नासिकाका, नेत्रका, जीभका और शरीरका जो मेल होता है वो खुशबूदार होवे और उसी मैलसें रोगीके रोग जावे.

पांचवी सर्वौषधि लब्धि-जिस लब्धिके प्रभावसे लब्धिवतके स्पर्शित जलसें समस्त रोग शांत होवे. लब्धिवतको स्पर्श किया हुवा पवन जिसके शरीरको स्पर्श करे उसकेभी रोग मिट जावे, और उसी पवनसें करकें विष सयुक्त अन्न, तथा विषसें करकें मूर्छित हुवे प्राणी निर्विष हो जाते है. उनके दर्शनसें या वचन सुननेसे रोग, विष दूर हो निरामय होते है ऐसी प्रबल आत्माकी वीर्यशक्ति तपके जो-रसें होती है

छट्ठी–संभिन्नश्रोत लब्धि–जो लब्धिवतको पाचों इंद्रियोंके अलग अलग विषय है, तथापि लब्धिके प्रभावसें एक इंद्रिसें करके पाचों इंद्रियोंका विषय ग्रहण कर जान सके, जैसें कि आख देखनेका काम करती है, मगर दूसरी चार इंद्रियोंके काम नहीं कर सकती, परतु उस लब्धिवाला आखसेंही पांचों इंद्रियों काम कर सके–याने हरकोइ इंद्रिसें हरकिसी इंद्रिका काम बजा लेवे पुन चक्रवर्तीकी सेनामें सोरगुल मच रहा हो उसमेंसें एकही साथ जो जो जातिका शब्द होता हो वो कुल अलग अलग जान ले सके

सातवी–अवधिज्ञान लब्धि–इस लब्धिके प्रभावसें इंद्रियोंके वल सिवा रूपी पदार्थका ज्ञान आत्मासें कर सकते हैं–नजरसें देखनेकी जरूरत नहीं

आठवी–अजुमती मन पर्यव लब्धि–उस लब्धिसें अढाइ द्वीपमें न्यून सज्ञी पचेंद्रिके मनमें चितवन किये गये भावकों सामान्यतास जान लेवे, मगर घट चितवन किये गये द्रव्य–क्षेत्र–काल–भावसें विशेष करके न जान सके

नौमी–विपुलमती मन पर्यव ज्ञान लब्धि–ये लब्धिवाला अढाइ द्वीपमें सज्ञीके मनमें चितवन किये हुवे द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव–समस्त जान सके और उसी भवमें मुक्ति पावे

दशवी चारण लब्धि–जो विद्याचारण, जघाचारण लब्धि–उसके प्रभावसें आकाशमार्गमें जा सके उसमें विद्याचारण लब्धि विद्याके प्रभाव–बलसें प्राप्त होती है उस लब्धिवतको धीरे धीरे लब्धि चढती है, उसे पहिले अपने स्थानसें उडकर मानुषोत्तर पर्वतपर जावे और दूसरी वरत उडकर आठवे नदीश्वर द्वीपको जावे और वहासें पीछे लौटनेके वरत एकही सपाटे अपने, स्थानपर आ सके और जघाचारण लब्धि, तपस्या तथा शुद्ध चारित्र पालनेसें पैदा होती है–इस लब्धिवतको अव्वलसेंही शक्ति चढती है, वापिस लौटनेके वरत कम हो जाती है पहिले उतपातसें तेरहवे रूचकद्वीपमें जाता है और पीछे लौटते शक्ति कम हो जानेसें पहिले उतपातसें नदीश्वर द्वीप तक जाता है और वहांपर विश्राम लेकर दूसरे शपाटे अपने स्थानपर आसक्ता है फिर ये लब्धिवाले मुनिराज प्रतिमाजीको वन्दना करते हैं–ऐसी बावत भगवतीजीमें है

ग्यारहवी-आशी विष लब्धि-उस लब्धिके प्रभावसें शाप देवे उसी मुजब अमल होवे

बारहवी-केवलज्ञान लब्धि-उनमें समस्त भाव जान सके

तेरहवी-गणधर लब्धि-श्री तीर्थंकरजी त्रीपदी फरमावे उससें द्वादशांगीका ज्ञान हो जावे और भगवानजीकी गद्दीपर वेही बिराजमान होवे.

चौदहवी-पूर्वधर लब्धि-उसके प्रभावसें पूर्वधरकी पदवी पावे

पंद्रहवी-तीर्थंकर लब्धि-उसके प्रभावसें तीर्थंकर पदवी पावे

सोलहवी-चक्रवर्तीनी लब्धि-उसके प्रभावसें छ. खंडका स्वामी होवे.

सत्तरहवी-बलदेव लब्धि-उसके प्रभावसें बल्देव होवे.

अठारवी-वासुदेव लब्धि-उसके प्रभावसें तीन खंडका राज्य करे

उन्नीसवी-खीराश्रवलब्धि-उस लब्धिके प्रभावसे बोला गया वचन दूधके मुवाफिक मीठा लगे और मध्वाश्रव लब्धिके प्रभावसें मिसरीके समान वचन मीठे लगे

बीसवी-कोष्ट बुद्धि लब्धि-उसके प्रभावसे जो जो परोपदेशके लिये सूत्र अर्थ धारण किये हो उसकी विस्मृति न होवे बिगर याद कियेभी याद रहवे.

इक्कीसवी-पदानुसारिणी लब्धि-उसके प्रभावसें श्लोकका पीछेका या पेस्तरका पद जाननेमें आवे तो दूसरे तीन पदोंका ज्ञान हो जावे जेसें अभयकुमार प्रधान भगवतजीकों वंदन करकें वापिस आते थे और एक विद्याधर आकाशमें चढकर पड जानाथा, सो देखकर अभयकुमारने पूंछा कि "ऐसा क्यों होता है?" विद्याधरने जवाब दिया-"विद्याका एक पद भूल गया हुं याद नहीं आता-इससें नहीं उड सकता हुं" अभयकुमारने कहा-"तुम विद्याका पाठ बोल बतलाओ." विद्याधर पाठ बोला कि कम रहताथा सोही पद आपने पूर्ण कर दिया. आप पहिले कुछभी पढे हुवेभी न थे, तोभी पद पूर्ण इस लब्धिके जरियेसें किया, और विद्याधर आकाशमें चला गया

बाइसवी-बीजबुद्धि लब्धि-इसके प्रभावसें-जेसें एक बीज बोया जाता है और बहुत कण पैदा होते हैं, वैसें ज्ञानावरणीकर्मके क्षयोपशमसें एक अर्थरूप बीजकों सुन लेनेसें बहुतसे अर्थोका ज्ञान हो जाय जेसे गणधरमहाराजकों भगवतजीने त्रिपदी कह दी उसमें उत्पात,-व्यय-ध्रुव ये तीन पद सुनतेही सारी द्वादशांगीका ज्ञान हुवा,-

वैसें ज्ञान होवै पदानुसारिणीमें एक पद सुनेस दूसरे पदोंका और बीजबुद्धिवालेकों एक पदार्थका ज्ञान होनेसें बहुतसे पदार्थोंका ज्ञान हों सके यह तफावत है

तेइसवी–तेजोलेश्या लब्धि–उसके प्रभावसें किसी जीवके उपर खेद आ जाय और तेजोलेश्या छोडे तो स्हामनेवाले जीवकों जलाकर खाक कर दवै

चाइसवी–आहारक लब्धि–उसके प्रभावसें आहारक शरीर मुढे हाथका ( पौने हाथका ? ) शरीर करकें श्री सीमंधिरस्वामीके पास या विचरते हुवे तीर्थंकरजीके पास भेज सकै. और वो इतनी ताकीदीसें जवाब ला सके कि व्याख्यान करते हो उसमें संदेह पैदा हो तो वो शरीर भगवानजीकों खुलासा पूँछकर फौरन आकर कह दे शंका निवृत्तन करै

पचीशवी–शीतलेश्या लब्धि–उसके प्रभावसें किसीने तेजोलेश्या भेज दी हो तो उसपर ( शीतलेश्या ) छोडनेसें शीतलता कर होवै और तेजोलेश्या हत हो जावै.

छाइसवी–वैक्रिय लब्धि–उसके प्रभावसें आपका शरीर छोटा वडा जैसा करना हो वैसा कर सकै देवके भवमें ये लब्धि भव प्रत्ययी होवै, और मुनिकों तप, चारित्रके प्रभावसें होती है

सताइसवी–अक्षिण माहानसी लब्धि–उनके प्रतापसें अल्प वस्तु हो जिसमें एक मनुष्य भोजन कर तृप्त हो सकै उतनेही पदार्थमें हजारोंकों जिमा सके–जैसें गोतमस्वामीजीने एक पडघेभर खीरमें पद्रहसो तापसोंकों जिमाये

अठ्ठाइवी–पुलाक लब्धि–उसके जरियेसें कोइ संघका कार्य होवै तो चक्रवर्तीकों भी चूर्ण कर दवै

मुख्यतासें ये अठ्ठाइसें लब्धि कही गइ हैं, मगर तपके प्रभावसें औरभी लब्धियें प्राप्त होती हैं–याने प्रकृष्ट ज्ञानावर्णी वीर्यांतरायके क्षयोपशमसें करकें समस्त श्रुत समूह अंत मुहूर्तमें अवगाह लेवै उसके अंदर जिनका मन हो उसकों मनोबल लब्धि कही जावे इसी तरह अंतरमुहूर्त्तमें सर्व श्रुतका विचार करनेकी शक्तिसें करकें जो सहित होवै और पद वचन अलंकार सहित रचनेको उंचे स्वरसें निरंतर बोलता रहवे तथापि स्वर न बैठे वो वचनबल लब्धि कही जावे फिर वीर्यांतरायके क्षयोपशमसें प्रकट हुवा बल याने जेसें बाहुबलजी वर्ष दिन तक काउस्सगमें रहे तोभी शक्ति कम न हुइ–शरीर थक न गया, एसी प्रकारसें ये लब्धिवान कायबल

लब्धिके प्रभावसें थक न जाय वो कायबल लब्धि कहा जावे पुन' बहुत कर्मके क्ष-योपशमसें प्रज्ञाका प्रकर्ष होवे जिस्सें चौदह पूर्व पढे विगरभी कठीन विचारोंके अदर निपुण बुद्धि होवे और उसकों यथार्थ विचार होवे इत्यादि बहुत प्रकारकी लब्धियें है, और हेमचद्राचार्यजीने स्वकृत योगशास्त्रमें दर्शाय दी है. इस समयमें पाश्चिमात्य प्रदेश-इग्लेंड-अमेरीका-जर्मनीमे बहुतसे यूरोपियन विद्वान शोधक हेमचंद्राचार्यजी कृत योगशास्त्र पढते हैं और उस शास्त्रके कर्त्ताकों सर्वज्ञका विरुद देते है येभी ज्ञानका क्षयोपशम है। एक समय हेमचद्राचार्यजी राजसभामें तीन पटले धर करके उसपर विराजमान हो करकें धर्मदेशना देते थे और दरम्यान कुमारपालराजर्षिका पधारना हुवा तब तीन पटलेकों दूर हटा देकर अद्धर बैठ धर्मोपदेश देना जारी रक्खा-येभी योगसाधनकी शक्ति है ऐसी अनेक प्रकारकी शक्तियें वीर्यातरायके क्षयोपशमसें होती हैं, और वे शक्तियें आत्महितके कार्यमें उपयोगमें लेवें उपकारार्थ या शासनो-न्नतिके अर्थ स्फुराते है पूर्ण वीर्यातरायका क्षय होता है. तब पूर्ण वीर्य प्रकटता है उ-सकों केवलज्ञान प्रकटता है, जिस्सें करकें तमाम लोकके भाव एक समयमें जानते हैं. अतीत-अनागत-वर्त्तमानके भावभी जानते हैं ऐसी आत्माकी पूर्ण शक्ति जाग्रत होती है. वास्ते हरएक प्रकारसें वीर्यातिरायका क्षयोपशम या क्षय होवे वैसा उद्यम करना. वीर्यकी रीति ऐसी है कि अभ्यास करने करनेसें वीर्य स्फुरायमान होता है इस लिये वीर्य स्फुरानेका हरहमेशां अभ्यास करना अेक मनुष्यके वहां धेनु विहाद-वछडा दिया उसी वछडेकों उसी रोज उठाकर अेक वक्त मजलेपर ले गया याने इसी तरह उस वछडेकों उठा उठाकर माल-मजलेपर चड जाने लगा, और इसी अभ्याससें वो वछडा बडा होकर बईल हो गया तोभी उसकों उठाकरकें मजलेपर चड जाताथा. इसी तरहसें अभ्यास करनेसे मनोवळ-वचनवळ-कायवळ बढता है तप, सयम और ज्ञानका हमेशा अभ्यास करना कि उससें वीर्यातरायका क्षयोपशम होवेगा और वीर्य वृद्धि पावेगा यदि जीव सासारिक कार्यमें वीर्य स्फुरायगा और धर्मके कार्यमें प्रमाद करेगा तो नया वीर्यातरायकर्म बांधेगा और इस भवमें जितना वीर्य-शक्ति है उतनाभी आते भवमें न मिल सकेगा और अनादिकालका वीर्यातराय बधा हुवा है उसीसेंही आत्मगुण प्रकट नहीं होते हैं, वो बडा दोष है.

इस तरह पाच प्रकारके अतरायकर्म भगवतजीने क्षय करके आपके आत्मगुण प्रकट किये हैं और अपने जीवो वैसा उद्यम न किया उपेंत आत्मिक सपत्ति

रूलता है-और जन्म मरणके दु'ख भुक्तता है उन दु खसें मुक्त होनेके वास्ते भगवन-जीके हुकम मुजब चलना कि जिस्सें आत्माके गुण प्रकट होवे-इस तरह पाच दूषण बतलाये

छट्ठा हास्य नामक दूषण हैं, उस दोषसेंभी भगवान्‌श्री रहित हैं और ससारी जीव इस दूषणसें करकें सहित हैं हास्य दोषसें बनसें अनादिका जीव ससारमें भटकता है और जब तक हास्यसें मुक्त न होगा तब तक आत्माका काम न होवगा हास्यसें ससारमेंभी कितनेक है वो सब मनुष्य जानतेही है, तोभी जाग्रत करनेके लिये लिखता हु कि-कितनीक दफे हास्य-दिल्लगी करनेसें या हसी करनेसे-हसनेसें आपके जाबडे दु.खने लगते हैं, हसीकों रोकना चाहें तो नहीं रूकी जाती है फिर जिसकी हसी-मस्करी करें वो मनुष्य उस वक्त न बोले याने मुँहपर साफ साफ न कह दे मगर अत करणमें उसकों कितना दु ख होता है! जो जो मनुष्य आप विचार करें कि कोइ मेरी हसी करता है उस वक्त मुझकों अतरगमें कितना दु ख होता है? इसी तरह स्हामनेवालेकोंभी दु ख होता होगा, वास्ते दूसरे जीवका दु ख-कलेश देना उसमें जियादे बुराइ कौनसी है? फिर वो मनुष्य जोरदार हो तो फिसाद खडा होकर मारामारी या गालागाली होवे उससें नया वेर बधा जाय-य प्रत्यक्ष दु ख है फिर जितनी वक्त हास्यमें प्रवर्तें उतनी वक्त सात आठ कर्मोका बध होवे सो उदय आवे तब उन्होंके दु ख भुक्तने पडते है जैसें कि-"कुमारपाल राजेंद्रकी भगिनी-बेण अपने पतिके साथ चोपटबाजी खेलतीथी उसमें सोगठी मारनेके वक्त भिन्नर्मीपतिने कहा कि-'मार कुमारपालके मुड-साधुकों ' यह शुकन सुनतेही उसकी धर्मपत्नि नाराज हो गइ और उसी वक्त रिसाकर भाइके घर चल गइ और यो हकीकत कुमारपालकों कह सुनाइ, उससें अपने साधु मुनीराजजीकी हासी-हीलना करी जानकर बडा गुस्सा आया, ओर पण-किया कि-'जिस जबानसें मेरे गुरुकी हासी की है उसी जीभकों नो चलु जब उसका छोडू ' ऐसा निश्चय करकें बेहोइके साथ युद्ध किया ओर उसकों पराजित किया अतमें प्रधानोंने कुमारपाल महाराजाकों युक्तिसे-दयाभावसें समझाकर जीभ नोंच लेनेका मोकूफ करवा कि पहननेके जामेपर जीभकी आकृति पिछल भागपर रखनेका ठहराव करवाया और वैसाही करनेसें उसकों छोड दिया " दिखीए हासीके कैसें फल है!

और इस सिवाभी हासी-दिल्लगीसें बहुत नुकसान है. जिसकों ठट्ठाबाजी-दिल्लगी-खोरी-हासी करनेकी आदत होती है उसकों लोगभी दिल्लगीबाज-मश्करा कहते है. फिर आत्मस्वरूपका विचार करनेसें हासी आत्मगुणसें विपरीत प्रवृत्ति है ये प्रवृत्तिमें वर्त्तनेसें आत्मा मलीन होता है. पुनः आत्मा निर्मल करनेके कारण व्रतादिकमेंभी इस्सें अनर्थ दंड व्रतके दूषण लगते हैं; वास्ते ज्यों बन सके त्यौं आत्मा निर्मल करनेका इरादा रखनेवालोंका हासीसें मुक्त-दूर रहना कि जिससें आत्म निर्मल होनेका उद्यम हावे सब हास्य मोहनीका क्षय भगवतजीने किया है उस दशाकों पा सकें वैसा उद्यम करना

छट्ठा रति नामक दूषण याने हरएक पुद्गलीक पदार्थके अंदर जो अनुकूल मिले उसमें राजी होना प्रतिकूल मिले उसमें दिलगीर होना ऐसा जडकी संगतिसें जीवकों अनादिसें अभ्यास है, उसके जोरसें जीव उसी तरह वर्त्तन रखता है और कर्मबंधन करता है और उसी कर्मबंधनसें अनादिका जीव जन्ममरणके दुःख भुक्तता है जो जो पदार्थकों जीव अनुकूल मानता है यही अज्ञानता है, कारण कि जो जो जडपदार्थ है सो विनाशी है और आत्मा अविनाशी है-वो आत्मा और जड दोनु भिन्न पदार्थ हुवे, तो भिन्न पदार्थकों अपना मान लेना यही मूढता है फिर जो वस्तु देखकर रति-आनंद करे छे वो वस्तु हरहमेशा कायम रहनेकी नहीं. कितनेक खानेके पदार्थ है वै खानेमें रति करता है, मगर वही पदार्थसें पुद्गलकों उपाधि होती है और रोग होते हैं फिर कर्मबंधन होवे सो तो अलग इसी बजरसें गरेना-आभूषण पहन करभी खुशी होना; मगर शरीरकों भार लगता है उसका विचार नहीं, और जोखम संभालना पडे या जीका जोखम होनेका मोका हाथ लगे वौ तो फिर अलग कुटुंबके संयोगसें राजी होता है, मगर वो मनुष्यकी मरजीसें विरूद्ध कुछ वर्त्तन हुवा तो वोही शत्रुपना बतलावेगा, तो ऐसे अनित्य स्नेहसें राजी होना वो मूढता नहीं तो फिर क्या है? धन है उसकों देखकर राजी होता है, परंतु ये धन कितने समय तक कायम रहवेगा, उसका लक्ष देगा तो रति नहीं होवेगा, क्यौ कि अपना धन कितनी वक्त आया और चला गया कभी किसी मनुष्यका अभी न गया हो तो दूसरे कितनोंका गया नजर आयगा, वास्ते नाशवंत है ये स्वभावपर लक्ष देना चाहिये. अस्थिर पदार्थपर राजी होवेगा और वो जब नष्ट हो जायगा तब

दिलगीर होनाही पडेगा मगर धनकी सचलतापर लक्ष देवैगा तो धन आनेसें राजी और जानेसें दिलगीर न होवैगा धनकों अपन छोडकर जायेंगे–या धन अपनकों छोडकर चला जावैगा–ये धनका स्वभाव है इस लिये जो ज्ञानी हैं वै तो धनका त्याग करकें सयम लेते हैं ओर धन कुटुबादि पदार्थकों जलाजलि देते हे–शरीरमें रहते हैं, परतु शरीरकों मेरा नहीं जानते हैं, उससें शरीरके सुख दु.खमें रति अरति नहीं करते हैं एक अपने आत्मतत्त्वमें रमण कर रति मोहनीका नाश करकें स्वात्मगुण प्रकट करते हैं और क्रमश. सिद्ध सुख भुक्तते हैं आत्मार्थीकोंभी इसी तरह रति मोहनीका नाश करना यही कल्याणकारी है

सातवा अरति मोहनी दूपण है वोभी रतिके मुजबही है, वास्ते इस जगहपर अलग विस्तार करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं हैं जैसें रतिके लिये है वैसेंही अरतिके लिये समझकर अरतिकाभी त्याग करना जो जो अरतिके कारण है वो जड पदार्थ हैं और पूर्व भवमें विषय कपाय और अरतिमें वर्त्तनेसेंही कर्म बधे है उसीसें अरतिके कारण उत्पन्न हुवे हैं ऐसें समझना ज्ञानीपुरुष तो कर्मका स्वरूप जान गये हैं उससें समझते है कि–'पूर्व भवमें अशुभ कर्म बध है उसके लिये अरतिके कारण आ मिले हैं फिर विकल्प करुगा तो इससेंभी कठीन कर्मबध जायेंगे और अरति पैदा होवैगी जैसें किसीका कर्जेह होवै, वो न देवै तो बेशक लहेनदार फारियाद करैगा, तो फिर विशेष दु.ख भुक्तना पडैगा वास्ते जो अशाता वगैर. दु खके कारण उत्पन्न हुवे हैं वो समभावसें भुक्त लेना, ऐसा शोच करकें समभावमें रहते हैं, और उससें विशेष विशुद्धि होती है, और ए रतिमोहनीका नाश कर अपना आत्मस्वभाविक गुण प्रकट करते है–वही भगवत होने है–याने इसी तरहसेंही हुवे है जिस तरह भगवतजी चले उसी तरह आत्मार्थी पुरुप चलेंगे, तो वैभी भगवत हो जायेंगे, और अरति नाश हो जावैगी

आठवा भयनामक दूषण है वो भय सात प्रकारकें हैं याने इह लोक भय, परलोक भय, आदान भय, अकस्मात् भय, आजीवीका भय, मरण भय, और अपकीर्ति भय ये सात है. ससारी जीव इन सात भयके मारेही सदा भयभीत रहता है और परमात्माश्रीजीने तो अपने आत्माका स्वरूप जान लिया है कि आत्मा अरूपी है–आत्माका विनाश होनेवालाही नहीं, उससें कोइ प्रकारका भय रखाही नहीं, उसी

लियेही अपना आत्मपद स्वाधीन कीया है. संसारी जीव सात तरहका भय रखते है उसका अब विवेचन करता हु.

इह लोक भय सो-जो जीव जिस गतिमें हों उसी गतिके दूसरे जीवोंका भय रखना-याने मनुष्य दूसरे मनुष्यका डर रक्खे, कि दूसरे मनुष्य मुझकों मारेंगे, या मार डालेंगे, या झहर खिला-लगा देवेंगे, या शस्त्र अस्त्र मारेंगे, या मन्त्रादिसें मारेंगें, या मुझकों रोग पैदा होवैगा, ऐसे भय रक्खै वो इहलोक भय कहाजाता है. यह भय जीव अज्ञानतासें रखता है. जो ज्ञान हुवा होवै तो समझा जाय कि आत्मा अविनाशि है, विनाश होवेगा तो पुद्गलका होवैगा, वो पुद्गल मेरा नहीं है, तो मेरे किस प्रकारका या किस लिये भय रखना चाहियें? पुद्गलकी स्थिति, विनाशभी कर्मोदय मुजब होनेका है, वास्ते भय क्यों रखना. ससारमेंभी जो मनुष्य भयभीत होता है उससें उद्यम नहीं हो सकता और भयके कारण दूर नहीं कर सकता परंतु जिसका वीर्य स्फुरायमान हुवा है वो वीर्यके बलसें हीम्मत रखकर अपना आत्मधर्म साध सकता है, वास्ते उद्यम करकें ज्यों बन सकै त्यों भय सज्ञा दूर कर देनी, क्योंकि भय उद्यमसेंही दूर होता है. आठ दृष्टिमें दूसरी दृष्टि प्रकट होती है तब चार सज्ञायोंका विष्कभ होता है-याने स्थभितपना हो जाता है ऐसा योग दृष्टिसमुच्चयमें हरिभद्रसूरिजी कहते हैं, इस लिये भयकी शाति होवै वैसें करना क्रमशः ज्यों ज्यों विशुद्धि होवैगी त्यों त्यों सर्व प्रकारमें भयरहित होवैगा और दूषण दूर होवैगा

परलोक भय सो-तीर्यंचका और देवताका भय धारण कर फिकर करै याने शायद मुझकों विच्छु-साप-शेर और व्यतरादि देव पीडा करे! इस भयका स्वरूप उपर मुजबही आत्मार्थी पुरुष चितवन कर भयरहित हो निज निर्भय गुण उत्पन्न करते हैं

आदान भय सो-अपने घरमें जो जो पदार्थ याने धन-आभूषण-वस्त्रादिक वस्तुयें हैं, वो वस्तुकों शायद कोइ ले जावैगा! चोर आकर चोर ले जावैगा? या विनाश पावैगा?; या किसीको व्याजसें धीरंगा तो रुपै वापिस देवैगा या नहीं? या व्यापारमें नुकशान जायगा? इस तरहके भयकी चिंता करै. ऐसा भय रखना अगर उसका चितवन करना उसीकों ज्ञानीपुरुष आर्त्त या रौद्र ध्यान कहते है और ये ध्यानसे जीव नर्क तीर्यचकी गति पाता है इसी वास्ते ज्ञानीपुरुष होवै सो सोचते

है कि-' ये वस्तु मेरी नहीं कर्मके संयोगसें अज्ञानदशा हुइ है उस अज्ञानदशासें करकें ये वस्तुपर ममत्वभाव हुवा है वो ममत्वभावसें भय हुवा करता है वो मेरे करने योग्य नहीं ' ऐसा चिंतवन कर भयसंज्ञा दूर करता है कि-' ये धनादि वस्तुका स्वभाव अस्थिर है जहांतक पुन्य बलवान् है वहांतक जानेका नहीं, और जब पापका उदय हो आवेगा तब वडे बंदोबस्तसें रखखा हुवा धनभी नहीं रहता है; वास्ते जीव ' किस लिये ममत्वभाव करता है ' इस मुजब चिंतन करकें भयसंज्ञासें निर्भय हो जाता है विशेष ज्ञान होवे तब संसारका त्याग करता है, संयम लेता है, उस लिये ऐसी वस्तु छोड देनी कि भयथी दूर हो जायगा आपके पास धर्मोपकरण या पुस्तक होते हैं उसकाभी भय नहीं रखते हैं. और अपने आत्माकों भावनेसें सर्वथा भयसंज्ञाका नाश करते हैं और आत्माके गुण संपूर्णतासें प्रकट करते हैं.

अकस्मात् भय सो-बाह्य कारण सिवा अचानक मनमें भयभ्रांत होवे-डर लगे ये कर्मोदय प्रभावसें हैं. ऐसे भयभी कर्मकी बाहुल्यतासें होते हैं जिसकों आत्मगुण प्रकट हुवे हैं उसकों ऐसे भय नहीं लगते हैं

आजीविका भय सो-समवायांगजीमें कहा है और ठाणांगजीमें वेदना भय कहा है वास्ते वो भयका स्वरूप लिखता हुं-अपणा उदरपोषण संबंधी जीव भय कर रहे हैं; मगर इस दुनियामें धनवान और गरीब-मोताज कोइभी अन्न खाये बिगर नहीं रहता है आजीविका पूर्ण होना वो तो पूर्वकर्मानुसार बननेका है, परंतु उस कर्मका ज्ञान नहीं उससें फिक्र करता है हरएक कार्य उद्यमसें बनते हैं, वास्ते उद्यम करना मगर भय रखना ये मूढता है. और ये मूढतासें करकें काम करनेका हो सो नहीं कर सकता और नये नये विकल्प कर कर्मबंधन करता है फिर धनवान् पुरुष हैं उनकों कुछ आजीविकाकी कसर नहीं, तोभी आगामिक समय संबंधी विविध प्रकारकी चिंता किये करता है, बारिशकी खांच हुइ है तो क्या खायेंगे ? बारिश न आया तो क्या खायेंगे ? रसोइया भाग गया तो क्या खायेंगे ? कोइ चीज महेंगी हुइ तो क्या खायेंगे ? ऐसे विचित्र प्रकारका आजीविकाके संबंधी भय धारण करकें कर्म बंधता है धनवान मनुष्यकों बदवक्तमें और अच्छी वक्तमें धनसें करकें सब चीज बन जाती है, तथापि अज्ञानताके लिये भयभीत रहता है ज्ञानवंत पुरुषोंकों तो थोडा ज्ञान हुवा है, मगर स्वपर ज्ञान हुवा है उस ज्ञानके प्रभावसें प्रथम तो क-

र्मकी प्रतीति है उससे उन्होंकों भय नहीं रहता है. दूसरी तरह अशुभ कर्मका उदय हुवा उससें आजीविकामें हरकत पडती है, तो विचार करै कि पूर्वसमयमें कर्म बंधे हैं उनके फल हैं विकल्प करनेसें क्या फायदा? ऐसा शोचकर भय नहीं रखते, और बन सके सो उद्यम करते हैं और अतिशयसें विशुद्धि हैं वो तो बिलकुल भय नहीं रखते हैं अपनी आत्मभावना विचारते हैं जैसें ऋषभदेवस्वामीकों वर्ष दिवस तक आहार मिला नहीं तोभी उसके लिये विकल्प न हुवा. उसके स्मरणार्थ वर्षी तप प्रकट हुवा और अंतमें भयमोहनी क्षय करकें निर्भय गुण प्रकट किये. उसी मुताबिक आत्मार्थी पुरुषोंकोंभी करना, कि भयमोहनी नाश हो जावे. अब वेदनीभय सो—रोग आनेसें दुःख सहन न हो सके उससें अनादिका जो भय है वो प्रकट हो आवै कि शायद रोग न वढ जाय! रोग न हो तो रोग आनेका भय रहवै. ऐसे भयके बद-लेमें तपस्या प्रमुख नहीं करता है तपस्या करनेसें नया वेदनीकर्म उदय आनेका हो वो क्षय हो जाता है, और उस बदल उलटे विचार करै वो मूढताका लक्षण है. आत्मार्थी जीव तो वेदनासें डरतेही नहीं वेदना होवै तो शोचते है कि पूर्वकालमें जो जो वेदनीकर्म बांधा है वो ऐसें ज्ञानके [बोधके] वख्तमें उदय आयेंगे तो सम-भावसें भुक्तेंगे, और बहुत काल दुःख भुक्तनेका वो थोडे कालमें भुक्ता जायगा— नया कर्मबंध न होवैगा पुनः विशेष विशुद्धिवंत तो जानते हैं कि वेदना होती है वो शरीरकों होती है—मेरा आत्माकों नहीं होती. इसी तरह महावीरस्वामीजीकों सख्त उपसर्ग संगमदेवने और व्यंतरीने किया, परंतु किंचित्भी भय धारण न किया, और वेदनाका दुःखभी ध्यानमें न लिया, तो अपने आत्माका गुण केवलज्ञानगुण, प्रकट किया इसी तरह जिसकों अपने आत्माका कल्याण करना है उसकोंभी महा-वीरस्वामीजीका मार्ग धारण कर लैना कि कोइ तरहका भय रहवे नहीं और निर्-भयदशा प्रकटै

छट्ठा मरणभय सो तो—जगजाहिर है. अनादिकालकी मरण होनेकी संज्ञा चली आती है, उसके प्रभावसें देवताभी आते भवका छ महीने पेस्तर बंध करै तबसें कल्पांत करै. मनुष्यकी समजदार उम्मर होवै तबसें मरणभयकी विचारणा करता है. ज्ञानीपुरुष तो अंशमात्रभी मरणका भय नहीं करते, कारण कि आत्मा मरता नहीं. मरता है सो पुद्गल है. तो जितनी आयुकी स्थिति है वहांतक यह शरीरमें रहना

है, तो भय किस लिये करना कदापी सहासे चित्तम आवे तो सोंचे कि आयु
चचल्ता है, तो धर्मसाधन करनेमें प्रमाद न करना, क्यों कि धर्मसाधन मोक्ष साध
करना है वो तो मनुष्यकी गतिमें हो सकता है दुसरी गतिमें ऐसा साधन होने
नहीं, वास्ते ज्यों बने त्यों अप्रमादपणसें धर्म करनेम तत्पर रहना आते कलपर
रनेका विचार करैगा; मगर आते कल क्या होगा वो खबर नहीं है, इस लिये
उत्तराध्ययनजीमें कहा है कि–'हे गौतम! समय मात्र प्रमाद न कर ' ये उप
धारण कर कि जिम तरह आत्माकी निर्मलता होवे वैसा उद्यम करना और स
साधतें शरीर नरम पडता है या देवादिकके उपसर्ग होते है तोभी मरणका भय न
करते हैं आत्माकों सोहाते हुवे विचरते ह परिसहकी फौजसें नहीं डरते, आप
पने ध्यानमें तत्पर रहते है, विसी तरह आत्मार्थीयोंकों रहना योग्य है भगवती
भय क्षय करकें सिद्धि सुखकों पाये है और उन्होंकी जैसी आज्ञा है उसी मु
चलेंगे तो मरणका भय नाश होवेगा

सातवा अपकीर्ति भय सो–शक्ति उपरात कीर्तिकी इच्छा करै और काम
पकीर्तिके करै. कीर्ति तो क्रियासें होती है जो लुच्चाइ, चोट्टाइ, चोरी, जूँठ बोल
परदारागमन, परनिंदा, परकों दु ख देना, पिराया खा जाना, व्यौपारमें अन्या
बोलना, बाका बोलना, ये कृत्य न करै और दु खीकों सुखी करना, परका
तत्पर रहना, द्रव्यानुसार दान देना, कितनेक जन तो ऐसा दान देवें कि आप
खावे; मगर दूसरोंकों देनेमें तत्पर रहवे, ऐसी वर्त्तना करै तो सहजहीमें कीर्ति ह
मगर धन होनेपरभी भिखारी पोकार कर मरै तोभी बिलकुल दान न देवे और
पकीर्तिका भय करै अपकीर्तिका भय रखकर बुरी विचारणा न करै तो उत्तम
अज्ञानतासें अपकीर्ति होवै वैसाही कारण करै, परतु ज्ञानीजन तो अपने आत
दानादिक गुण है वो प्रकट करनेमें उद्यमवत हुवे है, कितनेक गुण प्रकट हुवे
उसमेंभी कीर्तिकी इच्छा नहीं और अपकीर्तिका भय नहीं इसी तरह उत्तमपुरुष वि
जीवकों दु ख होवे वैसी वर्त्तना नही करते, उसी तरह किसी जीवकों दु'ख
वेसी वर्त्तना न करनी कि सहजहीम अपकीर्तिका भय दूर हो जावेगा इस तरह
अपने ध्यानमें लेकरके जैसें महात्मापुरुषोंने निर्भयदशा प्रकट की वैसें करना
त्मगुण प्रकट किया कि जो गुण जानेका भय रखना न पडेगा, वो नीत्य गुण

अनित्यगुणका मोह है वहातक जीवकों भय रहवेगा, वास्ते त्याग करना कि सह-जहीसें भय दूर हो जायगा

दशवा शोक नामक दूपण-सो ससारी जीवोंकों हरदम लग रहा है कुटुबमेंसें कोइ बीमार हो आवे या मरजावे तो मनुष्य इतना सारा शोक करते है कि कितनेक तो अत्यत शोकके मारे मरजाते है. या बीमार हो जाते है, शरीर सूखा देते हैं, कितनीक स्त्रीओंकी छातीमेंसें ( कूटनेके लिये छाती फट जाती है उससें ) लोहु निकलता है-चादी पड जाती है, किसीकी छातीमें इसी सबबसें दर्द होता है-ऐसी उपाधि [ शरीरकों ] होती है उस तर्फ लक्ष न देकर रोना पीटना शुरूही रखते है ये फल पानेका कारण अज्ञानता है फिर बाजारकी अदर-शरियाममार्गमें (जाहिर रास्तेपर) भी इसी तरह रोना पीटना करकें दूसरेके जीवकोंभी दु ख देखकर दिलगीरी होती है. अच्छे घरानेकी ओरतेंभी बेमुलाहजेसें-बेहुदी सिक्ल बनाकर खुल्लेसनिसें खडी रहकर कूटती पीटती रोती चिल्लाती है येभी बेइज्जतकी बात है अभीके राज्यकर्त्ताकोंभी ये बात पसद नहीं है राज्यद्वारी-अधिकारी-अफसर-विद्वानवर्गकोंभी बिलकुल ये रिवाज वाहियात मालम होता है; तौभी यह काम जारी रखते हैं कितनेक मनुष्य तो यु मानते है कि अपन कूट-पीट-चिल्लाकर न रोवेंगे तो लोगमें अपना बुरा कहा जायगा वास्ते शोभा दिखलानेके लिये याने मरनेवालेके ऊपर वडा प्यार, या जिसके घर मैयत-मरण हुवा हो उसके साथ गाढ सबध दिखलानेके लिये जोरसें कूद कूद करकें लबे हाथ कर चिल्लाकें रोते पीटते हैं और शोभा कायम रही मानते हैं-यह कितनी भारी मूर्खता है ? इन बातोंसें इस लोकमेंभी नुकसान हांसिल होता है और परलोकमें पापके लिये नरक तिर्यचगते पाते है तो जब इस कामसें उभय भव भ्रष्ट हो बहुत दु'ख उठाने पडते हे तब क्यों नहीं छोडना चाहियें ? ज्ञानी जन तो इतना शोच करते हैं कि जिस चीजका सयोग है उसका वियोगभी है यातो अपन कुटुब छोडकर या कुटुब अपनकों छोडकर जाय इन दोमेंसे एक रीतिसें तो वियोग होगाही होगा. जो जो वस्तुका जो जो स्वभाव है वो ध्यानमें लेकर बिलकुल शोक नहीं करते हैं. धन-गुमास्ता-वस्त्र-मकान और ऐसीही इच्छित प्रिय वस्तु जानेसें शोक करते है उसमें शोचनेका है कि-इच्छित वस्तु पूर्वपुन्यसें स्थिर रहती है, पुन्य पूर्ण हुवा कि वियोग होता है पीछे गत वस्तुका शोक करनेसे कुछ फायदा

नहीं है कितनेक मनुष्य अपमान होनेसें शोकवत होते है, परतु अपमान तो न करने योग्य काम या न बोलने योग्य बोलसें होता है, या पुन्यकी न्यूनतासें होता है, वास्ते वो काम छोड देवै तो अपमान न होवेगा. शोक करनेसें क्या फायदा ? तोभी शोक करता है इसी मुजब जिन जिन बाबनका शोक करता है उन उन बाबतोंसें पापकर्म वधाते हैं शोकसें शरीर नरम होता है, बुद्धिकीभी हानि होती है और शोकके कारण दूर करनेकाभी उद्यम नहीं हो सकता, उससें विशेष शोक पैदा होता है इसतरह मत्यक्षतासेंभी अज्ञानीजन अज्ञताके मारे नहीं शोचते हैं ज्ञानीजनकों तो शोकके कारण उत्पन्न होते हैं तो चितवन करते है कि मेरे आत्माके सिवा दूसरा मेरा पदार्थ हैही नहीं जो पुद्गलीक वस्तुयें है वो तो सयोग वियोगसें करकें युक्त हैं तो मेरे किस लिये शोक करना ? जो जो बनता है वो पूर्वे कर्मबधनानुसार बनता है; वास्ते जो जो कर्मउदय आये है वो समभावसें भुक्तने चाहियें कि जिस्से वो कर्मकी निर्जरा होवे और आत्माभी निर्मल होवे ऐसी दशा बन जाय तो शोक [ जीवकों ] रहवैही नहीं या होवैही नहीं भगवतजी तो आत्मगुण सिवा दूसरी परभावदशा जो जो जडभावकी वर्त्ते उसमें राग द्वेष करतेही नहीं उन्होंनें तो शोकमोहनीकर्मका नाश करकें आपके आत्मगुण मकट किये हैं लाजिम है कि जिसको आत्मगुण मकट करनेकी दर्कार हो तो उसकों मभुजीकी मिसाल चलना तो बेशक आत्मगुण मकट होवें.

ग्यारहवा दुगछा दूषण सो–कोइ खुशबुवाली चीज देखकर मसन्न होवै और बदबुवाली चीज देख दिलगीर होवै. अगर तो जो जो पदार्थ आपकों नापसद हो वो पदार्थ दुगछनीक लगै यह मकृति जीवकों अनादिसें बनी हुइ है, परतु ज्ञानवत तो जिस वस्तुका जो स्वभाव है वो समझ लिया है इससें कोइभी वस्तुकी दुगछा नहीं करते हैं जो जो कारण मिलते है वो पूर्वकर्मोदय मुवाफिक मिलते हैं, उससें समभावमें रहकर उसके विकल्प नहीं करते उनके मनसें तो जो जडपदार्थ आत्माकों घात करते हैं उनके उपर सहजसें दुगछा होती है और अज्ञानी जीव जिनकों जो पसद पडे उसमें वो राजी खुसी होता है, परतु विषयादिकके कटु फल ध्यानमें नही लेता है कि नरकमें इसके कितने और कैसे दु:ख उठाने पडेंगे ? और जन्ममरणकेभी कैसे दु:ख उठाने पडेंगे ? देखिये, जिसकों तुम देखकर दुगछा करते हो उनको भगी शिरपर उठाके जहां फेंकनेकी जगह हो वहा फेंकते है. ये काम किस लिये करना

पडता है? पिछले जन्ममें न करने योग्य काम किये उसके फल हैं तो अपनकोंभी विषय सेवन न करनेके लिये भगवतजीने फुरमाया है कि–'जो विषय भुक्तेंगे उनकों ऐसे दुःख भुक्तनेही पडेंगे.' सो ये विषयादि दुगछनीक जानकर त्याग करना. और आत्मगुणमें प्रवर्त्तना भगवतजीने इसी तरह चलकर दुगंछामोहनीका त्याग–नाश करकें आपके सहज स्वभावसें स्वाभाविक गुण प्रकट किये जिसी तरह अपनेभी गुण प्रकट होवें

बारहवा कामदोष–दूषण सो–सर्व दूषणोंका सरदार–अफसर है कामदेवके तावे होनेसें पुरुषभी महापुरुष होनेकी तक पाकरकें पीछे पड जाते हैं. संसारी जीव अनादिकालके कामके वश पडे हैं उसकी [ काम ] सज्ञा चली आती है बाल्यावस्थामेंभी कामचेष्टा करते हैं संसार भ्रमणका कारण कामदेव है कामदेवके मारे माता–पिता–भाइ–लडके–मित्र–बिरादर–ज्ञानी इन सबका स्नेह संबध तोड देता है कामके तावे होनेसें धनकाभी नाश होता है शरीरभी निर्बल होता है, आयुकीभी हानि होती है, और अनेक रोग शोक होते हैं इतने दुःख तो जीवकों प्रत्यक्ष आजमायसमें आ रहेहैं, मगर अनादिकालसें कामाधीन रहनेके मारे कामाध हुआ है वो अंधतासें करकें कोइभी नुकशान या दुःख नहीं देख सकता है कितनेक राजा महाराजा कामदेवके कैदी होनेसें राज्यभ्रष्ट–पदभ्रष्ट होते हैं वो अपनने देखाभी है और इतिहासभी बतलाही रहा है, तोभी जीवकों अकल नहीं–ज्ञानभान नहीं आती ए कैसी बडे आश्चर्यकी बात है!! कि कर्म किस प्रकार नाच नचाता है!!!! कामांधतासें कितनेक जन अपनी लडकी–भगिनी–जनेताकाभी शोच विचार नहीं रखते हैं, तो दूसरी संबंधी औरतोंके वास्ते तो कहनाही क्या? उनके लिये तो विचारही क्या रक्खें? कितनीक कामांध मातायें कामके तावे होनेसें अपने पुत्रका, पतिका नाश कर देती हैं. ऐसी कामदशा पीडती है, और उससें इस लोकके दुःख ऐसें अनेक प्रकारसें भुक्तने पडते हैं, और परलोककें दुःख श्रवण करने हो तो सुयगडागजी सूत्रसें देख लेना भवभावके ग्रथसें देखो–नरकके अदर परमाधामी लोहेकी अगारेके समान तप्त हुइ पूतलीयोंसें लिपटवाते हैं. नरकमें पॉव रखनेकी जगह है वो ऐसी है कि–जैसी तलवारकी धारपर पॉव रखना. [ वैसी है ] उष्णवेदना ऐसी है कि–हजारों मन लकडे जलते हो वैसी चितामें सुलावे उससेंभी जियादे वेदना होती है. शीतवेदना

ऐसी है कि उस जाडे-ठंडीका मुकावला नहीं हो सकता-चाहे जीतनी आगसें शरीर सेक ले तोभी वो ठंडी निकलती नही जन्मकी जगह ऐसी है कि राइ राइ जैसे टूकडे करके उत्पन्न होनेकी जगहमेंसें बहार निकाले वैक्रियशरीरका स्वभाव ऐसा है कि सब टूकडे इक्ठे हुवे कि पारेकी मिसाल मिल जाय (जैसें शरीर खडा हो जाय) कि पीछे परमाधामी अनेक प्रकारकी वेदना करें ऐसे दुःख मनुष्यके अल्प आयुमें मनुष्य उसम अल्पकाल सुख माणते हैं मगर उस अल्प सुखके मारे बडे सागरोपमके आयु तक दुःख भुक्तनेके हैं ऐसा कितनेक जीव जानते ह, तोभी कामाधतासें वे दुःख लक्षमें नहीं ल्याते विशेष कामाध ही रहते हैं जो पुरुष या स्त्रीकी भवस्थिति परिपक्व हुइ हे वो तो ससारका त्याग करकें अपने आत्मस्वरूपमें आनदतासें रहते है कितनेक पुरुष बाह्यसें स्त्रीका त्याग करते हैं, मगर अतरगमेंसें (स्त्रीपरसें) चित्त हठ नहीं गया होता है, तो पीछे ससारमें आते हैं-गिरतें हैं. कितनेक ससारमें नही आते हैं, परतु चित्त बिगडा हुवा रहता है कितनेककों राग रहता है और जब स्त्रीका मुंह देखें तब शात चित्त रहता है. ऐसें अनेक प्रकारकी कामविटबनायें ह मगर जिनका आत्मतत्त्वमें दृढानुराग हो रहा है याने सुदर्शनशेठके समान हो रहा हो उसकों अभयाराणी जैसी विचित्र प्रकारसें शरीर स्पर्श, अवाच्य (गुह्य) प्रदेशकों बहुत विटबना करे, तोभी काम प्रदीप्त न होवे अभयाके प्रपची प्रबधसें सुदर्शनशेठकों राजाने शूलीका हुकम फुरमाया और शूलीपर चडानेका ले गये तो सत्य-अखड-अनन्य शीलके प्रभावसें शूली मिटकर सुवर्ण-सिंहासन हो गया-ये महीमा कामदेवकों जीते उनका है! चक्रवर्तीराजाकों एक लक्ष बाणु हजार स्त्री होती हैं, उनकोंभी जब ज्ञानदशा जाग्रत होती है तब उन स्त्रीओंके स्हामनेभी नहीं देखते इसतरह कामदेव जीतते है उसी तरह भगवतजीने सर्वथा कामकों जीत लिया है, उससें काम दूषण नष्ट हुवा है और भगवत हुवे इसी मुताबिक जिनकों आत्माके गुण प्रकट करनेकी दर्कार हो उनकों कामेच्छासें मुक्त होनेका अभ्यास करना अभ्याससें सभी चीज बनती हैं कामसेवन करना यह जडधर्म है-आत्मधर्म नहीं आत्मस्वभावमें बहार नहीं वर्त्तन करना ऐसे भाव आनेसें सहजसें काम जीता जाता है याने उसका पराजित किया जाता है जीनने कामदेवकों जित लिया उननें दुनियाम सबपर जीत मिलाइही समझ लेना याने कामदेव जीत लिये बाद सबकों जीतना सुलभ-सरल है जिन जिन

पुरषोंने कामका पराजय किया है उनके चरित्र वाचनेका उद्यम करना, शिलोपदेश-माला वाचनेसें काम जीतनेका फायदा-लाभ समझा जायगा मुक्तिप्राप्तिका सर्वोत्तम समीप उपाय काम जीतना यही है.

तेरहवा अज्ञान नामक दूषण है-ये अज्ञान दोषभी अनादिका है, उससें करके आत्मा क्या चीज है? शरीर क्या है? दु:ख सुख काहेसें आते है?' उनका चाहियें वैसा ज्ञान नहीं हो सकता शरीरके दु:खमें दु:खी होता है, सुगुरुका कुगुरु माने, कुदेवकों सुदेव माने, और सुदेवकों कुदेव, और कुधर्मको सुधर्म माने यातो सुधर्मको कुधर्म माने, शाताके कारणोंके अशाताके और अज्ञानाके कारणोंका शाताके कारण माने, जो जो प्रकृति जडकी करे वो अपनीही माने, धर्म प्रवृत्ति करे तो अधर्म होवे वैसी करे, धन कुटुंबका मिलाप सो परवस्तु है उसकों अपनी मानकर आनंदित बने, ज्ञानवंतकों ज्ञानवान् न जाने, तत्त्वज्ञान होवे वैसा उद्यम न करे, अज्ञानके जोरसें पंचेंद्रियके तेइस विषय है उसमें लुब्ध हो बना, ज्ञानीजनने बतलाये हुवे षट् द्रव्य पदार्थ, उसके गुण पर्याय, उसका ज्ञान धारण न करे, उसकों नौ तत्त्वका ज्ञान न होवे, और अष्ट कर्मकाभी स्वरूप नही जाने. कितनेक धर्म-मजहबवाले कर्मको मानते है, मगर कर्म किसतरह या काहेसें उदय आवे? कर्म क्या पदार्थ है? कर्म काहेसें बंधे जाते हैं? और कर्मकी निर्जरा करकें आत्मा किस प्रकार निर्मल होवे? वो अज्ञानतासें करके नहीं जानते हैं, ये अज्ञानका महात्म्य है. कितनेक बुरे कर्मके जोर प्रत्यक्ष हैं, तोभी अज्ञानताके जोरसें वो लक्षमें नहीं आते किसी जीवकों कोइ मार डाले तो सरकार उसें फासी देती है, वो प्रत्यक्ष दिखता है, तथापि फासी जानेका डर मनुष्य नहीं रखते हैं और वदकाम करते है झूठ बोलनेमें जूठी प्रतिज्ञाका काम-(केस-मुकदमा) चलता है चोरी करनेसें कैद मिलती है छिनाला करनेसेंभी केद दंडकी शिक्षा होती है याने ऐसी एसी बातें सबके समझनेमें हैं तोभी उन बातोंके ऊपर अज्ञानतासें दुर्लक्ष दिया जाता है, और वैसे बदकाम कियेही करता है अज्ञानतासें राजाके विरूद्ध आचरणभी करता है ये अज्ञान दूर करनेका भाव हो जावे तो ज्ञानाभ्यास करना, शास्त्र पढना,-श्रवण करना, तो षड्द्रव्यकों ज्ञान होता है वो षट्द्रव्य नीचे मुजब हैं'—

१ धर्मास्तिकाय सो अजीवद्रव्य, अरूपी, अचेतन, अक्रिय, चलन सहायगुण

सो जीव तथा पुद्गल चले उसका सहाय करनेका धर्म है यहांपर किसीकों शका होवेगी कि चले उसकों सहायता क्या करनी है? उसका समाधान यही है कि मछली पानीमें तिरती है. अब तिरनेकी शक्ति तो आपकी है मगर पानीकी मदद चहिती है पानी विगर नहीं तिर सकती है, उसी तरह जीव और पुद्गल चले उसकों धर्मास्ति कायकी सहाय चाहियें

२ अधर्मास्तिकाय—इसका स्वभाव धर्मास्तिकायसें विपरीत है स्थिर रहनेकों सहाय करता है मनुष्य, पानी हो और तिरते आता हो तो वो तिरता है, मगर थक जाता है, तो कोइ टेकरी या किनारा हाथ लग जाय तो स्थिर रह जाता है; परतु जो ऐसी सहाय न मिलै तो स्थिर न रह सकता है फिर धूपमेंस आते थक गया हो तो वृक्ष या विश्राम स्थळ मिलता है तो बैठता है, उसी मुजब अधर्मास्तिकायकी सहायता—मददसें जीव, पुद्गल स्थिर होते हे इस द्रव्यकेभी चार गुण है याने अ-मूर्त्ति अर्थात् रूप नहीं, अचेतन अर्थात् जीवरहित, अक्रिय अर्थात् विभाविक कुछभी क्रिया न करनी, और स्थिर सहायगुण सो ऊपर मुजब स्थिर पदार्थकों सहाय करता है

३ आकाशास्तिकाय—सो-लोक, जिसमें छ द्रव्यपदार्थ रहे है उसकों लोक कहा जाता है, अलोक, जिसमें आकाश सिवा पदार्थ नही ऐसे लोकालोकमें व्याप्त होकर आकाशद्रव्य रहा है उसकेभी चार गुण है—याने अरूपी अर्थात् रूप नहीं, अचेतन अर्थात् जीवरहित, अक्रिय अर्थात् कोइ जातिकी क्रिया न करनी, और अवगाहना-गुण अर्थात् जीव पुद्गल पदार्थकों रहनेकी जगह देता है, कारण सारे लोकमें जीव पुद्गल भरे हुवे हैं, उसमें जगह नहीं वो आकाश जगह कर देता है यहा शका होगी कि जगह नहीं वो किस तरह कर देता है इसका जवाब यही है कि दीवालमें बिल-कुल जगह नहीं होती, मगर खीला ठोकें तो दाखिल हो सकता है उसी तरह आका-शास्तिकाय जगह कर देता है

४ कालद्रव्य उसमें पहेला वर्त्तनाकाल सूर्यकी चाल ऊपरसें गिना जाता है, जैसे कि—सूर्य अस्त होवै और उदय होवै उसके ऊपरसें गिनती होती है वो गिनती सबधी काल है उसका माप सात श्वासोश्वाससें एक स्तोक होवै सात स्तोकमें एक लव होता है ७७ लवमें एक मुहूर्त (दो घडी) होता है ३० मुहूर्त्तका दिवस, ३० दिनका महीना, १२ महीनका एक वर्ष होता है. ऐसे पाच वर्ष होनेमें एक युग,

और २० युगसें १०० वर्ष होते है. दश सोसें १ हजार, सो हजारसें १ लाख, ८४ लाख वर्षसें एक पूर्वांग, ८४ लाख पूर्वांगसें एक पूर्व, एक पूर्वके अंक ७०५६०००००००००००, चौराशी लाख पूर्वसें करकें एक त्रुटितांग और ८४ त्रुटितांगसें एक त्रुटित, ८४ लाख त्रुटितसें १ अडडांग, ८४ लाख अडडांगसें एक अडड होता है ८४ लाख अडडसें १ अववांग, ८४ लाख अववांगसें १ अवव, ८४ लाख अववसें १ हुहुकांग होता है. ८४ लाख हुहुकांगसें १ उत्पलांग, ८४ लाख उत्पलांगसें १ उत्पल, ८४ लाख उत्पलसें १ पद्मांग, ८४ लाख पद्मांगसें एक पद्म होवे ८४ लाख पद्मसे १ नलीनांग, ८४ लाख नलीनांगसें १ नलीन, ८४ लाख नलीनसें १ निपूरांग, ८४ लाख निपूरांगसें १ अर्थनेपुर, ८४ लाख अर्थनेपुरसें १ अयुतांग, ८४ लाख अयुतांगसें १ अयुत, ८४ लाख अयुतसें एक प्रयुतांग होता है. ८४ लाख प्रयुतांगसें १ प्रयुत, चौराशी लाख प्रयुतसें १ चुलिकांग, ८४ लाख चुलिकांगसें १ चुलिका होती है ८४ लाख चुलिकासें १ शिर्षप्रहेलिकांग होवे और उसको चौराशी गुने करे तब शीर्षप्रहेलिका होवे वो गुणाकारका अंक १९४ अक्षरका होवे सो नीचे मुजब है—

७५८२६२५३०७३०१०२४११५७९७३५६९९७५६९६४०६२१८९६६८४८०८०१८३२९६०००००००००००००००० ०००००००००००००००००००० ०००००००००००००००००००००००००००००००००००००००००००००००० ०००००००००००००००००००००००००००००००००००००००००००००००००००००००००००००००० इस मुजब अनुयोगद्वार सूत्रजीकी टीकामें छपी हुइ चोपडीके पत्र २४९ में हैं. १९४ अक्षरकी सख्या हैं. उससे अधिक सख्या गिननी मुश्किल पडनेसें विशेष अंक नहीं दर्शाये हैं, परतु दूसरी तरहसें सख्या मनमें समझी जावे—मुंहसें न बोली जाय. फिर विशेष न्यून समझा जाय उसके लिये बतलाया है कि एक कुवा चार गाउ उंडा ४ गाउ विशाल, और ४ गाउ लंबा हो उसमें युगलीएके सात दिनके बचेके केस लेकर उसके असख्यात टूकडे करे, और उन टूकडोंसें वो कुवा भरकर उसपर हो चक्रवर्त्तिका लश्कर चला जाय तोभी वो दबाये हुवे बालके टूकडे न दब जाय वैसे भरे और हरहमेशा उन उसमें पानी प्रवेश न कर सके ऐसा सज्जड भर दे पीछे उनमेंसें सो सो वर्ष हुवे बाद एक एक टूकडा निकालना मु करनेमें कुछ बालोंके टूकडे निकल

गये बाद कुवा खाली हो जाय तब एक पल्योपम होवै ऐसे दश कोटाकोटी पल्योपमसें एक सागरोपम होवै. वेसे सागरोपमके देव और नरकके आयु है दूसरीभी गिनतियें नाम लगती हैं–ये कालका स्वरूप जगतजीवोंके आयु वगैर की गिनतिमें आता है ये चद्र सूर्यके आधारसे काल कहा जाता है उससें काल द्रव्यमें स्वाभाविक नहीं गिनते है अब कालद्रव्य किसकों कहा जाय वो कहता हु छउ द्रव्यके अगुरु लघु पर्यायकी वर्त्तना होती है वो वर्त्तना एकसें दूसरी होनी उसका नाम समय है. वोही कालद्रव्य उपचरित है पदार्थरूप नहीं कारण कि द्रव्यकी वर्त्तना अपेक्षित है उससें पदार्थरूप नहीं कालका गुण नइ वस्तुकों पुरानी करनेका है कल जो वस्तु तैयार हुइ वो आज पुरानी कही जायगी. आज की सो नइ कही जावेगी ये काल अपेक्षित कहा जाता है काल अरूपी है अचेतन अक्रिय नये पुराने गुण है ऐसा कालद्रव्यका स्वरूप जानना.

५ द्रव्य पुद्गलास्तिकाय उसके चार गुण हैं याने मूर्त्त अर्थात् नजर आते हैं अचेतन अर्थात् जीवपना नहीं सक्रिय अर्थात् मिलने विखरनेरूप क्रिया करता है–जीवकी साथ रहकर क्रिया करता है वास्ते क्रिया सहित है और मिलन विखरन गुण है जो पुद्गल परमाणुकों पुद्गल द्रव्य कहते हैं वो परमाणु कैसा सूक्ष्म है ? जलाया हुवा जले नहीं, छेदनेसें छेदा न जाय, दृष्टिसें अगोचर है ऐसें दो परमाणु मिलकर खध होता है, उसें द्विप्रदेशी खध कहते है जैसें तीन चार आदि परमाणु मिलकर खध होता है वो खध दृष्टिगोचर नहीं होते अनत परमाणु मिलकर खध होवे तो नजर आता है उसें व्यवहार परमाणु कहते हैं निश्चय नयसें तो खध कहे व्यवहारसे परमाणु कहनेका सबब यह है कि वो भी जलानेसें नहीं जले, शस्त्रसें छेदन न हो सके और एक परमाणुमें एक वर्ण एक गध–एक रस–और दो स्पर्श रहे हैं वर्त्तना मुजब और सत्ता मुजब तो पाच वर्ण, दो गध, पाच रस और आठ स्पर्श रहे हैं उससें परमाणुके पर्यायका पलटन पना होता है जो पल्टन पनेसें सत्तामेंसें वर्त्तना रुप कालेका पीला होवे, पीलेका लाल वगैर होवे– इत फेरफार होवे यह अधिकार अनुयोगद्वारजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र २७० में है वहासे देख लेना ऐसा परमाणुका स्वभाव है, उससे एक छूटे ... गुण निश्चय परमाणु कहा है, और दूसरोंको व्यवहार परमाणु कहा जाता है निश्चय नयसें तो खध कहा जावे व्यवहारसें परमाणु कहनेका

सबब यही है कि दृष्टिसे अगोचर है तभी जलानेसें न जले–शस्त्रसें छेदे न जाय ये व्यवहार परमाणु अनंतसें उत्तश्लक्षण श्लक्ष्णिका, जो आठसें करके श्लक्ष्ण श्लक्ष्णिका बहे, उससें अष्टगुणेका नाम ऊर्द्धरेणु, वैसी अर्द्धरेणुसें एक त्रसरेणु याने जो सूर्यप्रकाशसें छप्परके अंदर छिद्रद्वारा मालुम होता है वो त्रसरेणु. वैसी ८ त्रसरेणुसें १ रथरेणु ( रथ चलनेसें जो आकाशमें उडे वो रथरेणु कही जावे.) ८ रथरेणुसें एक देवकुरुके युगलियेका [ मनुष्यका ] वालाग्र होवे ८ वालाग्रसें १ हरिवर्षके मनुष्यका वालाग्र होवे असे ८ वालाग्रसें हेमवतके मनुष्यका वालाग्र होवे, ऐसे ८ वालाग्रसे महाविदेहके मनुष्यका वालाग्र होवे असे ८ वालाग्रसें भरतक्षेत्रके मनुष्यका वालाग्र होवे. असें आठ वालाग्रसें १ लीख होवे ८ लीखसे १ जू, ८ जूसें १ यवमध्य होवे ८ यवम यसें १ अंगुल होवे. छः अंगुलका १ पाद, १२ अंगुलसें १ विहस्त, २४ अंगुलसें १ हाथ, ४ हाथसें १ धनुष्, असें दो हजार धनुषसें १ गाउ होवे चार गाउका १ योजन, इसके तीन प्रकारके मान है जो अनुयोगद्वारजीकी प्रतमें पत्र १९५ के अंदर देख लेना. इस मापकी बीचमेंके खंध और इससें बडे खंध अनेक प्रकारके होते हैं विचित्र संस्थान विचित्र मापके है परमाणु बहुत और अवगाहना छोटी परमाणु इससेंभी कम और अवगाहना बडी कितनेक खंध नजर आवे–हाथमें पकडे न जाय कितनेकके स्पर्श मालुम होवे, मगर नजर न आ सके कितनेक गंधसें मालूम होवे, परंतु नजरसें गंध मालूम न होवे–असे विचित्र स्वभावके पुद्गल पुद्गलस्कंध होते है और स्वभावसें विचित्र रीतिके पदार्थ बनते है–पीछे विखरभी जाते हैं जो देखनेमें आवे, और कामभी विचित्र प्रकारसें करे जितने पदार्थ नजर आते है सो पुद्गल हैं अपन जिसको जीव कहते हैं वो जीव नजर नहीं आता; मगर जीवके ग्रहण किये हुवे शरीर नजर आते है, इस लिये समाधितंत्रमें यशोविजयजीने कहा है कि–"देखै सो चेतन नहीं, चेतन नहीं देखाय, रोष तोष किनसों करै, आपो आप बुझाय."

वास्ते कहनेकी मतलब इतनी है कि चेतन नजर नहीं आता देखते हो सो चेतन नहीं मगर जड है–याने पुद्गल है पुद्गलके लक्षण नौतत्वमें दश कहे हैं याने वर्ण, गंध, रस, फरस, शब्द, अंधेरा, उजाला, धूप–ताप, प्रभा, और छाउ–इन दश लक्षणोंमेंसे कोइभी लक्षण नजर आवे उसका नाम पुद्गल समझना दूसरे पांच द्रव्य है वो नजर नहीं आते. ऐसा पुद्गल पदार्थका ज्ञान हो तो विचारता है कि–मेरा आत्मा अरूपी और ये रूपी पदार्थ इसे मेरा कहता हु यही अज्ञान है और ये अज्ञान गइ नहीं

जहातक पुद्गलीक पदार्थकी इच्छा नहीं मिटती और जड पदार्थकी इच्छा है वहातक जीवकर्मसें मुक्त नहीं होता ये पुद्गल पदार्थका ज्ञान भगवतीजीमें बहुत विस्तारसें है अनुयागद्वारजी वगैर, सूत्रोंमभी है वो सुनागे तब विस्तार पूर्वक समझ पडेगी कर्म जो बध जाते हैं वोभी पुद्गल पदार्थ है पवन दृष्टिगोचर नहीं होता, मगर स्पर्श होता है वो पवनके पुद्गलोंका होता है इस तरह कितनेक सूक्ष्म पदार्थ दृष्टिपथमें नहीं आते- जैसें कि अग्नि, उजाला-इसको पकडे तो पकडे नहीं जाय, परंतु रुप नजर आता है। वास्ते पुद्गल पदार्थ समझना बादर पदार्थ जाननेसें सूक्ष्म पदार्थका अनुमानसें निर्णय करना

६ जीवद्रव्य सो अरूपी यानें जीवका स्वरूप नहीं सचेतन-शक्ति है, (चेतन यानें चैतना-जानना) जाननेकी शक्ति जीव विदून दूसरे कोइ पदार्थमें हैही नहीं. अक्रिय-कोइभी क्रिया करनेका चेतनका धर्म नहीं, जो क्रिया होती है अनादिकालके जीव कर्मका सबध है उन कर्मके सयोगसें अपने आत्माका स्वरूप भूल गया है जैसे मदिरा पी करके मस्त हो जाता है तब क्या करने योग्य है और क्या अयोग्य है ये ज्ञान मदिरा पीनेवालेको नहीं रहता है, और अपना जातिस्वभाव नीति छोडकर वर्तता है, वैसे आत्मा अपना स्वभाव छोडकर विभाववर्तनाकी क्रिया करता है स्वाभाविक वर्तनाका नाम क्रिया नहीं-विभावमें वर्त्ते उस क्रिया कही जावे, वास्ते स्वाभाविकपणे अक्रिय है, मगर अज्ञानदशाके योगसे जीवका स्वभावही भूल गया है-शरीर है सोही मै हु ऐसा जानता है-शरीरके दु खसें दु.खी होता है और शरीरके सुखसें सुखी मानता है, धन पुत्र परिवारको देख करके आनदित होता है ये सब पदार्थ आत्मासें भिन्न है, परतु अज्ञानताके मारे नहीं जान सकता है आत्माके छ' लक्षण कहे है-यानें अनतज्ञान सो जगतमें अनत जीव है-अनत पुद्गल पदार्थ है, एक एक पदार्थमें अनत गुण पर्याय रहे है उनकी त्रिकालवर्त्तना होती है वो सब एक समयमें जान सके इतनी आत्माकी शक्ति है, मगर जडसगतिसें आच्छादित हो गइ है, उससे जीव नहीं जान सकता है अपने शरीरके अदर सर्व व्यापी हो आत्मा रहा है उसेंभी प्रत्यक्षतासें नहीं जान सकता है और अदर [ शरीर अदर ] के विभागमें क्या क्या पदार्थ रहे है वोभी आत्मा नहीं जान सकता सो ज्ञान आच्छादित हो गया उसका फल है जब जीवका भाग्योदय होता है तब सर्वज्ञके वचनकी प्रतीति

होता है और आवर्ण क्षय होनेका उद्यम करता है तो क्षय हो जाता है, तब वो उस प्रत्यक्ष मालूम होता है. वो ज्ञानगुण सर्वथा तो ज्ञानावरणी कर्म क्षय होवे तब प्रकटता है और थोडे थोडे कर्मका क्षयोपशम याने कितनेक क्षय पाये है-कितनेक उपशान्त हुवे हैं इससें सत्तामे अभी उदय न आवे ऐसे किये है, उसको उपशम कहा जाता है इसतरह क्षयोपशम होनेमें मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान ये चार ज्ञान होते हैं सर्वथा प्रकारसे विशेष विशुद्धि हो कर्मका क्षय होनेसें केवलज्ञान होता है ऐसे ज्ञान प्रकट न हुवे उससें अज्ञानपना रहा है इसी मुजब आत्माका दर्शन गुण है दर्शन और ज्ञानमें क्या भेद-तफावत है? ज्ञानका विशेष उपयोग और दर्शनका सामान्य उपयोग-इस प्रकार दर्शन लक्षण है उसकेभी आवरणके लिये दर्शन गुण प्रकट नहीं होता, जैसें कि चक्षुका विषय १ लाख योजनका है, तोभी इतने दूर रह-कर नहीं देख सकते, वो आवरणका जोर है. इसी मुजब पांचो इंद्रियोंकी शास्त्रमें शक्ति कही है उतनी नहीं चलती वो आवरणका प्रभाव है फिर केवलदर्शनमें सामान्य बोध सब पदार्थका होना है वो केवलदर्शनका आवरण लगनेसे दर्शनगुणका लक्षण नहीं वर्त्तता-वो लक्षण सर्वथा आवरणके क्षय होनेसें प्रकटेगा चारित्रलक्षण सो आत्मा आत्माके स्वभावमें स्थिर रहने. अब वो स्थिरता आच्छादित होके विभावमें स्थिरता हुइ है, और मोहनीकर्मका नाश होवेगा तब आत्मस्वभावमें स्थिरता होवेगी. उसके कारणरूप पांच चारित्र है और जितना जितना कषाय क्षय होवेगा उतना उतना चारित्रगुण प्रकट होवेगा सपूर्ण क्षयसें सपूर्ण चारित्र लक्षण प्रकट हो-वेगा तप लक्षण सो आच्छादित होनेसें तपस्या होती नहीं और विचित्र इच्छाये वर्त्तती हैं और अंतरायकर्म क्षय होनेसें सर्वथा पुद्गल पदार्थकी इच्छायें नाश होवेगी, उसके पेस्तर अंश अंशसें इच्छायें रूकी जायगी उतना उतना तपलक्षण प्रकट होवेगा पांचवा वीर्यनामक लक्षण वो आत्माकी अनंत वीर्यशक्ति है, मगर वो आच्छादित हो गइ है जितना जितना वीर्यांतरायका क्षयोपशम होता है उतनी उतनी आत्माकी वीर्यशक्ति शरीरमें रह करके चलती है जैसें कि श्रीमत् वीराधिवीर वीरप्रभुजीने एक दिनकी उमरमेंही पावकी अंगुलीसें ( अगूठेसें ? ) मेरुगिरिको चलित किया इतनी शक्ति कहासें जाग्रत हुइ? किसी जीवको दुःख नहीं दिया और आपको किसिने दुःख दिये है वो सहन किये. और दुःख देनेवालेकी फिर दया ल्याकर उनको प्र-

विशेष किया नेमिने चन्दोसि सर्पने दश किया तो उसको प्रतिबोध देकर अनशन कराकर दष्टीकुश वेमानिक देव बनाया इसतरह दयाके परिणाममें शक्तिये प्रगटकी अपनी शक्ति नाश हो गई है वो दयाके परिणाम नष्ट होनेसें हिंसाकी प्रवृत्ति करनेसें वीर्य-बल नष्ट हो गया है वो फिर दयाके भावमें वर्त्ते तो वीर्यशक्ति जाग्रत होवे वो दया दो प्रकारकी होनी चाहिये याने द्रव्य दया और भाव दया द्रव्य दया उसें कही जाती है कि एकेंद्रि जीवसें लगाकर पचेंद्रि तक कोइभी जीवकों न मारना न किसी प्रकारका उन्होंकों दुःख देना भाव दया उसें कही जाती है कि-ऐसे जीवोंकों दुःख देनेकी प्रवर्त्तना करनी सो आत्माका धर्म नही, आत्माकों आत्माके स्वभावमें रहना वो न रहनेसें आत्माके भाव प्राणकी हानी होती है आत्माका भाव प्राण ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य यह चार कहे हैं सो जितनी विभाव दशाकी वर्त्तना हो वेगी उतनी नाश हावेगे जितनी जितनी विभाव दशा त्याग होवेगी उतनी भाव दया हो आवेगी सो ऐसी भाव दया जितनी प्रगट होवेगी उतनी उतनी वीर्यशक्ति जाग्रत होवेगी और संपूर्ण वीर्य गुण सब प्रकारसें कर्म नाश हावेगा तब प्रकट होवेगा यही वीर्यका लक्षण है

६ उपभोग लक्षण-याने उपभोग क्या है वो जाननेकी शक्ति है, परंतु जाननेके लिये चित्त न्होंटाना उस रूप उपयोग नही करते वहातक नहीं जान सकते है वो उपयोग ज्ञान दर्शनके भेदसें बारह प्रकारका है वो कर्मग्रंथसें जान लेना

यह छ लक्षण जीव द्रव्यके है वो जब तक जीव नहीं जानता है तब तक उसकों अपनी पराइ वस्तुकी खबर नही पडती है, वो सब अज्ञानताके फल हैं जीव सदा अविनाशी है, वो अपना स्वरूप न जाननेसें हमेशा मरनेका भय रखना है ऐसे अनंत गुण आत्माके हैं वो केवलज्ञानी महाराज सिवा दूसरे जीव नहीं जान सक्ते हैं जीवके १४ भेद, अगर ५६३ बतलाये है वो कर्म सयागसें फरकें शरीर, इद्रिये वगैर के तफावतका है बाकी कर्मरहित सत्तासें सब समान हैं भेद नहीं, तोभी भेद जानना, वो अधिक न्यून व्यवहारमें है उसकी समझके लिये लिखता हु

१, एकेंद्रि सूक्ष्म सो-चर्मचक्षुसें मालूम नहा होते, २, एकेंद्रीबादर सो-मालूम हो सकें ३, बेइंद्रि-दो इद्रियाले, ४, तेइंद्रि-तीन इद्रियाले, ५, चौरेंद्रि-चार इद्रि

वाले, ६,असन्नि पचेंद्रि सो मनरहित, ओर ७ सनि पचेंद्रि सो मन सहित

यह सात जातिके पर्याप्ते याने पर्याप्ति पूर्ण की हुइ और अपर्याप्ते याने अपनी पयाप्ति पूरी न की हुइ अर्थात् ये सात पर्याप्ते और सात अपर्याप्ते मिलकर १४ भेद जीवके होते है और इसके ५६३ भेद विस्तारसें कहता हु —

१९८ देवताके भेद इस मुजब है कि, १० भुवनपति, १५ परमाधामिके देव, १६ व्यतरजातिके देव, १० तिर्यक् जंभकदेव, १० योतिषिकी जातिके देव, १२ देवलोक–वैमानिककी जातिके देव, ३ किल्वीषियेकी जातिके (भगी जैसे) देव, ९ लोकातिक जातिके एकावतारी देव, ९ ग्रैवेयक जातिके देव और ५ अनुत्तर विमानके देव ये-कुछ ९९ जातिके देव सो पर्याप्ते अपर्याप्ते मिलकर १९८ हुवे इन्ह देवोंकों कवळ आहार नहीं, अपनी मरजी मुजब आहारका स्वाद आता है, [ कितनेक हीन पुन्यवाले होवे उन्होंकों मरजी मुजब नहींभी बन सके ] देवताकी जातिकों वैक्रिय शरीर है, उससें रोगादि पैदा नहीं होते है. मनुष्यके आयुकों उपक्रम लगता है वैसे देवकों न लगे–पूर्ण आयुपें मरें. एक दूसरेकी ऋद्धिमें फेरफार बहुत होता है, व्यापार रोजगार करनेकी कुछ जरूर नहीं पडती ये सामान्यपनेसें देवकी जानी कही

३०३ मनुष्यकी जाती हैं वो गिनाता हु (और उसमें तीन जातिके होते हैं.) १५ कर्मभूमिके मनुष्य कर्मभूमि किसकों कहते हैं? जहापर असि याने हथियार–तलवार–भाला–छुरी–कोप–कुल्हाडे–औजार इन वस्तुयोंकों असि (जीव वध होनेका आवार) कहीजाती है और जहा इनकी वपरास होती है तथा मसी याने शाहीसें चोपडे–ही लिख में आती है, और कृषि याने खेतीवाडीका काम होता है–ये तीन जातिके कर्म जिस क्षेत्रोंम करनेका हो उसकों कर्मभूमि कहते हैं और वैसी भूमिमें रहनेवालोंकों कर्मभूमि मनुष्य कहेजाते हैं याने ३ जंबुद्वीपमें मनुष्य, १ भरतक्षेत्र, १ ऐरवृतक्षेत्र, १ महाविदेहक्षेत्र ६ धातकीखंडद्वीपमें मनुष्य, २ भरतक्षेत्र, २ ऐरवृतक्षेत्र, २ महाविदेहक्षेत्र. ६ पुष्करावर्त्तद्वीपके अदर मनुष्य, २ भरतक्षेत्र, २ ऐरवृतक्षेत्र, २ महाविदेहक्षेत्र ये १५ क्षेत्रमें रहनेवाले मनुष्य १५ जातिके है, उसमें भरतक्षेत्र तथा ऐरवृतक्षेत्रके मनुष्यकी रीति समान है, कालस्थितिभी समान है, छउ आरेकी हकीकत समान है पाच महाविदेहक्षेत्रमें सदा तीर्थंकरजी विचरते प्राप्त होते हैं कममेंकम एक महाविदेहमें चार तीर्थंकरजी होने चाहियें–ऐसा जबुद्वीपपन्नतिमे अधिकार है कोइ ग्रथमें

दोभी कहे हैं ऐसा प्रवचनसारोद्धारमें कहा है तत्वकेवलीगम्य पुनः उत्कृष्ट कालमें एक महाविदेह क्षेत्रमें ३२ विजय हैं उन सब विजयमें एक एक तीर्थंकरमहाराज होवे उससें एक महाविदेहमें ३२ तीर्थंकर विचरते प्राप्त होवे फिर केवलज्ञानी सदाकाल प्राप्त होवे मोक्षमार्ग हमेशा चलता रहे, जैसें भरत, ऐरवतमें मोक्षमार्ग तीन आरेमें होता है ( खुल्ला होता हे ) और दूसरे आरेमें मोक्षमार्ग बंध हो जाता है. वैसें वहां नहीं आयुके अंदरभी भरत ऐरवतमें कम वर्त्तता है वैसें वहा नहीं सदा क्रोड पूर्वका आयु है शरीरमान पांचसो धनुष्यका है-यह तफावत है दूसराभी तफावत शास्त्रसें देख लेना

३० अकर्मभूमि और छप्पन अंतरद्वीपके मनुष्य युगलिये हैं, वो मनुष्योंको व्यापार, रोजगार, रसोइ बनाना, खेती करना, कोइभी जातके औजार बनाना, वस्त्र पहनना, ये कुछभी करनेका नहीं मतलबमें असी-मसी-कृषि ये तीन कर्मभूमिके मनुष्य हैं वैसे वहा नहीं फकत कल्पवृक्ष फल देवे सो खाना, कल्पवृक्षस घर बन गये हुवेही रहते हैं-उसमें रहते हैं जिसकी जितनी मर्यादा है उस प्रमाणसें आहारकी इच्छा होवे उस वक्त मरजी मुजब कल्पवृक्ष फल देवे, आयु, शरीरभी बडे हैं, वो हरएक क्षेत्र अपेक्षित है [ सो आगे कहा जायगा ] और वहांसें मरकें देवता होवे दूसरी गतिमें न जाय, क्यों कि सरल स्वभावी हैं कठीन रागद्वेष नहीं

१० हैमवत और ऐरण्वत युगलियोंके क्षेत्र, २ जंबुद्वीपमें, ४ धातकीखंडमें और ४ पुष्करार्द्धमें ये दश क्षेत्रोंमें युगलिये मनुष्य होते हैं उन्होंका शरीरमान १ गाउक, आयु १ पल्योपमका, एक रोजके अंतरसें आंवलेप्रमाण आहार करें, आयुष्यके अंतपर एक जोडेका स्त्री गर्भधारण करें, उनका जन्म हुवे बाद ७९ दिन तक उस बालक बालिकाकी माता पिता प्रतिपालना करें, पीछे माता पिता मरणके स्वाधीन हो देवलोकमें जाते हैं

१० हरिवर्ष और रम्यक ये दोनु क्षेत्र नीचेके द्वीपमें है २ क्षेत्र जंबुद्वीपमें, ४ पुष्करार्द्धमें, ४ धातकीखंडमें इन दश क्षेत्रोंके युगलियोंका देहमान दो गाउ, आयु दो पल्योपमका, दो दिनके अंतर आहार बेर प्रमाण करें और ६४ दिन बालकोंकी प्रतिपालना करे

१० देवकुरु, उत्तरकुरुके युगलियोंका क्षेत्र, २ जंबुद्वीपमें, ४ पुष्करार्द्धमें, और

४ धातकीखंडमें हैं. इन दश क्षेत्रके युगलियोंका देहमान ३ गाउका, आयु तीन पल्योपमका, तीन दिनके अंतर अरहरके जितना आहार करै [ कल्पवृक्षके फलका आहार करै ] और ४९ दिवस बालकोंकी प्रतिपालना करके काल कर जॉय और देवता होवै ये तीस क्षेत्रके मनुष्यकों अकर्मभूमिके मनुष्य कहेजाते हैं.

५६ अंतरद्वीपके मनुष्य सो-जंबुद्वीपकी जगतीके कोटकी नजदीक हेमवत और शिखरी पर्वत हैं, उन दोनु पर्वतोंमेंसें दाढाए निकलती है और वो कोटके उपर होकर समुद्रमें गई हैं ये दाढाए चार चार होती है, और एक एक दाढाके ऊपर सात सात द्वीप हैं, तो दोनु पाहाडकी ८ दाढायोंके ऊपर ५६ द्वीप हुवें. उस द्वीपोंकों अंतरद्वीप क्यों कहाजाता है? लवण समुद्रपर अद्धर रहे हैं उसीसें अंतरद्वीप कहेजाते हैं, और उस अंतरद्वीपपर रहनेवाले युगलियोंकों अंतरद्वीपके मनुष्य कहेजाते हैं उन मनुष्योंका शरीरमान ८०० धनुषका, आयु पल्योपमके असंख्यातमें हिस्सेका और आहार कल्पवृक्षके फलका होता है. ये कुल १०१ क्षेत्रके मनुष्य पर्याप्ता अपर्याप्ता ये दोनु भेद गर्भजके गिननेसें २०२ भेद हुवे उसमें १०१ भेद संमूर्छिम मनुष्यके दाखिल करना जिस्सें कुल ३०३ भेद मनुष्यजातिके होते हैं संमूर्छिम मनुष्य किसकों कहेजाते हैं? मनुष्यके मलमूत्र, लींट, वमन, थूक, रुधिर, मास, वीर्य, चमडी वगैरः मनुष्य अंगके पदार्थमें उत्पन्न होवें आयु अंतर्मुहूर्त्तका, अपर्याप्ति अवस्थामेंही मर जावें-पर्याप्ति पूरी करैही नही. शरीरमानभी अंगुलके असंख्यातवे हिस्सेका होता है, जिस्सें देखनेमेंभी न आ सके ये ७-८ प्राण वा पर्तेही मरण पावें

तीर्यचके ४८ भेद हैं याने एकेंद्री सो जिसके एक स्पर्शेद्रि है उसकेभी भेद इस मुजब हैं कि-पृथिवीकाय सो मिट्टी, पाषाण, रत्न, सुना, धातु यें, मोती-ये पृथ्विकाय कहेजावें. (मोतीकों अनुयोगद्वारजीकी टीकामें पृथ्विकाय और अचित्त कहे है ) इस बाबतमें शंका होवे कि 'सीपके बदनमें पृथ्विकाय क्यों होवे ?' तो हम खुलासा करते हैं कि-मनुष्यके शरीरमें पथरी-पहाणवी होती है वो पृथ्विकाय है, उसी मुजब मोतीकाभी समझ लैना ये पृथ्विकायके पत्थर बडे बडे नजर आवे है तोभी ये असंख्याते जीवपिंड हैं एक आंवलेके जितनी मिट्टी या पत्थर लिया हो उसमें असंख्यात जीव हैं एक जीवका शरीर अंगुलके असंख्यातवे भागका है वो सबका पिंडभूत है. ये जीवके शरीर कल्पनासें सबूतरके समान करैं तो एक लाख

योजनका अबुद्वीप है उसमेंभी न समाये जाँय ऐसी पृथ्विकायके शरीरकी सूक्ष्मता है पृथ्विकायका उत्कृष्ट आयु २२००० वर्षका है-स. बादर पृथ्विकायका याने न आ सके उनका स्वरूप कहा है सूक्ष्म पृथ्विकायके जीवको तो चर्मचक्षुवाले न देख सक्ते है, फक्त केवलज्ञानीजी अपने ज्ञानसें देखकर फुरमाया है वे चौदह जलोकमें सब जगहपर है उनका आयुष्य जघन्य और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्तका है पृथ्विकायके दो भेदकोंभी पर्याप्ति, याने जिसने चार पर्याप्ति पूरी की है वो, अ अपर्याप्ति याने जिसने चार पर्याप्ति पूरी न की हो वो-[ अपर्याप्ति अवस्थामेंही जावे ] अपर्याप्ति, सूक्ष्म और बादर ये पृथ्विकायके ४ भेद हुवे.

अपकायके चार भेद हैं-अपकाय सो पानीके जीव, उसमें कूपका, तालाव समुद्रका, वर्षादका, धुमस प्रमुखक पानीका समावेश है ये पानीका पिंड नजर आ है, शरीरमान अंगुलके असंख्यातवे भागका हैं, उसके एक बुंदमेंभी असंख्यात ज हैं-इन जीवोंका आयु जघन्य अंतर्मुहूर्तका और उत्कृष्टसें ७ हजार वर्षका है. ये बा अपकाय कहाजाय सूक्ष्म अपकाय वो सो नजरभी न आवे ये दो भेद हुवे, पर्याप्ति अपर्याप्ति मिलानेसें ४ भेद हुवे

तेउकायके चार भेद है-याने सूक्ष्म और बादर, तथा पर्याप्ति, अपर्याप्ति-ये हुवे इनका शरीर अंगुलके असंख्यातवे भागका, आयु उत्कृष्ट तीन दिनका उसमें सूक्ष्म तेउकाय अगोचर हैं

वायुकायके चार भेद हैं याने सूक्ष्म, बादर, पर्याप्ति और अपर्याप्ति ये चार है वायुकायका शरीर अंगुलके असंख्यातवे भागका, आयु बादर वायुकायका उत्त तीन हजार वर्षका और सूक्ष्म वायुकायका अंतर्मुहूर्तका

वनस्पतिकायके छ भेद हैं-उसमें प्रत्येक वनस्पति याने एक शरीरमें एक जीव होवे सो, जैसें कि एक फलके अंदर जितने बीज हो उतने जीव हैं, फल छालका एक जीव फलके मगजका एक जीव, वृक्षकी शाखाका एक जीव, मूल एक जीव, पेडमें एक जीव, पत्रमें एक जीव-इसतरह अलग अलग जीव होवे कहेगा कि सारे वृक्षमें एक जीव तो फलके बीजके अलग अलग जीव क्यों इसका समाधान यही कि स्त्रीके सारे शरीरमें एक जीव है, मगर उसके शरीरमें तने गर्भ रहेते है गर्भके जीव भिन्न भिन्न होते हैं वैसेही बीजके जीव भिन्न भिन्न हो

ऐसे फल हैं उनकों प्रत्येक वनस्पति कही जावे-बडे बडे दरख्त, वड, पीपल, नारियेली वगेरःके पेड गेंहू प्रमुख अनाज, शाक, फल, चीभडे वगेरःके वेले आदि ये कुछ प्रत्येक वनस्पति है ये दो प्रकार और पर्याप्ति अपर्याप्ति ये दो मिल्कर चार भेद हुवे प्रत्येक वनस्पतिकायके जीवकों चार पर्याप्ति कही है, वे पूरी न की हो वहांतक अपर्याप्ता, और पूरी की हो तो पर्याप्ता. अपर्याप्ति अवस्थामेंभी कितनेक मर जाते हैं पर्याप्ति प्रत्येक वनस्पतिके वृक्ष-वेले वडेमें वडे १००० योजन अधिकके होते हैं. वो वेले-लतायें निराबाध जगहमें लंबी फैलती हैं-ऐसा ध्यान रखना. पर्याप्ताके शरीरका मान अंगुलके असंख्यातवे भागका कहा है उत्कृष्ट आयु १०००० वर्षका और जघन्य अंतर्मुहूर्तका कहा है और अपर्याप्ताका जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्तका है एक पर्याप्तेकी निश्रामें असंख्यात अपर्याप्ते रहे हैं यह अधिकार पन्नवणाजीमें विस्तारसें कहा है हरी वनस्पतिमें ये अपर्याप्ते संभवते हैं. साधारण वनस्पतिकाय सो-एक शरीरमें अनंत जीव रहे हैं उसकों अनंतकाय कहा जावे, और निगोदभी कहा जावे. वो निगोदकेभी दो भेद हैं याने वादर, और सूक्ष्म वनस्पति कि जो नजर आती है-अद्रक, मूली, गाजर, जमीकंद, रतालु, आदि कंदकी जातियें कि जो कंद काटने बादभी पुन. उगें वो और वो वृक्षमें उगते अंकुर जो जो पत्र फल प्रत्येकके योग्य न हुवे-और जिनके अंदरकी नसें बीज प्रगट नजर न आवें, तोडनेसें समान टूटे-काटे जैसा मालूम पडे-तोड दियेकी जगह पानीके बिंदु नजर आवे-ऐसी वनस्पतिकों अनंतकाय कही जावे और साधारण वनस्पति उसकोंही वादर निगोद कही जावे. वो जीवभी दो प्रकारसें हैं याने पर्याप्ते, अपर्याप्ते हैं इन्होंका शरीर अंगुलके असंख्यातवे भागका है, आयु अंतर्मुहूर्तका होता है सूक्ष्म निगोद सो चौदह राजलोकमें सब जगह भरी हुइ है सूक्ष्म निगोदके सिवा कोइ जगह खाली हैही नहीं इसकी सूक्ष्मता ऐसी है कि अंगुलके असंख्यातवे भागमें निगोदके असंख्यात गोलक हैं, उनमेंसें एक गोलकमें असंख्यात निगोद है वो एक निगोदमें असंख्यात जीव है. और उन जीवोंका आयु एक श्वास लेकर छोड देवे उतनी देरमें सत्तरह भवसें कुछ ज्यादे भव होते है-याने उतनी देरमें १७ सेंभी विशेष वक्त जन्ममरण होता है. वे जीवभी पर्याप्ते, अपर्याप्ते ऐसें दो भेदके हैं ये दो भेद प्रत्येकके, दो वादर-निगोदके और दो भेद सूक्ष्म निगोदके-ये तीनु मिलकर वनस्पतिके जीवके छ. भेद हुवे

२ दोइंद्रिवाले जीव सो बेइंद्रि याने शख, कौडी, गंडे, गडोले, भूसर्प, मेहर, सूक्ष्म कृमिजतु, वडे कृमि वगेर जीव कि जिनकों शरीर और मुँह ये दो इंद्रि है वो, और वोभी पर्याप्त, अपर्याप्ते ऐसे दो भेदवत है वो जीवोंका शरीर वडेमें वडा वारह योजनका होवे उस समयमें मनुष्यका शरीरभी वडा होता है कितनेक जीवोंको भगवतवचनोंकी प्रतीति नहीं होती उसको इन बातोंसें व्यामोह होता है कि इतना वडा शरीर क्यों करक होय ? मगर बुद्धिमानोंको ओर प्रभुवचनकी श्रद्धावालोंकों शका नहीं होती, कारण कि अभी एक अखबारके अदर पढनेमें आया था कि एक छिपकलीकी हड्डीये सवा गजकी थी और यहा तो ४ तसुकी नजर आती है, हड्डीयें इतनी वडी नजर आती है ! कोइ वक्त ऐसी वडीभी होती होगी वैसा हड्डी देखनेसें निश्चय होवे देशकी तफावतसेंभी वडे छोटेका तफावत नजर आता है फाकरेची बहेल जैसे वडे होते हैं वैसे वडे बहेल इस प्रातमें नही होते है घोडे विलायतसें आते हैं याने आस्ट्रलियन, अरेबियन हॉर्स आते हैं वो इतने वडे आते है कि वैसे इस देशमें (गुजरातमें) पैदा नहीं होते हे मनुष्यभी पजाबमें कदावर मजबूत होते हैं वैसे गुजरातमें नही होते इसका सबब यही कि हवा पानीके तफावतसें करकें छोटा वडा और सबल निर्बल प्राणी होता है उसी तरह समयके फेरसें तफावत हुवा होगा ऐसें समझकर बुद्धिवतोंको शका नहीं होती ये बेइंद्रि जीवोंका आयु बारह वर्षका होता है

२ तेइंद्रि जीवके दो भेद है याने पर्याप्ते और अपर्याप्ते हैं ये जीव खटमल, कीडे, चींटी, मकोरे–वगैर समझ लैना इन जीवोंका शरीर वडेमें वडा ३ गाउका होता है उत्कृष्ट आयु उनपचास (४९) दिनका कहा है, वोभी पर्याप्तेका, और अपर्याप्तेका तो अतर्मुहूर्तकाही होता है

३ चोरेंद्रि जीवभी दो प्रकारके हैं याने पर्याप्ते और अपर्याप्ते इन जीवोंकों पाच पर्याप्ति है वो पूरी करें तब पर्याप्ते और उसमेंसें अपूर्ण पर्याप्ति होवे वो अपर्याप्ते मक्खी, मच्छर, विच्छु, भ्रमुखजीव समझ लैना इन जीवोंकों स्पर्शेंद्रि, रसेंद्रि (जीभ), घ्राणेंद्रि (नाक), चक्षुइंद्रि [आख]–ये चार इंद्रिये होती हैं उत्कृष्टायु छ महीनेका और उत्कृष्ट शरीर एक योजनका होता है

पचेंद्री तिर्यंचके २० भेद है याने 'जलचर सो–मच्छ, मच्छी ग्राह वगैर' जलमेंही रहनेवाले, 'थलचर सो–गैयें, भैंश, बहेल, बकरी, हथ्थी घोडे इत्यादि 'खे-

चर सो-पखी-आकाशमें ऊडनेवालोंकी जाती, ४उर्परिसर्प सो-पेटके सहारेसें चलै-र्जैसे-सर्प आदि ५भुजपरिसर्प सो-भुजाके सहारेसें चलै-जैसे नकुल, खिलकूडी वगैरः ये पांच प्रकारके तिर्यच सो गर्भसें उपत्न्न होवै वो गर्भज-याने स्त्री पुरुषके सयोगसें पैदा होते है इन जीवोंके शरीरका मान, आयुप, क्षेत्र, काल, जीव अपेक्षासें अलग अलग हैं. वो पन्नवणाजीमें, जीवाभिगमजी या जीवविचारसें जान लिजीयेजी ये जीव कर्मभूमिमें और अकर्मभूमिमें पैदा होते है दूसरा भेद समूछिम तिर्यच वो स्त्रीके सयोग सिवा पैदा होते हैं, जैसें कि मेंढक मर गया हो और उसका कलेवर पडा होवै उसमें मेघदृष्टिकी बुंदें पडनेसें फिर नये मेंढक फौरन पैदा हो आते है. विच्छुके कलेवरमें विच्छु पैदा हो आते हैं गोवरमेंभी विच्छु उत्पन्न होते है. और कितनीक वस्तुओंके प्रयोगमें [ संयोगसें ] जीव पैदा होते हैं, उसें समूछिम कहा जावै. येभी पच प्रकारके होते है इससें गर्भज और समूछिम मिलकर दस भेद हुवे उस गर्भजके छः पर्याप्ति हैं और समूछिमके पाच पर्याप्ति हैं. उस मुजब पर्याप्ति करै उसे पर्याप्ते कहेजावें ,पर्याप्ति पूर्ण न की वहातक अपर्याप्ते कहेजाते है इसतरह ये दो भेदसें गिननेसें २० भेद होवे, वो वीस प्रकारके तिर्यच पचेंद्रि समझ लेना. एकेंद्रियसें लगाकर तिर्यच पचेंद्रि तलकके भेद इकट्ठे करनेसें ४८ भेद कुल तिर्यचके हुवे.

अब नरकके जीव चौदह प्रकारसें नौव भेदसें होते हैं याने रत्नप्रभा नरकके नारकी १, शर्कराप्रभा नरकके नारकी २, वालुकाप्रभा नरकके नारकी ३, पंकप्रभा नरकके नारकी ४, धूमप्रभा नरकके नारकी ५, तमः प्रभा नरकके नारकी ६ और तमतमा प्रभा नरकके नारकी ७ इन सातों नरकोंमे जीव पैदा होवे उसे नारकी कही जावै

पहिली नरकसें दूसरी नरकमें ज्यादे दुःख, आयुष्य और शरीर होते है याने इसी तरह एकसें एक नरकका दुःख, आयु, शरीरमान ज्यादे ज्यादे होते हैं उन नरकके दुःख ऐसें है कि उसके मुकाबिलेके दुःख मनुष्यलोकमें हैइ नहीं. कितनीक नरकोंमें परमाधामीकी की हुइ वेदना है, और कितनीक नरकोंमें स्वभाविक क्षेत्रप्रभावसें वेदना है. जो जो कठीन पाप किये जावै उनके फल नरकमें भुक्ते जाते हैं ज्यादेमें ज्यादे आयुष्य तेत्तीस सागरोपमका है उसमें असख्याता काल चला जाता है, उतने काल तक दुःख भुक्तनेका है और मनुष्यमें विषयका अल्पकाल सुख माना हुवा भुक्तनेका है, वस्तुतासें तो विषयमें सुख नहीं, मगर अज्ञानतासें सुख मानकर विषयसुख भुक्तता

है और उसके फलसें जीव नरकमे जाकर अकथनीय दुःख भुक्तता है, उन नरकके जीवोंके दस प्राण हैं छ पर्याप्ति हैं वो बांध न रहा होवें वहांतक अपर्याप्ता कहा जाय, ओर पूर्ण बाध लेवें तब पर्याप्ता कहाजाय वो पयाप्ते अपर्याप्ते मिलकर चौदह प्रकारके नारकी हुवे.

एकेंद्रिसें लगाकर पचेंद्रि तकके कुछ भेद इकठे करलेवे तब चारोंगतिके कुछ ५६३ भेद होवें सो निम्न सख्या मुजब है.—

| | | | |
|---|---|---|---|
| १९८ | देवताके, | ३०३ | मनुष्यके भेद, |
| ४८ | तिर्यचके, | १४ | नारकीके |

यों सब मिलकर सामान्यतासें जीवके ५६३ भेद होते है विस्तारसें तो जीवके भेद ओर जीव स्वरूप वर्णन करनेसें आयुष्यभी खतम हो जाय इतना वर्णन शास्त्रमें कहा गया है, वास्ते विस्तार समझनेके लिये रुचिवत जीव शास्त्राभ्यास करके जान लेवें, मगर जहा तक अज्ञानकी प्रबलता, है वहा तक जीवकों वीतरागभाषित शास्त्र देखनेकी या सुननेकी रुचिही न हो आवेगी यु करतें जोराइसें या शरमसें सुन लेवे तो उन वचनोंमे श्रद्धा न करे, क्यों कि जो पूर्वजन्मकी विपरीत श्रद्धाकी सज्ञा चली आती है उनके जोरसें सच्ची वस्तु नहीं रुचती हैं उन्मार्गकीही रुचि होवे विपरीत वस्तुपर कल्पित न्याय जोड कर उसकी श्रद्धा करे. दूसरे जीवोंकोंभी कुयुक्ति कर समझाके उन्मार्गमें गिरावे और इसी तरहसें करनेके सबबसें अनेक धर्म-मत हो गये हैं और जो मनुष्य जिस धर्मको मानता है उस धर्ममें क्या फरमाया है वोभी नहीं जानता है आप जिसको देव मानता है वो देव किस सबबसें मानता हु, उन देवमें देवके लक्षण हैं या नहीं, वोभी नहीं देखता कितनेक ब्राह्मणानें क्रिश्चियनी धर्म अ-गीकार करकें वेद धर्मको छोड दिया हे, लेकिन वेदमें क्या भूल है उसकों वो नहीं जानते हैं एक क्रिश्चियनसें पूछा गया था तो उसकी तर्फसें सतोषकारक जवाब याने भूल न बता सका था उसका सबब उतनाही ह कि स्त्री और धनके लोभसें क्रिस्ती धर्म स्वीकारते हैं, उसको पीछे कुछ धर्म जाननेकी जरूरत नहीं रहती है अज्ञानके जोरसें सत्य ढूंढनेका दिल नहीं होता कितनेक ब्रह्मन जैनकी निंदा करते हैं वो इनने तककि वैस्याके घरम जाना, लेकिन जैनमदिरमे न घुसना यह कथन कितना झूठ भरा हुवा है जो नीचेकी हकीकतसें सहज समझमें आयगा

माननीय महाभारत शास्त्रमें फरमाया है कि:—

युगे युगे महापुण्य दृश्यते द्वारिकापुरि ॥
अवि तीर्णो हरिर्यज्य, प्रभासे शशिभूषण. १
रेवताद्री जिनो नेमि र्युगादि र्विमलाचले ॥
ऋषिणामाश्रमा देव' मुक्तिमार्गस्य कारणम् २

इस मुजब कळावतार वेदव्यास विरचित महाभारतमें श्लोक हैं, इन श्लोकमें जैनका तीर्थ जो रैवतगिरि कहा है उसें आधुनिक समयमें गिरनार कहेते हैं और वहां नेमिनाथजी महाराज बाइसवे तीर्थंकर हे उनकाही महीमा जैनी मानते हैं, वही तीर्थका और नेमिजिनका बहुतमान पूर्ण किया है. फिर विमलाचल कि जिसें अभी शत्रुंजय कहेते हैं, वहा युगादिजिन हैं याने श्रीऋषभदेवजीकों जैनमें युगादिजिन कहे हैं—ऐसाही भारतमें कहा है ये दोनु तीर्थोंकों मोक्षका कारण इस श्लोकमें बतलाये हैं. उन भारतकोंही माननेवालेको ये जिनतीर्थोकी और जिनदेवोंकी मोक्ष कारणभूत सेवना करनी चाहियें या निंदा करनी चाहियें? भारत तो हमेशा वाचा जाता है, तथापि ये बात निगाहमें न रखतें उलटा रस्ता पकडते है वो अज्ञानकी राजधानीका फल है, परन्तु जिनका कुछ अज्ञान पतला पड गया होवें उसके कान खोलनेके लिये यह बार्ता जाहिर की है. दूसरी जगहभी कहा है कि:—

ऋग्वेदका मंत्र.

ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्ठितान् चतुर्विंशति तीर्थंकरान् ऋषभाद्यान् वर्द्धमानातान् सिद्धान शरण प्रपद्ये

यजुर्वेदका मंत्र.

ॐ नमोर्हतो ऋषभाय, ॐ ऋषभपवित्र पुरहुतमध्वर यज्ञेषु नग्न परममाह संस्तुतावार शत्रुंजय त सुरिंद्रमाहुतिरिति स्वाहा

यजुर्वेदका दूसरा मंत्र

ॐ त्रातारमिन्द्र ऋषभवदति अमृतारमिन्द्र हवेसुगत सुपार्श्वमिन्द्र हवेसक्रम जित तद्वर्द्ध मानपुरुहुतमिन्द्र माहुतिरिति

तीसरा मन्त्र

ॐ नग्न सुधीर दिग्वासस ब्रह्मगर्भसनातन उपैमिवीरपुरुपमर्हतमादित्यवर्णं तमसः पुरस्तात स्वाहा–

पुन ऋग्वेद–मत्र १, अ १४ सू १०

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि.

इस तरह वेदमें मत्र हैं वो दयानदछलकपटदर्पन नामक किताबमें मैंने पढे हुवे हैं [पत्र २१९ वेमें हैं ] उसपरसें वेदके जाननेवाले शास्त्रीको मैंने वतलाये और पूँछा कि–'ये मत्र तुमारे वेदमें है ?' शास्त्रीजीने सत्यदशा ग्रहण कर कहा कि–' हम हमेशा वेदाध्ययन करते है उसमें ये मत्र आते हैं ' उन शास्त्रीके कथनसें प्रतीति हुइ कि वेद अदरकेंही हैं. उससें इस किताबमें दाखिल कीये हैं जो हठ विगरके होंवें उसें समझा जाँय कि जैनके देवकोंभी वेदवालोंने मान्य किये हैं, तो उन्होंकी निंदा क्यों कर करु ? फिर जैनधर्म नया है अैसा जिनके दिलमें हो तो शोचो कि जैनके ऋपभदेवजीसें लगाकर चोइसवे महावीरस्वामी तक चोइस तीर्थंकरकों बहुत मानपूर्वक नमस्कार किया है तो ये जैनधर्मके देव हुवे वाद वेद हुवे या पेस्तर ? जो वेद अनादि होता तो इन देवोंका स्मरण न होता, [ क्यों कि ये नाम तो इन चोवीसीके देवके हैं ऐसी तो अनत अनत चोवीसी हुइ हैं यदि वेद पुराना होता तो वो वात उसमें आती, मगर वो नहीं है, वास्ते इन वर्त्तमान चोइसीके पीछे वेद रचा गया होना चाहियें ऐसा प्रमाण मिल्ता है ] वास्ते जैन अनादि है यह वेदसेंही निश्चय हो जाता है, मगर यह वात जिनका मिथ्यात्व पतला हो गया होवे उसकोंही समझमें आयगी, परतु जो हठवादि कदाग्रही है–अज्ञानका पूर्ण जोर है वैसे मनुष्यकों सत्य विचार करनेकी वुद्धिही जाग्रत नहीं होती, और सत्य समझनेमें आताही नहीं. ' करते आये हैं वही करना '–इतना सिर्फ समझ रख्खा है जब अज्ञान दूर हो जायगा तव सच्चा या झूठा ढुढनेकी वुद्धि जाग्रत हो आयगी, और सत्य अगीकार करेगा जो जो मनुष्य अपना देव मानते हैं और उन देवोंने धर्म वतलाया है उन मुजब वो देव धर्ममें चले हैं या नहीं ? उस वास्तेही देवोंके चरित्र शास्त्रोंमें वतलाये हैं, वो देख लेने चाहियें और उन चरित्रोंमें जिस मुजब अपनकों नीति रीति रखनेके लिये फरमाया गया है उसी मुजब वै पुरुष आपकी नीति रीति–वर्त्तन रखते थे या नहीं ? और

सर्वज्ञपणा माना जाता है यो चरित्रोंके उपरमें सिद्ध-साबित होता है या नहीं? और उसकी सबूती न मिले तो पीछे उन्होंकों देव किस लिये मानने चाहियें ऐसा विचार अज्ञान दूर हटनेसेंही आवेगा; मगर उस बिगर न आवेगा. फिर गुरुपणा धराते है और लोगोंकों धर्मोपदेश देते हैं कि अहिंसा धर्म (दया) सर्भमें मुख्य है यों समजाते हैं, मगर आप खुद हिंसाका त्याग करते नहीं. झूठा न बोलना यह बात षट्दर्शनवालोंकोंभी मान्य है; तोभी गुरु होकर झूठ बोलनेमें बिलकुल नहीं डरते हैं. चोरी करनी नहीं, किसीकों ठग लेना नहीं क्यौं कि ये जगतमें निंदनीक है और उसका कुल धर्ममें निषेध किया है, तदपि गुरुनाम धारण करकें चोरी, ठगाइ, कपटके काम करते है परस्त्रीका त्याग सब धर्मोमें है और जगतमें अनिंदनीय है तथापि गुरु होकर सेवककी स्त्री, बहन, माता और लडकीके साथ मैथुन सेवनेमें नहीं डरते है. साधुकों धन न रखना चाहियें, ये आर्यधर्मकी मर्यादा है, तौभी सेवकके पाससें धन लेते हैं फिर कपट लुचाइ करकें धन लेतें हैं सेवकोंपर जुल्म गुजारकर धन हाथ करते हैं ऐसी वर्त्तना करनेवालेकों गुरु मान लेवे, उनकों हजारा: रुपैये दे देवै ये तमाम अज्ञानदशाकी सबलता है. ऐसेकों गुरु माननेका विचार नहीं वो दूसरे सत्य असत्य धर्मकों क्या तपास लेवैगा? अज्ञानतासें ऐसे अज्ञानी गुरुसें ठगाते हैं, उतनेसेंही बस नहीं होता, मगर आगतजन्ममें सचे धर्मकी निंदा करनेसें जो कर्म बंधे जाते है उससें जन्मोजन्म दुर्गतिके दुःख भुक्तेंगे और जो पुरुष आत्मार्थी हुवा है अगर थोडा अज्ञान दूर हो गया है उसके प्रभावसें न्यायकी बुद्धि जाग्रत होती है उससें सत्यासत्य मार्गकी परीक्षा करकें खोटा मार्ग त्याग कर सचा मार्ग अंगीकार करता है जैसें गौतमस्वामीजी श्रीमन् महावीरस्वामीजीकी महत्त्वता सुनकर बहुतही रोष और अहकारमें व्याप्त हुवे थे, और भगवानजीके साथ वाद करनेकों समोवसरणमें आये थे, लेकिन भगवतजीने वेदके अर्थ समझाकर सचा मार्ग गौतमस्वामी महाराजकों समझा दिया, वो गौतमस्वामीजीनें न्यायकी बुद्धिमें विचार करकें सत्य जानकर ग्रहण किया, और आपके असत्य धर्मका त्याग किया, और भगवान् सर्वज्ञ है ऐसा दृढ करके आप भगवानजीके शिष्य हुवे भगवतजीने वासक्षेप किया उतनेमें भगवानजीके प्रभावसें करकें आवरण क्षय होनेके सबबसें द्वादशांगीके ज्ञाता हुवे क्रमसें करके शुक्ल ध्यानमें स्थिर हो घातीकर्म क्षय करकें केवलज्ञान पाये और मोक्षमें

पधारे, वैसें जो जो आत्मार्थी पुरुषोंनें अज्ञान खपाकर ज्ञान प्राप्त करकें अज्ञान खपानेका मार्ग दर्शाया है, वो मार्ग अंगीकार करकें चलना कि सहजहीमें अज्ञान क्षय हो जायगा. जिन पुरुषकी अंदर अज्ञानका अशभी नहीं रहा है वही पुरुष सर्वज्ञपणा प्राप्त करता है और भगवानजी उनीकोंही कहे जाते है

१४ मिथ्यात्व नामक दोष है सो मिथ्यात्व किसकों कहा जाय उसका खुलासा करते हैं सच्ची वस्तुकों झुठा मान लेवे, झुठी वस्तुकों सच्ची मान लेवै, सत्यको असत्य मान लेवै, असत्यको सत्य मान लेवे, धर्मको अधर्म मान लेवै, अधर्मको धर्म, देवकों अदेव, अदेवकों देव, चेतनकों अचेतन, और अचेतनका चेतन माने याने जो जो पदार्थ है उसके जो जो धर्म रहे हैं उससें विपरीत धर्म मान लेवै, या न्यायकों अन्याय और अन्यायकों न्याय मान लेवै ऐसी विपरीत बुद्धि होवै वो मिथ्यात्वकी राजधानी है यहापर कोइ शका उठावेगा कि 'अज्ञान नामक दूषण कहा गया उसमें और मिथ्यात्वमें क्या तफावत है?' उन शकाके समाधानमें यह खुलासा है कि अज्ञानसें करकें जडबुद्धि होती है और मिथ्यात्वसें करकें विपरीत बुद्धि होती है—यह तफावत है जिसको मिथ्यात्व है उसकों अज्ञानभी है, और जिसका अज्ञान है उसका मिथ्यात्वभी है यह दोनु साथही रहते है उससें एकत्रता मालूम होगी, मगर दो शब्दके मायने अलग हैं और भावभी भिन्न है ये मिथ्यात्वकी बुद्धिवालेकों बहुत प्रकारके हैं वो समझाने लिये सिद्धातकारने पचीश भेद कहे हैं और वो पचीश प्रकारसें श्रावकके बारह व्रत अंगीकार कर लेवै तब सम्यक्त अंगीकार होतेही पचीश प्रकारसें त्याग करते हैं वो स्वरूप किंचित् यहा लिखता हु

१ अभिग्रह मिथ्यात्व सो कुगुरु, कुदेव कुधर्मका झुठा हठ पकडा हुवा है वो मिथ्यात्वके जोरसें गर्दभ पुछकी तरह छोड देवै नहीं, यह देखकर किसी पिताने पुत्रकों समझाया कि जो पकडना सो छोडना नहीं उस वातका विशेष स्वरूप समझ लिये विगर वो बात चित्तमें निश्चयतासें कायम करकें पीछे कोइ वखत बाजारमें गया वहां गद्दा दोडता हुवा आया उसकों रोकनेके वास्ते उसका पुछ पकड लिया जब उस गदेन लाते मारनी शुरु की तब वे लातें खानीही शरू रक्खी, लेकिन पकडा हुवा पुछ न छोड दिया वो देखकर लोगोंकों दया आनेसें उसकों समझाया कि 'पुछ छोड दे, नहीं तो लातें खाकर मर जायगा' उसने परही जवाब दिया कि-

'मेरे बापने मुझकों शिक्षा दी है कि जो कुछ पकड लिया सो कभी छोड देना नहीं, वास्ते मैं पकडा हुवा पुछ बेहोश होनेतक न छोडुंगा' ऐसा कहकर पुछ न छोडा और लातें खाकर दुःखी हुवा, वैसी तरह यह मिथ्यात्वके जोरसे सद्गुरु सच्चा मार्ग बतलावें-बहुत तरहसें समझावें, तदपि सुगुरुका वचन मान्य न करे और कहवे कि जो बापदादे करते आये हैं वही करना क्या बुढे दीवाने थे? ऐसे हठ पकडकर सच्ची बात न समझे और प्रत्यक्ष कुगुरु अपनी औरत या माता भगिनीके साथ बुरी तरहसें चालचलन करता होवे तौभी बापदादाका हठ पकडकर कुगुरुकों न छोडे सो अभिग्रहिक मिथ्यात्व कहा जाता है

२ दूसरा अनभिग्रही मिथ्यात्व सो सच्चे देव और खोटे-जुठे देवकों, कुगुरु सुगुरुकों, और सत्य धर्म असत्य धर्मकों-इन सबको समान समझे, सुदेव और कुदेवकों भी नमस्कार करें, सच्चे जुठेका भेद न मानें, मुहसेंभी बोले कि सर्व देवकों नमस्कार करना, मगर उसका परमार्थ नहीं जानता है कि देवको तो नमस्कार करना योग्य है, लेकिन देवपना नहीं और उसमें देवपना कैसें मानना चाहिये, ऐसा विचार नहीं, उससें गुणी निर्गुणीकों समान मानता है उसमें भाग्योदयसें सुगुरु मिला तो कल्यान, मगर वो मिल न सके यदि मिले तो ऐसी बुद्धि रहत नहीं, और एसी बुद्धि रही है तो उससें मालुम होता है कि कुगुरु मिले है और उसकी संगतीसें तत्त्वकों अतत्त्व मान लेवे उससें शुद्ध आत्मधर्म और आत्मधर्म प्रकट करनेके कारण न मिल सकै. और भवका विस्तार होवै नहीं, वास्ते आत्मार्थी सत्य असत्यकी परिक्षा करकें शुद्ध देवगुरु धर्म अंगीकार करना कि अनभिग्रहीक मिथ्यात्व दूर हो जाय

३ अभिनिवेशिक मिथ्यात्व सो सत्य देवगुरुकों जाने, मगर मिथ्यात्वके जोरसें उसकों आदरे नहीं कोइ समझावे तो उसकों कहवे कि बाप दादे मान्य करते हुवे आये है वो कैसें छोड दिया जावे! यदि छोड देवें तो नाककट्टी हो जाय, बाकी हम जानते है कि अच्छे तो नहीं हैं' ऐसा जवाब देवे और ममत्व करकें असत्य प्ररूपणा करै-खींचा तानी करे-उन्मार्ग बतलावै, आत्माकों कर्मबंधनका भय नहीं उससें वीत रागका मार्ग सत्यजाने तौभी कीसी तरह अपने अहंकारके लिये प्ररुपणा न करै आप वर्तेभी नहीं और सत्यपर द्वेष करे. ऐसे हठवादी पार्श्वनाथजीकी परंपराके साधु गोशालाके साथ रहे हुवेथे उनोंकों श्रीमन् वीरप्रमात्माजीके श्रावकने जाकर कहा

कि-' आपने श्री पार्श्वनाथजीका उपदेशभी श्रवण किया है और गोशालेकाभी श्रवण कीया है, उसमें सत्य क्या है ?' उस वक्त उन साधुने जवाब दिया कि-महावीर स्वामीजी जैसा पार्श्वनाथजी उपदेश देतेथे वैसाही देते हैं, परंतु हमकों तो ममत्व बधाया है उससें वीरका मरोड उतारेंगे हम दुर्गति जानेमें नहीं डरते हैं' असा जवाब अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके जोरसें दिया वीसी तरह वर्त्तमान समयमेंभी सच्चा जान नेपरभी असें आग्रहसें उत्सूत्र बोलतें नहीं डरते हैं, दूसरे जीवोंको उन्मार्गका उपदेश दे कर उनकोंभी उन्मार्गके अंदर सामिल करता है वीतरागके सत्मार्गकी निंदा करे असी दशा है सो मिथ्यात्वके प्रबलताकी है और असी दशा है वहा तक अपने आपके सहज स्वभावकोंभी न पिछान शकैगा विभाग स्वभावकों न छोडेगा और शुद्ध तत्त्वकी श्रद्धाभी न रहवैगी वास्ते ये मिथ्यात्वका परिहार करना

४ संशय मिथ्यात्व सो वीतरागजीके वचनमें संशय पडे; जैसें कि शास्त्रमें ऋषभदेवजी महाराजके समयमें पांचसो धनुषके मानव शरीर थे, और आयु क्रोड पूर्वका था एसा सुनकर शंका करें कि-' इतना बडा शरीर और आयुष् होवै नहीं ' ऐसा मानकर प्रभुजीके वचनकों न सर्दहै, लेकिन शोचै नहीं कि ऐसी गतसमयकी बावतें और अरूपी पदार्थकी श्रद्धा आप्त पुरुषकी जो सर्वज्ञ उनके वचनकी प्रतीत करनेसें होती है, वास्ते आप्त पुरुषकी पेस्तर प्रतीति कर लेनी चाहियें. प्रतीति करनेका साधन अभी तो इतनाही है कि जो जो लोक जो जो देवकों मानते हैं उन देवोंकों वै सर्वज्ञ मानते हैं, तो वें देव सर्वज्ञ है या नहीं वो मध्यस्थ बुद्धिसें तपास करनेके वास्ते सब देवोंके चरित्र पढ देखना, उसमें सर्वज्ञताकी न्यूनता मालुम हो आवै या नहीं जैसे कि महादेवजीनें पार्वतीके बनाये हुवे पुत्रकों पुत्र न जाननेसें उसकों जारपुरुष जानकर मार डाला फिर उसका उडाया हुवा शिर कहां गया योभी ज्ञानसें मालूम न हुवा, उससें हाथीका शिर ल्याकर गनपतिके धडपर कायम किया एसे दृष्टांत देखनेसें सर्वज्ञ है या नहीं वो प्रतीति हो जायगी वीसी तरह श्री महावीरस्वामीजी केवलज्ञान पाकर सर्वज्ञ हुवे पीछे सर्वज्ञताकी खलना किसी जगहपर नहीं होती है तो जिस पुरुषमें सर्वज्ञताकी न्यूनता मालूम नहीं होती उस पुरुषके वचनमें संशय न करना चाहियें युक्ति करनेकी शक्ति होवै तो उस युक्तिसें तपास करनी मुनासिब है वर्त्तमान समयमेंभी हवाकी फेरफारीसें मजबुत मनुष्य

मालूम होते हैं, त्रीसी तरह उस समयकी हवा असी अनुकूलथी उससें ऐसे बन शकें ऐसा विचार करनेसें हमको तो वीतरागजीके वचनमे कोइभी संशय होताही नहीं. और दूसरेके चरित्र देखे तो उसमें सर्वज्ञताकी न्यूनता नजर आइ है आधुनीक समयमें चरित्रचंद्रिका नामक बुक छापी गइ है उसमें बहुतसें देवोंके चरित्र हैं वो मैंने अवलोकन किये हैं, वीसी तरह परीक्षक जनोंको मध्यस्थ बुद्धिसें पढनी दुरुस्त है. उस किताबमें महावीरस्वामीजीकाभी चरित्र है वो बरोबर नहीं लिखा है तौभी उसमें सर्वज्ञताकी न्यूनता नहीं है जैनाचार्य हेमचंद्राचार्य कृत द्विजवचनचपेटा और धर्मपरीक्षाका राश ये दो पुस्तक देखोगे तो कितनेक देवके चरित्र नजर आवेंगे और उनकी सर्वज्ञताकी न्यूनताभी मालूम हो जायगी, वास्ते जिनपुरुषमें न्यूनता नहीं है उन पुरुषके वचनमें कोइभी बाबतके वास्ते संशय हो आवै उसें संशय मिथ्यात्व जानना.

५ अनाभोगिक मिथ्यात्व सो जिसकों ये मिथ्यात्वका संग हुवा हो उसकों धर्मकर्मकी खबर नहीं होती है, उसकी खोजनाभी नहीं, और मूढतामें मस्त रहता है. धर्मके सन्मुख दृष्टिही नहीं देता; जैसे कि एकेंद्रि प्रमुख जीव अव्यक्तपणेमेंही काल गुमाते हैं, वैसें वो काल गुमावे, उसें अनाभोगिक मिथ्यात्व कहा जावे.

अब दश प्रकारका मिथ्यात्व ठाणांगजी सूत्रमें फरमाया है तदनुसार लिखता हुः—

१ धर्मकों अधर्म मानै वो मिथ्यात्व. अब धर्म है सो दो प्रकारका हैं याने एक निश्चय धर्म सो आत्मस्वभावमें रहना और उससें विपरीत जो जडधर्म है, उसमें प्रवर्त्त कर उसें धर्म मान लेना सो अधर्म. पुद्गल प्रवृत्ति दो प्रकारकी है-एक पुद्गल प्रवृत्ति आत्मधर्म प्रकट होनेके कारणरूप है, वोभी आदरणीय है, उसकों व्यवहार धर्म कहा है. निश्चय और व्यवहार इन दोनु धर्मोंकों जो जो स्वरूपसें है उसी स्वरूपसें मानना वो धर्म, और उससें विपरीत मानना सो मिथ्यात्व, व्यवहार धर्म, जो जो गुणस्थानपें गुणस्थान मर्यादा मुजब न आदरे और धर्म मानै येभी मिथ्यात्व है हृदयमें निश्चय धर्म; धारण करना वो न करै और व्यवहार वर्त्तनाकोंही निश्चयरूप मान लेवै तो वोभी मिथ्यात्व है. जो जो अंशसें आत्मां निर्मल होवे, कषायादिसें मुक्त होवे उसकों निश्चय धर्म कहा जाय वो प्रकट होवे वैसे कारण अंगीकार करने चाहियें. कारणकों कारणरूप मानकर वर्त्तनेसें ये मिथ्यात्व दूर हो जायगा.

२ अधर्मको धर्म मान लेवे याने अनादि कालका जीव अधर्मको सेवन कर रहा है फिर अधर्मीके कुलमें जन्म पाया है उससें उनकी बातें सुनकर जो रीतिसें श्रद्धा करें और हिंसा करकें धर्म मान लेवें, जैसें कि कितनेक लोग विच्छु, साप, सेर-सिंहादि हिंसक जीवकों मारडालनेमें धर्म है ऐसा मानते हैं फिर बकरीदमें बकरे मारनेमें धर्म मानते है इस तरह अज्ञानतासें जीवहिंसा करकें धर्म मान लेवे सो अधर्मको धर्म मानते है ऐसाही कहा जायगा, पुन लोगोमें आर्यलोग कहे जाय, दयालुभी कहे जाय और कितनेक बकरे घोडे वगैर जीव यज्ञ करकें उसमें होम देवे उसकों धर्म मानें, कोइभी जीवकों दु ख होवे तो उसका फल यही है कि उस पापसें अपनकों दु ख भूक्तना पडे ऐसा सब धर्म-मजहबवाले मानते है, तथापि ऐसे प्राणीओं कों दु ख देनेमे पाप नही मानते है ये अधर्मको धर्म मान लिया कहा जायगा, वास्ते जो जो मनुष्य कोइभी जीवकों दु.ख देना, जूठ बोलना, चोरी करनी, परस्त्रीगमन करना, धनकी तृष्णा रखना-इन वस्तुओंमेंसें कोइभी वस्तु करके धर्म माने वो अधर्म कों धर्म मान लियाही कहा जायगा यहापर कोइ प्रश्न करेगा कि तुमारे जैनी घोडे गाडीपर बेठनेवाले, अच्छे आभूषण जेवरके पहननेवाले, ढोलीयेपर अच्छी शय्या बिछाकर सोनेवाले और हर हमेशा मिष्टान भोजनके करनेवाले सुखिये जीवकों ससार छुडा करकें दीक्षा दिलाकर नगे पेरसें चलाते हो, खुले शिरसें फिराते हो, जमीनपर सुलाते हो, घर घर भीख मगवाते हो, जैसा ( लुखा सुका ) आहार मिलें वैसा खिलवाते हो और सुदर विगय खानेका मना करते हो ये क्या ? उसकों दु ख देकर धर्म मान लिया है ऐसा न कहा जायगा? इस विषयम खुलासा करेंगे कि हमारे जैनी मुनि महाराज किसीकोंभी जोराइमें-जबरदस्तीसें इस तरह नही करवाते हैं और जबरदस्तीसें इस प्रकारका कुछभी किसीसें करवावें और धर्म माने तो बेशक तुम कहते हो वैसाही होवे, मगर हमारे मुनि तो ससारमें क्या क्या दु ख है, फिर ससारमें सुखकों दु.ख माननेसें क्या फल होता है, मोक्षसाधन किस तरह किया जाता है उसका धर्मोपदेश देते है वो धर्मोपदेश आत्माथीजन सुनकर जड शरीरमें रही हुइ अज्ञानताकी प्रवृत्ति अनिष्ट लगती है और आते जन्ममें विषय कषायके कडुफल जाननेमें आते है वो जानकर ससारका त्याग करकें ऐसी प्रवृत्ति अपनी प्रसन्नतासें करते हैं, और वैसा करनेमें ससारमें जो जो धन पैदा करनेके दु ख हैं, रसोइ बनानेके, वस्तु ल्याने

के आभूषनका बोजा उठानेके और विषयभोगसें शरीर खराब–पायमाल करनेके दुःख दूर हो जाते हैं (विषय सेवनके समय शरीरको कितनी तकलीफ उठानी पडती है और सेवन कर रहे पीछेभी शरीरकी कैसी स्थिति हो जाती है? वैसे कुल दुःख दीक्षाग्रहण करनेसें दूर हो जाते हैं.) क्रोडपतिकोंभी धन संबंधी कितनी फिकर करनी पडती है? कुटुंब होवे तो उनके झगडेमें कितना दुःख? उनकों अज्ञानपनेसें दुःख नहीं मानते है; लेकिन बुद्धिसह शोच किया जाय तो संसारमें प्रातःकालसें उठ खडा होवे वहासें लगाकर फिर रात्रिमें सोने तक कितने दुःख भुक्तने पडते हैं, उनमेंसें एकभी दुःख साधुपनेमें नहीं है सदाकाल आनंदमेंही जाता है, नया नया ज्ञान प्राप्त होता है, उससें बुद्धिमान जन महान प्रसन्नतामें रहते हैं; वास्ते जैनी लोग किसीकों दुःख देकर धर्म नहीं मानते हैं. और जो जो आत्मार्थी जन हो उनोंकों उक्त कथित पांचों अधर्ममेंसें कोइभी अधर्म प्रवृत्ति करके धर्म नहीं मानना, और जो मानेगा तो वो अधर्मकोंही धर्म मान लिया कहा जायगा

३ मार्ग जो मोक्षमार्ग है वो मार्ग साध्य करके वीतरागपणेकों पाये हैं, आत्माका ज्ञान–दर्शन–चारित्र रूप गुण प्रकट किये है, केवलज्ञानसें करके जगतके भाव एक समयमें जान रहे हैं, वैसे पुरुषोंनें बताया हुवा मोक्षमार्ग याने मोक्षसाधन उस साधनकों उन्मार्ग माने और उसका आराधन न करे, आराधन करनेवालेकी निंदा करे उस मार्गकों उन्मार्ग माननेरूप मिथ्यात्व जानना

४ हिंसा करनेकी बुद्धि देवे, झूठ बोले, लोगोंकों ठग लेनेमें न डरे, स्त्रीगमन करे, पैसेका ममत्व लोभ ज्यादे रक्खे, वैसे गुरुकी सेवा करके धर्म माने याने जगतके पदार्थका जिसकों ज्ञान नहीं, तदपि पदार्थका स्वरूप विपरीत बतलावे और बोले कि यह मोक्षमार्ग है पांच यम तो जगत्प्रसिद्ध है, वो यमकों अच्छे कहवे; मगर आप पालन न करे विगर छाना हुवा [ अनगल ] पानी उपयोगमें लेवे, उसमें त्रस थावरजीवकी हिंसा होवे और नदीमें न्हानेमें पुन्य माने शोच करो कि महाभारतमें दुपट गलणा रखकर पानी गालनेका कहा है, तो नदीका पानी किसतरह छान लिया जायगा? न छाना जाय तो हिंसा होयगी और पीछे कहने लगे कि नदीमें न्हानेका महा पुन्य है यज्ञ करके जीवहिंसा करनेका उपदेश देवे उसकों मोक्षमार्ग कहे. फिर जैनी होकरभी संतानकी, धनकी, और परलोकमें राजा देवता होनेकी लालचसें प-

मैकरणी करै और उसको मोक्षमार्ग मानै, यहभी उन्मार्गको मार्ग माननेरूप मिथ्यात्व है फिर मानके लिये, यशके लिये और लोगोंको अच्छा बतलानेके वास्ते आत्महितकी बुद्धि विगर वीतराग मार्गकी अश्रद्धानपणेसें जो धर्मकरणी करै वो उन्मार्गको मार्ग माननेरूपही है पुन जो मार्ग वीतरागजीने शास्त्रमें निषेध किया है वैसी धर्मकी प्रवृत्ति करके मार्ग मानै, अविधिमें प्रवर्त्त कर दूसरेको प्रवर्त्तना करावै वो उन्मार्गको मार्ग माननेरूप मिथ्यात्व जानना

५ जीवको अजीव मानै सो मिथ्यात्व, जैसे कि कितनेक नास्तिकमति तो जीवही नहीं मानते पाचभूत मिलकर शरीर बनता है सो जीव है, उस विगर जीव अलग नहीं पाचभूत विखर जाय कि कुछभी नहीं परजीवभी नहीं, ये जीवको अजीव माननेवाले सर्वथा प्रकारसें जानना कितनेक पचेंद्रि तिर्यंचको जीव मानै, परतु पाच थावरको जीव नहीं मानते हैं येभी जीवका अजीव माननेका मिथ्यात्व जानना. जैनी लोग पांच थावरको तो जीव मानते है, मगर कितनीक शास्त्रके बोधकी खामीसें सचित्त वस्तुको अचित्त माननी होती है जैसें कि गुलाबजल कितनेक समयका हो उसको कितनेक सचित्तके त्यागी अचित्त मानकर उपयोगमें लेते है शास्त्रमें सबसें ज्यादे चूनेके पानीका काल है चूनेके पानीसें गुलाबजलमें कुछ ज्यादे गर्मी नहीं है कि उससें ज्यादे काल तक रहनेसें सचित्त न होवै ऐसा विचार करनेसें सचित्त होवै ऐसा मालूम होता है। तथापि अचित्त मानना योग्य नहीं और जो जो जीव पदार्थको अचित्त माननेसें जीवको अजीव माननेरूप मिथ्यात्व लगै, वास्ते सर्वज्ञमहाराजजीने जिसको जीव कहे है उसको जीव कहनेसें यह मिथ्यात्व दूर होता है

६ अजीवको जीव मानना सो मिथ्यात्व, वो सब शरीर है सो अजीव है सो मेरी हु, यु करके ममत्वभाव करना पुन बेसमझसें शास्त्रमें जिस वस्तुको अचित्त कही होवै उसें सचित्त मानै तोभी मिथ्यात्व लगै

७ साधुको असाधु मानना सो मिथ्यात्व है जो मुनीमहाराज पचमहाव्रत पालते हैं, प्रभुजीके हुकम मुजब चलते है, मोक्षमार्गमें तत्पर हो रहे है, स्त्री धनकी ममतासें दूर है और सावद्य वचन मात्र नहीं बोलते हैं ऐसे मुनीराजको असाधु मानै उसने ससार-धन-स्त्रीके अभिलाषी गुरुओंका सग किया है उनोंने बुद्धिको विपरीत बना दी है, उसस स र साधुको असाधु मानै ये मिथ्यात्व है सच पूछेकी

परीक्षा ज्ञान हुवेस होती है, उस बिगर जिस जिस मजहबमें जो जो पडे हैं-फसे हैं वै दूसरे मजहबके साधुकों खोटे-झूठे मानते है, और हरएक मजहब-पथमें रचनाभी ऐसी हो गइ है कि जिस्सें उत्तम पुरुषभी ऐसाही मानकर एकदूसरेकी निंदा करते हैं मगर इतना विचार करें कि पांच यम तो सब दर्शनवाले मानते है और यथार्थ प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह यह पांचों वस्तुके सपूर्ण त्यागवाले कौनसे साधु है ऐसा जो दर्यापत करै तो जल्दी समझनेमे आ जाय, और उत्तमपुरुषकी निंदा करनी मोकूफ हो जाय

८ असाधुकों साधु माने सो मिथ्यात्व है, याने असाधु जो साधु नाम धारण किया है, मगर धन और स्त्रीका त्याग नहीं किया है, जीवहिंसादि आरभकों तो नहीं छोडा है, व्यापार राजगार करते है, मत्र यत्र करकें आजीविका निभाते हैं, लोगोंकों विपरीत समझाकरक पैसे लेते हैं, ऐसेकों साधु मानना सो, और कितनेक लोगोंकों ठगलेनेके लिये बाह्यसें धनका त्याग बतलाते हैं, लेकिन चित्तमें पैसेकी इच्छा होवे वोभी असाधु कहे जाय कितनेक साधुपणा पालते हैं, परतु वीतरागजीके वचनकी श्रद्धा नहीं। कितनेक परलोकके सासारिक सुखकी इच्छासें साधुपणा पालते हैं, मगर मोक्षके लिये उद्यम नहीं करते हैं. पुन. कितनेक पचागीकों नहीं मानते हैं; जिनप्रतिमा भगवतजीने मान्य करनी कही है-गृहस्थीयोंकों पूजनेके लिये फरमाया है; तथापि गृहस्थकों उपदेश करें कि जिनप्रतिमा पूजनी नहीं, पूजनेसें पाप होता है, ऐसी प्ररूपणाके करनेवालेभी असाधु कहेजाते हैं उनोकों साधु मानै सो असाधुकों साधु माननेरूप मिथ्यात्व जानना दूसरी रीतिसे आपकी विभाव परिणति नहीं मिटी है, विभावमें [ विषयकषायमें ] मग्न रहेवे और आपके मनसें " मै अच्छा करता हु " ऐसा मानकर आपकी प्रशसा करै सो आपके विषें असाधुपणा है; तद्वपि आपमें अच्छापणा-साधुपणा मानना सो असाधुकों साधु माननेरूप मिथ्यात्व है

९ सिद्धभगवान जो अष्टकर्म याने ज्ञानावरणी क्षय करकें अनतज्ञानरूप केवलज्ञान प्रकट किया है दर्शनावरणी कर्म क्षय करकें सामान्य उपयोगरूप केवलदर्शन प्रकट किया है. मोहनीकर्म क्षय करके चारित्रगुण ( आपके आत्मस्वभावमेंही स्थिर रहना उस रूप चारित्रगुण ) तथा क्षायक समकित प्रकट किया है अतरायकर्म क्षय करकें अनतवीर्यादिक गुण प्रकट किये है नामकर्म क्षय करकें अरूपीगुण प्रकट किया

है, गोत्रकर्म मक्ट करके अगुर लघुगुण प्रकट किया है वेदनीकर्म क्षय करके अव्या-बाधसुख मक्ट किया है आयुकर्म क्षय करके अक्षयस्थितिकों पाये हैं इसतरह आठ कर्म क्षय करके अष्टगुण प्रकट किये है-ऐसे सिद्धमहाराजजीकों सिद्ध न मानें-भगवत न मानें और ऐसे पुरुषकी निंदा करै, ऐसे देवकों देव मानते होवे तो उसकों उलटा सुल्टा समझाकर ऐसे देव परसें आस्ता उठावें ये मिथ्यात्व सेवनसें आत्माके शुद्ध गुणभी कोइ दिन मक्ट नहीं होवे, सबब कि ऐसे गुणकी इच्छा होवे तो ऐसेही पुरुषके गुणग्राम करता, मगर नहीं करता है और निंदा करता है वही मिथ्यात्व जानना

१० सिद्ध नहीं हो याने जिनके अष्टकर्म रहे हैं, नये कर्मभी बांधे रहते हैं, विषयकषायमें आसक्त है, वो उनके चरित्रसें सिद्ध होता है, ऐसा होनेपरभी वैसे देवोंकों सिद्ध मानना-भगवत मानना, उनोंकी आज्ञा मुजब चलना, वही संसारवृद्धिका कारण है वही आत्माके गुणोंका घातकारक है वास्ते मिथ्यात्व छोडनेका इतनाही उद्यम करें कि अपनकों धर्मकरणी करनेकों बतलाते है वो करणी करके देवोंने देवपणा माप्त किया है या अपनकोंही विषयकषायसें मुक्त होनेका कहकर आप खुद विषयकषायमें मग्न रहते है? यदि कथन मुजब वर्त्तन न हो तो एक ठगाइ जैसा काम हुवा ऐसा बुद्धिमानोंकों सहजमें समझमें आ जायगा और जिसमे गुण प्रकट हुवे हैं वोभी समझमें आयगा वास्ते अष्टकर्म क्षय किये होवे वही सिद्ध-भगवान्-देव-ईश्वर माननें योग्य है ऐसा करनेसें ये मिथ्यात्व दूर हो जायगा- यह दश प्रकारके मिथ्यात्व हैं

औरभी छ. मिथ्यात्व है याने पहिला लोकिक देवगत मिथ्यात्व सो उपरके दश मिथ्यात्वकी अंदर असिद्धकों सिद्ध माननेका मिथ्यात्व लिखा है वैसे देवकों देव मानना या सासारिक कार्यके लिये मानत-आखडी रखनी उसे लोकिकदेवगत मिथ्यात्व कहाजाता है १,

दूसरा लोकिकगुरुगत मिथ्यात्व सो गुरुनाम धराके रातदिन पांच अव्रत सेवन करै ऐसे सन्यासी-फकीर-पादरी वगैर कों गुरु मानना सो गुरुगत मिथ्यात्व कहाजाता है २,

तीसरा लोकिकधर्मगत मिथ्यात्व सो जिस पर्वके दिन धर्मका परमार्थ रहा नहीं, फक्त कितनेक पाखंडीओंने उत्पन्न किये हुवे पर्व याने होली, बलेव (श्रावणी

पूर्णीमी ), नागपचमी, राजनछठ, शीलसप्तमी, वगैर' पर्वको धर्मपर्व मानना, और हिंसामय, विषयकषायमय प्रवृत्तिको धर्मप्रवृत्ति माननी, तथा पुद्‌गलभावकी प्रवृत्तिको धर्मप्रवृत्ति माननी उसें लौकिकधर्मगत मिथ्यात्व कहाजाता है. ३,

लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व, सो श्री तीर्थंकरमहाराजजीको तो मुक्तिके वास्ते देव मानना ये तो योग्य है, क्यों कि मुक्तिके लिये माननेसें समस्त कार्यसिद्धि होती है; परतु वो इच्छा छोडकर ससारी कामके लिये मानना याने मेरे बेटा होगा तो मैं सो रुपये चडाउगा ऐसी मानत माननेसें लोकोत्तर मिथ्यात्व लगता है, सबब कि भगवतजीकी यथार्थ श्रद्धा होवे तो सहज स्वभावसेंही होगा, लेकिन पुत्र होवेगा तो चडाउगा ऐसा न माने वो तो युही जानता है कि जितनी बन सके उतनी भगवतजीकी भक्ति करनी भक्ति सब कार्य-सिद्धिदायक है. भगवतजीकी भक्ति करनेपरभी कभी कार्यसिद्धि हाथ न लगे तो जानता है कि जो बनता है सो पूर्वकर्मके उदयसें बनता है और निकाचित कर्म टालने-हटानेको कोइ समर्थ नहीं भगवान् वीरस्वामीजीकोभी कर्म उदय आये सो भुक्तने पडे, ऐसा शोचकर श्रद्धा भ्रष्ट न होवे और जिनकी श्रद्धा मजबूत नहीं है उनकी विचारणा मानत माननेकोंही रहती है. पूर्वके निकाचितकर्मके जोरसें कार्य न हुवा तो फिर उसकी कुछ बाबतोंमें अज्ञानताके मारे श्रद्धा उठ जाती है और धर्म भ्रष्ट होता है, वास्ते ऐसी मानत-आखडी न करनी करनेसें लोकोत्तर मिथ्यात्व लगता है पुनः जिनपुरुषका मिथ्यात्व नष्ट हुवा है उनोनें तो भगवतजीनें मोक्षमार्ग बतलाया है वो अगीकार किया है, उससें मोक्षके सिवा पुद्‌गलीक सुखकी इच्छाही नहीं है. फकत आत्मतत्त्वकीही सन्मुख हुवे हैं जो जो कर्म उदय होवे वो खुशीके साथ भुक्तते हैं कि मुझको उदय आये हुवे कर्म समभावसें भुक्ते जाय तो नये कर्मोका बध न हो सके ऐसी भावना बन रही है, उससें स्वप्नमेंही ऐसी मानत की इच्छा नहीं. सिर्फ सहजसुखके कामी हैं, वे लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व सेवन नही करते हैं. ४,

लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व, सो जैन के गुरुमहाराज मोक्षमार्ग दायी हैं उनोंको मोक्षके लिये मानने योग्य है वो छोडकर ससारके मुतलबी काममें माने सो लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व है. जैनके साधुका वेष पहनते हैं, परतु प्रभुजीकी आज्ञासें बहार ( विरुद्ध ) वर्त्तन रखते हैं, उत्सूत्र प्ररूपणा करते हैं, उन्मार्ग चलाते हैं-ऐसे वेषधारी

सुफेद या पीले कपडेवाले नामधारी साधुकों गुरु मानना सो लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व है ५,

लोकोत्तर पर्वगत मिथ्यात्व या पर्वगत मिथ्यात्व, सो जैनके पर्व संसारार्थ करना, जैसे कि फल पंचमी करें तो लडके होवें, आशापुरीके आयंबिल करें तो आशा पूर्ण होवें, ऐसी इच्छासें जो जो पर्वाराधन करना सो पर्वगत मिथ्यात्व है और जो तपस्या कर्मक्षयके लिये करे तो वो निर्जरारुप फलदायक है, वो कुछ दोषित नहीं. संसारकी आशासें करना सो पर्वगत मिथ्यात्व है धर्मसाधन करकें यह लोक परलोककी इच्छा करनी वो समस्त कर्म आनेका कारण है, क्योंकि एक मनुष्यने देवलोककी या राजा होनेकी इच्छासें संसारका त्याग किया, अब य त्याग इच्छा सहित है. उसमें देवता या मानवसुखकी या भोगकी इच्छा है, तो ऐसी इच्छासे तप करें तो संसारकीही वृद्धि होय; वास्ते ऐसी इच्छाका त्याग करना और आत्मगुण प्रकट करनेकी इच्छासे धर्मकरणी करनी कि सहजसें ये मिथ्यात्व दूर हो जायगा, ६-ये छ मिथ्यात्व हुवे अब तीसरी रीतिसें चार मिथ्यात्व है वो कहते हैं.-

१ प्रवर्त्तना मिथ्यात्व, सो मिथ्यात्वकी अंदर, प्रवर्त्तना रखनी याने कोइ मिथ्या सेवन करता है, उसकी सहाय्यतामें, या मिथ्यात्वीके जलसेमें,-वरघोडे-सरघसमें, वरातमें, पधरामणीमें, या अपने कुटुंबी अन्य देवकी सेवा करते होवें उनके साथ वर्त्तन रखना, या मिथ्यात्वके पर्व करना ये प्रवर्त्तना मिथ्यात्व है

२ प्ररुपणा मिथ्यात्व, सो जिनेश्वर महाराजजीने आगममें पंचांगीमें, या पूर्वाचार्यजीके ग्रंथोंमें जिस जिसतरह धर्म प्ररुपा है उससें विपरीत-अपनी मतिकल्पनासें प्ररुपणा करे, जैसें कि दिगंबर मार्ग चलानेवाले जैनी होनेपरभी वीतरागजीके आगम जो वियमान-प्रवर्त्तमान हैं, और कपोल कल्पित शास्त्र तैयार करकें जुदा मार्गही चलाते हैं कितनेक ग्रंथोंकी रचनामें निःकारण श्वेताम्बरमतकों दोषित किया है, जैसे कि संयमसें भ्रष्ठ वर्त्तने वालेका वंदन पूजन करना श्वेताम्बरीभी निषेध करते हैं; तदपि ऐसें साधु श्वेताम्बरी मतके है, उससें ये मत झुठा है. ये लिखना कितनी और कैसी भूलसें भरपूर है? मगर जिसकों उत्सूत्र बोलनेका डर नहीं; वही बोल्ते है. दिगंबर मत चलानेवालेने साधुकों वस्त्र न रखना ऐसा बतलाया है उससें क्या हुवा कि वस्त्र रहित साधु होना बंध हो गया, और साधुका मार्गही बंध हो गया,

नाम मात्र कोइ [ साधु नग्नपनेसें रहनेवाला ] होता है तौभी वो दिगवर साधुभी उपरसें वस्त्र ओढकर रखता है. इससें मरुपा हुवा मार्ग कायम रहाही नहीं. प्रभुजीका एक अग पूजते है, प्रभुजीने आभूषणका त्याग किया है वे आभूषण न चडाना, तो प्रभुजीने स्नानकाभी त्याग किया है तब प्रभुजीकी मूर्त्तिकों पखाल [ प्रक्षालन ] भी क्यों करते हो ? यदि पखाल करनेमें, एक अगपूजनेमें तुमार अभिप्रायसें हरकत नहीं आती तो शोचो कि येभी निषेध किया हुवाही तुम करते हो जैसेही सब अगोंकी पूजा करो और आभूषण चडाओ तो क्या हरकत होवे ? लेकिन विगर विचारसेंही ये वात फैलाइ है, श्वेताबर रीत मुजब चलते है जैसें मेरुशिखरपर भगवतजीका जन्माभिषेक इद्र महाराजने किया उस वक्त आभूषण पहनाय थे वो भाव ल्याकर ये सब कर्त्तव्य करना है, भगवतजीकी मूर्त्ति आरोपित है उन्होंका जो जो अवस्था आरोपकर भक्ति करे वो होवे, ये विचार न करतें अष्टद्रव्यसें भक्ति करनेहारेकों निंदा करता है, वही विपरीत प्ररुपणा है. फिर स्त्रीकों मुक्ति नहीं मानते हैं और गोमटसार दिगवरका करा हुवा है वो उन्होंने मान्य किया है. ये नामाकित ग्रथ है, उसमें एक समयमे दश स्त्री मोक्ष जाय जैसा कहा है, तथापि उस बावतपर लक्ष न रखकर स्त्रीकों मुक्तिही नहीं एसी विपरित परुपणा करते हैं दिगवर मतकी चर्चा विशेष प्रकारसें अध्यात्ममत परिक्षामें उपाध्यायजी यशोविजयजी महाराजने दर्शाइ है उससें यहा ज्यादे नहीं लिखता हु. ऐसेंही ढूढीए तेरापथी वगैरः आगमसें जितनी विपरीत प्ररुपणा करते हैं वो प्ररूपणा मिथ्यात्व जानना ये प्ररुपणा मिथ्यात्वज्ञान हुवे विगर दूर होनेका नहीं, वास्ते वीतरागके वचनकी श्रद्धा सहित ज्ञानका अभ्यास करना कि प्ररूपणा मिथ्यात्व दूर होवे बोध विगर ज्यों करते आये है त्योंही करना, ऐसा करनेमें मिथ्यात्व दूर नहीं हो सकता, वास्ते ज्ञान निष्पक्षपातसें करना

३ प्रणाम मिथ्यात्व, सो मिथ्यात्वमोहनीका जहातक उदय है वहातक प्रणाम मिथ्यात्व दूर नहीं होवेगा व्यवहारसें प्रभुपूजन प्रमुख करेगा, मगर अतरगमेंसें मिथ्यात्वका क्षयोपशम या उपशम हुवा नहीं वहातक प्रणाम मिथ्यात्व नहीं हटेगा ये जिवें उपशम समकित या क्षयोपशम समकित पावेगा, तब प्रणाम मिथ्यात्व दूर होवेगा. वास्ते ज्ञानमें और ज्ञानीपुरुषकी उपासनामें तत्पर रहेना और ज्ञानीके वचन मुजब चलनेकी अति उत्कठा रखनी देवगुरुका अतिशय आराधन करना, उससें ये मि-

थ्यात्व दूर हो जायगा अब ये मिथ्यात्व दूर हुवा है या नहीं उसकी परीक्षा समक्तिके लक्षण समकितकी सज्झायमें यशोविजयजी महाराजने कहे हैं, उस मुजब, आपमें है या नहीं वो मुकाबला कर लेनेसें मालूम हो सकेगा, और अनुमानसें धारण किया जायगा निश्चय तो अतिशय ज्ञानीके वचनसेंही होवे, सो तो वर्त्तमानकालमें विरह है इससें लाइलाज है और अतिशय ज्ञानीसें पूछे बिगर निश्चय न होवे उनका दृष्टान्त कि इन्द्रमहाराजने भगवानजीकों प्रश्न पूछे कि 'मैं भवी हु या अभवी? समकिती हु या मिथ्यात्वी?' ऐसा तीन ज्ञानवालस मुकरर न हुवा, तो अपन क्या मुकरर कर सके? तोभी शास्त्राधारसें उद्यम करना मार्गानुसारीके गुण हरिभद्रसूरीजीने धर्मबिंदु ग्रंथम बतलाये ह उसके साथ मुकाबला कर लेना, और मुकाबला करनेमें लक्षण न मिलते आवै तो मिथ्यात्व दूर नहीं हुवा है ऐसा समझना

४ प्रदेश मिथ्यात्व, सो मिथ्यात्वके दलिये आत्मप्रदेशके साथ क्षीर नीरकी तरह एकत्र हो रहे हैं, वो जब क्षायकसमकित होता है तब दूर होता है मिथ्यात्व बंध, उदय, सत्ता ये तीनु प्रकारसें हट जाय तब क्षायक समकित होता है, वास्ते वो समकित प्रगट करनेका भाव रखना कि प्रदेशमिथ्यात्व दूर हो जाय

ये सब मिलकर पचीस प्रकारके मिथ्यात्व शास्त्रमें दर्शाये है इसमें कितनेक भेद एक दूसरेसें मिलते हैं, उसका सबब इतनाही है कि सच्ची वस्तुकों झूठी कहेनी ये मिथ्यात्व है, तो अच्छी बुद्धिवालेकों तो एक शब्दही बस है, मगर विषमकालमें मेरे जैसे मदमतिवालोंकों रूपांतरसें भेद दर्शाये हुवे नजर आवै तो मन सुधर जाय, वास्ते अलग अलग भेद हैं वो समझकर हरएक प्रकारसें विभावदशा मुक्त होनेका कामी होनाही दुरूस्त है कितनेक जैनी नाम धारण करवाते है, पोषध प्रतिक्रमण करते हैं, जिनभक्ति करते हैं, गुरुकी सेवा करते हैं, परदेशसें गाँवके लोगोंकों धर्मबोध होनेके लिये साधुजीसें बुलवाते हैं, मगर गुरुजी स्याद्वाद मार्ग दर्शाते हैं उससें कोइ भव्यजीव प्रतिबोध पाता है, और दीक्षा लेनेकों तईयार होता है कि उसके माता पिता और सगसबंधी गुरुकी निंदा करनेकों तैयार होते है, लडनकों कटिबद्ध होते हैं और गाली गलुच देनेमें बेधडक हो जाते हैं किंचित्भी पापका भय नहीं रखते है यह कैसे अन्यायकी बात है कि जिनोंकों उपदेश देनेके लिये बुलानेमें आये हैं वो सो हर प्रकारमें समारम्भ उद्यम होवै वैसाही उपदेश देवै, उसमें कोइ उत्तम जीव

दीक्षा लेनेकों तत्पर हो जाय, तो उसमें साधुजी माहाराजकी क्या कसुर कि निंदा करनेकों–लडनेकों तैयार होते हैं? साधुजी कभी फेरफार युक्तिसें करके बोले, तो श्रावक कहेंगे कि साधु होकर झुठ बोलते है यु कहकर विविध प्रकारसें निंदा करने लगते हैं ये सब जोर मिथ्यात्वका है वास्ते ऐसी वर्त्तना नहीं करनी पुनः शास्त्रकी श्रद्धा है ऐसा सब लोग कहते हैं, परंतु आपकों स्वार्थ सिद्धिरूप बात मालम न हुइ तो शास्त्रपरभी लक्ष नहीं देते है–ये किसके फल है? अंतरगमेंसें मिथ्यात्व नहीं गया उसका फल है यदि मिथ्यात्व हठ गया होता तो यह दशा होतीही नहीं साधुजी दीक्षा लेनेकों निकले उसकी कितनीक हकीकतें धर्मबिंदु ग्रंथमें हरिभद्रसूरिजीने दरशाइ है (वो ग्रंथ बालबोध सहित टीकावाला छपगया है, उसमें दीक्षा लेनेवालेकों मातापिताकी रजा लेनेका अधिकारही रहा है ) वो किस तरहसें कहा है उसका सारांश यह है कि दिक्षा लेनेवालेनें मातापिताका समझाकर रजा लेनी चाहिये, वे रजा न देवे तो ज्योतिषिसें समझावे कि तुम मेरे मा बापकों कहो कि इसका आयुष कम है वास्ते इसकों रजा देदो–मना मत करो. पीछे ज्योतिषी इस तरह झूठ बोले उस वास्ते वहां तर्क किया है कि–जो दिक्षा लनेकों निकले और ऐसा झूठ बोले सो झूठा बोलनेमें नहीं गिना जाता है. ऐसा १७१ पत्रकी अंदर लिखा है. इसपरसें शोचो कि झूठ बोलनेकी ऐसें मोकेपर छुट्टी है, क्यों कि जिस कामसें जावजीव झूठ बोलनेका त्याग होता है इस लिये ऐसी परवानगी आचार्य महाराजोंने दी है तो श्रावक निंदा करे तो शास्त्रसें विरुद्धही है या नहीं? वो विचार करना चाहिये; लेकिन मिथ्यात्वकी प्रकृति दूर हुइ नहीं वहांतक शुद्ध मार्गकी श्रद्धा होनेकी नहीं, और श्रद्धा विगर आत्मतत्त्वका ज्ञानभी होनेका नहीं, क्यों कि आत्मतत्वका ज्ञान श्रद्धा गम्य है–प्रत्यक्ष नहीं, वास्ते वीतरागजीके प्ररूपे हुवे शास्त्रपर श्रद्धा रखकर आत्मतत्त्व प्रकट करनेके कामी होना. कितनेक श्रद्धा रखते हैं, तो रागी द्वेषीकी श्रद्धा रखते हैं उससें धर्मका नाम और अनेक प्रकारके मत ममत्व करते है धनादिककी, स्त्रीकी कामनामें आसक्त होते है–येभी मिथ्यात्व काही जोर है वास्ते जिनपुरुषके वचनोंसें संसारपर प्रीति बढकर शरीरादि पदार्थपर राग बढे, मोहका जोर ज्यादा होवे, काम, क्रोध प्रदिप्त होवे, ऐसें बतलाये हुवे धर्मकों धर्म नहीं मानना जो इससें विपरित यानें संसार–कुटुंब–धनादिकमें राग दूर हठ जावे. अपना आत्मतत्व प्रकट करनेमें सन्मुखपणा होवे,

ज्ञानमें चित्त लीन होवे, पचेंद्रियें वश हो जाँय, मन काबूमें आवे, अपने आत्म स्वरूपमें लीनता होवे, यथार्थ वस्तुधर्मका ज्ञान प्राप्त होय–ऐसे स्वरूपे हुवे शास्त्रपर श्रद्धा करनी दुरुस्त है और ऐसें गुरुपर यकीन रखना यही मिथ्यात्वनाशक चिन्ह है प्रभुजीने राज्यऋद्धि, कुटुंब, देहपरसें ममत्वभाव त्यागकर संयम लिया किसीकेपर रागद्वेष नहीं, इसतरहकी वर्त्तना करके केवलज्ञान–केवलदर्शन प्रगट किया और मिथ्यात्व सत्ता, उदय, बंध–इन तीनु प्रकारसें नाश किया विसी तरह अपनकोंभी करना कि जिस्से कल्याण होवे याने यही कल्यान है

१५ पंदरहवा निद्रा नामक दोष है सो दर्शनावरणी कर्मके उदयसें प्राप्त होता है. निद्रा पांच प्रकारकी है पहेली निद्रा, सो ज्यादे उंघ न होय और जगानेसें सुखपूर्वक जाग उठे–दिल्गीर न होवे जगानेवालेपर गुस्सा न ल्यावे दुसरी निद्रानिद्रा, सो जगानेमें बहुत महेनत पडे, जगानेवालेपर गुस्सा ल्यावे और अपना मन दुःख पावे जब जागे ये निद्रा पहेली निद्रासें ज्यादे आवरणवाली है तीसरी प्रचला सो चलते चलते उंघ लेवे थोडा है सो उंघताही चलता है. इसी रीतिसे मनुष्यभी निंद लेते हुए बहुतसें चले जाते है आंखोमें निंदही भरकार हुइ रहती है ये विशेष दर्शनावर्णीके आवर्ण होनेसें आती है. पांचवी थीनद्धिनिद्रा सो छ' महीनेमें एक वक्त आती है वो निंद लेता होय उस वक्त वर्त्तमानकालमें अपने बलसें दुगुना बल होता है. जाग्रतावस्थामें जो काम न किये जाँय वैसे बल स्फुरायमान करनेके काम निंदमें करता है. दिनमें जो काम चिंतन किया होय वो काम निंदमें करे एक साधुजीकों निद्रा आनेसें रात्रीमें उठकर हस्तीके दंतूशल निकाल लायेथे ऐसे थीनद्धिनिद्रावाले जीव नरकगामी होते है ये साधुभी संयमसें पतीत होकर नरकमें गये थे यह पांचों निद्राका त्याग होवे तब मोक्ष जाता है. अज्ञानतासें निंद आनेमें सुख मानता है, परंतु सुख मानने लायक नहीं है सुख माननेसें, आलस्यतामें और निंदकी बहुत इच्छाए करनेसेंही ये दर्शनावरणी कर्म बंधा जाता है निंदसें आत्माका उपयोग आच्छादित हो जाता है जीता मनुष्य मुवे हुनेकी अवस्थाकों पाता है. निद्रासक्तवालेके आगे कोइ बोलै चालै या शरीरपर कुच्छ करै तोभी उसकों खबर पडे तब उपयोग आच्छादित हो गया ये प्रत्यक्ष नुकशान हुआ; वास्ते हरएक प्रकारसें जाग्रत दशा होवे ऐसी इच्छा रखनी भगवान् श्रीमहावीरस्वामीजी कि जिन्होंको बार वर्षमें दो घडी

निंद आइ हैं बाकी सब समय अप्रमादशामेंही गया है-आत्मतत्त्वके विचारमें गया है उन्होंने खुद स्वाभाविक आत्मगुण प्रकट किया; वास्ते जिसतरह भगवंतजीने दर्शनावरणी कर्म क्षय किया तिसतरह क्षय करनेका उद्यम करना कि जिससें अपनाभी दर्शनावरणी कर्म क्षय हो जावे, और केवलज्ञान केवलदर्शन प्रकट होवे पुनः इस संसारमेंभी बहुत निंद लेनेवालेकों दरिद्री कहते है, आपका काम करनेमेंभी शक्तिवान नहीं होता अभ्यास करनेवालेकों ज्यादे निद्रा होय तो वो विशेष अभ्यास नहीं कर सकता है, गुरुजीके पास व्याख्यान सुननेकों जाय तो वहां बैठे बैठे निंद्र लेवे इससें व्याख्यानकी धारणा नहीं कर सकता है और ऐसे प्रमादीके घरमें चोरभी मजेहसें चोरी कर सकता है-इतने इस लोकमें नुकसान होते है और परलोकके नुकसानमें दर्शनावरणी कर्म पैदा होता है ऐसा जानकर भगवतजीने निंदकी इच्छाका नाश करके केवलदर्शन प्रकट किया है जिसमे सब दर्शनगुण रहे है तिसी तरह अपनेकोंभी भगवतजीकी आज्ञा मुजबही दर्शनावरणी कर्म क्षय करनेका उद्यम करना और निद्राका नाश करना.

१६ अव्रत नामक दोष सो आत्मामें रहा हुवा है उसके प्रभावसे अनेक प्रकारकी इच्छाए होती है, हिंसासें, झूठ बोलनेसे, चोरी करनेसें, मैथुनकी वांछासें और परिग्रहकी ममतासें याने इन पांच अव्रतसे चित्त नहीं हठता है ये पाच अव्रत कैसा है? एक अव्रत सेवनेसें दूसरे अव्रत सहजसेंही फैले जाते हैं पुन. ये अव्रत सेवनके निमित्तभूत पांचों इंद्रियके तेइस, विषय और मनकी चपलता जब तक पाचो इंद्रि और छट्ठा मन छुट्टा रहता है, उसकी कामना बनी हुई रहती है, वहातक छः कायकी हिंसा रुकी जाती नहीं. अब ये विषय हैं वो यह लोक और परलोकमें दु:खके देनेहारे हैं; जैसे कि अपनकों कोइ सूइ बदनपें चुभका देवै तो कितनी तकलीफ होती है और दाक्तर नस्तरद्वारा व्रण वगैरः हुवा हो उसे चीरता है तो आंखोंमेंसे आसु गिरते हैं, फिर चिल्लाताभी है कि जिस्से दूसरोंकोंभी धास्ती लगै इस बातका सबकों अनुभव होनेसें इसका बयान ज्यादे करनेकी जरूरत नहीं जैसें अपनका दुःख होता है-पीडा होती है वैसेंही दूसरे जीवकों जब काट डाले तो उसको क्यों दु ख न होवे? अवश्य दुःख होवे' वो दु खसे उसके मनमें बुराभी लगे तो सरकारमें फरियादभी करे तो उससें अपनकों शिक्षाभी होवे. शायद फरियाद न करै और जोरदार होवे तो मारभी

पार बैठे तो प्रत्यक्ष दु ख भुक्तना पडे, कोइ मनुष्यकों कोइ उस वक्त साह्यकारी [मददगार] न होवै तो जब मददगार मिल जाय तब उसकों हरकतमें डाल देवे इस मुजब दूसरे जीवकों दु ख देनेसें यह लोकमें दु ख भुक्तना पडता है और वो जीवकी अभी शक्ति न होवै तो आते जन्मकी अंदर उस जीवका शक्ति प्राप्त होनेसें दु ख देवैगा, या नरकादिकमें परमाधामी वगैर दु'ख देवेगे-इस लिये एकेंद्रीसें लगाकर पचेंद्रि तकके किसी जीवकों दु ख नहीं देना ऐसी बुद्धि प्राप्त होवेगी तो हिंसा करनेकी बुद्धि उत्पन्नही न होवेगी झूठा बोलनेसेंभी दूसरे जीवोंकों दु ख होवेगा चोरी करनेसेंभी उस जीवकों दु खका पार न रहवेगा, सबब कि गरीब या क्रोडपति कोइ हो, मगर सबकों धनकी इच्छा होती है, ओर वो धन ले जावै तो दु'ख क्यों न होवै? अलबत्त होवे! जेसें कुमारपाल राजाने एक ऊंदर-मूसेकों अपने दर-बिलमेंसें सुवर्णमहोरें निकालकर उसके साथ खेल करता हुवा देखाथा उस परसे राजाके दिलमें आया कि इस तिर्यचकों धनपर प्रेम समझते है या नेसमयमें है? उसका तमाशा देखनेके लिये मुहेरकी सुवर्णमहोरें उठाली थोडी देरके पीछे चूहा तडफडाट करके मर गया, कि कुमारपालकों बहुत दिलगीरी पैदा हुइ, और उसके प्रायश्चित्तमें उदरीआ प्रासाद बनवाया इसपरसें ख्याल करो कि तिर्यचकोंभी धनपर कितना तृष्णा है? तो मनुष्यकों तो धनसही सब कारभार चलता है उसका धन कोइ चुराके ले जाय तो मनुष्यकों बेशक अपार दु ख होता है दुनियामें शरीरकी पीडासें मनकी पीडा याने कायिक रोगसे मानसिक रोग-व्याधिसें आधि बहुत पीडाकारी है कितनीक दफे धन चला जानसें मनुष्यका मरण हो जाता है-शरीर सुख जाता है वो मनकी पीडासही होता है, वास्ते उससभी दूसरे मनुष्यकों तकलीफ होती है पराइ स्त्रीके साथ मैथुन करनेसें जब उसके पतिकों खबर हो जाय या उसके मातपि आदिकों खबर हो जाय तब कितना दु'ख होता है वो जगजाहिर है किसी वक्त जारपुरुषका जान चला जाता है अगर कोइ समय उस व्यभिचारिणीकाभी जान जोखममें फस जाता है अगर तो उस स्त्रीके पतिका जीव जोखममें गिरफतार होता है कभी जीव न जाय तो रातदिन इसकी पीडा दु ख देती है फिर अपनी स्त्रीके साथ संभोग करनेसे योनिमें समुछिम जीव असख्याते मर जाते है, तो उन जीवोंकों दु ख होता है हुन अपना शरीरभी नरम हो जाता है-शरीरमें तक-

होक होती है, और अतमें रोगके भोग हो मरनके शरन हो जाता है परिग्रहकी इच्छा होवे वहांतक हर प्रकारसें धन इकट्ठा करना–उसमें लुचाइ–ठगाइ–दगाबाजी करनेमें निडर रहते है झूठ बोलनेसेंभी नहीं डरते है, किसीका प्राण लेनेमेंभी नहीं डरते हैं, और आप खुदभी विचित्र प्रकारसें दु खी होते है, ये परिग्रहकी मूर्छाके फल हैं यह पांचो अव्रत ऐसें है कि एकका सेवन करनेमे दूसरेका सेवन हो जाता है अगर तो हो जाय, उससें भगवतजीने पाचो अव्रतका त्याग किया है और भगवानजीका यही उपदेश है कि हरप्रकारसें अव्रतका त्याग करना चाहिये यदि विशेष विशुद्धि होवे और सब प्रकारसें अव्रतका त्याग होवे तो यो करना, और सब तरहसें त्याग न हो सके तो देशसें त्याग करकें श्रावकके बारह व्रत धारण कर लेना इस तरहसें श्रावक या साधु धर्म बाहसे अंगीकार करकें ( अतरग शुद्ध न हुवा तो अव्रत दूर नहीं हो सकता है वास्ते ) अतरग शुद्धिके लिये कषायकी परिणती त्याग करनी चाहिये बहारमें प्रवृत्ति न करे तोभी अतरमें इच्छाए–हुवेही करे तो पीछे कर्मबध होता हुवा नहीं रुकता है पुद्गल भावसे अनादिकी, इच्छाए–हिंसाकी–झूठकी–चोरीकी–मैथुनकी–धनकी इन पाचो पदार्थकी इच्छाए मुक्त हो जावे तव आत्माका काम होता है देखो, तदुलि मच्छ है वो मत्सकी पापनमें होता है वो जिस मत्सकी पापनमें होता है, उस मत्सका मुँह बडा है उससें कितनेक मत्स उसके मुंहमें आते हैं और निकलते हैं वो तदुली मत्स देखता है देखकर सोचता है कि यदि मेरा मुँह इतना बडा होता तो एक जीवकोंभी पीछा नही जाने देता ऐसा दुष्ट विचार करनेके सबबसें मरकर वो सातवी नरकमे जाता है उसने कुछ खाया पिया नहीं, मगर तिव्र इच्छामें दुष्ट ध्यान ध्याता है उसके प्रभावमें नरकमे जाता है ऐसेंही दुनियामें जो चीजें है सो सब अपनको प्राप्त नहीं हो सकती है, मगर वे चीज उपयोगमें लेनेकी इच्छा होती है हुवाही करती हैं कितनीक वस्त पैसेकी तगीसें मिल नहीं सकती, अगर पैसा है पर कृपणतासें पैसे खर्चे नहीं जाते उससें नहीं मिल सकती है कितनीक तर्फ शरीरकों प्रतिकूल (जो वस्तुए ) होनेसें उपयोगमें नहीं ले सकता है, परतु अव्रतके उदयसें इच्छाए हुवाही करती है वो अज्ञानकाही प्रभाव है अपनी क्या वस्तु है, आपके आत्मभावमें किस तरह वर्तते रहना उसकाभी ज्ञान नहीं उसके मारे इच्छाए हुवा करती हैं, दुनियामें हजारो चीज है, वे रोह मुँहपर थुकनेकीभी नहीं, मगर, जो जो दृष्टिगोचर होती है

कि चित्त दौडै या कानोंसे सुन लेवै कि फलानी स्त्री बहुत खुबसूरत है तब चित्त दौडै परतु ये बात अज्ञानके जोरसेंही बनती है वास्ते वो न होना चाहियें पुन: धन जो बिलकुल न हो तो सोचे कि हजार रुप मिल जाय तो अच्छा, मगर जब हजार मिल चुके तब लाखकी इच्छा होती है लाख मिले तो करोडकी इच्छा होती है, करोड मिले तो अबजकी इच्छा करता है ओर उससेंभी ज्यादे मिलै तो राजकी इच्छा होती है, राजा हुवा तो वासुदेवके राजकी इच्छा होती है, वासुदेवपणा मिला तो चक्रीपद-की होती है, और चक्री हुवा तो इद्र होनेकी इच्छा होती है अब ऐसी इच्छाए करता है उसस कुछ हाथ आता नही, परतु जीवकों तृष्णा नहीं मिट सकती है–ये अव्रतकी राजधानी है फिर कितनेककों दस बीस हजार मिलते हैं कि व्यापार बध करते है क्यों कि ये मिले हुवे शायद न चले जॉय ! इसके डरकेमारे विशेष धन पैदा करनका उद्यम नहीं करता, उससें उसकी तृष्णा रुक गइ है ऐसा न समझना, वास्ते हरतरहसें इच्छा रोक देनी योग्य है. कभी ससारका त्याग किया और चेला चेलीकी, पुस्तककी मानकी इच्छा न दूर हुइ या इद्रिये वश न हुइ तोभी अव्रत दूर नहीं होता है कभी इस लोकके विषय रोक दिये, मगर परलोककी इच्छा करै कि मैं मरके राजा होउ-धनवान होउं देवता होउ–देवताकी, इद्राणीका सुख भुकतु-ऐसी इच्छाएं हैं वोभी अव्रत है उपा यायजी महाराजने मडुक चूरण न्याय कहा है याने मरे हुवे मेंडकके चूर्णमें मेघजलकी बुदे पडे तो बहुतसे मडक पैदा हो जाँय, किसी तरह इस भवके वि-षय छोड दिये ओर परभवके बहुत विषयकी इच्छाए की इससें कुछ अव्रत दूर नहीं हुवा शुभ किया है वो कारणरुप है, वो कारणरुप धर्म जानकर करनी, मगर उसकों आत्मधर्म न समझना आत्मधर्म तो जितनी जितनी इच्छाए होती बध हो जा यगी–वो कर्त्तम नहा-स्वभाविक धन–स्त्री–पुत्र–शरीर किसीकाभी दरकार न रक्खै, और अपनेही स्वभावमें आनन्दित हाँवै ओर स्थिर रहवै जो जो पुद्गलकों होवै वो जानने देखनेका स्वभाव है वो स्वभावमें रहना, उसमें रागद्वेष न करना यही आत्मा-का कार्य है इस दस दशामें रहवे कि सहजहीमें अव्रत दूर हो जायगा कषायका सर्वथा नाश होनेसें अव्रत सर्वथा दूर हो जाते है अशअशसें देशविरती गुणस्थान पाता है वहासें दूर होना शरु होता है भगवतकों सर्वथा अव्रत दूर हो गया है उससें भगवान हुवे है

१७ राग नामक दूषण है. ये रागके घरके माया और लोभ है. ये राग परिणती अनादिकालकी है धनके ऊपर या कुटुंब, स्त्री, पुत्र, स्वजन, मकान, दुकान, बाग, बगीचेके ऊपर राग होता है. मिली हुइ वस्तुपर राग होता है और न मिली हुइ वस्तुपरभी [ राग ] होता है, देखी हुइ-विन देखी हुइ, सुनी हुइ और पढनेमें आइ हुइ वस्तुपरभी राग होता है-ऐसें अनेक प्रकारसें रागदशा है. और रागदशाके प्रभावसेंही पापी जीवका संयोग मिलता है और ऐसे खराब मनुष्यका संग मिलनेसें पीछा द्वेष जाग्रत होता है. परवस्तुके ऊपर राग होनेसेंही जीव अनादिका संसारचक्रमें परिभ्रमण करता है. अनेक प्रकारसें जन्ममरण करने पडते हैं परस्त्रीपर राग होवे तो आप मरजाय तोभी उसकी इच्छा मुक्त नहीं होती. ऐसे अधर्मीजीवोंको मनुष्यजन्म तो प्राप्त होवेही नहीं, मगर मनुष्य शरीरके भीतर कीडा या कृमीके भवकों प्राप्त होवे यही रागका प्रभाव है. जो जो कर्मबंध होता है वो रागद्वेषसेंही होता है और जीव संसारमें रूलता है द्वेषभी रागसें होता है-अपनी वस्तु मानली है वो वस्तु कोइ ले जाय तो यह वस्तुपर राग है उससें ले जानेवालेपर द्वेष होता है द्वेष करनेवालेकों कोइ कहनेवाला मिले कि तुम सुज्ञ होकर कषाय करते हो, मगर रागकी बाबतमें मुंनीमहाराजजी सिवा कोइ समझानेवाला नहीं. यह जडपदार्थपर राग करनेसें आत्माके गुणोंकां राग नहीं होता, और उसके कारण जो ज्ञान-दर्शन-चारित्र है उसपरभी राग नहीं होता रागके वशसें जीव लज्जाकों छोडकर निर्लज्ज कर्म करते हैं. उच्च जातिके मनुष्यकों धन-कुटुंब-रूपवती स्त्री होवे; तथापि नीच जाती-भंगीकी स्त्री पर राग हुवा होवे तो ये धन कुटुंब छोडकर उसकी साथ संबंध करता है, ये रागकी विटंबना है जो वस्तु खानेसें शरीरकों उपाधि होती है, धर्म भ्रष्ट होता है, तोभी रागके बंधनसें वो वस्तु खाता है-और ऐसी वस्तु खानेसें कितनीक वखत मनुष्य मरजाता है वो दिखता है तोभी ऐसे काम करता है धनके रागसें करकें लोभ होता है वो चाहें उतने पैसे मिल जाय तदपि संतोष नहीं पाता और असंतोषसें लंबे व्यापार करनेसें नगद पैसे होवे वैभी चले जाते हैं किंतु लोभकों नहीं छोडता और कितनेकोंकों देवाले निकालने पडते हैं. कितनेक यददानतसें पैसें होवे तोभी लोगोंके पैसें नहीं देना है वे लोग [illegible] नहीं शोचते है कि ऐसा करनेसें जन्मपर्यंत दुनियामें बेइज्जत होवेगी, और लडकेकोंभी कहेंगे कि तेरे बापने देवाला निकालाथा. ऐसी बाबत बनती है तोभी [illegible]

रागसें स्हामनवालेका और आपके भाइका, बापका, माताका प्राणभी लेता है तो औराका प्राण लेवे इसमें तो कहनाही क्या ? ये विटंबना रागकी है चोरी करते, ठगाइ करतेंभी रागसें करकें जीव डरता नहीं विश्वासघात करनेमेंभी भय नहीं मानता कदाचित् गृहस्थपणा छोडकर दीक्षा लेता है, परंतु जडपदार्थपरसें राग गया नहीं उससें पुनः साधुके वेषमें गृहस्थकी प्रवृत्ति करता है-गृहस्थकी तरह धन मिलाता है, लडकेके रागकी तरह चेलेका राग जाग्रत रहता है पुस्तकका राग सजग रहता है और ऐसी वर्त्तना करके संयममें भ्रष्ट होता है आत्मभावमें नहीं रहते, शास्त्रका बोधभी निकम्मा जाता है ज्ञानका बोध तो जैसे ज्ञानमें जाना गया वसें वर्त्तन करे तब ज्ञानका फल होवे जैसें कोइ मनुष्यने जान लिया कि यह झहेर है, परंतु खायगा तो बेशक मर जायगा, वैसें ज्ञान पढकर राग बंध तो मुक्त नहीं होता कर्मबंध हुवे विना रहते नहीं और जिसकों निरागदशा प्रकट हुइ है उसके प्रभावसें कोइ कुछ ले जाता हैं तो, कोइ मारता कुटता है, पीडा देता है, निंदा करता है और किसीका वियोग होता है, तोभी आपकों खेद नहीं होता, मरनेकीभी फिकर नहीं, आपने अपना आत्मस्वरूप जान लिया है उससें जानते हैं कि मेरा आत्मा मरनेका ही नहीं ! मरता है सो जड है आत्मा अविनाशी है शरीरकों पीडता है सोभी पूर्वकालमें जडकी संगतसें दूसरे जीवोंकों पीडा की है उससे पीडता है, तो जैसा जैसा जडसंगतिसें कर्म बांधा गया है वैसा वैसा भुक्तना है कोइ वस्तु ले जावे सो मेरी नहीं है, मगर जडकी संगतिसें मेरी मानली है और मेरी मानकर पराइ वस्तु ली है तो मेरी ले जाता है पूर्वकालमें जिसने किसीकी वस्तु ली नहीं उसकी वस्तु मार्गमें पड रही हो तोभी कोइ नहीं ले जाता है ऐसे ज्ञानके प्रभावसें जरासाभी खेद धारण नहीं करते है-अपने आनंदमेंही रहते हैं ज्ञानीजन तो समवृत्तिसें करकें जो जो सुख दुःख प्राप्त होता है, उसमें राग-द्वेष करतेही नहीं आत्माका जाननेका स्वभाव है सो जो जो रूप बनते है वो जान लेता है कर्मका स्वरूप जान लिया गया है उससें कर्मके उदय मुजब बना हुवा रहता है-ऐसा जानकर कोइभी अनुकूल वस्तुपर रागदशा धारण नहीं करते इसी तरह भगवंतजीने रागद्वेष क्षय करकें आत्माके अपने गुण प्रकट किये हैं उन्होंके कदम दर कदममें आज्ञा मुजब चलें तो अपने आत्माके गुण प्रकट करकें परमपद पावै

१८ द्वेष नामक दूषण है–ये द्वेपकी प्रवृति जगतमेंभी निंदनीय है. द्वेपके दो पुत्र हैं याने पहेला क्रोध और दूसरा मान क्रोध करनेसें दूसरेकों दु.ख करता हु ऐसा मानता है; परतु आप खुदकों प्रत्यक्ष दुःख होता है–आपकाही शरीर भिन्न रूपवत हो जाता है याने लाल लाल हो जाता है, छातीमें घभडाहट होता है, लोहु उछल जाता है उससें खून सूक जाता है और निर्बल हो जाता है. ये बनाव क्रोधसें होता है क्रोधी मनुष्य कही नौकरी रहनेकों जाय तो उसें कोइ नोकर नहीं रखता. किसीके वहा क्रोधी व्याजु पैसे लेनेकों जाय तो वोभी खुश होकर देवे नहीं. दुकान की हो तो शात मनुष्यके वहा जितने ग्राहक आवे उतन ग्राहक क्रोधीके वहा नहीं आते. कन्याकी जरूरत हो तो खुशीसें नहीं मिलती. फिर क्रोधी मनुष्य अपनेही हाथसें अपना सिर फोडता है–कूवे वगैरः में गिरता है–जहर खाता है–फासा डालकर जान निकालता है अपने हाथसेंही अपना घात करता ह और जगतमें अपयश पाता है. क्रोधीजन कभी ससार त्यागकर साधु होता है तो कपायसें करकें उसमेंभी शोभा नहीं पाता, और आत्माकाभी कल्याण नहीं होता, मगर ससारकी वृद्धि होती है जैसें कि चडकोशिये सॉपने पूर्व भवमें साधुपणेकी अदर क्रोध किया तो मरे बाद पुनः क्रोधी होनेकाही वक्त हाथ लगा वहाभी क्रोधसें मरण पाया और साँप होनेका वक्त रुजु हूवा इसी तरह जो जो मनुष्य क्रोध करै उसकों यह लोकमें दुःख होवै और परलोकमें नरकगतिमें जाना पडे, वास्ते हर प्रकारसें क्रोध दूर करनेका उद्यम करना अग्निशर्मा तापस मास मास खमणके अतर पारणा करता था, तोभी दुर्गतिमें जानेका वक्त आया. (इसकी विस्तारसें हकीकत समरादित्यकेवलीके रासमें देखो कितनेक भव तक द्वेप रहा और कैसे कैसे दुगतिके फल मिले है ? ) क्रोधसें प्रत्यक्षमें मार खाता है, वखतपर प्राणभी जानेका मोका हाथ लगता है; वास्ते ज्यों बन सके त्यो क्रोधकों जीतकर समतामें रहना कि जिससें यह लोकमें सुख होवै क्रोधीकों संसारमें सुख नहीं और परलोकमेंभी सुख नहीं नरकादिककी कठीन वेदनाए भुक्तनी पडेगी फिर मान करनेसें आप ऐसा समझता है कि मेरी बडाइ होती है, परतु वो बडाइके बदलेमें लघुता हासिल होती है. मद करनेसें बडे बडे राजाएभी दु खमें पड चुके है तो दूसरोंका तो कहनाही क्या ? इसलिये ज्यौ बन सक त्यो अहकारकों त्याग देना अहकार क्रोधकाही बीज है अहकार नाश पावै तो क्रोध आवेही नही जगतमें जितनी

चीजें है उसम जड है सो नजर आती है, तो आप चैतन है, तो जड चीज प्रिय अप्रिय करनेसें अप्रिय चीजपर द्वेष होता है, परतु जो परवस्तु याने पराइ है उसके-पर द्वेष करनेसें कर्मबंध करने सिवा दूसरा कुछ लाभ नहीं वास्ते जो जो वस्तुके जो जो धर्म है वो जान लैना जो जो अवसरपर जो जो वस्तु ग्रहण करनेका उदय हुवा वो वस्तु ग्रहण करनी उसमें द्वेषकर ग्रहण करनेसें कर्मबंध सिवा और कुछ फायदा नहीं आत्मा मलीन होता है मुनीमहाराजोंने और तीर्थंकरमहाराजजीने द्वेपका त्याग किया और केवलज्ञान पाये; वास्ते दूसरेभी आत्मार्थी जीव उन्होकी रीति मुजब द्वेपका त्याग करना खानेकी-पीनेकी-पहननेकी-ओढनेकी-बिछानकी-सोनेकी-चलनेकी कुछभी-कोइभी वस्तु प्रतिकूल मिले उसमें द्वेष धारण नहीं करना कोइ धन ले जावे, कोइ मारकूट कर जावे तोभी कर्मका विचार करना कि पूर्वके पुन्यकी न्यूनता होवे जब ऐसा बनता है, वास्ते रागसें जीवपर द्वेप करना वो निकम्मा है ऐसा शोच करकें समभावदशा धारण करनी द्वेपका अशभी जागृत न होवे वेसी प्रवृत्ति करनी, और सत्ता, बध, उदय इन तीनु प्रकारसें नाश करना कि केवलज्ञान-केवलदर्शन गुण प्रकट होवे

इस मुजब यह अठारह दूषण भगवतजीने क्षय किये है, उससें आत्माके संपूर्ण गुण उत्पन्न हुवेले हैं कि जिससें एक समयमें तीन जगतके भाव जान सकेत हैं, ऐसी शक्ति प्राप्त हुइ हैं एक एक द्रव्यके अदर समय समय अनत पर्याय परावर्त्त-मान हो रहे है, वो एक एक द्रव्यमें पूर्वकाल याने जिस कालका अत नहीं और आते कालमें पर्याय होनेके वो समस्त एकही साथ जान सकै ऐसा ज्ञान जिन्होंकों प्राप्त हुवा है आत्माकी अनत वीर्यशक्ति प्राप्त हुइ है-ऐसे आत्माके समस्त गुण प्रकट हुवे हैं उसके प्रभावसही देवता स्फटिक रत्नमय समवसरणकी रचना करते है-तीन गढ रचते हैं-उसमें तीसरे गढमें देव सिहासन कायम करते है उसपर बिराजमान होकर भगवानजी देशना देते है वो देशना कैसी है? जिसमें किसी प्रकारका आपका लाभ नहीं रहा हुवा होता है, किसी प्रकारसें स्त्री या धनकी स्वप्नेमेंभी इच्छा नहीं जिनकों धनादिककी और मान-गर्वकी इच्छा रही है वो धर्मोपदेश देते है, उसमें स्वार्थ रख देते हैं, और जहां स्वार्थ आया वहा सच्चा धर्मस्वरूपका दर्शाव होताही नहीं तैसही सुननेवालेका ध्यानभी उपदेशकके स्वार्थ पर जानेमे उनका

उपदेश श्रवण करनेहारेकों लाभकारी नहीं हो सकता, सबब कि हमेशाः जो धर्मोपदेश देनेवाला जैसा उपदेश देवै उसी मुवाफिक वे खुद नहीं वरत्तते है, तब सुननेवाले शोचते है कि गुरुजी या भगवतजीसेंभी इसतरह नहीं हो सकता है, तो अपन किस तरह चल सकें? ऐसा शोच करकें आप जिस स्थितिमें है वही स्थितिमे कायम रहवें, मगर आत्माके गुण प्रकट करनेकों उत्सुक नहीं होते है. और जिनोंके अढारह दूषण नष्ट हुवे हैं उन्होंकों तो वीतराग दशा प्रकट हुइ है. न किसी वस्तुपर राग है न द्वेष है केवल जगतके जीवोंका उद्धार करनेके लियेही वसुधापर विचरकें धर्मोपदेश देते हैं, उससें श्रोताओंकाभी कल्याण होता है सुननेके लिये बारह पर्षदा बैठती है. (यह अधिकार श्राद्धशतक नामक प्रश्नोत्तरमेंसें यहापर लिखता हु.) केवलज्ञानीमहाराज पूर्वद्वारसें समोवसरणकी अंदर प्रवेश करते हैं, सोभी जिनेश्वरजीकों तीन प्रदक्षिणा कर 'नमोतीथ्थस्स' कहीकें पूर्व और दक्षिणके बीच बैठते हैं उनके पीछें मनःपर्यवज्ञानी–अवधिज्ञानी–चौदह पूर्वधर–दस पूर्वधर–नव पूर्वधर और लब्धिवंत मुनिभी पूर्वद्वारसें दाखिल होकर भगवतजीकों तीन प्रदक्षिणा दे नमस्कार कर 'नमोतीर्थाय, नमोगणधरेभ्यो, नमोकेवलीभ्यः' इसतरह पढकरकें केवलज्ञानीजीके पीछे बैठक लेते हैं. उस पीछे दूसरे समस्त साधुजी पूर्वद्वारमें प्रवेश करकें तीन प्रदक्षिणा दे 'नमस्तीर्थाय, नमोगणभृद्भ्यो, नम.केवलीभ्यो नमो अतिशयज्ञानीभ्योः' इसतरह नमस्कार करकें–पहेले बैठे हुवे मुनिवरोंके पिछाडी बैठते हैं तदनंतर विमानीक देवी पूर्वद्वारसें प्रवेश करकें प्रभुजीकों तीन परक्रमा देकर 'नमस्तीर्थाय, नम. सर्व साधुभ्य' इस तरह नमन कर साधुजीके पिछाडी बैठक लेती हैं. पश्चात् सा ध्वीजी पूर्वद्वारसें प्रवेश करके भगवानजीको तीन प्रदक्षिणा देकर नमन कर वैमानिक देवीओंके पिछाडी बैठक लेवें भवनपतिकी. व्यंतरकी, ज्योतिषिकी देवीएं दक्षिण द्वारसें प्रवेश करकें वैमानिक देवीओंकी तरह भगवंतजीकों प्रदक्षिणा. नमन करकें दक्षिण और पश्चिम दिशाकी बीचमें क्रमवार बैठक लेवें. तत्पश्चात् भवनपति, ज्योतिषी, और वाणव्यंतरके सुर–देव पश्चिम द्वारसें प्रवेश कर प्रभुजीको प्रदक्षिणा नमनादि करके पश्चिम और उत्तरके बीच क्रमसें करकें बैठक लेवें वैमानिकदेव और मनुष्य, मनुष्यस्त्रीए ये तीन उत्तर द्वारसें प्रवेश कर प्रदक्षिणा नमनादि करकें पूर्व और उत्तरके बीच बैठक लेवें. इस मुजब बारह पर्षदा समवसरणमें जिनवाणी सुननेकों बैठती हैं वहां

भगवतजीके अतिशय प्रभावसें तीन तर्फ भगवतजीका प्रतिबिंब देवता बनाते है, उससें चारों कोर बैठे हुवे भगवतजीकों सन्मुखही देशना देते हुवे देखते हैं, इससें चारों मुखसें देशना देते है ऐसा समझनेमें आता है देशनाकि ऐसी खुबी है कि जिस जिसके मनमें जो जो शंका होवे या शंका पडती है वो सब प्रभुजी जान लेकरकें ज्ञानसें उत्तर देते है. किसीकोंभी प्रश्न करनेकी जरूरत नहीं रहती है, ऐसी जिन्होंकी शक्ति है किसीके दिलका संदेह दूर करना मुश्कील नहीं ऐसी भगवतजीकी वाणी सुनकर निकट भवीजीव तो उसी वक्त प्रतिबोध पाकर संयम लेते है और वैसी विशुद्धि न होवे तो वे श्रावकधर्म या सम्यक्त्व अंगीकार करते हैं और आत्माका कल्याण करते है ये दोनु प्रकारके धर्मका विस्तार युक्त वर्णन प्रश्नोत्तर रत्नचिंतामणिमें है, इससें यहांपर लिखनेकी आवश्यक्ता नहीं, परंतु सारांश यही है कि हर प्रकारसें संसारमोहनी, स्त्री पुत्रादिककी मोहनी और धनादिककी रागदशा अनादिकी है, वो रागदशा उतार डालनी, और आत्मदशाकी सन्मुख ज्यों ज्यों विकल्प दूर हठ जाय वैसा उद्यम करना, ओर विकल्पके कारण छोड देना जहांतक संसारमें मन है वहांतक आत्मदशा जाग्रत होनेकीही नहीं, उस लिये संसार छोडकर साधु होनेकी जरूरत है साधुजी होते हैं तब व्यापारादिकके कारण दूर हो जाते हैं, स्त्री वगैर के कारणभी अलग हो जाते हैं, उससें आत्मज्ञान किसतरह करना उसके शास्त्र देखनेका निवृत्तिसें वक्त मिल सक्ता है कितनेक शास्त्र तो ऐसे है कि वांचनेसेंही मोह हठ जाता है और आत्मभाव प्रकट होता है आत्मभाव प्रकट होवे ऐसे बहुतसे शास्त्र है उसके अभ्याससें मग्न होते हैं पीछे अनुभवज्ञान प्रकट होता है, तब तो शास्त्रकीभी जरूरत नहीं आपके प्रबल ज्ञानसें ध्यानादिकद्वारा कर्म क्षय करते है और केवलज्ञान तथा केवलदर्शन प्रकट करते हैं. इतनी विशुद्धि नहीं होवे तो मरनके बाद देवता होता है. वहां देवसुखका अनुभव करकें पुन. मनुष्य होकर धर्माराधन कर मुक्ति प्राप्त करते हैं. वास्ते ऐसे अठारह दूषण रहित देवकों देव मानने चाहियें, उन्होंकी भक्ति करनी और उन्हीके हुकम मुजब चलना जो प्रभुजी मोक्ष पाये हैं उन्हीका बतलाया हुवा मार्ग अंगीकार करे तो अपनभी मोक्ष प्राप्त कर सकै

किसीको प्रश्न होगा कि क्या जैनधर्मकही देव अठारह दूपण रहित है ? क्या दूसरे देव ऐसे नहीं है ? उसका समझाना कि, हम कुछ ऐसा नहीं कहते है इस संबधमें जैनधर्म सिवाके होवे उन्होंने अपने आपसेंही आपके देवोंके चरित्र लिखे हुवे होवें वे देख लेने चाहियें, और वे चरित्र देखनेसें यदि अठारह दूपणमेंसें कोइभी दूषण न होवे तो उन्होंको वडी खुशीके साथ देव मानने चाहियें और वैसे देवको हमभी नमस्कार रातदिन करते हैं. वाचनेवालेको देवका चरित्र देखनेंही जो अठारह दूपण मेंसें दूपण देखनेमें आवे तो वे दूपणवाले देवको कौन मानेगा ? जिनको ये दूपण न छोडने होवेंगे वही मानेंगे और जो त्याग करने होवेंगे तो शोचेगा कि जिसने आपके आत्माका उद्धार न किया तो अपने आत्माका क्या उद्धार करेगा? ऐसी विचारकरकें सहजसेंही सत्य देवकीही आज्ञा धारण करेगा

प्रश्न—बडे बडे पंडित हो गये और बडे बडे भारी शास्त्र बनाये उन्होंनें क्या देवकी पहेचान न की होगी ? न्याय और व्याकरणके शास्त्र जैनीओंकोंभी ब्राह्मणके पास पढने पडते है, वास्ते ऐसे विद्वानने कुछ देखनेका बाकी रख्खा होगा ? इस संबधमें यही समझना कि यह बात अपना अपना मन जान सके ऐसी हैं. कितनेक अन्यदर्शनके विद्वानोंके साथ बात हुइ हैं, वे विद्वान अपने धर्मकी पुष्टि करते है, परंतु खानगी—गुफतगो करनेके वक्त उनोंके मुंहसें उससें विपरीत बोल निकलते है, जैसें कि आचार्य महाराज श्री आत्मारामजी पेश्तर ढुंढक मतमें थे, उस वक्तमेंही ढुंढकके पास पढनेके लिये गये थे उस ढुंढकने शिक्षा दी कि–' प्रतिमाजीकी निंदा जो तुम करते हो, वास्ते में तुमें न पढाउगा, क्यौं कि आगमजीमें देखनेसें प्रतिमाजी पूजनेका व्याजबी मालूम होता है. ' और उसने प्रमाणस्थल बतलाकरकें प्रतिमाजीकि श्रद्धा करवाइ. तब आत्मारामजीने कहा कि–'तुम झूठ मार्गमें क्यों पड रहे हो? जवाब दिया कि–अब निकलनेसें लज्जा आती है.' ऐसी रीति है, वास्ते दूसरेकी तर्फ देखनेका विचार करना सो व्यर्थ है. अपने आपसेंही शास्त्र देखकर निष्पक्षपातसें तपासकर लेना कि सच्चा क्या है ? वो सहजसेंही समझमें आ जायगा जैनी व्याकरण न्याय पढते हैं वो तो कक्का शीखने समान है उसमें कुछ मार्गका ज्ञान करनेका नहीं मार्गका ज्ञान किसी ब्राह्मणके पास लेनेंको नहीं जाते हैं. मार्गका ज्ञान तो मार्ग पाया हुवा मनुष्यभी बतला सक्ता है, तो मुनि महाराज तो एक संसार त्याग करनेका काम कर चुके हैं. व्याक-

रण पढानेवाला तो ससारमे पडा हुवा है वो क्या मता मके ? वास्ते यह सब पराये विचार छोडदेकर यदि अपना काम करना हो तो उसकों अपने आत्माका उद्धार करनेके वास्ते आप खुद शास्त्राभ्यास करकें देवगुरुकी तजवीज करो सोही दुरुस्त समझ लो तो वहुत फायदेमंद हैं अनादिकी आदत तो ऐसी है की जिस मजहबमें पडे यही क्रिये करना, लेकिन वो रीति छोडकर अपनी बुद्धिसें सूक्ष्म विचार करकें जो जो देव नाम धरवा कर अपनकों जो धर्म करनेका कहते हैं वो धर्नमें वी चले है ? और स्वभावमें रहकर विभावसें मुक्त रहेनेका कहते हैं वैसे रहे है ? ए देखनेका मुख्य काम है और अपनकोंभी मनुष्यजन्म पाकर यही करनेका है वास्ते अशुभसें जडकी प्रवृत्ति कमी होवे और आत्मस्वभावमें स्थिरता हो. ये उद्यम करना ये उद्यमसेंही वर्त्तमान समयमें या कलातरमें अनुक्रममें आत्मगुण सपूर्ण उत्पन्न होवेगा, वास्ते ज्यों बन सकै त्यों आत्मतत्त्वकी शुद्धिपद दर्शनमेंसें जिस दर्शनमें विशेष मिल सके उस दर्शनकों ग्रहण करकें उस दर्शनकी श्रद्धा रखकर स्वगुर खोजनेके कामी होना

*प्रश्न*—तुमारे जैनदर्शनमें व्यवहार क्रियामें वर्त्तते हैं; परतु कोइ आत्म खोजना करनी या आत्मगुणमें वर्त्तना, वैसे तो मालूमही नहीं होते

उत्तर—सब जीव कुछ आत्माके शोधक नहीं होते हैं, और आत्मगुणमें वर्त्तनेवालेभी नहीं होते हैं. सबब कि यह दुषम कालमें ज्ञानीओंनें पेस्तरसेंही ज्ञानमें देख लिया है कि वर्त्तमान समयमें कोइ इस क्षेत्रकी अदरसें मोक्ष नहीं जावेंगे। इससें मोक्षमें जावें वैसे ध्यानादिकके करनेवाले कहासें होवे ? लेकिन, वर्त्तमानकालानुसार साधन कर सकें ऐसे उत्तम जाव तो अभी मिल जावें ध्यानादिक करकें समभाव दशा ल्यानी है, विषय कषायसें मुक्त होना है, तो कोइ मारपीट कर जाय या तो पूजा सत्यकार कर जाय तो उन दोनुपर तुल्य दशा करनी चाहियें. वो करनेके उद्यमी तो निकलें गें, मगर कितनेक धर्मवाले ध्यान करनेका नाम देकर गांजेकी चिल्म फूकते हैं-भग पीते हैं, उससें ज्ञान नष्ट हो जाता है ओर विषय कषाय बढते हैं ऐसा उद्यम करकें कहवैं कि-हम ध्यान करते हैं वो क्यों मान लिया जाय ? अन्य दर्शनमेंभी कितनेक वेदिये पशु कहेजाते है वो कैसे होते हैं ? कि जो वेदातकी बातें करें, उसकी कथा करै और विषयकषायमें वर्त्ते तब कहने लगे कि जडका काम जड करता है उसमें हमकों क्या ? जो खानेका दिल होवे सो खाना, भागकी इच्छा हुइ होवे तो भोग करना, कुछभी

जडकर्त्तव्यमें रूकावट नही करनी. ऐसा धर्मपालन करके स्वेच्छा मुजब चलै विषय-कषायमें मशगुल रहे और कहेवे कि हम ध्यानी हैं, उसे दुनियामें वेदीए पशु कहे-जाते हैं पातांजली योगशास्त्रमें अष्टांग योग साधनेका कहा है, उसमें प्रथम योग यम है वो पांच वस्तुके त्यागसें होता है याने जीवहिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह इन पांचोंका त्याग होवे तब यम नामक योग प्रकट होवे दूसरा योग नियम है, उसमें शौच, संतोष, तप, सज्झायध्यान और ईश्वरध्यान इन पांचोंके सेवनसें नियम सिद्ध होता है तो ये जैसें जैनमें व्यवहार कहा है वैसेंही योगशास्त्रमें कहा है. तीसरा आसन योग है-याने आसन स्थिर करना, ये तीन सिद्ध हुवे पीछे चौथा प्राणायाम योग होता है, उसमें पूरक, कुंभक और रेचक करना कहा है-ये हठ समाधि योग है. पांचवा प्रत्याहार योग है, उसमें पांचों इंद्रियके विषयोंका संवर होता है. संसा-रसें और जडभावसें विमुख होता है तत्त्वबोध होता है, सूक्ष्म ज्ञानभी होता है. छट्ठा ध्यानयोग है सातवा धारणायोग और आठवा समाधियोग है ये तीन योग केवल सहज समाधिकी प्राप्तिके साधन है सो होवे अब शोचो कि अष्टांगयोगके साधनवा-लोंनेभी प्रथमके योगमें व्यवहारशुद्धि बतलाइ है, वो व्यवहारशुद्धि न करे और कहवे कि ध्यान करते हैं वो बात ज्ञानवंत क्यों कबूल करेंगे? जैनशासनमेंभी क्रमशः चड-नेकों गुणस्थानकका क्रम बतलाया है, उस मुजब उसमेंभी योग्यता मुवाफिक ध्याना-दिक है, और क्रमरहित गुणस्थानमें चडनेवालाभी पीछा पडता है, वो संयमश्रेणीकी स्वाध्यायमें कहा है. पुनः बृहत्कल्पकी शाखी दी है, वास्ते क्रमशः जिसतरह ध्यान नादिककी रीति कही है, अष्टांगयोगकी व्याख्याभी योग्य दृष्टि समुच्चयमें हरिभद्रसूरि-जीने विस्तारपूर्वक कही है उसमें ज्यादे तफावत नजर नहीं आता है. और जैनी जानते नहीं, शोध करते नहीं, ये कहेना जैन धर्मशास्त्रके अजानपनाके लिये है जैनमें क्रमसें गुणस्थान चडनेका कहा है, उसमें योग्य होता है तब ध्यान करता है योग्यता न आवे वहांतक भावनाए भावे. ये भावना ध्यानका स्वरुप ध्यान शरीक, योगशास्त्र, ध्यानमाला, षोडशकजी वगैरः ग्रंथोमें देखोगे तो अच्छी तरहसें समझा जायगा. मैनेभी अल्पमात्रसें प्रश्नोत्तर रत्नचिंतामणिमें दर्शाया है उससें यहां नहीं लिखता हुं; वास्ते उसमेंसें देख लैना तुमारा प्रश्न इतना स्वीकारते है कि मार्गमा दर्शामे मुजब मेरेसें नहीं हो सकता है वो प्रमाददशा है बाकी जो महापुरुष हुवे है और होनेवाले हैं वे

पुरुष तो आत्मतत्त्वकीही शोधमें वक्त व्यतीत करते हैं, निजस्वरूप शोचते है, आपके गुणपर्याय विचारते हैं आपका स्वरूप शोचते आपकी विपरीतदशा मालूम होवे उस दूर करनेके लिये व्यवहारमें वर्त्तते हैं व्यवहारमें वर्त्तनेसें जितना आत्मा कर्मसें मुक्त होता है और निर्मल होता है उसकोंही धर्म मानते है, उसीमेंही आनंदित होते हैं आपके आत्माकी परीक्षा करनेकों कष्टभी सहनकर देखते है, सबब कि वातें करनेरूप जडपदार्थ मेरा नहीं ऐसा कहते हैं, परंतु ज्ञानी तो कष्ट सहन करनेके वखत परीक्षा करते हैं कि जो शरीरकों कष्ट पडता है तब वो कष्ट मुझकों हुवा माना जाय या नहीं ? जो दुःखमें चित्त लिप्त होता है तब तो कथनरूप हुवा, और जो शरीरको कष्ट होता है उसमें समभाव रहते हैं तब सच्चा ज्ञान हुवा स्वीकारते हैं, ऐसी स्वाभाविकदशाही स्वस्वरूप परस्वरूप ज्ञान होनेसें हुई है, उसके प्रभावसें जो जो दुःख होता है उसमें किंचित्भी खेद नही पाते हैं, आपआपने आनंदमें रहते है कर्मफलकी प्रतीत होती जाती है कि पूर्वसमयमें पाप किये है, उसका यह फल भुक्तता हुं अबभी पाप करुंगा तो उसके फल भुक्तने पडेंगे, ये विचार जम गये है उससें कर्म क्षय करनेके प्रभुजीने जो जो उद्यम कहे हैं उससें व्यवहारमें वर्त्तते है, निश्चय स्वरूप हृदयमें चिंतन करते हैं, उसकी विचारणा कर रहे है विशेष विशुद्धिवंत ध्यानादिमें लीन होते हैं, और ऐसे उद्यमसें पुरुष मोक्ष पावेंगे यह निश्चय वार्त्ता है, परंतु जिसने उद्यम छोड दिया उसकों तो कुछभी होनेका नहीं.

प्रश्न —धर्मका उद्यम तो सब धर्मवाले अपने अपने विचार मुजब करते हैं तो जैनधर्ममें क्या विशेष है ?

उत्तर—जैनधर्मके मार्गमें निश्चय और व्यवहार ऐसें दो प्रकारका मार्ग है, उससें करके वस्तुधर्मका यथार्थ निर्णय होता है, और यथार्थ प्रवृत्तिभी कर सकते हैं जैन होकरकभी कितनेक अकेला निश्चय ग्रहण करते हैं कितनेक अकेला व्यवहार ग्रहण करते हैं और निश्चयपर दृष्टिही नहीं देते इन दोनुमें यथार्थ जैनपना ही नहीं इस वास्ते यशोविजयजीने कहा है कि–'स्यादवाद पूरण जो जाने, नयगर्भित जस वाचा, गुणपर्याय द्रव्य जो बूझे, सोइ जैन है साचा ' इसतरह कथन है. और इसी मुजब चले उसीकोंही जैनी कहना दुरूस्त है तो जेसें जैन नाम धारण करकें एक पक्ष ग्रहण करे तो उसें जैनीकी गिनतीमें नहीं गिना जावै, सबब कि वो यथार्थ आ-

त्मसाधन न कर सकै. किसी तरह अन्यदर्शनमेंभी एकांत पक्ष ग्रहण करै उसें वस्तुधर्मका यथार्थ ज्ञान न हो सकैगा. और वस्तुधर्मके बोध सिवा आत्मधर्मकों आत्मधर्मके स्वरूपसें न जान सकै, जडधर्मकों जडधर्मके रूपसें न जान सकै, जैसा आत्माका लक्षण है वैसा लक्षण न जान सकै, परमात्माका जैसा लक्षण है वैसा न जान सकै, वो कदाचित् परमात्माका ध्यान धरै तोभी सफल किसतरह होवे? कितनेक कहते हैं कि–'इश्वर सिवा कोइ पदार्थ हैंही नहीं जडपदार्थ है ऐसा कहते है सो भ्रांति है. अब प्रत्यक्ष पदार्थकों भ्रांती कहते है वे मनुष्य उसके अनुसार ध्यान धरै तो आत्मकार्य किस प्रकारसें हो सके? वास्ते जो जो वस्तु जिस जिस रूपसें रही है उस उस स्वरूपका ज्ञान करकें ध्यान धरै तो कल्याण होवे, बाकी जिस जिस जीवोंकों अपने आत्माका कल्याण करनेकेही बुद्धि है और वो बुद्धिसें जो उद्यम करते हैं वो परपरासें हितकारी है, सबब कि आत्मधर्म पानेके सन्मुख हुवे हैं, उनोंकों सद्गुरुका योग मिल जाय तो ज्ञान होनेमें देर न लगै. वास्ते सन्मुख भाव करना ये अच्छा हैं उससें परपरासें कल्याण होवैगा, और एक पक्षकी बुद्धि छोडकर निश्चय दृष्टि हृदयमें स्थापन कर निश्चय प्रकट होवै वैसे कारण सेवन करने चाहियें कि उससें कल्याण होवे, और परपरासें इच्छित सुख होवैगा. उसमें मुख्य शास्त्रज्ञान करनेका विशेष उद्यम रखना, उस ज्ञानानुसारके परभावसें मुक्त होनेके साधन करने चाहियें कि उससें सर्व श्रेय होवैगा

प्रश्नः–जैनमें कितनी वस्तु कही है?

उत्तरः—जड और चेतन दो पदार्थ है, इनकी व्याख्या पेस्तर बहुतसी की है, इससें यहापर नहीं लिखता हु अब इतनाही लिखनेका है कि जड जो शरीर–घर–हवेली–कपडे–आभूषण वगेरः प्रकट पदार्थ हैं, उसकों अद्वैतवादी कहते हैं कि भ्रांति है, पदार्थ नहीं. अविद्याके प्रभावसें मानते हो. यह जो कहा हुवा है इस विषयके बहुतसें ग्रंथभी लिखाये गये है और न्यायभी रचे गये हैं, परतु मेरे विचारमें सर्वज्ञ पुरुषने क्या बतलाया है:–यह जडपदार्थ हैं, उससें ये पदार्थ मेरे नहीं, इन पदार्थोंमें मेरापना मानता हु सो भ्रांति है–अविद्या है, आत्माका चेतन स्वभाव है वास्ते परस्वभावकों मेरा कहना सो भ्रांति हैं और यही भ्रांतिसें अनतकाल हुवा ससारमें परिभ्रमण किया, वास्ते जिसकों ससारमें भटकना न होवे उसकों इन पदार्थोंपरसें मेरेपणेका ममत्व छोड देना, इसतरह परमात्माका कथन है, उसका रुपातर

हो गया है फिर जैनमत स्याद्वाद है, उसकों अजानपनेसें यु जानता है कि हा और ना ये किस तरह बन सके ? परतु जो जो पदार्थ रह हैं उसमें दो दो धर्म रहे हैं तो वै न माननेसें कार्यकी सिद्धि किस प्रकारसें हो सके ? उसका दृष्टांत कि-औरतकों लडके होते हैं अब एक पक्ष पकडकर कहे कि औरतकों लडके होतेही है, तो क्या दूपण आता है कि वध्यास्त्रीकों लडके नहीं होते हैं अब वध्याकों होवैही नहीं ऐसा मानते है उसमेंभी दोष आता है, क्यों कि वध्याकों औषध देनेसें वध्यादोष मिटता है और लडके होते हैं अब यु कहे कि औषधसें वध्यादोष दूर होता है तो वोभी झूठा है, सबब कि कितनीक औरतोंकों औषधसेंभी वध्यादोष नहीं मिटता है, तो एकातसें युभी कहे तो दूषण आयगा शरीरकी निरोगता अच्छी मावजत रखनेसें रहती है ऐसा यदि एकातसें कहेंगे तो महाराणी साहबाकों मदगी सुक्तनी पडी और शरीर त्याग करनेका समय आया, क्या उन्होंने मावजत करनेमे कुछ कमी रक्खी होगी ? मगर पूर्वकृत कर्म जोर करै वहा मनुष्यका कुछ नहीं चल सकता है अब यहांपर ऐसा सवाल होवेगा कि शरीरकी मावजत रखनेके लिये कुछ जरूरत नहीं, कर्मसें होता है सोही होवैगा, येभी एकात पक्ष नहीं हिफाजतसेंभी बचाव होता है; जैसें कि जानबूझकर विष खायेंग तो फिर क्योंकर जिया जायगा–जीवन कुशल रहवैगा ? महामारी वगैर की हवा चलती होवे वहांसे दूर जाना चाहियें, यु करनेसें बचाव होता है–येभी एकांत नहीं अब डाक्तरकोंभी भग जाना चाहिये ये सवाल ऊठैगा, क्यों कि दूसरे भगें तब डाक्तर क्यों न भग जाय ? तब हम कहेंगे कि भाग जानेका एकांत नहीं डाक्तर महामारी लागु न हो सके ऐसे बदोबस्तसें रह करकें लोगोंकी सलामती समाले–डाक्तर भग न जाय दूसरे जन दूसरी जगह चले जाय तो हरकत नहीं इसी तरहसें धन पैदा करना, सो महेनत करनेसें धन पैदा होता है और नहींभी होता बुद्धिवत बुद्धिसें धन पैदा करता है, वोभी एकातसें नहीं कहा जायगा, बुद्धिवत देवालेभी निकालते हैं और मूर्ख होते है सो धन समालकर रखते हैं, वोभी एकांत नहीं, बुद्धिकी न्यूनतासें बहुत नुकशान होता है खाना वो अच्छा है मगर वोभी एकांतसें नहीं क्यों कि शरीरमें खाया हुवा हजम नहीं हुवा और फेर और खाय लेवे तो अजीर्णादिक रोग होवे, वास्ते उसकों न खाना, उसमभी एकात नहीं, सहज पदार्थ सतोषके लिये-निभावके लिये, खोराक लिया पाचन होनेके लिये खाना चाहिये.

घी बहुत उत्तम पदार्थ है, खाने लायक है, मगर निरोगीके वास्ते है, रोगीके लिये नहीं. रोगीकोंभी न खाना ऐसा एकांत नहीं, औषधके अनुपानमें–रोगपर या शरीरस्थितिपर विचार करके वैद्य–डाक्तर खानेकों कहें तो खानाभी चाहियें दान देना उत्तम है, मगर एकांत नहीं अपने सिरपर करजे होवै वो न देवै, और दान देवै, उस प्रकारसें दान न देना येभी एकांत नहीं आपके खानेके वास्ते दो रोटी बनाइ है उसमेंसें आधी या एक रोटी देकर बाकी रही हुइ रोटीसें आपका गुजारा चला लेवें सो उत्तम है. दान न देता तो आप खाता, मगर आपने खाया नहीं और दान दिया सो महा फलदायी है किसीकों दुःख न दैना ये शब्द एकांत है तोभी वो एकांत नहीं. किसी उत्तमपुरुषकों रोग हुआ है, वो रोग मिटानेके लिये दुःख देवै तो वो लाभकारी है, जैसें कि वर्ण व्रण गया हो और नस्तर देवै तो उससें दुःख होता है सही, परंतु शाता करनेके वास्ते दुःख देना है तो वो दुःख देना निषेध नहीं. लडकोंकों पढानेके लिये शिक्षक आदि विद्यार्थियोंकों मारते हैं–दुःख देते है वो दुःख देना निषेध नहीं वोभी एकांत नहीं. मारनेसें हाथपॉव टूट जाय, जखम हो जाय, खून निकलै, कोइ भारी इजा होवै ऐसा मार वगैर भी न मारना चाहियें फिर कोइ कोमल अंगका होवे वैसेकों बिलकुल न मारना चाहियें. फिर कोइ शिष्य अयोग्य होवै तो न मारना चाहियें. इसतरह सब विद्या पढनी यह साधारण नियम है; परंतु वो एकांत नहीं मंत्र–विद्या वगैर' विद्या सिद्ध करनेकी जिसमें शक्ति न होवै उसकों वो विद्या पढनीही न चाहियें और तप करना सो लाभकारी है, वोभी एकांत नहीं, जिसकी शक्ति होवै वो तो सुखसें तप करै; मगर ताकत न हो तो तप करनेसें परिणाम बिगड जाता है वैसेकों तप न करना वोभी एकांत नहीं अंतिम मरण समय है और उस वक्त शक्ति हो या न हो तोभी चारों आहारकों त्याग करनाही दुरस्त है वोभी एकांत नहीं, जिनके गात्र अच्छे न रहे और परिणाम बिगड जावे तो उसका त्याग करना व्याजबी नहीं धर्मोपदेश देना ये अच्छी बात है; मगर एकांतमें नहीं. जिसने यथा प्रकारसें शास्त्रका ज्ञान मिलाया है वो उपदेश देवै, परंतु जिसने वैसा ज्ञान न मिला लिया हो वै और उपदेश देने लगे तो प्रभुजीकी आज्ञा विरुद्ध देनेमें आ जाय, वास्ते ज्ञान रहित हो उसें उपदेश न देना. ज्ञानवंत है वोभी श्रोता उपदेशके लायक न होवै तो उपदेश न देवै–वोभी एकांत नहीं.

वर्त्तमानकालमें लायक श्रोता नहीं है, मगर उपदेश देनेमें लायक बनेगा ऐसा मालूम हो सके तो देना अयोग्यका जवाब न देनेसें शासनकी लघुता होती हो तो लघुता दूर करनेके लिये उपदेश देना यह स्याद्वाद रीति है अपेक्षा अपेक्षाके वचन भिन्न भिन्न हैं अब ऐसी अपेक्षाए न समझे और एकही रीतिकी बात कहवे वो ज्ञानी कि अज्ञानी ? सरकारके कायदामेंभी अपवाद हैं तिसी तरह जैनशासनमेंभी उत्सर्ग अपवाद मार्ग बतलाया है विगर अपेक्षासें हा उसकी ना ऐसा जैनमार्ग नहीं. तिस तरहसें जैनमार्ग समझ लिये विगर किसी जगह शास्त्रमें उत्सर्ग मार्गकी बात हावे और किसी जगह अपवाद अपेक्षासें हावे, वो विचार ध्यानमें लिये विगर कहते है कि जैनमें एक जगह कुछ कहा है और दूसरी जगह और कुछ कहा है-ऐसा कहेनेवाले केवल मूर्खताका उपयोग करके कहते हैं जैनशासनकी सुज्ञता प्राप्त हुइ होती तो कभी ऐसा न कहते जैनमें जो सात नय सप्त भगी आदि बतलाइ है वो ऐसा अपेक्षा ज्ञान होनेके लियेही है वो नयादिकका यथार्थ ज्ञान हो जाय तो समस्त जगह जो जो नयका वचन है वो वो नयकों उसी जगह स्थाप लेवे तो किसी बातका सदेह रहवेही नहीं परतु वो ज्ञान विगर जैनशासनकी स्याद्वाद बातके सबधमें विपरीत बोले-भाषण करे ये अपने मजहब-पथका हठ है जो जो पदार्थ रहे है उसका निर्णय स्याद्वाद ज्ञानसेंही होता है दुनियामें कोइभी वस्तुका स्वभाव स्याद्वाद सिवाका नहीं है,, जैसें कि जीव है सो अविनाशी है ये सत्य है, किसी रोज जीवका विनाश होताभी नहीं ; यही पक्ष पर एकातसें रहवे तो जो जो जीव ससारमें परिभ्रमण करते है वे एक शरीर छोडकर दूसरी जातिका दूसरा शरीर धारण करते है तो पेस्तर हाथी था तब आपके आत्मप्रदेश हाथीके सारे बदनमें फैलकर रहे हुवे थे, वो हाथीभी मर गया और मख्खी हुइ तो जो हाथीमें फैलाव था उसका सकोच कर मख्खी जितनेमें समाया-इसी तरह आत्मप्रदेश हुवे तो हाथीवाली अवगाहनाका नाश हुवा, और हाथीकी-बोलने-चलने खाने-पीने वगैर, जो जो प्रवर्त्तनाथी वो बध हो कर मख्खीपणेकी हुइ तो हाथीपणा नाश हुवा, उस अपेक्षासें जीवमें नाश धर्म भी रहा है जो नाश धर्म न माने तो विपरीत कि कैसा ? परमाणु पदार्थ अविनाशी है, मगर एक दूसरे मिलजाना, अलग हो जाना ये धर्म रहा है, सो विनाशी धर्म है इसी तरह मिट्टीके अनेक घाट होते हैं, वो विनाश होते हैं, मिट्टी अविनाशीपणेसें है, तो इसी-

मेंभी दो धर्म रहे है, विसी तरह दो दो धर्म सबमें मौजूद हैं. आत्मामें स्वभाव धर्म और विभावधर्म-ये दोनु दोनु अपेक्षासें रहे हैं. स्वभावधर्म कर्त्तम नहीं, स्वभावधर्म जडमें रहेनेका, मगर जडकी साथ वर्त्तनेका नहीं मुँह नहीं उससें बोलनेका नहीं, चलनेका नहीं; फकत जानना-देखना-स्वभावमें स्थिर रहना ये स्वभाव आत्माका है. अब एकात मानै तो जडप्रवृत्ति करता है सो कौन करता है? वेदातीलोग ऐसा कहते है कि मायासें अविद्या होती है तो उस रीतिसेंभी परसयोगसें वर्त्तनातो हुइ. तो जीवमें स्वभाव न होवै तो किसतरहसें वर्त्तना करें? अब वर्त्तनेका स्वभाव मानै तो इससें रहित होवै नहीं. ऐसें एकस्वभाव माननेसें कुछभी वस्तु निर्णय नहीं हो सकैगा. जैनशास्त्रकारें स्वाभाविकधर्ममें कुछभी जडप्रवृत्ति नहीं ऐसा कहते हैं सो सत्य है. वैसा न होवै तो ससारसें मुक्त होकर कोइ शुद्ध हो सकेही नहीं. वास्ते शुद्ध निश्चयनयके पक्षसें निजस्वभावमें रहना यही धर्म है अशुद्ध निश्चयनयके पक्षमें जडकी संगतके जोर कर्म बधे हुवे हैं वो कर्मके सयोगसें जडकी प्रवृत्ति होती है. जड ज्यौं वर्त्तता हैं त्यौं आत्मा वर्त्तता है. अब वो प्रवृत्ति छोडनेके वास्ते व्यवहारमें धर्मसाधन करना है और जो जो कर्म बांधे हुवे हैं वो क्षय होवै वैसा उद्यम करना. कर्म क्षय करनेकाही यथार्थ उद्यम किये विगर आत्मा निर्मल होनेकाही नहीं और कर्मक्षय होनेकेही नहीं. ऐसे वस्तुओंमें स्वाभाविक विभाविक धर्मोंका ज्ञान विगर ध्यान करें तो विपरित ध्यान होवैगा. वास्ते पदार्थोके धर्मका दर्शाव जैनशास्त्रकी अदर बहुत विस्तारपूर्वक है, वो जानकर पीछे दया दानादिक करैं तो सफल होवै, और मोक्षसाधनभी उसें कहा जावै. स्वभाव धर्मको स्वभावपणेसें श्रद्धा करके विभाव धर्ममें वर्त्तना है वो दूर करनेमें पेस्तर विभाव वर्त्तना करनी पडेगी, जैसें कि गृहस्थपणेकी प्रवृत्ति विभाविक छोडकर साधु धर्मकी प्रवृत्ति करनी अब निश्चयनयकी अपेक्षासें येभी विभाव है. परतु ये विभाव कैसा है? स्वभावको आवरण लगा हुवा होवै उसे हठानेवाला है-वीतराग आज्ञासें साधुपणा आता है सो तो विभावके अश क्षय होनेसेंही आता है, वो ज्यौं ज्यौं सयममें तत्पर होवै और सयम स्थानमें चडता जाय त्यौं त्यौं विभावदशा हठती जावै और आत्मशुद्धि होवै. अनुक्रमसें गुणस्थान चडता जाय सो सर्वथा विभावसें मुक्त होवै और स्वभावधर्ममें प्रकट होवै उससें अनत ज्ञानशक्ति प्रकट होवै और एक समयमें तीनलोकके भाव जाननेमें आवै अनतदर्शन प्रकट होवै. उससें

सामान्य उपयोग रूप बोध होवे अनंत चारित्रगुण प्रगट होवे उससें स्वभावमें स्थिर रहवे अव्याबाधसुख वेदनीकर्मके क्षयसें प्रकट होवे नामकर्मके क्षयसें अरूपिगुण प्रगट होवे गोत्रकर्मके क्षयसें अगुरु लघुगुण प्रकट होवे अंतरायकर्मके क्षयसें अनंत-वीर्य प्रकट होवे आयुकर्मके क्षयसें अक्षयस्थिति प्रगट होवें इसतरह अनंत आत्माके गुण प्रगट होवे और लोकाग्रमें सिद्धिके अंदर विराजमान होवें

प्रश्न'—सिद्ध स्थान कहां है और वहीं किस लिये रहना ?

उत्तर'—सिद्ध स्थान चौदह राजलोककी उंचाइ है उसके अंतभागमें अलोक-कों छूके रहे है अलोक याने वहा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, काल ए पाचों पदार्थ नहीं उससें अलोक कहाजाता है. वो अलोकके नीचे रहे है, सबब कि धर्मास्तिकाय अलोकमें नहीं उसकी सहायता बिगर चला नहीं जाता वास्ते वहा रहे हैं वहा कैसें रूपसें रहे है ? देह नहीं उससें वर्ण नहीं, गंध नहीं, स्पर्श-फर्स नहीं, रस नहीं, अरूपीपणेस रहे हैं सो सदाकाल अवस्थितपणेसें रहे है कोइभी दिन पुन चलित होनेकाही नहीं—अचल स्वभावी [ ससारी सुख अस्थिर है वैसा अस्थिर सुख नहीं ] स्थिर सुख है, जन्म मरण करनेके दु ख दूर हो गये है, ससारमें विकल्पकाही दुःख है, जब विकल्प न होवे तब ससारमें सुख होता है उससें सिद्ध महाराज सदा विकल्प रहित है—कोइभी वक्त कोइभी कारणका विकल्प नहीं उससें सदा काल सुखमयी रहते हैं ससारमें इच्छाए प्रवर्त्तती है वेसी इच्छाए पूरी न होवे उसका दु ख है, परतु सिद्ध महाराजकों कोइभी ससारी चीजकी इच्छा नहीं उसस दु ख नहीं जिससें सदा सुखमयी है जो जो पदार्थ देखनेमें जाननेमें आते हैं उस सबधी रागी जीवकों राग होता है पीछे वो मिलता नहीं उसका दु ख होता है और महाराजजी वीतराग दशाकों पाये है उससें उन्होंके जानने देखनेमें चौदहराज लोकके पदार्थ समय समयमें आते हैं, परतु वीतराग दशाके लिये जो आपके आत्माके स्वभावसें मालूम होते है उसमे कुछभी चित्त नहीं, विकल्प नहीं, मगर स्वभावानंदमें वर्त्तते है जितने जितने ससारमें दुःख है उस अदरका एकभी दु ख सिद्ध महाराजजी कों नहीं पुन. ससारके जो जो सुख है वो दु खमयी हैं—अनित्य है, मात्र सुख मानते हैं इतनाही है ज्ञानदृष्टिसें शोचे तो सुख नहीं है, सबब कि जगतके जीव स्त्रीके भोगसें करके आनंद मानते है, परतु इसी वक्त शरीरकों कितनी तकलीफ होती है उसपर

लक्ष नहीं देते है. उसकों दुःख न मानते सुख मानते हैं विषयमें आयुष्यकी हानी– पैसेकी खराबी होती है, वो सब बात ताजुपर रखकर सुख मानते हैं जिसी तरह त- माशे खेल देखनेको जाय वहा रात्री जागरण करता है, खडाही खडा रहता है, उसे दुःख नहीं मानता जेवर पहनकर खुशी होता है, उसका बोजा उठाना पडता है और शरीरकों पीडा देता है परंतु उसपर लक्ष नहीं युही खानेके विषयमें कितनीक ऐसी चीजें है कि खानेसें रोगकी उत्पत्ति होती है, मगर उसकी तरफ लक्षही नहीं कित- नेक पदार्थ शरीरकों अरुची करै ऐसे नहीं है तोभी वे प्रमाणसें खावें तो. यदि प्रमाणपर लक्ष न रक्खे और पशुकी तरह अतिशय खावे तो अजीर्ण होवे और मर जाय या बीमार होवे, उसकाभी विचार विषयके आगे बेमालूम रहेता है. यदि प्रमाणसें खावें तोभी उसमें कितने दुःख भुक्तने पडते हैं, जैसें कि जीवकों दु- ग्धपाक खानेका दिल हुवा है और दुग्धपाक खाकर खुश होता है, मगर दुग्धपाक बनातेही कितना पसीना निकला जब तेयार हो सका उसका कोइ विचार नहीं क- रता इसतरह संसारी सुख दुःख गर्भित है. स्त्रीयोंकों विषयके लिये पुरुषका दासपणा करना पडता है यदि विषयकी इच्छाही न होवे तो पाणीग्रहण करनेकी जरूरतही न पडे, परंतु विषय सेवनकी इच्छासें पाणीग्रहण करती है पीछे पुरुष मारे पीटे– गालीयां देवे–सारा दिन घरका काम करावे–इतना दुःख भुक्ते तब विषयके पहन- नेके सुख मिलते है वास्ते वस्तुपणेसें संसारीसुख सुख माननेरूपभी दुःखमयी हैं और सिद्धमहाराजजीकों इनमेंसें एकभी दुःख नहीं केवल सुखही है,' और सादि अ- नंत भागे है याने सिद्धिमें गये तबसें आदि है, परंतु ये सुखका अंत नहीं आनेका. इसका स्वरूप अकल है–किसीसें पार लिया जावे नहीं ऐसा अगम है त्यु ये सुख मुँहसें कहा जा सके वैसा नहीं शास्त्रमें एक दृष्टांत दिया है कि–एक राजपुरुष वक्र- शिक्षित अश्वपर आरुढ हुवा और पीछे ज्यों ज्यों उसकी लुगाम खीचता गया त्यों त्यों खडे रहनेके बदलेमें घोडा दौडता चला गया और कही जंगलमें ले गया. अपने मनुष्य सब पीछे रह गये और राजा अकेला जंगलमें भटकने लगा राजाका डर लगनेमें लुगाम छोड दी कि फौरन घोडा खडा हो रहा पीछे अश्वपरसें नीचे उतरा. राजाकों बडी प्यास लगीथी, परंतु पास जलपात्र कुछभी न था. इतनेमें एक भील वहापर आ चढा, उसकी पाससें राजाने पानी मांगा तो उसने दया लाकर पत्तेके

दडियेमें जल ल्याकर पिलाया, और पानी पीकर राजा प्रसन्न हुवा उस पीछे भीलने फल वगैर' ल्याकर दिये वो राजाने खाये उससें राजा बहुतही खुश हुवा. उतनेंमें प्रधान वगैर सब आ पहुचे तब राजाने कहा कि इस भीलने मेरे प्राण बचाये हैं पीछे राजा भीलकों अपने साथ ले गया वहा विविध मेवा मिठाइ खिलाइ, उससें भीलभी खूब राजी हुवा, और कितनेक रोज वहां रहकरकें राजाकी रजा माग अपने घर गया तब औरतने पूछा कि 'नगरमें कैसा सुख था ?' जवाब दिया बहुत सुख था ' औरतने कहा—'उसका ठीक ठीक बयान कर बतलाओ.' मगर वो कुछ बयान न कर सका विसी तरह सिद्धमहाराजजीका सुख मुँहसें कहा जावे ऐसा नहीं है सब कि उस सुखका बरोबर मुकाबला कर बतलावै वैसी चीज सुख पूर्ण ससारमें हैही नहीं, वास्ते सच्ची रीतिसें तो वो सुख वैसी दशा पावे सोही जान सके. कितनेक सुख लिखनेमें आये हैं वे दृष्टातरूप हैं उससें बुद्धिवत कितनाक समझ सके ऐसा सिद्धमहाराजजीका सुख अठारह दूषण त्याग करनेसें होता है. वास्ते हरएक दूषण भगवतजीने दूर किये, उसका स्वरूप वे दूषण नाम मात्रसें बतलाया है विस्तारसें शास्त्रमें हैं, वहासें देखकर भगवतजीने दूषण त्याग करनेका उद्यम द्रव्य भावसें कहा है विसतरह करना कि आत्माका कल्याण होवें, और सिद्धमहाराजजीके बीच भेद है वो दूर करकें सिद्धमहाराजजीके समान गुणवाला आत्मा होवें, यही मनुष्य जन्म पायेका फल हैं

प्रश्न'—आत्माके गुण आत्माकों देना उसें दान कहा और आत्माके गुणकी प्राप्तिकों लाभ वगैर बतवाया वो कौनसें आधारसें ?

उत्तरः—देवचदजी कृत चौवीसीमें सुपार्श्वनाथजीके स्तवनकी अदर दर्शाया है पुन' आनदघनजीकी चौवीसीमें भी वैसा दर्शावेहै उसके आधारसें लिखा है

प्रश्न —वर्त्तमान समयमें महापुरुषोंके किये हुवे ग्रथोंके और सूत्रोंजी–सिद्धांतजीके भाषातर होते है सो योग्य है या नहीं ?

उत्तर.—अभी जो भाषातर होते हैं वे भाषातर कोइ मुनी महाराजजी तो करते नहीं पेस्तरके किये हुवे बालावबोध मुनि महाराजजी और आचार्यजीके बनाये हुवे हैं, उसमेंभी टीकाके जितना विश्वास विद्वान नहीं रखते है–टीका देखकर मिलता हुवा आवे याने टीका के साथ मिलता होवें तो उसें मान्य करते है अभी तो ऐसे

पुरुष कोइ ग्रंथका भाषांतर करते हुवे मालम नहीं होते. फक्त अपनी आजीविकाके वास्ते जैनी गृहस्थ या ब्राह्मणपंडित करते है. जो मनुष्य अपनी आजीविकाके वास्ते करते है उन्होंने जैनशासनकी रीति पेस्तरसेंही लुप्त कर दीई, सबब कि यह लोकार्थ प्रभुजीका पूजन करे उसें लोकोत्तर मिथ्यात्व कहा है तो ज्ञानका अर्थकर या ज्ञान (पुस्तक) वेचकर पैसे पैदा करना सो इस लोकका लाभ है, तो प्रथम हीसें मिथ्यात्व हुवा, सो मिथ्यात्व लगता है, असा शास्त्रसें जाने, परतु आपकों मिथ्यात्व लगता है वो नहीं मानते है. ऐसी दशावाले जैनी या विप्र मिथ्यात्वी हैं, ऐसे जीवोंकों यथार्थ सिद्धातका बोध किसतरहसें हो सके? और यथार्थ बोध विगर अर्थका अनर्थ हो जाय, वास्ते ये कार्य आत्मार्थीकों करना योग्य नहीं कदाचित् आजीविका-गुजरानके लिये काम करते है उन्होंकों शुद्ध क्षयोपशम नहीं होता है फिर विशेषावश्यकजीमें तो ऐसा कहा है कि सामायक अध्ययन गुरुके पाससें पढना, मगर "ननु पुस्तक चोर्यात्" अपने आपसें पुस्तककी अदरसें पढना नहीं. तो ये तो सिद्धातके अर्थ करनेके है पुनः पयन्नादिक विगर दूसरे आगमजी (अगडपागादि) श्रावककों साधुजी पढावे तो प्रायश्चित निशिथजीमें कहा है. तो पढानेकी तो मनाही होवे, और ये तो अपने आपसेंही अर्थ कर लेते है, उसमें गुरुमहाराजजीके आशय नहीं आसकते हैं उससें पूर्णपणेसें अर्थ न हो सकेगा, वास्ते आत्माका डर रखकर ऐसे काम करनेमे समता रखनी और जो जीव भय न रक्खे और ऐसे काममें प्रवर्त्ते तो उसके किये हुवे बालावबोधपर आत्मार्थी विश्वास न रक्खेंगे और जिसको मार्गका ज्ञान नहीं, मार्गके ज्ञानवतकी अनुयायीसें चलना नहीं वो तो अपनी मरजी मुजब चलेगा उसमें तो कोइ इलाज नहीं-लाइलाज है

प्रश्न.—तुमारे लिखे हुवे प्रश्नोत्तर रत्नचिंतामणिमें जिनपूजनकी अदर अल्प हिंसा लिखी है, और दूसरे शास्त्रोंमें तो अल्पहिंसाभी नहीं लिखी उसका क्या सबब है?

उत्तर.—पूर्वपुरुष अनुबध हिंसा नहीं कहते सो कहना व्याजबी है पूजामें अनुबध तो कुशलानुबधी है इसमें मोक्षमें मिला दे सके वैसा अनुबध है, वास्ते अनुबध हिंसा नहीं स्वरूप हिंसा है वो कथनमात्र है, फल नहीं त्यों हमारा कथन शब्द भेद है, आशय एकही है हम अल्प जिसको मुक्तिसुखकी देनेहारी जिनपूजा है याने जिनपूजा मोक्षसुखदायक है-अल्पहिंसाका फल नहीं होवे. औरशब्द अभा-

वचाचीभी हैं, वैसाही समजना इसतरह कहनेसें पूर्वपुरुषोंके कहने मुजबही है. पूर्वपुरुषसें हमारी विरुद्ध श्रद्धा नहीं किसी जगह हमारी भूल हो जावें, परतु महतपुरुषोंकी भूल होवेंही नहीं–यही हमारीभी श्रद्धा है हमारी बुकमें जहां जहा पूर्वपुरुषसें विरुद्ध लेख देखनेमें आवे उसकी श्रद्धा न करनी. वहा वहा पूर्वपुरुषकीही श्रद्धा करनी वो हमकोंभी मालूम करना कि हम हमारी भूल सुधार सकें.

प्रश्न —प्रश्नोत्तर रत्नचिंतामणीमें पत्र १९७ की अदर क्षायकसमकित शुद्ध अशुद्ध भेदके लिये तत्त्वार्थकी साक्षी दी है वो तत्त्वार्थमें है ?

उत्तर —तत्त्वार्थमें तो सादि सपर्यवसान, सादि अपर्यवसान–इसतरह दो भेद किये हैं सो पहेले भेदके स्वामी श्रेणीकादि छद्मस्थ कहे है और केवलज्ञानीका क्षायकसम्यक्त्व सादि अपर्यवसान है ऐसें दो भेद है यही भेद नवपद प्रकरणकी टीकामें शुद्ध अशुद्ध कहे हैं वे दोनु साक्षी एकत्रकी लीखी हैं शुद्ध अशुद्ध भेदके अक्षर नवपद प्रकरण टीकाके पत्र ४९ में और नयसुदरजी कृत प्रश्नकी अदर है वहांसें देख लैना

प्रश्न—दिगबरमत पहेला है या श्वेताबरमत पहेला ?

उत्तरः—दिगबरमतके वास्ते शास्त्रमें बहुत जगह कहा है कि भगवत चर्म तीर्थंकरजी वीरस्वामीजीके निर्वाण वाद ६०९ वर्ष पश्चात् शिवभूति आचार्यने दिगबरमत प्रकट किया हैं वो वात दिगबरी नहीं मानते है, क्यों कि उन्होंने नये शास्त्र रचे हैं एकादश अग, द्वादश उपांगादिक प्रकट है, मगर कहते हैं कि विच्छेद हुवे हैं और अपने मतके निकालनेवालेकेही ग्रथ हैं उसीके आधारसें चलते हैं इससें उन्होंकों शास्त्रसें समजावें सो कबूल रखेंही नहीं, मगर न्यायसें समझाने चाहिये. वो आत्मार्थी तो सहजसेंही समझ सकें वैसा है जो न्यायकी बुद्धि जागृत हुइ होवे तो वर्त्तमानसमयमें सामति राजाके भराये हुवे हजारा जिनबिंब है वो सामति राजा श्रीवीरनिर्वाणके पीछे करीब ३०० वर्ष परही हुवा है. उन प्रतिमाजीकों लिंगका आकार नहीं फिर कच्छदेशमें भद्रेश्वरकी अदर महावीरस्वामीजीकी प्रतिमाजी है वहा तांबेपत्रपर लेख है–उन प्रतिमाजीकों २५०० वर्ष हुवे है पुन. महुवामें जीवितस्वामीजीकी प्रतिमाजी है, वो महावीरस्वामीजीकी प्रतिमा वीरप्रभुजीके विद्यमान समयमें भरी हुइ है इत्यादि दिगबर मत पेस्तरकी जिनप्रतिमाजी बहुतसी जगहपर विद्यमान

है. उन प्रतिमाजीके लिंगका आकार नहीं, और उस पीछेकेभी श्वेतांबरमंदिर बहुतसे है और जिनबिंबभी हैं वैं सब लिंगाकार बिगरके हैं और दिगंबरके मंदिरमें लिंगवाले जिनबिंब है, तो शोचो कि श्रीवीरप्रभुजीसें चलता आया हुवा धर्म दिगंबरका होता तो पुराणी प्रतिमाजी लिंगवालीही होती, या श्वेतांबरमत नया होता तोभी पुराणी प्रतिमाजी लिंगवाली होती, परंतु वैसी कहीं नजर नहीं आइ इसलिये श्वेतांबरमत वीरनिर्वाणके समयसेंही चला आता है दिगंबर प्रश्न करते हैं कि–' हमारे जिनबिंब पुराणे हैं ' उसका खुलासा यही कि वैं पुराणे हैं ऐसा कोई सबूतीवाला पूरावा नहीं और श्वेतांबरके पुराणे है ऐसे पूरावे मौजूद है भद्रेश्वरका लेख है, सामंतिराजा कम हुवे वोभी लेख है, वास्ते पूरावा बलवान् है. आबुजी, तारंगाजी, समेतशिखरजी, गिरनारजी और सिद्धाचलजी इन बडे तीर्थोंपर पुराणे मंदिर किसके हैं ? कब्जा किसका है ? असलसेंही श्वेतांबरीका कब्जा है. फक्त श्वेतांबरी श्रावकोंने महेरबानीके खातिर कहीं कहीं दिगंबरी मंदिर बनाने दिये मालूम होते हैं. सबब कि मुख्य जगहपर तो श्वेतांबरीकेही मंदिर हैं. और दिगंबरीके अभी थोडे वक्तमें हुवे है. ये देखनेसें श्वेतांबरीधर्म श्रीमत् वीरस्वामिजीसें चला हुवा आया है वही है. अभी कहीं कहीं श्वेतांबरीकी वस्ती कम है और दिगंबरीकी ज्यादे है, वैसी जगहपर मालिकीका पदप्रवेश करते हैं उसमें श्वेतांबरोंओंने दया ल्याकर मंदिरमें पैठने दिये और दिगंबरी प्रतिमाजीको कितनीक जगह पधराने दी उस दयाके बदलेमें अपकार करकें मालिकीका दावा संबंधी तकरारें कितनीक जगहपर उठाइ है मगर श्वेतांबरीका उपकार नहीं शोचते यह दिगंबरीकी ज्ञानदशाकी न्यूनता है परंतु मंदिरोंके कब्जे और मंदिरोंसें सबूत होता है कि श्वेतांबरी अव्वलसेंही है यह निश्चय वार्त्ता है दिगंबरमतका वाद अध्यात्ममत परीक्षामें बहुत है, इससें यहांपर लिखनेंकी जरूरत नहीं; मगर कितनाक न्याय विचारमें आता है वो लिखता हुं. दिगंबरीने वस्त्ररहित मुनिमार्ग प्रकाशित किया, और श्वेतांबरीका सिद्धांत स्थविरकल्पी साधु वो वस्त्ररहित होवे, यह विधि चलता हुवा आया सो चलता है, उससे श्वेतांबरीके हजारोः साधुजी त्यागी विरागी आत्मार्थी नजर आते हैं और दिगंबरोंके साधुजीका लोप हुवा है. शायक क्वचित क्वचित होते हैं, वें वस्त्र ओढते हैं, तो नाम दिगंबर धारण करकें पीछे वस्त्र पहननेकी जरूरत पडी तब वस्त्र पहन लिये और नाम दिग्-अंबर रख्खा

ये कैसी बाल रुयालके जैसी बात है? यहापर कोइ दिगंबरी प्रश्न करेगा कि-शिकंदरबादशाहकी तवारीखमें है कि जैनके ना मालु गाँव बहार थे तो असल वस्त्र नहीं ऐसा सबूत होता है' ऐसा कहने लगे उसे समझादेना कि श्वेतांबर साधु हरदम कपडे रखते है ऐसा नहीं समझना एकांतमें ध्यानादिक करें तब वस्त्ररहित होवै, क्यो कि श्वेतांबरी एकासणे, पचख्खाण करते हैं उसमे 'चोलपटा आगारेण' ऐसा आगार है याने एकासणा करनेकों मुनिमहाराजजी बैठे है और उस वक्त गृहस्थी आ गया तो उठकर चोलपटा पहन लेवे तो एकासणाका भंग न होवै-ऐसा अर्थ है. मगर ये आगार गृहस्थके वास्ते नहीं यह देखनेसे गृहस्थीकी रूबरु वस्त्र पहने हुवे होते ये समझनेमें आता है. वास्ते शिकंदरबादशाहने देखे हुवे श्वेतांबर साधु जंगलमें काउस्सग्ग ध्यानमें वस्त्ररहित देखे होवेंगे, उससें कुछ दिगंबरी साधु नहीं हो गये वास्ते मार्गे वस्त्रसहितका श्वेतांबर चलनेसेंही साधु साध्वीका मार्ग कायम रहा है फिर दिगंबरमत निकालनेवालेनेंभी साध्वी वस्त्ररहित रहवै ये अच्छा मालुम न हुवा उससें साध्वी होनेका मार्गही नष्ट होगया और श्वेतांबरमतमें हजारो साध्वीजी हो गइ है, होती है, और होवेंगी, और उस्सें आत्माका कल्याण करेंगी और दिगंबरीस्त्रीओंका तो आत्मकल्याण नष्ट होगया ये दिगंबरीबाइयोंकों फायदा किया या केवल धर्मसाधन करनेमेंही अंतराय किया? फिर दिगम्बरीओंने स्त्रीओकों मुक्तिही नहीं ऐसा मतदर्शाया, परतु उन्होंकेही गोंतमसार ग्रंथमें स्त्री लिंगसें मुक्ति जानेका कहा है. उस ग्रंथका अपमान करते हैं और स्त्रीओंका मोक्ष साधन अटका देते है तो जितना जितना नया मार्ग कथन किया है उसमें फायदेका तो नामही नहीं उन्होंने अपने ग्रंथमें श्वेतांबरी साधुजीकी कितनीक निंदा की है, वैसा मार्ग श्वेतांबरी साधुका है नहीं और जिस तरह साधु चलतेही नहीं कोइ संयमसें भ्रष्ट होकर चले तो उसें कोइ श्वेतांबरी साधु मानता नहीं ऐसा होने परभी श्वेतांबरी साधुजीकी निंदा कीहै, उस्से आपकाही आत्मा बिगडता है साधुजीकों कुछ हरकत होनेकी नहीं आपके साधुजीकी महत्ता करते है परतु पंच महाव्रतकों दूषण लगे ऐसाही व्यवहार कायम किया गया है मुनिकों सावध्य महावि कुछभी न करनी और न करवानी चाहिये, तथापि दिगंबरी साधु आहार लेनेकों आवे तो दो मनुष्य वहा परदा पकडकर खडे रहते है, और आहारभी उन्होंके काम लगे वैसा कर रखते है एक मनुष्य थाली बजाता है ये रीति बहुत असंयमीसयमी

वास्ते करे तो असंयमी निरवद्य काम किस तरह करेंगे? सावद्यही करेंगे और वो सावद्य मुनीकों लगेगा तो पचमहाव्रत किस तरहसे पाले जायेंगे सो विचार दिगंबरीओंकों करनेका है श्वेतांबरी साधु असंयमीके पाससें कुछ भी नहीं करवाते है आपके लिये किया गया भी काममें नहीं लेते है. गृहस्थनें आप खुदके लिये किया होवे उसमेंसें थोडासा आहार अंगीकार करते है. दुवारा गृहस्थका रसोइ बनानी पडे वैसा आहार ग्रहण नहीं करते हैं, थोडा थोडा जगह जगहसें अंगीकार करते है इससें किसीकों तकलीफ नहीं. इस सबबसे श्वेतांबरी साधुजीकों कोइभी तरहसे सावद्य नहीं लगता है दिगंबरी साधुजीके लिये जो बनाया गया हो वही आहार काममें आता है इससें सावद्य लगता है तब संयम कहा कायम रहा? ये होनेका सबब इतनाही है कि भगवंतजीके प्ररूपे हुवे आगम विद्यमान होनेपरभी उसें न मानना और अपनी मरजी मुजब [स्वकपोल कल्पित] शास्त्र मानना उस कल्पनाकी अंदर सर्वज्ञजीके समान ज्ञान कहासें हो सके? ये साफ मालूम होता है. फिर दिगंबरी गृहस्थ प्रभुजीकी पूजा एकअंगकीही करते है. और कहते है कि श्वेतांबरी भगवानजीकों आभूषण चडाते है वो योग्य नहीं; परंतु वे शोचते नहीं कि आप खुद कचे पानीसे प्रतिमाजीकों पखाल करते हैं वोभी गृहस्थावस्थाका आरोप करते हैं. फिर एक अंगमे केसर वगैरः चढाते है वोभी साधुपणेका आरोप नहीं परंतु जिस वक्त इंद्रमहाराजने भगवंतजीकों राज्याभिषेक किया उस वक्त युगलियोंने एक अंगूठेपे पखाल वगैर. किया, वैसा हेतु धारण करते होवे तो येभी राज्यावस्थाका है, या मेरुशिखरपर इंद्रने अभिषेक किया वो अवस्था ग्रहण करते होवे तो ये दोनु अवस्थामें सब अंगापे केसर-चंदन-वस्त्र-आभूषण है. तो एक अंग पूजनेकी कौनसी अवस्था है सो शोचेंगे तो आपकी भूल मालूम हो जायगी यदि केवली अवस्था कहोगे तो उस वक्त ठंडा पानी चडानेका हैही नहीं, वास्ते वो अवस्था स्थापित न की जायगी और वो नहीं स्थापित करोगे तो जन्मअवस्था या तो राजअवस्था विगर दूसरी अवस्था स्थपायगीही नहीं और वो स्थापोगे तब तो सब अंग पुजो, आभूषण धारण करावो फिर दिगंबरके तेरापंथियोंने तो ऐसा तर्क आनेसें एक अंग पूजनाभी छोड दिया है; फकत पखालही करते है. तो वो पखाल वक्तमेंभी कौनसी अवस्था विचारेंगे? पुनः अरिहंतजीके आगे नैवेद्य रखेंगे तब कौनसी अवस्था विचारेंगे? उन्होंसेंभी दूसरी अवस्था स्था-

और निधान नजर आ जाय, वैसें वे जीवोंकों सिद्धांत मुजब श्रद्धा आपके क्षयोप-शमके जोरसें जाग्रत होती है, उससें जो जो उसके आगममें जैनागममें विपरीत है वो विपरीत आ जाय और जैनागम देखे विगर जैनागममें कहे हुवे मुजब श्रद्धा होवे उसें भाव अध्यात्म प्रगट होता है इसी तरहसें दिगंबरकोंभी होवै उसम कुछ आश्चर्यकी वात नहीं है वीतरागधर्म केवल कुछ लिंगमें नहीं, मगर यथार्थ नौ तत्वका और षट्द्रव्यका ज्ञान जिसकों होवे उसकों भाव अध्यात्म प्रकट होवै, वास्ते वस्तुधर्म यथार्थ ढूंढनेका उद्यम करना जिस्सें कार्य हो जायगा

प्रश्न.—जैनमें रोने पीटनेकी रीति है सो योग्य है?

उत्तर —जिन याने रागद्वेषकों जीत लेवे उसें जिन कहेजाय, उन्होंके श्रावक-सेवककों जैनी कहेजाते हैं, तो जिनजीका उपदेश रागद्वेष जीत लेनेका है उपदेशके सुननेवाले राग धारण करकें रुदन करै, छाती कूटे-शिर कूटे तो उससें प्रभुजीकी आज्ञाका उल्लंघन होता है, फिर रोनेसें और मरनेवालेकी फिकर करनेसें कितनेक मनुष्य मरभी जाते हैं देखो, लक्ष्मणजीका सबंध! लक्ष्मणजी और रामचंद्रजीके बीच जो स्नेह था उसकी प्रशंसा इंद्रमहाराजने की है, वो किसी देवसें सहन न हो सकी उससें परीक्षा देखनेकों आया. मनुष्यलोकमें आकर लक्ष्मणजी सुनै ऐसा सीताजीका रूप लेकर रामचंद्रजी मर गये, इस सबंधमें रोने लगा और लक्ष्मणजीकों पूज्यभ्राताके अतकी बात सुनी कि मनमें अत्यत शोक प्राप्त हुवा और उस अनावधि शोकके मारे तुरत लक्ष्मणजीका मरण हो गया ऐसी हानी वासुदेव जैसे पुरुषकों हुइ, तो उन्होंके वीर्यकी अपेक्षासें अपनेमें कुछभी बल-शक्ति-वीर्य नहीं है, तो अपने शरीरकों कितनी हानी पहुंचे? कभी उन्हेंम भाइका राग था, उससें कभी राग होवै तो मरण न होवै, मगर ताकत तो कम होवैही होवै, रोगादिकभी शायद हो आवैं और फिकरकेमारे इन्सान दिवाने-भ्रमित-बुद्धिभ्रष्ट हो जाते हैं-ये बडा भारी नुकसान है. फिर जगतमेंभी इज्जत नहीं वढती राज्यकर्त्ता यवनराजा है, तदपि ये रोने पीटनेकी रीतिकों धिक्कारता है. अपनी जगतमें उच्च कोम कही जाती है, उसकी नीच कोम हासी करै ये बात अपनी इज्जतकों कितना बुरा लगानेवाला है बाजारके बीच रोना पीटना होता हो उसें देखकर राहदारी लोगभी तकलीफ पाते हैं और दिल्लगी करते हैं फिर कितनेक मुल्कम घुघट निकालनेवाली औरतें होनेपरभी शिरपरका पल्ला क-

मरपर ना जाकर कूटने पीटते है कमरके उपरका शरीर मन खुल्लाही रहता है ये कैसा हमी लायक है? ये रीति नीच लोकके जैसी है या नहीं सो विचारसें देखो -तो समझमे आ जायगी-हमेशा मनुष्यकी छातीका जोर अच्छा होगा-तो बुद्धि अच्छी रहती है, और छातीपर जोरसें कूटने पीटनेसें छातीम कमजोर हो जाता है उससें बुद्धिभी कम हो जाती है, और उससें हार्टडिसीझ-हृदयरोग हो जाता है वो रोग ऐसा है कि उसका दर्दी एकदम मरजाता है, काम करनेमे अशक्त हो जाना है और, वैसे छातीके दर्दवाले लोग बहुतसे नजर आते है उन मनुष्योंको तप-संयम-ज्ञान वगैरेका अभ्यास करनेमें बडी हरकत आती है गुजरात अहमदाबादमें पेस्तर रोने पीटनेका-बहुतही रिवाज था, मगर अब कुछ सुधारा हुवा सुननेमें आया है, परंतु अहमदाबादके जितना सुधारा और शहेरोंमें नहीं हुवा है मगर मेरी समझ मुजब और ज्ञानीपुरुष हो गये हैं उन्होंके विचार मुजब रोने पीटनेका रिवाज बंध करने लायकही है. अपने देव वीतराग है और उन्होका हुकमभी वीतरागदशा लानेका है, तो मनुष्य मर गया उसे देखके शोचना कि ये मनुष्य छोटी उमरमें मर गया, तो मै कब मर जाउंगा वो खबर नहीं, अगर मैं बुढा होकर मर जाउंगा येभी किसीकों मालुम नहीं-निश्चय नहीं उससें धर्ममें तत्पर रहना सोही सर्वोत्तम है. ऐसी मेरी आत्माकी स्वभावदशा है वो प्रकट करनेका मुख्य सबब रागद्वेष है उसें मुक्त हो जाना, या तो दिनप्रतिदिन रागद्वेष कम होते जावे वैसा मार्ग ग्रहण करना प्रभुजीने रागद्वेषकी न्यूनता हो जानेके लिये योग-वैराग्य शास्त्र फरमाये हुवे है उसका अभ्यास करू कि जिससें मेरी रागदशा कम हो जावे-ऐसें विचार करना चाहियें, वो न करतें उल्टा रोश बढे वैसा करना सो अयोग्य है, और मुंहसें कहता है कि मेरे मेरे भाइके साथ बहुत स्नेह था सो याद आता है उससें रोता हु, मगर उस वास्ते कोइ नहीं रोता ऐसा कहता है सो लोगोंमें मान पानेके वास्ते, लेकिन चित्तमें तो अपना स्वार्थ जो भाइसें होताथा वो मोकूफ हो गया उसके वास्ते रोता है परतु उस स्वार्थके लिये रोनेसें वो कार्य होनेका नहीं. कर्मका विचार करना चाहियें आपने जो कुछ उसके पास लेना रक्खा था वो ले चूके अब वो कहासे दे सके! मगर पुन्य बलवान होवेगा तो भाइस विशेष काम करनेवाला आपही आप मिल जायगा मगर ऐसे रोनेपीटनेके विकल्पकरनेसें नाहक बुद्धि भ्रष्ट हाजाती है और जो कामकरनेके है वे नहीं हो सकते

फिर कितनेक रोनेका ढोंगभी करते है याने लोगोंक देखते रोते है और भतीजे या भोजाइ या भाइकी मिलकत होवे वो खा जाते हैं और उन्ह लोगोंके वास्ते बराबर खानेपीनेकाभी बदोबस्त नहीं करते हैं या तो सब मिलकत हजम करजाते हैं या तो भोजाइकेसाथ बदचलन चलानेमें भाइका स्नेहभी राखते नहीं, वैसे मनुष्यका रोनापीटना वो ढोंगसोंग नहीं तो क्या है ? फिर सगे प्यारे या ज्ञातीक लोग आते है उन्होंका काम यही है कि इस मनुष्यका भाइ मर गया है सो हम जाकर उसें संतोष देआवें, मगर संतोषके बदलेमें आपखुद रोते हैं और वे रोते बंध हुवे होवै उसें फिर रोना शुरु करवाते हैं पुन बाइ लोगोंको पीटनेके वक्त उपदेश देते है कि ऐसा क्या कूटते–पीटते हो ? जोरसें कूटो–पीटो–एसी मतलबका उपदेश करते हैं, उससें कोइ समझदार कम कूटता होवे तो उसें जोरसें कूटना–पीटना पडता है परंतु ये उपदेशसें क्या फळ होवेगा वो अज्ञानतासें नहीं जान सकते है कि रोना पीटना ये रौद्रध्यानका आलंबन है याने इससें रौद्र ध्यान होवे और रौद्रध्यानका फल ज्ञानीजीने नरक प्राप्ति बतलाया है, तो नरकके दु ख कैसे कहे हैं वो जीवभावना ग्रंथ या सुयगडांगजी सूत्र सुननसें हृदय कांप उठे वैस नरकके दु ख इन उपदेशसें मिलते हैं कोइ सुज्ञ मनुष्य ऐसें सुंदर विचार करकें कम रोवै पीटे या बिलकुल न रोवै पीटै, उसकी अज्ञानतासें निंदा करते हैं, ऐसी निंदाके करनेवालेकों दुर्गति सिवाय क्या फायदा हासिल होवे ? वास्ते जो वीतरागी धर्मवंत ऐसा नाम धारण करते है वो नामका महात्म्य पालन करनेकी फिकर रखकर ज्यौं बन सके त्यौं वैसी निंदाका त्याग करना, और रोना पीटना बंध करनेवालोंकों धन्यवाद देना और अपनी शक्ति मुजब उपदेश देकरकें रोनपीटनेका कुचाल बंध प्रदत जाय वैसा मार्ग हाथ धरना–और वैसी शक्ति न होवे तो जो लोग अच्छे काम करनेकी इच्छा रखते होवै उन्होंकों मदद देनी और उनके सपमें कायम रहकर ये काम बंध करनेमें जैसी वो सलाह देवे वैसा करना तो उससें कल्याण है फिर पैसेका जोर होवे तो पैसोंकी लालच देकर ये काम बंध करवा देनेके जैसा मोका होतो बंध करवानेका इलाज करना ज्ञातीके शेठसें हो सके वैसा हो तो ज्ञातिके जोरसें बंध करवा देना मतलबमें जो जो उद्यम करनेसें ये काम बंध हो सके वैसा प्रयत्न करना चाहिये कदाचित् हठीले मनुष्य होवे तो मध्यस्थ रहकरकें ये कामसें आप मुक्त रहवे अगर अनुकूल मनुष्य होवे तो उन्सें समझाकरके रोने पीटनेस दुड-

वा देवै कि जिससें आर्तरौद्रध्यान न हो सकै और नरकादि गतिके मेहेमान न होना पडै सब मनुष्योंका याद करनेकी जरूरत नहीं, अपने अपने वहा सुधारा करना चाहियें और पीछे धीरे धीरेसें दूसरेभी सुधरें वैसा उद्यम करना चाहियें कि जिससें बेशक सुधारा हो सके. " आप न जावें सासरें, औरनकों सिख देत"–ऐसा न करना चाहियें, क्यों कि स्हामनेवालेके दिलमें यु करनेसें पूरी असर नहीं होती वास्ते पहेले आप कर बतलाके पीछे औरोंकों वैसा करनेका बोध देवें कि फोरन असर हो जाय और सच्च कहे तो यु करनेसें कितनीक जगहपर सुधारा हुवाभी है. वास्ते बुद्धिमानोंकों लाजिम है कि पेस्तर अपनेही मकानसें रोने पीटनेका कुचाल बधकर देना चाहियें बध करनेसें निंदा होवै उसका डर रखना नहीं चाहियें. ऐसा भय रखनेसें अपन धर्मध्यान नहीं कर सकते हैं मैने मेरे माजी गुजर गयेथे तब ये खानाखराबी रिवाज बध करनेका मुकरर किया, उस वक्त मेरे पूज्य पिताजीभी विद्यमान थे और वैभी बडे धर्मचुस्त थे, उन्होंने मेरी बातमें सामिलगिरीकी और कहने लगे कि बेशक ऐसाही करना दुरुस्त है इस वक्त ये खराब रिवाज बध हो जायगा तो मेरेमरनें बादभी बध रहेगा तो मुझकोंभी बहुत लाभ मिलैगा. ऐसा शोचकर मेरे पिताने वीर्य स्फुरायमान करकें वो बुरा रिवाज मोकूफ कर दिया, उस्सें बेसमझदारोंने निंदाकी और समझुरोंने धन्यवाद दिया. पीछे मेरे पिताजी कालधर्मकों प्राप्त हुवे उस वक्तभी वैसाही किया; मगर मेरी मातुश्रीके वक्त जितनी निंदा करते थे उतनी न हुइ मतलब कि शुरुमें अज्ञानीजन कुछभी बकते है उसपर निगाह न रखकर समभावसें काम कियेही करना; क्यों कि पेस्तर युद्धी कियेसें फतेहमदी हाथ लगती है सब चीज उद्यमके आधीन है, और अपने घरके आप राजा है वास्ते आपके वहांसें अपनीही मुनासफीसें रोना पीटना न करै तो कुछ ज्ञानीवाला ज्ञातबहार नहीं छोडनेके ? इस लिये हिम्मत पकडकर ऐसे कुचालोंकों रोकने चाहियें. रोकनेका काम ऐसा है कि एक मनुष्य रोता होगा वो बात शांतपुरुषके सुनेमें आनेसें उसके दिलमेंभी राग पैदा होनेसे आंसु आते हैं, उसका निमित्तभूत रोनेवाला है; वास्ते ज्यों बन सकै त्यों ये बुरा रिवाज सुज्ञपुरुषोंकों कम करना चाहिये, उसके बदलेमें ये वहीवट हुवा है कि अपन दूसरेके वहा रोने पीटनेकों न जायेंगे तो अपने वहां कौन आवेंगे ? इससे ये बुरा नीकलाके जीते हुवे मनुष्यभी रोवे पीटें उसमें शोभा बुरकर की–ये कैसी अज्ञानताकी राजधानी है ! मरनेपे बाद कुछ

तो देखनेको आनेवाला नहीं, या रोवगें पीटेंगे कि नहीं उसकीभी उसे खबर न मिलेगी, तथापि नाहक कर्म बांध लेते है ये अज्ञानताही है याने जीसके लिये रोते है उसकों तो दरकार नहीं और मुफत रोना उसें क्या फायदा ? वास्ते ये अज्ञानता आत्मार्थीकों अवश्य दूर करदेनीही लाजिम है रोने पीटनेकी इच्छा तो न रखनी, मगर आपके मरने बाद कुटुंबी न रोवै वोभी पेस्तरसें समझाकरकें वध करवा देना चाहियें कि मरनेके बाद कर्मबंध न हो सकें. कर्म बांधनेका भय लगा यही शुभ परिणामसें शुभ कार्य उपार्जन होवैः वास्ते ऐसा ठहरावही करना कि मेरे मरनेके बाद रोना पीटना नहीं शायद कुटुंबी वो हुकम अमलमें न लेकर रोवेंगे पीटेंगे, तोभी मरनेवालेको कर्मबंध न होगा इस लिखानसें ऐसा न समझना कि मैयत होवै वहां जानाही नहीं जाना तो बेशकः क्यों कि स्नेही या ज्ञातिके मनुष्यकों दुःख पडा तो जरूर जाकरकें संतोष-दिलासा देना, और उसका कामकाज कर देना यदि ऐसा न करें तो निर्दयता मालूम होवै वास्ते जुरूर जाना चाहियें, और दिलासा प्राप्त होकर दिलगीरी दूर होवै वैसी बातें करनी चाहियें, कि जिससें शांत चित्त हो जाय फिर मरनेवालेके स्थूल शरीरकों मरघटमें पहोंचानेमें मदद करनी ये जुरूरी काम है स्नेहीकों मदद करनी और ज्यादा वक्त लगनेमें मुर्देमें जीवकी उत्पत्ति होवेगी ये फिकर रखकर जुरूर जाना चाहिये और उसका कामकाज करना चाहियें रोने पीटनेका विकल्प बंध कराना या कमती करवाना येभी जुरूरी काम है कितनेक मुल्कमें अभीभी हिंदुवर्गमें मरनेके वक्त रोते पीटते नहीं, मगर ढोल वगैर. बाजे बजाते-गीत-भजन करते है, तो उन लोगोंको मरनेवाले शख्सपर राग नहीं होगा ? रागसे आंखमें आंसु आवै ये स्वाभाविक नियम है, मगर थोडे वख्तमें शांत हो जाय, परंतु मरनेवालेके काम रूप वगैर यादीमें लेकर रोवै उसका पार नहीं आता है और बुरा ध्यानभी ज्यादे होवै फिर स्त्रीए पतिका सुख याद करकें रोवैं उससें कामदेवभी जाग्रत हो आता है और कुलक्षण सेवन करनेकी कुबुद्धिभी पैदा हो आनेका संभव रहता है ऐसे नुकसानकारक कुरिवाजोंकों सुधार लेना ये वडे-पुरुषोंकी फर्ज है हमेशा रोना पीटना शुरूही रहनेसें पतिकों स्त्रीसंबंधी विकार जाग्रत होनेका साधन होता है, वास्ते इसके बदलेमें उतना समय धर्मसाधनमें व्यतीत करना यही मुकरर किया जाय तो वैराग्यदशा जाग्रत होवै, और विकल्पकी शांति होवै, खोटे मार्गकी वृद्धि होवै नहीं-और होय सो नष्ट हो जाती है, वास्ते ऐसे

समयमें वैराग्यकी कथा वगैरः श्रवण करनेमें वक्त व्यतीत करना-यही जुरुरी बात है मगर वर्त्तमानसमय जैनीओंमें जैसी रीति प्रचलित हो रही है वैसी रीति पेस्तर हो गी, ऐसा संभवही नहीं यहांपर कोइ प्रश्न करेगा कि जिस वक्त मरुदेवी माताजी निर्वाणपद पाये उस वक्त भरतमहाराजजीने जारसें रोना शुरु कियाथा-ये बात शास्त्रमें हैं, मगर यह कुछ धर्मरीति नहीं, संसारकी रीति है, ऐसा रोनेसें लोगोंके जाननेमें आवे जिससें लोग इकट्ठे हो जाँय-ये तो मरनके समयकी एक क्रिया है, परंतु ऐसा बाजारके बीच बेअदबीसें चिल्लाके रोना पीटना दिखानेके जैसे ढोंगसोंग करना, हमेशाःरोना शुरु रखना ये कुछ इससें साबित नही होता उस वक्त रागके बंधनसें रोना आ जाय, लोगोंको मैयत हुवेकी खबर होनेके लिये पुकार वाचक शोकेद्गार जाहिर करै ये कृत्य संसारनीतिका है, परंतु उसके पीछे जो विशेष कृत्य किया जाता है वो धर्मीष्ठको करने योग्य नहीं धर्मीष्ठको तो रागादिक कमी होवै वोही करना यही सार है.

प्रश्नः—जैनकोमकी चडती दशा किसतरह होवै ?

उत्तरः—यह प्रश्नका जवाब तो अतिशय ज्ञानी सिवाय दूसरा कोइ देनेको समर्थ नहीं, और जो अपने तकदीरकी न्यूनतासें अतिशय ज्ञानीका विरह पडा है, इससें प्रतीतिपूर्वक जवाब देनेमें अशक्त हु पुन. मैं जवाब लिखता हु उस करतेंभी मेरेसें ज्यादे बुद्धिमान ज्यादे बता सकें, वास्ते जिसका विशेष होवै सो अंगीकार करना.

१ पेस्तर तो अन्यायकी प्रवृत्ति जैनमें जो धनाढ्यपणेसें शोभायमान होवें वैसे पुरुष या शेठीएका नाम धारण करनेवाले हो या धर्मी गिनाये जाते होवे उन्होंको बंध करनी चाहियें, सबब कि यथाराजा तथाप्रजा-याने ऐसे बडे पुरुषोंकी ऐसी सुंदर प्रवृत्ति देखकरके छोटेजनभी न्यायमें प्रवर्त्तने लगें ऐसे वर्त्तनेके वास्ते मार्गानुसारीके गुण योगशास्त्रमें-धर्मबिंदुमें और श्राद्धगुण वर्णनमें बतलाया है उसपरसें पूर्व पुस्तक प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिकी अंदर वै गुण दाखिल किये हैं उसें देखोगे तो मालूम हो जायगा. ये पैंतीसें मार्गानुसारिके गुणोंमें जैनकोम प्रवर्त्तने लगे ऐसा उपदेश मुनिमहाराजकोंभी शुरु रखनेकी अत्यावश्यक्ता है और रात्रीभोजन वगैरःके नियम करवानेमें उद्यम करते है वैसा उपदेशके उद्यममें प्रवर्त्तना शुरु रक्खै तो विशेष लाभ होवै ऐसा उपदेश नहीं देते है ऐसा मेरे कहेनेका मतलब नहीं, मगर देनेवाले महापुरुषोंका उत्साह बढानेके लिये और कोइ सामान्यपणेसें देते होवे वै विस्तारसें देवै ये हेतुसें लिखा है. गृहस्थोंको ऐसी प्रवृत्ति गैरःकरके

होवे और उससे पुन्यर्म परलोकमेंभी सुखी होवे विद्याभ्यास करके हुशियार होकर अन्यायका चालचलन न सुधरे तो उससें कोमकी इज्जत न बढेगी इज्जत बढनेका सबब यही है कि अन्यायका त्याग करना, और जो पेस्तर बडे पुरुषोंकों करकें दिखलाना चाहियें, जब बडे लोग जैसा करेंगे तब साधारण लोग वैसाही करना मजूर रखेंगे, मगर बडेलोगही चालचलन न सुधारें तो फिर औरोंकों क्या कह सकें? वास्ते आगेवान गृहस्थ पेस्तर करकें दिखलाना यही सर्वोत्तम है और देवद्रव्य-साधारण द्रव्य-ज्ञानद्रव्य ऐसें द्रव्यका श्रावकके वहां विशेष व्याज पैदा होता होवे तदपि न देना चाहियें, ए विषयमें श्राद्धविधि और द्रव्यासितरी वगैर शास्त्रोंमें मना की है और विस्तारसें उसमें दूषण बतलाये हैं जो अवलोकन करना चाहियें ' देवादिकद्रव्य जिसने खाया-हजम किया उसकी सातपेढी तक उसका वंश सुखी नहीं होता है वास्ते धीरधारका रखनाही बंध करना चाहियें और रखनेवालोंको व्याजसें तो न लेना, मगर घीकी टीपके पैसे देनेके होवे जोभी रखने न चाहियें रखनेसें शास्त्रकी अंदर बहुत सा नुकशान बतलाया है, वास्ते इस बातपर खुब लक्ष रखनेसें सुखी होनेका साधन है मंदिर मरजीके पैसेमें आपके पैसेका कुछभी संबध न करना, उससें यह लोक और परलोकके सुखभाजन होवेगा

२ दूसरा, जैनकोमके शेठियोंकों जो सट्टेका व्यापार अपनी कोमवाले करते होवें उसें मना करवा देनेका अवश्य ध्यान देना चाहिये, क्यों कि सट्टेके व्यापारसें मनुष्यकों बहुत तरहके नुकसान होते है-पेस्तर सट्टेका व्यापारी आलसु-सुस्त हो जाता है, तमाम व्यापारकी शोध करनेकी या शीखनेकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, व्यापारकी रीतिकीभी खबर उसें न पड सकती है, नामा लिखनेकी या समझनेकी रीतिभी वो नहीं शीख सकता है, दूसरे व्यापारकीभी उसें माहेती नहीं हो सकती, उससें कदाचित् सट्टेमें नुकसान गया तो फिर सुखी होनेका रस्तभी मुश्कीलीसें मालूम होता है सट्टेके धंदेसें मनुष्य वक्र बोलना-बोल पल्ट देना, लुचाइ करनी, मुखस्वादका बढा देना इत्यादि बहुतसी बुरी आदते शीखता है कोइ भाग्यवत ऐसी आदत न शीखे तो उसें ये लेख लागु नहीं है मगर ये कारण ऐसाही है सटोरियेके पास ५०० रुपे देनेकी शक्ति होवे और पाच हजारकी नुकसानी जावे ऐसा व्यापार करे तब नुकसानी कहासें देवेगा ग फिकर तो रहतीही नहीं, क्यों कि नुकसानी होवे तो ना-

दारी लेनी पडे कभी फिर पैसेदार हो जाय तोभी कर्जा देनेकी दानत नहीं रहती ये अन्याय नही तो क्या है? सट्टेका धंदा लंबा क्यों चला सकता है कि व्यापारमें पैसे रोकने नहा पडते हैं जो रोकने पडते होवे तो सहजसेंही लंबा व्यापार न हो सके. फिर जुगार और सट्टेमें कुछ तफावत नहीं—फकत नाममें फेर है. जुगारमेंभी पैसेकी जरूरत नहीं—फकत एकी बेकी—दोमेंसें एक बोलनेमें आवे वो सधा हो जाय तो जीतता है आकके धंदेमेंभी ऐसाही है. कलकत्तेसें मिलता हुवा आक आ जाय सो जीतता है और नफा लेता है—ये दोनु रीति एकही जैसी है अभी सुरतमें बाइ-लोगनेभी सट्टेका व्यापार करना शुरु कीया है—अफसोस! अपनी श्रावक कोम इस स्थितिपर पहोंच गइ है!! अब सुखी क्या करकें हो सके? सट्टेमें एक पैदा करे और एक गुमावे, इससें एक श्रावक सुखी हुवा और दूसरा दुःखी हुवा उसमें कुछ बहारसें पैसा आया नहीं. दूसरे व्यापारमें तो माल देशावर चढाना पडता है या मगवाना पडता है उसमें फायदा होता है. कोइ कहेगा कि—'क्या श्रावक सिवाय और ज्ञातीके लोग सट्टेका धंदा नहीं करते हैं?' तो कहेंगे कि सबी कोम करती है, तोभी श्रावककी वस्तीके प्रमाणमें बहुतसे श्रावक सट्टेका धंदा करनेवाले निकलते हैं बडे शहरोंमें दलाल और सट्टेका धंदा करनेवाले विशेष मालूम होते हैं, उसमें हम दलालीके धंदेवालोंकों बुरे नहीं कहते हैं या उन्होंकी टीका नहीं करते है, क्या कि दलालीका धंदा विगर जोखमका है—नुकसानका नामही नहीं—जो पैसा कमानेका ही धंदा है, मगर जो सट्टेके दलाल हैं वे दलालीपर संतोष करकें रहवे तो जरूर दला-लीमें अच्छे पैसे पैदा कर सकें, परंतु वे दलाल तो फिर सट्टा करनेकाभी शोख रखते हैं उससें दलालीसें पैदा किया हुवा धन सट्टेमें गुमाते हैं, इससें करकें दलालोंकोंभी सुखी होनेका वक्त नहीं मिलता है. फिर जिसका बाप सट्टा करता होवे उसके बेटेभी वही धंदा पसंद करते हैं, उसके मारे पढने गुननेमें व दिल नहीं देते हैं, और माता-पिताओंभी लडकोंकों जास्ती पढानेकी फिकर नहीं रहती है, वास्ते सट्टेका व्यापार जैन-कोमकों न करना ऐसा ज्ञाती या संघ तर्फसें बंदोबस्त किया जाय तो जैनकोमको दूसरे व्यापार ढूंढनेकी जिज्ञासा होवे, मावाप और लडकोंकों ज्यादा इल्म शीखाने और शीखनेकी बुद्धि जागृत होवे और लडके विद्वान होवे तो न्याय अन्याय सह-जसही समझने लगें उसमें अन्यायका त्याग होवे इस लिये हरएक प्रकारसें सट्टेका

धंदा छूट जाय वैसे लेक्चर-भाषण अगर मुनीमहाराजजीका उपदेश शुरु करके मनुष्योंके दिलमें सट्टेकी नुकसानीकी बातें ठसा देकर पीछे ज्ञाती तर्फसें बंदोवस्त हो जाय तो अच्छी तरहसें सुधारा होनेका स्थान है

३ तीसरा कि, जैनकोममें विद्याभ्यासकी बहुतही न्यूनता है; वास्ते जैनोंको विद्याभ्यासमें सामेल करदेनेकी कोशिश करनी चाहियें लेकिन वो काम धनाधीन हैं धन बिगर नहीं बन सकता है अब धन इकठ्ठा करनेमें ऐसा होना चाहिये कि जो पैसे खर्च किये जाते हैं उनमेंसें बचाकर वैसे कामके लिये रकम निकालनी चाहियें, जिससें कोम खर्चके बोजेमें न आवें उसके वास्ते ऐसा होना चाहिये कि लग्न-सीमत-मरणके पिछाडी हजारो रुपै खर्च किये जाते हैं कितनीक ज्ञातीमें-कितनेक शहरोंमें लग्नकी अदर एक एक लडका पाणीग्रहण करता है तब पैसे बाटनेका रिवाज है सोभी सौ देडसो रुपै बरबाद किये जाते हैं, वो रिवाज बध करके वे बचे हुवे पैसे विद्याभ्यासके फंडमें ले लिये जाय जिस ज्ञातीमें लग्न और गर्भाधान संस्कारका ज्ञातीभोजन एकसें ज्यादे वक्त करनेका रिवाज है उस ज्ञातीमे वो रिवाज बध करके दूसरी वक्तके ज्ञातीभोजनके बचे हुवे पैसे विद्याभ्यासके फंडमे लिये जावें और उसके वास्ते ऐसा अंकुश चाहिये कि जहांतक ठहराये हुवे पैसे फंडम न देवें वहांतक हस्तमिलाप वगेर न हो सके यह ठहराव पसार हो अमलमें आ जाय तो हरवर्ष कितनीही आवदनी हो आवे फिर मरणके पिछाडी कितनीक ज्ञातीमें ज्ञातिभोजन करवानेका रिवाज है, ये रिवाज बहुतही दिलगीरीभरा हुवा है, ये रीति बहुत करके अन्यदर्शनीओकी जैनमें दाखिल हुइ मालूम होती है ये ज्ञातीभोजन कितना निर्दयतावत है उस संबधमें कुछ इसारा करता हु कितनेक मुल्कोंमें जिस दिन ज्ञातीभोजन होवे उसी रोज परदेशके मनुष्य रोनेकों आते है, वे बहुत करके जिस वक्त भोजन करनेकों बैठे उस वक्त रोने पीटनेका शुरु करते है अब जिस मनुष्यके वहा मरण हुवा हो उसके दिलमें कितनी दिलगीरी होगी वो सबके जाननेमेंही है जहा ऐसी दिलगीरी फैल रही होवे वहा भोजन, वोभी मिष्टभोजन खानेका काम वज्र जैसी कठोर छातीवालोंसेंही हो सकता है दयालु मनुष्यसें ऐसा निर्दयतावाला काम कभी न हो सकेगा और हो सके तो निर्दयता साबित होती है, क्यों कि एक गाजुपर रोन पीटनेसें दिलगीरी छा रही होवे और छातीमेंमें पीटनेके सबबसें खून बहन होता

नजर आता है, और दूसरी बाजुपर प्रसन्नतासें मीठे भोजन उडाते हैं ये कैसी निर्दयता ? फिर कितनेक वृद्ध मनुष्य मौतके बिछोनेमें पडे होवे और उसकों देखनेके लिये आवें वें बोलते है कि अब तो लड्डु सही हो जायगे, [ वृद्धोंका मरण विवाहके जैसा है ] पीछे वो मनुष्य मरजाता है, तब खुशी होते हैं कि अब लड्डु खानेकों मिलेंगे. वो लड्डु खानेके बदल खुश होते हैं उसमें गर्भित पचेंद्रिके मरणकी अनुमोदना होती है. ये पाप कितना है वो ज्ञानी फरमावें सो सही, मगर खानेकी तृष्णाके लिये मनुष्य नहीं विचारते हैं और ये रिवाज चलाये जाते हैं, वास्ते ये रिवाज बंध होवे तो पैसेभी बच जाँय और पाप मिश्रित अनुमोदनाका पापभी दूर हो जाय इसलिये ये रिवाज बंध करकें बचे हुवे पैसे विद्याभ्यास फडमें ले लेवें फिर मरण पिछाडी शुभ मार्गमें हजारो रुपे निकालते हैं उनमेंसें कुछ हिस्सा इस खातेमें लेनेका प्रबंध रखना चाहियें. और बडे गृहस्थोंकों लाजिम है कि खुशीसें बडी रकमकी मदद इस कार्यमें देनी चाहियें. ऐसा होनेसें व्यय होते हुवे पैसे इन फडमें आवेंगे उससें विशेष बोजा न उठाना पडेगा, और विद्याभ्यासके कार्यमें इन फडमेंसें अच्छी मददभी मिल सकेगी. कदाचित् इतने पैसेसें बस न हो सकेगा तो आमदनीपर सेंकडे एक रुपया या आधा रुपया याने हजार रुपेकी पैदासवालोंके पाससें सेंकडे आधा रुपया और हजारसें ज्यादे पैदा करनेवालोंके पाससें एक रुपया लेना मुकरर करना चाहियें बडी पैदासवालेकों कुछ भारी पडे ऐसा नहीं, सबब कि शास्त्रमें तो हेमचंद्राचार्यजीने पैदासमेंसें चौथा हिस्सा शुभमार्गमें व्यय करनेका कहा है, तो यह तो एक रुपया है वो कुछ भारी पडनेका नहीं. इस सिवा ज्ञातीमें कितनेक दंड लिये जाते हैं वो दंडके पैसे इस फडमें लेना चाहियें ऐसा होनेसे पैसेकी उत्पत्ति अच्छी होनेका संभव है और हमेशा उसमेंसें जो जो काम करने होवेंगे वो हुवेही करेंगे. अभी हरएक ज्ञातीमें ज्ञातीकी पुंजी (धन) है वो इस फडमें जो दि जाय तो कामकी शुरुवात सहजसें हो जाय और किसीकों घरमेंसें पैसाभी न निकालना पडे तथा हमेशाकी आमदनी शुरु रहे पैदासमेंसें लेनेका अनुकूळ न आवे तो बहुतसी जातके माल व्यापारके लिये आता है उन हरएकपर कुछ लेनेका ठहराव कीया जाय तो मुरादबर आनेका वखत आवे. ऐसा ठहराव पींजरापोलके लिये है तो वो खाता सुखपूर्वक चलता है, मगर वस्तुतास्र पैदासका ठहराव उत्तम है व्यापारपर डालनेसें व्यापारमें कितनीक हरकत पडनेका

समय है, वास्ते पैदाशपर किया जाय तो अच्छा, अगर ज्यों लोगोंकों अच्छा लगे वैसें करना सबकी प्रसन्नतासें ऐसे काम अच्छी तरहसें होते है, वास्ते किसीकों अप्रीति पैदा न होवे त्यों करना योग्य है ये काम करनेसें जैसें आपकी ज्ञातीके मनुष्यकों भोजन करनेका मिलता है वो अपने लडके हुशियार होवेंगे तो विशेष भोजन करनेका मिलेगा भोजन करनेका बंध नहीं होवेंगा फटमें पैसे देवेंगे तो लडकोंकों पढानेके लिये स्कूलोंमें ज्यादे फी देनी पडेगी वोभी बच जायगी। वास्ते तमाम भाइ अवश्य ये बात दिलमें शोचकर विद्याभ्यासके वास्ते पैसे इकठे करनेका फंड खोलनेका यत्न करे तो बहुतही फायदा हासिल होवेगा पैसे बिगर कुछ काम होनेकाही नहीं

४ ये पैसे खर्च करनेमें पेस्तर गुजराती, इग्रेजी, सस्कृत और जैनधर्मका शिक्षण दिया जाय वैसी स्कूल ओपन करनी चाहिये, और वहां अन्यायमेंसें दिल हठ जाय वैसा उत्तम शिक्षण देना चाहिये सस्कृत पढनेवालोंकों बहुत वर्ष तक अभ्यास करना पडता है, वहातक उनके कुटुम्बका पोषण हो सके वैसा बदोबस्त करनेकी जरूरत है, उसकी न्यूनतासें करकें अभीके वक्तमें सस्कृतशालाओंमें लडके अभ्यास करते है, मगर वे पूरा सस्कृत ज्ञान नहीं मिला सकते हैं, क्यों कि धनवानके लडके तो बहुत करकें अभ्यास नहीं करते हैं और करनेवाले विरलेही निकलेंगे साधारण स्थितिके लडके २५–३० वर्षकी उमर तक अभ्यास करें तब सस्कृतज्ञान पूर्ण प्राप्त हो सकें, और उतनी उमर तक उनके कुटुम्बका निर्वाह क्यों करकें हो सके? धनकी तृष्णा धनवानोंकों लख्खो रुपे हाथ लगे जाय तोभी शात नहीं होती, तो साधारण मनुष्यकी तृष्णा क्यों शात हो सके? वास्ते पद्रह वर्षकी उमर होवे तबसें कुटुम्बके निर्वाहकी फिकर होती है वो फिकर, पढानेवालोंकी तर्फसें न होनेका बदोबस्त हुवा होवे तो सुखसें करकें अभ्यास पूर्ण हो सकता है, इस वास्ते व्याकरणका अभ्यास करे उसकों माहावारी पाच रुपे देनेका शुरु करना पीछे ज्यों ज्यों अभ्यास बडता जाय त्यों त्यों परीक्षा लेकर पगार बढाना चाहिये अतमें न्यायशास्त्र पूर्ण करने तक अभ्यास करे तो माहावारी ५० रुपेका महिना देना ऐसा आशा होवे तो सस्कृतका अभ्यास करनेवाले उमेदवार लडके निकलेंगे, वास्ते ऐसे नियम बाधनेसें जैनमें सस्कृत पढे हुवे विद्वान प्राप्त होवेंगे फिर ब्राह्मणोंके पास साधुजीओंकों पढना पडता है वो नहीं पढना पडेगा, उसी श्रावकभाइकों मध्य पगार दे करकें रख लेगा कि श्रावकके पैसे

दूसरी कोममें हरवर्षमें कमसेकम करीब पचीश हजार पगारके दिये जाते होंगे वो जैन कोमको प्राप्त होवेंगे वास्ते ये फंड होवें तो ये प्रबंध करनेकी आवश्यक्ता है. कोइ सुखी मनुष्य होगा वो स्वारमार्थके वास्ते पढेगा तो वो माहावारी पगार नहीं भी लेगा परंतु ऐसी शालाओंमें स्टेडेंमेंनडी ५० रुपिये माहावारी तनख्वाहकी आशा देनेकी जरूरत है ५० का पगार एक वर्षसें ज्यादा इस फंडमेंसें देना न पडेगा; मगर उस पठित लडकेकों ५० का पगार देनेवाले बहुतसें गृहस्थ मिल जायेंगे फिर संस्कृतके भाषांतर वगेरः में दूसरी शालाओंमें ऐसी पेदाश हो सकेगी और जैनोंकी विद्वत्ता प्रशंसापात्र होवेगी और उनके साथ वाद करनेकोंभी कोइ शक्तिवान् हो सकेगा, इससें बडी प्रभावना होवेगी अभी सुरत और अहमदाबादमें धर्मके ज्ञानका अभ्यास जैसें एक एक कलाक कराया जाता है, वेसें करतेही रहेंगे तो बहुतही शोभिता होगा

जो मनुष्य निरोजगारी और दु.खी है उसके वास्ते हरएक बडे शहरोंमें उद्योगशाला करनेकी जरूरत है उस शालामें उन्होंकों दाखिल किये जॉय और उन्होंकों लायक काम सुपरद किये जॉय याने जो काम जिस मनुष्यसें बन सके वो काम उसकोंही सुपरद करना, जिस्सें जैनकोमका भूखमरा बंध हो जावे. ये शालाओंमें कुछ मालभी बेचनेमें नुकशान होवे सो इस फंडमेंसें देना चाहिये बहुतसी जातके व्यापार हाथोंसें करनेके हैं और जो आ सके ऐसे काम उद्योगशालामें रखने चाहियें, जिसमें वे सहजसें हो सके, वास्ते नमुने मुवाफिक बतलाया है जो चीज जैनोंमें हजारो मन उपयोगमें आती है, वो बनानेका काम औरतोंका है और वे सरलतासें शीख सके. दशीए बनानेका कामभी कर सके बालाकुचीयें बांधनेका काम शीख सके वैसा है निर्बल स्थितिकी बाइयेंकों दाल बिननेका काम आदि सोंप देना, और भाइयोंकों बीडीए वालनेका, सूतके दडे बनानेका, डोरीए बुनने-गुथनेका, और किलनेक सूखे पदार्थकी गोलीए दवाके लिये बना.के बेचनेका काम कर सके ऐसे है वे सोंप देना योग्य है मीलोंमें काम कर सके बेसे होवे वैसेकों धंदेमें म.मिल कर देवे और बिलकुल अशक्त मनुष्य होवे उसें गुप्त मदद देनी योग्य है. ऐसा होनेमें जैनकोममें निराधार विशेष न रहेंगे यह उद्योग तो एक नाम मात्र लिखे गये है जगतमें बहुतसी तरहके व्यापार है, उनमेंसें जो बन सके और उसमेंभी जिसमें नफा विशेष और नुकशान कम हो वैसे देखकर दाखिल करने चाहियें. बनाइ हुइ वस्तु बेचनेका कामभी उसें सुपरद करना कि जिससें गाँवमें बजार लगाकर बेच लेवे,

५ जैनकोमकी लडाइयें सरकारमें जाती है, या ज्ञातीमें फाटे पडते हैं और उससें एकदूसरोंमें द्वेषबुद्धि रहती है–एकसप नहीं रहता और उन एकदूसरेके बीच बहुत मुद्दततक फिसाद चलता है और उस बदल हरएक बाबतोंमें तकरारें पेंठ जाती है उससें सरकारमें हजारो रुपै जैनकोमके नाहक बिगडते है मन भिन्न होनेसें एकदूसरेका काम बिगाडनेकेही तदबीर चलाते हैं, वास्ते वैसा बदोबस्त किया जाय कि जैनकी हरएक गाँवमें लवाद कोरटें कायम करनी और जो तकरारें होवें वो लवाद कोरटमेंही रुजु की जावें ऐसा ज्ञाती तर्फसें ठहरावही हो जाना चाहियें मगर उसमें मुकरर करना कि उस गाँवकी लवादके फेंसलेसें नाराज होवें तो बडे शहरोंकी लवादमें अपील करें अहमदाबाद और बबइ जैसेम तीन तीन कोरटें रक्खें, लवर पहेले–दूसरे–तीसरेकी रखें उसमें लवरवार एकसें एक बडी रखनी चाहियें याने अव्वल दर्जेकी अव्वल लवरकी, उसमें जो तीसरे कलासकी कोरटसें नाराज होवै वो दूसरे लवरकी और अंतमें पहेले लवरकी कोरटमें अपील करे कि जिससें पक्षपातका शक रहने न पावे, और हरएक टटा फिसाद टूकेमें बंध पड जाय मारामारीकी तकरारें वगैर के तोफान करनेवालाकों लायक शिक्षाभी करनी चाहियें कि जिससें कोरटके सिपाइ वगैर का पगारभी वसूल होता रहेवे ऐसा ठहराव होनेसें बहुतसें टटे तकरार कम हो जावेंगे, और ज्ञातीमें कुसप न रह सकेगा ज्ञातिके रिवाजके कायदे ज्ञातिमें अनुकूल होवें वो बांध रखने चाहियें, उसमें एक दो वर्ष होवे कि बहुतसे मतसें सुधारा करना चाहियें, मगर हमेशा चल सके वैसें करने चाहियें ऐसा हो जाय तो बहुत फायदा हांसिल हो सके वारिसनॉवेकी तकरारेंभी बडी रकमकी हो उसकाभी फेंसला मिलता रहेवे लाख रुपैसें ज्यादे रकमके फेंसलेके लिये एक दस बीस मनुष्योंकी सभा करनी चाहियें, उसमें सब देशके बडे गृहस्थ लिवादम कायम करने चाहियें, और अंतके फेंसले उन्हीकों सुपरद करने चाहियें कि अपक्षपातसें इन्साफ मिल सके और जैनकोमकी ऐसी तकरारोंमें धनका नाश होता है वो बंध पड जाय.

६ वीसाश्रीमालीकी ज्ञाती बहुतसें गाँवोंमें है, तथापि एक दूसरेकों उच नीच गिनते हैं सो न गिनना चाहियें वस्तुतासें तमाम श्रावकोंमें भेदही न होना चाहियें लेकिन वो भेद भाग देनेका अभि योग-समय मालूम नहीं होता है शायद एकरूप हो जाय तो बहुतही अच्छा और कभी, वैसा न हो सके तो अपनी

ज्ञातिका मनुष्य कोइभी शहरमें होवे उसकों कन्या देनेमें या लेनेमें भेद न रखना चाहिये, और कन्या देकर पैसे लिये जाते है वो न लेने चाहियें, उसके बंदोबस्तकीभी बडी जरूरत है, उसमें वो गाँववालोंका बडा हिस्सा समान होवे वहा ज्ञातिका जोर नहीं चल सक्ता है, वास्ते उन्हको रोक देनेके लिये दूसरे शहरवालोंकों रस्ता निकाल देना चाहियें बहुत करकें बडे शहरवाले पैसे देते हैं, वे देनेवालोंके उपरभी जबरदस्त अंकुश रखना चाहियें, तो कन्याविक्रयका मार्ग बंध सहजसेंही हो जाय, और अयोग्य स्थानमें कन्या जाकर दुःख न पाव, वास्ते पैसे लेने देनेवालोंको याने दोनुकों मनाकी जाय तो ये काम सुधर जाय श्रीमाली, पोरवाड, ओशवाल, वगैरः जो जो ज्ञाती जो जो देशमें होवे उन्ह सबके साथ सपसें लेने देनेका वहीवट करनमें रुकावट है वो निकाल देनी चाहियें. दसा वीशेका भेद है वोभी दूर हो जाय तो विशेष अच्छा हो जाय. इनमेंसें ज्यौ बहुत मतसें बंदोबस्त हो सके वैसा है. फिर जैनधर्मके पालक कितनीक ज्ञातिके है वे सब अपने धर्मीभाइ हैं, उन्हीके साथ इकठे बेठकर भोजन करनेका रिवाज नहीं है वोभी खराब है, सबब कि अन्यधर्मी बनिये बहमनका खाते है, वो खानेमें हरकत है, क्यौं कि वे लोक जिसकों अपने अभक्ष कहते है वो चीजें खाते है, वास्ते उन्होंका बनाया हुवा भोजन न खाना चाहिये ये खानेकी प्रवृत्ति है वो रोक देनेसें श्रावकके व्रतमें दूषण नहीं लगेंगे इतना फायदा है जो जैनी हैं, छाना हुवा जल पीते हैं और अभक्षकाभी त्याग करते है उसके वहा न खाना पीना ये अच्छी बात है ? इससें प्रभुजीकी आज्ञाका लोप होता है–स्वामीभाइयोंका तो बहुत मान [ सत्कार ] करना ये समकितका आचार हैं, उसके बदलेमें उनकों नीच कहे, उससें समकित मलीन क्यौं न होवेगा ? यहापर मुझकों कोइ सवाल करैगा कि तुम खुद एसा समझनेपरभी क्यौं नहीं करते हो ? उस विषयमें मेरा जबाब यही है कि बहुतसें लोग वैसी प्रवृत्ति नहीं करते हैं जो प्रवृत्ति मैं करु तो बहुतसें लोगोंके साथ विरोध हो जाय, वास्ते वो विरोध अपनी ज्ञातिके साथ न होवे वैसा मैं चलता हु, मगर मेरी श्रद्धा तो दूसरे कोमके श्रावकोंके साथ भेद न रखना यही है और मेरे जैसी जिनकी श्रद्धा होती है उनकों तो मैं यही विचार दृढाता हु कि एकके साथ सप करकें एकके साथ विरोध करना उससें कुच्छ फायदा नहीं है और वर्त्तमान समयमेंभी सब लोग, जैनधर्मकी क्या मर्यादा है जो नहीं जानते है वहातक ये बात मान्य नहीं करेंगे, कितनेक शहरोंमें

भिन्न ज्ञातिके जैनीओंका सीधा ( भोजन सामग्री ) लेकर खाते हैं और कितनेक शहरोंमें ऐसा ममत्व बंधा गया है कि वैसाभी नहीं करते हैं, और कहते हैं कि लाडवे श्रीमाली पीछेसें जैनधर्मी हुवे हैं पीछेसें हुवे कि नहीं उसका कहीं मतीतिवत लेख नजर नहीं आता है, तथापि उनके साथ खानेपीनेका संबध अभी नहीं रखते हैं- उससें मालूम होता है कि वै पीछेसें हुवे होंगे, सबब कि ओशवाल, पोरवाड वगेर. ज्ञातिभी आचार्य महाराजजीने प्रतिबोध करकें स्थापितकी हैं और स्थापित करनेके वक्त जिस जिसने आचार्य महाराजजीकी आज्ञा पालनकी उन सबकों ओशवाल बनाये, उसमें ज्ञाति-भेद रहा नहीं और हरिभद्रसूरिजीने पोरवाड बनाये सोभी इसी तरहसें आज्ञावंत हुवे थे सब,ओशवाल-पोरवाड-श्रीमाली वगेर. इकठे बैठकें जीमते हैं किसी तरह लाडवे श्रीमालीकोंभी किसी आचार्यने प्ररूपणा की होगी और जैनधर्म पानेसें एक ज्ञाति हुइ मालूम होती है तथापि उनके पैसेसें खरीद कीये हुवे सीधे की रसोइ बनवाकर खानेका कहवे तोभी ओशवाल श्रीमाली वगेर' जीमनेकी ना कहते हैं-ये किसी तरहका असल हठ बंधा गया हुवा मालूम होता है, मगर ये हठ छोडने लायक है, सबब कि किस लिये हठ बंधा गया वोभी किसीकों मालूम नहीं और वैसा हठ पकडकर बैठ रहना वोभी भूलभरित है कितनेक शहरोंमें कुनबी, छीपें पैसे या सीधा देते हैं तो पोरवाड ओशवाल वगैर खुशीसें जीमते हैं, और वहीवट चला हुवा आया सोहीं चला जाता है, तो किसी तरहसें लाडवे श्रीमालीके साथ ऐसा वहीवट नहीं चलता है सो चलाना चाहियें वै लोग अपना पैस्तरें खाते थे, मगर अपन उनके साथ खाना बंध किया जिससें उनकों बुरा मालूम होने लगा, तब उन्होंनेंभी अपने साथ खाना मोकूफ कर दिया-इसमें शासनमें भेद पड गया यह जैनीभाइयोंमें भेद पडनेसें कितनेक शासनके कामोंमें बहुत हरकत आ पडी वै लोग अपने विचार मुजब नहीं चलते हैं यदि उनके साथ ऐक्यता होती तो वैभी अपने विचारसें भिन्न न पड सकें, और परस्पर धर्म पानेका सुबब पडे अगर औरभी सब सुगमता पडे, वास्ते इकठे होना-खाना पीना वही उत्तम है वो न बन सके तो उनके पैससें भोजनसामग्री लेकें भोजन बनाकर खानेका प्रचार शुरु करना चाहियें-ये भेद दूर होगा तो बहुत गुण प्राप्ति होवेगी साडेतीनसो गाथेके स्तवनमें गच्छके अंदर भेद न पाडनेके वास्ते साधुजीके लिये कहा गया है, उसी वचनानुसार श्रावकोंमेंभी भेद न पाडने चाहिये वैरिलोंसें शासनकों

बहुत नुकशान है फिर ममत्ववंत ओशवाल श्रीमाली वगैरः है वे कहते हैं कि हम उंच हैं और वे नीच है ऐसा बोलकर उनकी निंदा करते है उससे नीचगोत्र बंधा जाता है. संवर कि श्रावकका धर्म पाचवे गुणस्थानकका है, वो गुणस्थानमें मनुष्यको नीचगोत्रका उदयही नहीं; तथापि श्रावकको नीच कहना ये बडी भूल है, कर्मबंधका कारण है और वीतरागजीकी आज्ञा विरुद्ध कथन है. विचारसारकी टीकामें प्रश्न हुवा है कि हरीकेशी चंडालने दीक्षा ली है वो छठ्ठे सातवे गुणस्थानकमें वर्त्तते हैं और छठ्ठे सातवे गुणस्थानकमें नीचगोत्रका उदय नहीं इसके जवाबमें देवचंद्रजी महाराजने कहा है कि जिसको चक्रवर्त्ती और सौधर्मेंद्र महाराज नमस्कार करते है उसको उचगोत्रकाही उदय कहा जावे नीचगोत्रका उदय होता तो पूजनीक होताही नहीं— पूजनीकपणा उचगोत्रके उदयसेंही होता है बारहव्रतकी पुजामेंभी श्रावकके बहुतमान्यके इसारेमें कहा है कि, 'विरतीने परणाम करीने, इंद्रसभामा बेसे मेरे प्यारे' गुणस्थानवत श्रावकको इंद्रमहाराजभी नमस्कार करते हैं, वैसे व्रतवंत, ओशवाल श्रीमाली पोरवाड वगैर. सिवाकी ज्ञातीमें क्या नहीं होवेंगे? अलबत्त होवेंगे यु होनेपरभी ऐसा भेद रखनेकी पद्धती होवे तो व्रतवंत लाडवेश्रीमाली प्रमुखकी निंदा होवे वो क्या प्रभुजीकी आज्ञाके बहार (विरुद्ध) का कथन नहीं है? वास्ते प्रभुजीकी आज्ञाके आराधक होना यही उत्तमपुरुषोंका या उत्तमपुरुष होना होवे उसका कार्य हैं, क्यों कि कर्मग्रंथकी ५६ वी गाथामें मिथ्यात्वमोहनी उपार्जन करनेमें उन्मार्गकी देशना वगैरः बहुतसे बोल कहे हैं, उसमें संघका प्रत्यनीकपणाभी गिना गया है और उस गाथाके अर्थमें श्रावककी निंदा वगैर करनेसें मिथ्यात्व उपार्जन करै ऐसा कहते हैं, वास्ते परज्ञातीके धर्मीष्टकों नीच कहनेसें उसी गाथामें फल बतलाये है वो प्राप्त करते हैं और उन्हीके साथ भेद भग्न करके एकत्र हो जावे तो समकित निर्मल होवे, इस लिये अपन तमाम मित्र मनमेंसें ये भिन्नभाव निकालदेके अभेदपणा होवे वैसा उद्यम करें तो बहुतही अच्छा होवे जैनधर्मका पालन करनेवालेके और प्रशंसा करनेवालेका ज्यों बन सके त्यों बहुतमान करना चाहियें, शक्ति मुजब मदद देनी चाहियें; नहीं कि उनकेपर द्वेष इर्ष्याभाव लाना या नीचज्ञाती है ऐसा कलंक देना ये रीत बिल्कुल गैरलाभकारी है अभी अपन रजपूत-क्षत्रीओंकी रोटी नहीं खाते है और ओसवाल प्रमुख उसी ज्ञातीमेंसे हुवे हैं, किसी तरह लाडवेश्रीमाली वगैरः

धर्म पालनेसें एक ज्ञाती हुइ है अपन जो असल ज्ञातीके थे उस ज्ञातीकी याद नहीं करते हैं, उसी मुजब उनसेंभी क्या ज्ञाती थी वो तपासनेकी कुछ जरूरत नहीं महावीरस्वामीजी आदि तीर्थंकरमहाराजजीके गुणग्रामके करनेवाले और प्रभुप्ररूपित मार्गका सेवन करनेवाले हैं, वास्ते वो गुणकी बहुतमान्यता अपनेसें जितनी बन सके उतनी करनी चाहियें, मगर उनकी लघुता करनी ये महान् दूषण समझता हुं। वास्ते समस्त भ्राताओंकों ये प्रयास करने योग्य है

७ जैनमें ज्ञातीकी रीत रसमके कायदे करने चाहियें और जैनी मात्रकी एकही रीति नीति होनी चाहियें रीतभातका-लेनेदेनेकाभी कायदा बधाजाय तो बातबातमें ज्ञातीमें फाटे पड जाने हैं और लडाइए होकर ऐक्यताका भग होता है वो न हो सके उन कायदाके आधार मुजब चलनेका होवै तो रीतिभातिका भग हो सकेही नहीं. हमेशां कायदे भगका डर रहता है भग करै उसके प्रायश्चितकी व्यवहारिक मर्यादा चाहियें और एक गाँवके लडमरै तब उसका समाधान, कायदेमें देशविदेशके अध्यक्ष बनाये होवे वै कर देवै इस्सें उसका चुकादा हो जावै-लबी तकरार न पहुचने पावै-सबब कि थोडे थोडे मनुष्यमें पक्षपात हो सकता है, मगर बहुत मनुष्यमें वो नहीं हो सकता सारा जैनमडल एकही होवै और उनके रीत रसमके कायदे मुकरर कीये गये होवै, वा कानूनका भग करै उसके साथ देशदेशका जैनमडल विरुद्ध हो जाय सो जैनका कायदा तोडनेमें भय रहेवै, क्यों कि सबके साथ विरुद्धता हो जाय तो कामही क्यों चल सके? कायदे अमलमें लिये बादभी उसमें हरकत जैसा मालूम हो आवै तो सारा जैनमडल हरसाल एकत्र होवे तब कायदेमें सुधारा करता रहवै-यु करनेसेंभी जैनकोमकों सुखी होनेका साधन है

८ इस सिवा सुधारेके काम करनेके बहुत हैं; लेकिन वो काम करनेवालोंकी न्यूनता मालूम होती है वो न्यूनता कब दूर होवे कि जैनमडलमेंसें परोपकारी मनुष्योंकों ऐसे काम करनेकी खुशी बतलानी चाहिय और उसमेंभी दो बातकी खुशी बतलानेकी जरूरत है याने आप जितना काम कर सकै उतना काम करनेकी खुशी बतलानी चाहिये, और जितने पैसेकी जो मदद देनी चाहते होवै उतने पैसेकी मदद देनेकों वै तत्पर भय हुवे गृहस्थोंकों जाहिर करना चाहिये कि फलाने काममें हम ये मदद कर सकेंग अब वा किमकों जाहिर करना चाहिये? इस वास्ते परोपकारी

अग्रेश्वरमंडल मुकरर करनेकी आवश्यक्ता है याने वैसे अग्रेश्वरोंकों जाहिर करना चाहियें, और पैसेकी मददमेंसें श्रावकोंकों कार्यभारी वनाने चाहियें. और उन कार्यभारीओंसें, तथा परोपकारी अग्रेसर महेनतवंत भाइयोंकी महेनतसें जितना जितना बन सकें उतना काम करना चाहियें. यु करते करते किसी वक्त सब सुधारा होनेका समय प्राप्त हो जायगा अकेली वातें करनेसें ये काम नहीं बन सकता है. चतुर्विध संघमेंसें कोइभी धनवान गृहस्थ अग्रेश्वर होवे तो ये काम बन सके, वास्ते जिसने पूर्वमें पुन्य उपार्जन किया है वो पुन्यात्माके हित लिये उपार्जन किया है इस लियें उस पुण्यके फल यही हैं कि धन्याढय गृहस्थ अच्छे गुमास्ते-मुनीम रख्खें, अपने व्यापारका काम उन्होंकों सुपरद करकें आप खुद परमार्थके काममें कटिबद्ध हो रहेवें कि जिससें शासन शोभावंत होवें मगर मुकाम अफशोसका है कि वैसे धनवत तो कहते हैं कि-हमकों तो ऐसे काम करनेकी फुरसद नहीं तब साधारण मनुष्यकों तो फुरसद होवेंही कहांसें? पुन्यवत ऐसा करैं उससें धन प्राप्तिके शुभ फलका स्वादानुभव नहीं कर सकते हैं और जो शख्स जितना जितना कार्य करते हैं उतनें उतनें फलका स्वादानुभव ले सकते है भगवतजीका शासन एकवीश हजार वर्षतक जयवंत कहा है, वास्ते कोइभी भाग्यशाली शासनके कार्य करनेमें कटिबद्ध रहेंगे और शासन जयवत प्रवर्त्तेगा जो जो भव्यप्राणी शासन जयवत रखनेकी महेनत करते हैं वै बहुतसा पुण्य उपार्जन करते हैं ये नि.सदेह वार्त्ता है-इस लिये ये लेख पढकर कोइभी भाग्यशाली शासनोन्नतिमें तत्पर रहवै यही हमारा उद्देश हैं जहांतक कोइ भाग्यशाली जागृत न होवेगा वहांतक तो चलता है वैसाही चला जायगा; तथापि अभी कुछ भाग्यशालीजन कहीं कहीं जागृत हुवे मालूम होते है और वै शासनकी उन्नतिका उद्यम करते है. उन्होंकों मेरे लिखानसें कुछ अच्छा लगै तो वै विशेष जागृतिवत होकर तन मन धनका सदुपयोग करने लगें; इस वास्ते इतना लिखा गया है.- या आगामीक कालमेंभी जैनकोम सुधारनेके कामी होवे उनकोंभी मेरी बालबुद्धिके विचारमें कुछ अच्छा विचार होवे और पसद पडै तो इस धाराधानुसार चलन रख्खें इस लिये ये मेरा इसारा है. कदाचित ये लिखान मग्रक्तिका है उसमें किसीकों बुरा लगै वैसा लेख तो नहीं है; तथापि मेरी भूलसें किसीकों बुरा लगने जैसा लिखान हुवा होवे तो उनके पाससें मै पेस्तरसेंही क्षमा करनेकी वीनती करता हु, और मुझकों लिख भेजेंगे,

तो मैं माफी माग लुगा यदि प्रभुजीकी आज्ञा विरुद्ध लिखान हो गया होवे तो प्रभु-जीके आगे त्रिकरण शुद्धिसें मिच्छामिदुक्कड देता हु

प्रश्न.—जिस तरह जैनमें अभक्ष्य पदार्थ–मांस, मदिरा, शहत, मक्खन, मूली वगैरे अनंतकाय, द्विदल, बेंगन, रात्रीभोजन अभक्ष्य कहे हैं किस तरह अन्यदर्शनी योंने कहा है?

उत्तर —श्रीचदकेवलीके रासमें पुराणांतर्गत श्लोक लिखे गये है जो श्लोक में लिखता हु, उससें प्रतीति होयगी जो जो आत्मार्थी मनुष्य हैं वे तो शोचेंगे, मगर जो विषयी जीव है वे तो जो धर्म मानते है उसके शासनपरभी विश्वास नहीं रखते हैं इससें लाइलाज हु अन्यदर्शनीओंने धर्म प्रकाशकोंवालेका आपके शास्त्रमें अभक्ष्य कहा है वो पढकरकेंभी उसका त्याग नहीं करते है और श्रोताओंको त्याग करनेका उपदेशभी यथास्थित न दे सकते है, इससें अभी ऐसा हुवा है कि श्रावक रात्रिभोजन न करे किसी तरह कोइ दयालु ब्राह्मन रात्रिमें न खावे तो उसें दूसरे वैश्नव कहने लगे कि क्यों श्रावकधर्म स्वीकार लिया है कि ऐसी दशा बन गइ है? ये सब योग्य गुरुके वियोगकेही फल हैं, वास्ते जैनीभाइयोंको वर्मोकी दयाचितवन करनी सोही उत्तम है मुकाम अफसोसका है कि कितनेक शहराम पानीके नल हो गये है वहा जैनी हो करकेंभी नलके मुँहपें एक चीथडा बाध दिया कि पानी छाना गया ऐसा मानने लग हैं सखाराभी नहीं समाला जाता है ये बडे अफसोसकी बात है। क्यों कि अन्यदर्शनी हो, कहते है कि जैनी पानी छानकर उपयोगमें लेते हैं और खुद जैनी भाइ ऐसा करके मुद्देकी बात छोडते चले जाता है, और चिंता होती है कि दीर्घ समय जानेसें अन्यदर्शनी जैसाही हो जावेगा कितनेकको कहते है कि नलमेंसें पानी लेकर उस छानकर उसका जीवाणी-सखारा यदि नल तालावमेंसें लिया गया हो तो तालावम, नदीमेंसें या कूवेमेंस नल लिया गया हो तो नदी–कूवेमें डाल दे, मगर कोन सुनता है। वैसा करनेवाले थोडे है, वास्ते जैनीभाइ जीवदया प्रतिपाल कहे जाय तो वो नाँव सच्चा तब होवे कि जब जीवकी जतना कि जावे तब वास्ते जीवरक्षणके लिये पानी छान लेना और उसका सखारा तालाव, कूवेमें जहाका पानी हो वहा डाल देना बाइस अभक्ष्य है उसका त्याग करना उन बाइसमेंसें कितनक तो अन्यदर्शनीमेंभी त्याग करनेका फरमान है, लेकिन उन अन्यदर्शनीकाभी पूर्णप

चोसें मालुम नहीं है कि हमारेही शास्त्रका क्या फरमान है ! इस लिये लिखता हुं, और अन्यदर्शनी जिस चीजकों त्याग करनेका कहते है तो जैनीओको बेशक विसका त्याग करनाही मुनासिब है ऐसी श्रद्धा होनेके वास्ते दर्शाता हुं कि —

माहाभारतमें कहा है किः—

घातकश्चानुमन्ता च भक्षकः क्रयविक्रयी ॥
लिप्यते प्राणिघातेन पंचैतेपि युधिष्ठिर ॥ १
यावन्तीपशुरोमाणी पशुगात्रेषु भारत ॥
तावद्वर्षसहस्राणी पच्यते पशुघातकाः ॥ २

अर्थ—हे युधिष्ठर ! जीवोंको प्राणघातसें करके मारनेवाला, उसे खानेवाला, उसें बेचनेवाला, वेचाउ लेनेवाला और सम्मती देनेवाला ये पांचो जन पापसें लिप्त होते है और पशुके शरीरपर जितने वाल है उतने हजार वर्षतक वे नरकमें दुःख पाते हैं. १–२

शांतिपर्वमें लिखा है कि—

यूं पछित्वा पशुन् हत्वा कृत्वा रुधिर कर्दमान् ॥
यद्येव गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते ॥ ३

अर्थ—[ महाभारतांतर्गत शांतिपर्वमें कहा है कि ] यज्ञ स्तभकों और पशुओंकों छेदकरकें पृथिवीपर लोहुका कीचड कर स्वर्गमें जावे तो फिर नरकमें जानेवाले कौन बाकी में रहे ? याने यज्ञकर और पशु वगैरे जीवोंकों मारनेवालाही नरकमें जाता है, वास्ते पशुघात और यज्ञ होमादि करनेसें ऐसे फल होते है ३

मार्कंडपुराणमें कहा है किः—

जीवाना रक्षण श्रेष्ठ जीवा जीवितकांक्षिण ॥
तस्मात् समस्तदानेभ्योभयदान प्रशस्यते, ॥ ४ ॥

अर्थः—जीवोंका रक्षण करना यही उत्तम है. जीवभी अपने जीवितकी इच्छा करते हैं, वास्ते सब दानोंसें जीवोंकों अभयदान देना ये अधिक है अभयदानकी कितनी महत्ता बतलाइ है ? यु फरमान होनेपरभी पशुका होम करना ये कितनी वालचेष्टा है ? वास्ते तमाम धर्ममें किसीकों दुःख न होवे ऐसा चलन रखना वही सच्चा धर्म है ४

पुन उसी पुराणमें अष्ट पुष्प कहे है'—

अहिंसा परमपुण्य पुष्प इंद्रिये निग्रहम् ॥
सर्व भूत दया पुष्प क्षमा पुष्प विशेषत ॥ ५ ॥
ध्यान पुष्प तप पुष्प ज्ञान पुष्प तु सप्तमम् ॥
सत्यं चैवाष्टम पुष्प तेन पुष्यति देवता ॥ ६ ॥

अर्थ. –उसी पुराणमें 'जीवाना रक्षण श्रेष्ठ' ऐसा कहा है वहाही अष्टपुष्पका कथन है कि-हिंसा न करनी ये प्रथम पुष्प है, इद्रियोंको वश्य करनी ये दूसरा पुष्प है, सर्व जीवोंपर दया रखनी य तीसरा पुष्प हैं, शाति रखनी ये चौथा पुष्प है, ध्यान करना ये पांचवा पुष्प है, तप करना ये छठा पुष्प है, ज्ञान मिलाना ये सातवा पुष्प है, और सत्य भाषन करना ये आठवा पुष्प है कि ये पुष्पोंसें देवता प्रसन्न रहते हैं ५-६

फिर महाभारतमें लिखा है कि'—

यूकामत्कुनदशीमसात् जतुश्च तुदति तनू ॥
पुत्रवत् परिरक्षति ते नरा. स्वर्गगामिन ॥ ७ ॥
आत्मपाद्रौ य ये घ्नति ते वै नरकगामिन ॥
सर्वत्रकार्यो जीवाना–रक्षाचैवापराधिनाम् ॥ ८ ॥

अर्थः—जु, खटमल, मछर वगैर. जतु जो शरीरकों काटते हैं, उसकों पुत्रकी तरह रक्षण करता है वो प्राणी स्वर्गमें जाने योग्य है और जो मनुष्य जीवोंके शरीर या पांउकों छेदता है वो नरकमें जाता है, वास्ते अपराधी जीवोंकोभी सब प्रकारसे रक्षा करनी यही मुख्य धर्म है ७-८

पुन. महाभारतमें कहा है कि —

विंशत्यगुल्मानतु त्रिंमदगुलमायतम् ॥
तद्वस्त्र द्विगुणिकृत्य गाल्यित्वापिवेत् जलम् ॥ ९ ॥
तां मस्त्रवस्थितान् जीवान् स्थापयेत् जलमध्यत. ॥
एव कृत्वा पिवेत् तोय स याति परमांगतिम् ॥ १० ॥

अर्थ —वीस अगुल विशाल और त्रीस अगुल लवा वस्त्र हो उसें दुपट कर पानी छानकर पीना और उस वस्त्रकी'अदर रहे हुवे जीवोंकों कुवे वगैर में डाल देना इसतरह करके जो मनुष्य पानी पीता है वो उत्तमगतिकों पाता है ९-१०

इस तरह महाभारतके वचन है, तथापि सन्यासी पुराणी होकर अनछाना जल पीते है या न्हाने धोनेके काममें लेते हैं उनकी क्या गति होवेगी ? वो महाभारत पढने सुननेवाले लक्ष नहीं देते हैं वो कैसी बालदशा है ? आत्मार्थीयोंको अवश्य दया करनीही योग्य है

दृष्टिपूत न्यसेत्पाद वस्त्रपूत पिबेत् जलम् ॥
सत्यपूत वदेत् वाक्य मनः पूत समाचरेत् ॥ ११ ॥

अर्थ—आंखोंसें देखकर पाव रखना, कपडेसें छानकर पानी पीना, सत्यसें वचन बोलना ओर मन पवित्रसें आचरना

पुनः महाभारतमें कहा है किः—
सग्रामेण यत् पाप अग्निना भस्मसात्कृतम् ॥
तत्पाप जाय ते तस्य मधुबिंदु प्रभक्षणात् ॥ १२ ॥

अर्थः—महान् युद्ध करनेसें जितना पाप होता है और अग्निसें गाँव वगैरः जलानेसें जितना पाप होता है, उतना पाप सहतका बिंदु खानेसें होता है सहत खानेमे ऐसा पाप है तोभी शास्त्र पढानेवाले सहतका त्याग नहीं करते हैं सुननेवाले तो सहतका त्याग करेंही कैसें ? वास्ते प्रथम कथा बाचनेवालोंको दयालुतासें सहत खानेका त्याग करना कि जिससें श्रोताजनभी सुधारा कर सके. १२

विष्नुपुराणमे कहा है किः—
ग्रामाणा सप्तके दग्धे यत् पाप समुपद्यते ॥
तत् पाप जायते पार्थ जलस्यागलिते घटे ॥ १३ ॥
सवत्सरेण यत् पाप, कैवर्तस्यैव जायते ॥
एकाहेन तदाप्नोति अपूतजल सग्रही. ॥ १४ ॥

अर्थः—हे पार्थ ! सात गाँव जलादेनेसें जितना पाप होता है उतना पाप घडेमें छाने बिगरका पानी भरनेसें होता है मच्छीमार वर्ष दिनतक जाल डालनेसें जितना पाप होवे उतना पाप एक दिन छाने बिगरका जलका उपयोग करनेवालोंको होता है. १३—१४

पुनः उसी पुराणमें कहा है किः—
यः कुर्यात् सर्वकार्याणी वस्त्रपूतेन वारिणा ॥
स मुनि स महासाधु स योगी स महाव्रती. १५

अर्थ —जिस कपडेसें छाने हुवे पानीसें करकें सब काम करता है वोही मुनी, वोही बडा साधु, वोही योगी और वोही बडा व्रतवाला जानना १५

पुन इतिहास पुराणमें कहा है कि —

अहिंसा परम ध्यान अहिंसा परमतप ॥
अहिंसा परमज्ञान अहिंसा परमपदम् ॥ १६ ॥
अहिंसा परमदान अहिंसा परमोदम ॥
अहिंसा परमोजाप अहिंसा परमशुभम् ॥ १७ ॥
तमेवमुत्तम धर्ममहिंसाधर्मरक्षणम् ॥
ये चरन्ति महात्मान विष्णुलोक व्रजन्ति ते ॥ १८ ॥

अर्थ —अहिंसा यही उत्तम ध्यान है, अहिंसा वही उत्तम तप है, अहिंसा वही उत्तम ज्ञान है अहिंसा वही उत्तम पद है, अहिंसा वही उत्तम दान है, अहिंसा वही उत्तम दम है, अहिंसा वही उत्तम जाप है, अहिंसा वही उत्तम शुभ है और अहिंस रूप धर्म करना यही उत्तम धर्म है उस धर्मका जो महात्मा आचरण करते है विष्णुलोकमे जाते है १६–१८

नागपडल ग्रथमें श्रीकृष्णजीने युधिष्ठिरसें कहा है कि'—

अभक्ष्याणि न भक्ष्याणि कन्दमूलानी भारत ॥
नूतनोद्गमपत्राणि वर्जनीयानी सर्वत. ॥ १९ ॥

अर्थ —हे भारत ! कदमूल अभक्ष्य है वे न खाने चाहियें और नये पैदा हु अकुरादिके पत्र वगैर भी त्याग करने चाहियें इसतरह कहे हुवे परभी कदमूल, ज मीकद–सकरकद पटाटे रतालु वगैरः एकादशीके रोज खान एकादशीव्रत करकें खा है उसका कितना पाप है वो बुद्धिमानकोंही विचार कर लेना योग्य है.

मदिराके लियें कहा है कि —

मधुपाने मतिभ्रंशो नराणा जायते खलु ॥
धर्मणतेभ्योदातणा न ध्यान न च सत्क्रिया ॥ २० ॥
मद्यपाने कृतेक्रोधो मान लाभश्च जायते ॥
मोहश्च मत्सर श्रैव दुष्टभाषणमेवच ॥ २१ ॥
मद्यमासे मधुनि च नवनीते बहि कृते ॥
उत्पद्यते विलीयत सु सूक्ष्मजतुराशय ॥ २२ ॥

अर्थः—दारु पीनेमें मनुष्योंकी बुद्धिका भ्रंश होता है उससें पापाचरण करते हैं; वास्ते वैसेकों कोइ वस्तु देनेसें धर्म नहीं होता है मदिरा पीनेवालोंकों ध्यान और सत्क्रिया फल रहित होती है. मदिरा पीनेसें क्रोध, मान, लोभ, मोह, मत्सर होता है और दुष्ट भाषणका उपयोग किया जाता है. औरभी कहा है कि मदिरा, मांस, सहत ओर छासमेंसें बहार निकाला गया मख्खनमें सूक्ष्म जंतुका समूह पैदा होता है और नाशभी होता है. मख्खनका दोष कहा है तोभी अन्यदर्शनी उसका कुछ दोष नहीं गिनते हैं और कहते है कि शास्त्रसें विरुद्ध नहीं है; इस वास्ते न्यायीकों इस श्लोकसें शोचनेकी जरूरत है. २०–२२

अभक्ष्य भक्षणके दोष सब धर्ममें कहा है कि—

पुत्रमांस वरमुक्तं न तु मूलकभक्षणम् ॥
भक्षणात् नरकं याति वर्जनात्स्वर्गमाप्नुयात् ॥ २३ ॥

अर्थः—पुत्रका मांस खाना सो अच्छा, परंतु मूला खाना बुरा है. मूला खानेसें प्राणी नरकमें जाता है और उसका त्याग करनेसें स्वर्गमें जाता है. २३

इतिहास पुराणमेंभी लिखा है किः—

यस्तु वृंताकं कालिंग मूलकानां च भक्षकः ॥
अंतकाले स मूढात्मा न स्मरिष्यति मां प्रिये ॥ २४ ॥

अर्थ.—हे प्रिये! बेंगन, कलिंगड और मूले खानेवाला प्राणी अंतकालमभी मुझकों याद न कर सकैगा याने ये चीज खानेवाला अधर्मी होता है उससें अंतसमय मुझकों याद न करनेसें वो दुर्गतिमें जाता है. २४

शिवपुराणमेंभी कहा है किः—

यस्मिन् गृहे सदा नाथ, मूलकं पचति जनः ॥
श्मशानं तुल्यं तद्वेश्म पितृभिः परिवर्जितम् ॥ २५ ॥
मूलकेन समं भोज्यं यस्तु भुंक्ते नराधमः ॥
तस्यशुद्धि र्न विद्येत चांद्रायण शतैरपि ॥ २६ ॥
भुक्तं हलाहलं तेन कृतं चा भक्ष्य–भक्षणम् ॥
वृंताक भक्षणाच्चापि नरोयात्येव रौरवम् ॥ २७ ॥

अर्थः—हे नाथ! जिसके मकानमें हमेशा मूलेका शाख या उसके साहित भाजी तैयार की जाती है उसका मकान श्मशान (मरघट) के समान है, और उस मकानका पि-

तूलोगोंने त्याग किया है मूलेके साथ जिस चीजका जो भोजन करता है वो मनुष्य अधम गिना जाता है-और उसकी बुद्धि चांद्रायणादि व्रतोंसें करकेंभी शुद्ध नहीं होती. जिसने अभक्ष्य-मूले, बेंगन वगैरः खाया होवे उसने हलाहल झहर पीया है ऐसा समझना और वो प्राणी अतमें रौरव नामक नरकमें जाता है. २५-२७

पद्मपुराणमें कहा है किः—

गोरस माषमध्ये तु मुद्गादिके तथैव च ॥
भक्षयेत्त भवेत् नून मासतुल्य युधिष्ठिर. ॥ २८ ॥

अर्थः—हे युधिष्ठिर ! दूध, दही, छास ये उर्दसें मुगमें या दाल होनेवाले द्वि-दलमें डालनेसें वो मांस तूल्य हो जाते हैं, वास्ते ये खाना और मांस खाना ये दोनु बरोबर है. २८

रात्रीभोजनके बारेमेंभी कहा है कि'—

अस्तगते दिवानाथे आपोरूधिर मुच्यते ॥
अन्नमांससममोक्त मार्कंडेन महर्षिणा. ॥ २९ ॥
चत्वारो नरकद्वार प्रथम रात्रिभोजनम् ॥
परस्त्रिगमन चैव सधानानन्तकायिका ॥ ३० ॥

अर्थ'—सूर्य अस्त हुवे बाद पानी पीना सो लोहीके समान है, और अन्न मांसके समान है. नरकके चार द्वार हैं उसमें पहेला रात्रिभोजन, दूसरा परस्त्रीगमन, तीसरा आचार वगैरः खाना और चौथा मूले वगैर' अनतकाय भक्षण करना सो हैं

इस श्लोकमें रात्रीभोजन, परस्त्रीगमन, धूप बतलाये हुवे दिगरका आचार कि जिसमें जतु पड जाते हैं, और अनतकाय याने मूले विगरवे अनतजीव है इन चारोंका सेवन करनेहारा नरकगामी है, ऐसा बतलाया है वास्ते इन्होंका त्याग करना. २९-३०